प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

संस्करण
मार्च १९३९ : २०००
दाम
चार आना

मुद्रक,
एस. एन. भारती,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

प्रकाशक के दो शब्द

पं० जवाहरलालजी ने 'विश्व-इतिहास की झलक' पुस्तक कई साल पहले लिखी थी। उसमें सन् १९३३ के मध्य तक की घटनाओं का ही वर्णन था। पिछले ४-५ वर्षों में अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति इतनी तेजी से बदली है कि 'झलक' छापते समय मण्डल को ऐसा लगा कि यदि एक अध्याय और लिखकर पण्डितजी इसे 'अप-टु-डेट' बना दें तो बड़ा अच्छा होगा। उस वक्त तो उन्हें फुर्सत न थी इसलिए वैसा न हो सका। पर पिछले साल यूरप से वापस लौटते वक्त उनको रास्ते में वक्त मिल गया और उन्होंने 'झलक' के आखिर में जोड़ने के लिए यह एक अध्याय लिख डाला। आजकल दुनिया के सियासी मामलों में इस जोर और तेजी से उथल-पुथल होरही है कि इस अध्याय के लिखने के बाद भी अनेक घटनायें हो गई हैं। स्पेन की क़िस्मत पर आखिरी परदा गिरता हुआ मालूम पड़ रहा है। फेसिस्ट शक्तियों की गुटबन्दी ज्यादा साफ़ और मज़बूत होती जारही है और अब अन्तर्राष्ट्रीय संकट के दिन जैसे तेजी से नजदीक चले आरहे हैं। उम्मीद है, पण्डितजी ने इस अन्तिम अध्याय में अन्तर्राष्ट्रीय अवस्था पर जो सरसरी निगाह डाली है उससे 'झलक' के पाठकों और दूसरे लोगों को भी उसे समझने में आसानी और सहूलियत होगी।

—मंत्री

दुनिया का रंगमंच

[सन् १९३३ से १९३८ तक]

अरब सागर

१४ नवम्बर, १९३८

सवा पाँच साल हुए जब मैंने देहरादून की ज़िला-जेल से इस सिलसिले में तुम्हें आख़िरी ख़त लिखा था। मेरी दो साल की सज़ा खत्म हो रही थी। मैंने अपनी तनहा ज़िन्दगी (पर तुम तो विचारों की दुनिया में सदा मेरे साथ थीं ही) के इस लम्बे अर्से में तुम्हें जो ख़त लिखे थे, उनके इस बड़े ढेर को उठाकर मैंनें एक तरफ़ रख दिया और गति और कर्म की बाहरी दुनिया में जाने के लिए होनेवाली रिहाई के वास्ते अपने मन को तैयार किया। मेरी रिहाई इसके कुछ ही दिनों बाद हो गई, पर पाँच ही महीनों के बाद दो साल की सज़ा लेकर फिर मैं जेल की परिचित सरज़मीन में पहुँच गया। मैंने फिर क़लम पकड़ी और एक कहानी लिख डाली। इस बार की यह कहानी ज्यादा निजी थी।[1]

मैं फिर बाहर आया और हम दोनों ने साथ-साथ एक विपत्ति में हिस्सा बँटाया—वह विपत्ति जिसने तबसे मेरी ज़िन्दगी के ऊपर एक काली छाया डाल दी है। पर दुःख और संघर्ष की इस दुनिया में व्यक्तिगत मुसीबत छोटी बात है। जो संघर्ष और लड़ाइयाँ इस दुनिया को हिला रही हैं उन्हींमें हमारी सारी ताक़त लग जाती है। इसलिए हम फिर जुदा हुए; तुम अध्ययन के सुरक्षित रास्ते पर गई और मैं लड़ाई के शोरगुल और कोलाहल की तरफ़ लगा।

लड़ाई और मुसीबत के बोझ से लदे हुए पाँच साल, और उससे कुछ ज्यादा, बीत गये हैं, फिर भी जिस दुनिया में हम रह रहे हैं उसमें और हमारे सपनों की दुनिया के बीच विरोध बराबर बढ़ता ही जाता है। जो बला हमारे पीछे लगी हुई है उसका गला घोंटने से कभी-कभी खुद उम्मीद के भी दम घुटने लगते हैं। फिर भी जब मैं यह ख़त लिख रहा हूँ, अपनी सारी ताक़त और ख़ूबसूरती के साथ अरब-सागर मेरे सामने फैला हुआ है—स्वप्न की तरह मौन और चाँदनी की चाँदी के बीच थिरकता हुआ।

१. पंडितजी का मतलब अपनी आत्म-कथा से है जो 'मेरी कहानी' के नाम से मण्डल से प्रकाशित हो चुकी है। —प्रकाशक

इस अध्याय में मुझसे इन पाँच सालों की कहानी तुम्हें सुनाने की कल्पना की गई है, क्योंकि ये ख़त एक नया जामा पहनकर सामने आनेवाले हैं और मेरे प्रकाशक की माँग है कि नई घटनाओं का वर्णन जोड़कर उन्हें ताज़ा—अप-टु-डेट—बना दिया जाय। यह एक मुश्किल काम है, क्योंकि इस अर्से में इतनी ज्यादा घटनायें घटित हो चुकी हैं कि अगर मैं उनके बारे में लिखना शुरू करूँ और मुझे उन्हें लिखने के लिए वक्त हो तो मैं सारी सीमाओं और बन्धनों को पार कर जाऊँगा और एक नई किताब तैयार कर दूँगा। अगर ख़ास-ख़ास घटनाओं का हवाला दिया जाय तो वह भी लम्बा और थका देनेवाला होगा। इसलिए जो-कुछ हुआ है, उसकी सिर्फ़ एक हलकी-सी रूप-रेखा, एक उड़ता हुआ ख़ाका, मैं तुम्हारे सामने रक्खूँगा। जो ख़त पहले लिख चुका हूँ उनमें भी कहीं-कहीं मैंने टिप्पणियाँ लगा दी हैं, जिनमें कुछ और तथ्य दिये गये हैं; अब मैं इन बरसों पर एक सरसरी नज़र डालते हुए उनकी संक्षिप्त कहानी लिखूँगा।

अपने आख़िरी ख़तों में मैंने तुम्हारा ध्यान उन ज़बर्दस्त प्रतियोगिताओं और विरोधों की तरफ़ खींचा था जो आजकल की दुनिया में दिखाई दे रहे हैं। इनमें मैंने फ़ैसिज्म और नाज़ीवाद के विकास और युद्ध की काली छाया की तरफ़ भी तुम्हारा ध्यान दिलाया था। इन पाँच सालों में ये विरोध, होड़ और संघर्ष पहले से ज्यादा मज़बूत और गहरे हो गये हैं और यद्यपि सारी दुनिया में फैल जानेवाने युद्ध से हम बच गये हैं फिर भी अफ़रीका, यूरप और एशिया के सुदूरपूर्व में बड़ी और ख़ौफ़नाक लड़ाइयाँ होती रही हैं। हर साल, और कभी-कभी हर महीना, ताज़े आक्रमण और ख़ौफ़ की अपनी कहानी लिये हुए आता है। संसार दिन-दिन ज्यादा-से-ज्यादा असंगठित होता और बिखरता जारहा है; अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्धों में अराजकता आती जाती है—कोई किसी नियम या क़ानून को नहीं मानता, और राष्ट्र-संघ तथा अन्तर्राष्ट्रीय सहयोग या मेल के लिए की जानेवाली दूसरी कोशिशें बुरी तरह असफल हुई हैं। निःशस्त्रीकरण यानी राष्ट्रों की फ़ौजी तैयारी और हथियारबन्दी की बाढ़ रोकने और उसमें कमी करने का सवाल अब गुज़रे हुए ज़माने की बात है और हरेक राष्ट्र आज, रात-दिन, बड़ी सरगर्मी के साथ, अपनी सामर्थ्य-भर हथियारबन्दी या फ़ौजी तैयारी के लिए कोशिश कर रहा है। दुनिया पर भय छा गया है। उधर हमलावर और विजयी फ़ैसिज्म और नाज़ीवाद के प्रहारों एवं चोटों से घायल होकर यूरप बड़ी तेज़ी से नष्ट हो रहा है और बर्बरता या जंगलीपन की तरफ़ जा रहा है।

अपने पिछले ख़तों में हम विस्तार के साथ उन सवालों की चर्चा कर चुके हैं जो १९१४ से १९१८ तक होनेवाले महायुद्ध के पीछे थे। युद्ध आया और उससे वार्साई

की सन्धि और राष्ट्र-संघ का अहदनामा निकला। लेकिन पुराने मसले और सवाल ज्यों के त्यों बने रहे, वे हल नहीं हुए। यही नहीं बल्कि बहुत-से नये सवाल और मसले और पैदा होगये—जैसे हरजाने का सवाल, युद्ध-ऋण, निःशस्त्रीकरण, सामूहिक रक्षा, अर्थसंकट तथा बहुत बड़े पैमाने पर फैली हुई बेकारी। शान्ति के मसलों के पीछे अब भी वे महत्वपूर्ण सामाजिक समस्यायें बच रही थीं जिन्होंने दुनिया के समतौल को अस्थिर कर दिया था। सोवियट यूनियन में नई सामाजिक ताक़तें फ़तह हासिल कर चुकी थीं और जबर्दस्त कठिनाइयों और दुनिया के विरोध के बावजूद एक नई दुनिया बनाने की कोशिश कर रही थीं। और जगहों में भी गहरी सामाजिक तब्दीलियों का सिलसिला चल रहा था, पर उन्हें बाहर निकलने का कोई रास्ता नहीं मिल रहा था और मौजूदा राजनैतिक और आर्थिक ढांचे ने उन्हें रोक रक्खा था। दुनिया में बहुतायत आई; उत्पादन का परिणाम बहुत बढ़ गया; युगों का सपना पूरा हुआ। लेकिन लम्बी मुद्दत तक गुलामी और बन्धनों का आदी हो जाने पर गुलाम स्वतन्त्रता से डरने लगता है। मूर्ख मानवता को दुष्काल और अभाव का कुछ ऐसा अभ्यास पड़ गया है कि यह आसानी से दूसरी तरह की अवस्था के बारे में सोच नहीं सकती। इस तरह नये धन, नई सम्पत्ति को जानबूझकर फेंका जारहा है, उसे महदूद और बन्द किया जा रहा है। इसका नतीजा यह है कि बेकारी और मुसीबत में दरअसल बढ़ती हुई है।

सम्मेलन पर सम्मेलन हुए और संसार के राष्ट्र इस ताज्जुब पैदा करनेवाले परस्पर-विरोध को दूर करने और शांति क़ायम करने के लिए मिल-जुलकर इकट्ठे हुए। आपस में मैत्री, समझौते और गुटबंदियाँ हुई—लोकार्नो और केलॉगपैक्ट में एक दूसरे पर हमला न करने के समझौते हुए। लेकिन असली और बुनियादी मसलों को छुआ तक न गया। इसलिए खूँखार असलियत के पहले स्पर्श में ही ये समझौते, राजीनामे और पैक्ट हवा होगये और यूरप की क़िस्मत का फैसला करने के लिए नंगी तलवार को छोड़ गये। वर्साई की संधि मर चुकी है, यूरप का नक़शा फिर बदल गया है और दुनिया का एक नया बँटवार हो रहा है। युद्ध-ऋणों का सवाल फीका और कमज़ोर पड़ गया है और सबसे मालदार राष्ट्रों ने भी उनको चुकाने से इन्कार कर दिया है।

हाँ, तो हम युद्ध के पहले के १९१४ और उससे पूर्व के जमाने को लौटते हैं। इस जमाने में बहुत-से मसले थे, उसकी अपनी खींचा-तानी और विरोध थे। पर तबसे जो कुछ घटानायें घटी हैं उनकी वजह से ये मसले और विरोध सौगुना बढ़ गये और गहरे होगये हैं। मरती हुई पूँजीवादी पद्धति ने आर्थिक राष्ट्रीयता—माली क़ौमियत—को बढ़ाया है और बड़े-बड़े एकाधिकारों को विकसित किया है। यह आक्रमणात्मक एवं हिंसात्मक होती जाती है और पार्लमेण्टरी प्रजासत्ता तक को बर्दाश्त नहीं कर

सकती । फ़ैसिज्म और नाज़ीवाद अपनी नंगी हैवानियत के साथ खड़े होते हैं और युद्ध को अपनी सारी नीति का आदर्श और लक्ष्य बनाते हैं । इसी वक्त सोवियट प्रदेशों में एक नई महाशक्ति उठ खड़ी होती है जो पुरानी पद्धति के लिए बराबर एक चुनौती हो रही है और साम्राज्यवाद तथा फ़ैसिज्म दोनों के लिए समान रूप से एक शक्तिमान रोक साबित हो रही है ।

हम क्रान्ति के ज़माने में रह रहे हैं—वह क्रान्ति जो १९१४ ई० में महायुद्ध छिड़ने के साथ शुरू हुई और हर जगह फैले हुए संघर्ष के चंगुल में दुनिया को लिये हुए अब भी साल-दर-साल जारी है । डेढ़ सौ साल पहले की फ्रेंच राजक्रान्ति आहिस्ता-आहिस्ता राजनैतिक समानता के ज़माने में बदल गई, लेकिन ज़माना बदल गया है और आज सिर्फ राजनैतिक समानता या बराबरी ही काफ़ी नहीं है । अब प्रजातंत्र या जम्हूरियत की सीमा को इस शक्ल में बढ़ाना पड़ेगा कि उसमें आर्थिक समानता भी शामिल हो जाय । यही वह महाक्रान्ति है जिसके बीच से होकर हम सब आज गुज़र रहे हैं । यह क्रान्ति आर्थिक समानता को क़ायम और महफ़ूज़ करने के लिए है जिससे प्रजातंत्र या जम्हूरियत का पूरा मतलब सिद्ध होजाय । इसके साथ ही यह हमें विज्ञान और शिल्प-विज्ञान वग़ैरा में हुई तरक्क़ी के साथ-साथ चलाने के लिए भी है ।

यह (आर्थिक समानता) साम्राज्यवाद या पूंजीवाद के साथ मेल नहीं खाती, क्योंकि साम्राज्यवाद और पूंजीवाद राष्ट्र या वर्ग की असमानता और शोषण के आधार पर ही खड़े होते हैं। इसलिए जिन लोगों का इस शोषण में फ़ायदा है वे इस समानता का विरोध करते हैं और जब संघर्ष बढ़ता है तो राजनैतिक समानता और पार्लमेण्टरी प्रजा-सत्तात्मक पद्धति की भी परवा नहीं की जाती । यही फ़ैसिज्म है जो कई बातों में हम मध्ययुग की तरफ ले जाता है । यह जाति (Race) के शासन और नियन्त्रण को बढ़ावा देता है और स्वेच्छाचारी राजा के दैवी अधिकार के सिद्धान्त की जगह सर्वशक्तिमान नेता के दैवी अधिकार को क़ायम करता है । पिछले पाँच सालों में जिस तेज़ी से फ़ैसिज्म का विकास हुआ है और उसने जिस तरह हर तरह के प्रजातंत्र सम्बन्धी सिद्धान्त और सभ्यता तथा आज़ादी के ख़यालात पर हमला किया है उसकी वजह से प्रजातंत्र की रक्षा का सवाल आज का बहुत महत्त्वपूर्ण सवाल बन गया है । वर्तमान विश्व-संघर्ष एक तरफ साम्यवाद एवं समाजवाद और दूसरी तरफ फ़ैसिज्म इन दो पक्षों में ही नहीं है । यह दरअसल प्रजातंत्रवाद और फ़ैसिज्म के बीच है और प्रजातंत्र की सब सच्ची ताक़तें क़तारबन्द होती और फ़ैसिस्टों की विरोधी बनती जाती हैं । आज स्पेन इसका एक बहुत अच्छा उदाहरण है ।

पर इस प्रजातंत्र के पीछे, अनिवार्य रूप से, प्रजातंत्र की सीमा बढ़ाने का भी

ख़याल है। इसलिए इसके डर से हर जगह प्रतिगामियों ने ज़बानी प्रजातंत्र की दाद देते हुए भी अपनी हमदर्दी या मदद फ़ैसिज्म को दे रक्खी है। फ़ैसिस्ट शक्तियों की शक्ल काफ़ी तौर पर साफ़ है। उनके उद्देश्य या नीति के बारे में कोई शक व शुबह नहीं है। लेकिन आजकल की स्थिति में निर्णायक तत्त्व तो अपनेको प्रजातंत्र शक्ति के नाम से पुकारनेवाले राष्ट्रों और ख़ास तौर पर इंग्लैण्ड का चलन है। ब्रिटिश सरकार ने एशिया, अफ़रीका और यूरप में बराबर प्रतिगामी की तरह काम किया है और उसने फ़ैसिज्म तथा नाज़ीवाद को हर तरह से बढ़ावा और उत्साह दिलाया है। सच्चे प्रजातंत्र के विकास का उसे इतना ख़ौफ था और फ़ैसिज्म के नेताओं के प्रति उसकी ऐसी वर्गीय सहानुभूति थी कि ताज्जुब है कि उसने ऐसा खुद ब्रिटिश साम्राज्य को खतरे में डाल-कर भी किया है। अगर फ़ैसिज्म बढ़ा है और उसने दुनिया पर अपना रोब या प्रभुत्व क़ायम करना शुरू कर दिया है तो इसका ज्यादातर श्रेय ब्रिटिश सरकार को है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में प्रजातंत्र की भावना ज्यादा गहरी थी, इसलिए उसने फ़ैसिज्म के हमलों की गति रोकने के लिए और ताक़तों का साथ देने की अपनी तैयारी कई बार ज़ाहिर की, पर इंग्लैण्ड ने मदद और सहयोग के इस प्रस्ताव को नामंजूर कर दिया। फ़्रांस तो अब लण्डन शहर और ब्रिटिश परराष्ट्र नीति पर इतना ज्यादा निर्भर करने लगा है कि वह कोई स्वतंत्र नीति इख़्तियार करने की जुरअत नहीं कर सकता।

अन्तर्राष्ट्रीय श्रम-सम्मेलनों में मजदूरों से सम्बन्ध रखनेवाले मामलों में भी ब्रिटेन बराबर प्रतिगामी रहा है, यानी उसने आगे बढ़ने की जगह पीछे हटने की नीति पर ही ज्यादा ज़ोर दिया है। जून १९३७ ई० में, अन्तर्राष्ट्रीय मजूर आफ़िस ने कपड़े के व्यवसाय यानी कपड़े के कारखानों में काम करनेवाले मजूरों के लिए हफ्ते में ४० घण्टे ही काम का समय रखने का प्रस्ताव मंजूर किया। उसने ब्रिटेन के विरोध के बावजूद यह निश्चय किया था। ब्रिटिश उपनिवेशों तक ने इस मामले में ब्रिटेन का साथ छोड़कर संयुक्तराष्ट्र अमेरिका की ताईद की। लेकिन हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि ने, जो ब्रिटिश सरकार का नामज़द किया हुआ था, ब्रिटेन का साथ दिया। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका के प्रतिनिधि-मण्डल के सदस्यों ने, जिनमें कारखानेदारों और सरकार के प्रतिनिधि भी शामिल थे, कहा : "जबतक कि हम लोग जिनेवा नहीं आये थे, तबतक हमें इसका कोई ख़याल न था कि ब्रिटिश सरकार कितनी प्रतिगामी है।" उनमें से एक ने यह भी कहा कि "ग्रेट ब्रिटेन प्रतिक्रिया का नेता बन गया है।"

पर, अपनी सारी कमज़ोरियों के बावजूद, राष्ट्र-संघ अब भी अन्तर्राष्ट्रीय भावना का प्रतीक था और इसके अहदनामे में हमले के लिए सज़ायें देने का क़ायदा था। जब जापान ने मंचूरिया पर हमला किया, राष्ट्र-संघ ने उसके ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई

गया। एंग्लो-पर्शियन आयल कम्पनी ने इटली को तेल पहुँचाने के लिए ज़ोरों से और 'ओवर-टाइम' (काम के मामूली दैनिक घण्टों के अलावा समय) में काम किया। इन माली तथा तिजारती रुकावटों से इटली को कुछ दिक्क़त हुई, पर कोई बड़ी कठिनाई उसके रास्ते में न डाली गई। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका ने तेल पर रोक लगाने का प्रस्ताव किया, पर ब्रिटेन ने मंजूर नहीं किया।

ब्रिटेन के वैदेशिक सचिव सर सेमुएल होर और फ्रांस के सचिव मों० लावल ने आपस में एबिसीनिया का एक बड़ा हिस्सा इटली को देने का समझौता किया था, पर जनता ने इसपर ऐसा तहलका मचाया कि सर सेमुएल होर को इस्तीफ़ा दे देना पड़ा। एबिसीनिया के लोग बड़ी बहादुरी के साथ लड़े, पर बहुत ऊँचे उड़ते हुए हवाई जहाज़ों से होनेवाली धुँआधार बम-वर्षा के ख़िलाफ़ बेबस थे। मामूली बाशिन्दों, औरतों, बच्चों, घायलों की तीमारदारी करनेवाले लोगों एवं संस्थाओं तथा अस्पतालों पर विषैली गैसों से भरे हुए तथा विस्फोटक बम गिराये गये। वहशियाना क़त्लेआम किये गये। मई १९३६ ई० में इटली की सेना ने एबिसीनिया की राजधानी अदीस-अबाबा में प्रवेश किया और बाद में देश के बड़े-बड़े हिस्सों पर क़ब्ज़ा कर लिया। तब से ढाई साल गुज़र गये हैं, पर अभीतक बाहरी यानी राजधानी से दूर के हिस्सों में एबिसीनिया के लोग बराबर इटली की मुख़ालफ़त कर रहे हैं। अब भी एबिसीनिया पराजित नहीं हुआ है, गोकि इंग्लैण्ड और फ्रांस ने उसपर इटली का क़ब्ज़ा मंजूर कर लिया है।

राष्ट्र-संघ के सदस्य राष्ट्रों द्वारा एबिसीनिया के साथ यह दग़ाबाज़ी और दुर्दशा देखकर दुनिया ने समझ लिया कि संघ बेबस और अशक्त है। ऐसे कमज़ोर संघ की अब हिटलर बिना किसी भय के उपेक्षा कर सकता था। बस, मार्च १९३६ में उसने अपनी फौजों को लेकर राइन देश के सेना-रहित हिस्सों पर धावा बोल दिया। यह वार्साई-सुलहनामे का दूसरी बार भंग था।

स्पेन

१९३६ के साल ने फैसिस्ट ताक़तों द्वारा यूरप को नियन्त्रित करने के प्रयत्न का एक दूसरा दृश्य देखा। इसने प्रजातन्त्र और स्वतन्त्रता के लिए एक महत्त्वपूर्ण लड़ाई की शक्ल इख़्तियार करली। हम देख चुके हैं कि स्पेन में विरोधी शक्तियाँ किस तरह अपने प्रभुत्व के लिए लड़ रही थीं और नये प्रजातन्त्र ने पादरियों की और अर्द्ध-सामन्ती प्रतिक्रियाओं के ख़िलाफ़ किस तरह संघर्ष किया। आख़िरकार प्रगतिशील दलों ने आपस में मेल कर लिया और फरवरी १९३६ ई० में एक संयुक्त लोकप्रिय मोर्चा (पापुलर फ्रंट) बनाया। इसके पहले फ्रांस में भी फ़ैसिज्म की शक्तियों की

वाद को रोकने के लिए इसी तरह का 'पापुलर फ्रंट' वन चुका था। ये शक्तियाँ खुले आम फ्रांसीसी प्रजातन्त्र को धमकी दे रही थीं। इन्होंने एक छोटा-सा विद्रोह भी उसके खिलाफ़ खड़ा किया। फ्रांस के 'पापुलर फ्रंट' यानी 'संयुक्तमोर्चा' से जनता में बड़ा जोश और उत्साह पैदा हुआ। चुनाव में इस मोर्चे की विजय रही और इसने नई सरकार बनाई, जिसने मजदूरों के फ़ायदे के कई क़ानून बनाये।

स्पेन के 'संयुक्त मोर्चे' ने भी चुनावों में फ़तेह हासिल की और क़ायदे के अनुसार नई सरकार बनाई। यह संयुक्तदल जमीन-सम्बन्धी वहुत-से सुधारों को, जिनकी वहुत दिनों से जरूरत समझी जा रही थी पर जो रुके हुए थे, पूरा करने के लिए वचनवद्ध था। इसने चर्च यानी पादरियों के अधिकारों में भी कमी करने और उनको नियन्त्रित करने का कार्यक्रम रक्खा था। इन सुधारों से प्रतिगामी लोग डर गये और वे सब आपस में मिलकर संगठित होगये और उन्होंने सरकार के खिलाफ़ खड़ा होने का इरादा कर लिया। उन्होंने इटली और जर्मनी से मदद माँगी और उनकी मदद पाने के बाद १८ जुलाई १९३६ को जनरल फ्रांको ने स्पेन की मूर सेना की सहायता से (जिसे वडे-वडे वादे करके मिला लिया गया था) विद्रोह शुरू कर दिया। फ्रांको को उम्मीद थी कि वडी आसानी और तेजी से फतह हासिल हो जायगी। फौज उसकी तरफ़ थी और फिर उसे दो जवरदस्त और ताक़तवर देशों से मदद मिल रही थी। प्रजातन्त्र ऐसे दुश्मनों के खिलाफ़ अशक्त और बेबस था, पर इस संकट के वक्त उसने स्पेन की जनता से स्वतन्त्रता की रक्षा की अपील की और उन्हें हथियार बाँट दिये। जनता ने इस आवाहन का जवाव दिया और फ्रांको की तोपों और हवाई जहाजों के खिलाफ़ वह करीव-करीव निहत्थी लडी। उसने फ्रांको की गति रोक दी। विदेशों से भी बहुत-से स्वयंसेवक प्रजातन्त्र की रक्षा के हित लड़ने के लिए स्पेन पहुँचे और एक अन्तर्राष्ट्रीय टुकडी (International Brigade) बनाली। इस टुकडी ने प्रजातन्त्र की अमूल्य सेवा की—और उस वक्त की जब उसे इसकी सबसे ज्यादा जरूरत थी। पर जहाँ प्रजातन्त्र की मदद के लिए सिर्फ स्वयंसेवक आये तहाँ फ्रांको की मदद के लिए बहुत वडी तादाद में वाक़ायदा इटली की फौजें आईं। इसके अलावा इटली और जर्मनी से फ्रांको के लिए हवाई जहाज, हवाई जहाज चलानेवाले, यन्त्रों के विशेषज्ञ तथा अस्त्र-शस्त्र भी बहुत वडी तादाद में आये। फ्रांको के पीछे इन दो महाशक्तियों के अनुभवी सेनापति और सैनिक विशेषज्ञ थे; प्रजातन्त्र की तरफ़ उत्साह, साहस और त्याग था। विद्रोही बढ़ते गये और नवम्बर १९३६ में मैड्रिड के दरवाजे पर पहुँच गये, पर प्रजातन्त्र की जनता ने बडी जबरदस्त कोशिश करके इसके आगे बढ़ने से उन्हें रोक दिया। 'नो पासरन' (No Pasaran) 'वे आगे न जा सकेंगे' जनता का यह प्रिय नारा

दिया। उनके लिए यह विदेशी आक्रमणकारियों से अपने देश की स्वतंत्रता की रक्षा करने का राष्ट्रीय युद्ध है—ऐसा युद्ध जो अपने ढंग का एक ही युद्ध है, अपनी महत्ता में अनुपम है और जिसने अपनी हिम्मत और तकलीफ़ बर्दाश्त करने की ताक़त के करिश्मों से दुनिया को हैरत में डाल दिया है। फ्रांको की तरफ़ से इटली और जर्मनी के हवाई जहाज़ों ने शहरों, गाँवों और असैनिक जनता पर जो बमवर्षा की है वह बड़ी ही भयानक और बीभत्स रही है।

पिछले दो सालों में प्रजातंत्र ने एक अच्छी सेना का निर्माण कर लिया है और हाल में ही उसने अपने सब विदेशी स्वयंसेवकों को रुख़सत दे दी है। गोकि फ्रांको के क़ब्ज़े में स्पेन का क़रीब तीन-चौथाई हिस्सा है और उसने मैड्रिड और वैलेंशिया का सम्बन्ध कैटेलोनिया से तोड़ दिया है, फिर भी प्रजातंत्र की फौज ने उसको रोक रक्खा है और एब्रो के महान् युद्ध में अपनी बहादुरी और योग्यता का परिचय दिया है। यह लड़ाई महीनों से चल रही है। यह साफ़ है कि जबतक फ्रांको को ज़बर्दस्त विदेशी मदद नहीं मिलती तबतक वह इस फौज को हरा नहीं सकता।

प्रजातंत्र को सबसे बड़ी मुसीबत इस वक्त खाद्य-सामग्री की कमी है। जाड़े के दिनों में तो यह मुसीबत और बढ़ जाती है। प्रजातंत्र को न सिर्फ़ अपनी फ़ौज और अपने क़ब्ज़े के प्रदेशों की रिआया के लिए खाद्य-सामग्री का इन्तज़ाम करना पड़ता है, बल्कि उन प्रदेशों से भागकर आये हुए लाखों शरणार्थियों के भोजन का भी प्रबन्ध करना पड़ता है जिनपर फ्रांको की फौजों ने क़ब्ज़ा कर लिया है।

चीन

स्पेन के इस दुःख-भरे दृश्य से अब हमें चीन के दुःखपूर्ण दृश्य की तरफ़ चलना चाहिए।

मंचूरिया पर जापान की चढ़ाई बराबर जारी थी और, जैसाकि मैंने तुमसे कहा है, उसे ब्रिटेन की सरकारी हमदर्दी भी हासिल थी। जापान की चढ़ाई के ख़िलाफ़ अमेरिका ने मदद देने का जो प्रस्ताव रक्खा था उसे ब्रिटेन ने नामंज़ूर कर दिया था। सवाल उठता है कि ब्रिटेन ने इस तरह जापान को बढ़ावा क्यों दिया और क्यों एक ज़बर्दस्त प्रतियोगी को और मज़बूत कर दिया? बीसवीं सदी के शुरू के दिनों से ही जापान, एक साम्राज्यवादी ताक़त के रूप में, ब्रिटेन की छत्रछाया में बढ़ा था। शुरू में यह चाल ज़ार के रूस के ख़िलाफ़ थी। महायुद्ध के बाद इंग्लैंड के सबसे बड़े दो प्रतियोगी संयुक्तराष्ट्र अमेरिका और सोवियट यूनियन थे। इसलिए जापान का समर्थन करने और उसे मदद देने की पुरानी नीति जारी रक्खी गई। अबतक वही नीति चलती रही है और अब खुद जापान महत्त्वपूर्ण ब्रिटिश हितों के लिए ख़तरनाक

होगया है। १९३३ में अमेरिका ने सोवियट यूनियन को मंजूर किया, उसकी एक वजह यह थी कि जापान और अमेरिका आपस में प्रतियोगी थे।

१९३३ ई० के बाद चीन में कई सरकारें रहीं। एक चांगकाई-शेक की राष्ट्रीय सरकार थी, जिसे दुनिया की महाशक्तियों ने मंजूर कर लिया था। दूसरी, दक्षिण चीन में कैण्टन की सरकार थी और वह भी काउमिनतांग का अनुसरण करने का दम भरती थी। अन्दरूनी हिस्से में एक बड़ा हिस्सा सोवियट शासन के अधीन था। इनके अलावा बहुतेरे अर्द्धस्वतंत्र फौजी सरदार थे। पीपिंग के उत्तर में जापान बराबर चीन को कुतरता या दबोचता जा रहा था। जापानी आक्रमण का मुकाबिला करने के बजाय चांगकाई-शेक सोवियट क्षेत्रों को पराजित करने के लिए साल-दर-साल जबर्दस्त चीनी फौजें भेजता रहा। इनमें से अधिकांश चढ़ाइयां असफल रहीं और जब कभी चीनी फौजों ने इन प्रदेशों पर क़ब्ज़ा कर भी लिया तो चीनी सोवियट की फौजें और दूर अन्दर चली गईं और दूसरे क्षेत्रों पर उन्होंने अड्डा जमाया। आठवीं 'रूट आर्मी' ने चूतेह के सेनापतित्व में ८००० मील का रास्ता पार करके जो आश्चर्यजनक बहादुरी का काम कर दिखाया वह सैनिकता के इतिहास का सुनहला अध्याय है।

इस तरह हर साल यह संघर्ष चलता रहा, यद्यपि सोवियट चीन ने जापान की चढ़ाइयों का सामना करने और उन्हें रोकने के लिए कई बार चांगकाई-शेक को मदद देने का प्रस्ताव भी किया। १९३७ में जापान ने जबर्दस्त आक्रमण शुरू किया। इससे विवश होकर, आख़िरकार सब विरोधी पक्षों को मिलकर जापान से लड़ने के लिए एक संयुक्त मोर्चा बनाने को बाध्य होना पड़ा। चीन ने सोवियट यूनियन से भी घनिष्ठता क़ायम की और नवम्बर १९३७ में दोनों देशों में एक-दूसरे पर चढ़ाई न करने का सुलहनामा भी होगया।

जापान का जबर्दस्त मुकाबला हुआ। उसने चीन की ताक़त को पस्त करने के के लिए हवाई जहाजों से बम बरसाकर तथा और उपायों से बडे-बडे और भयानक क़त्लेआम किये। उसने ऐसे-ऐसे जंगली और वहशियाना उपायों का इस्तैमाल किया जिसपर किसीको यक़ीन नहीं हो सकता। लेकिन इस अग्नि-परीक्षा में चीन में एक नये राष्ट्र का निर्माण हो चुका था और चीनियों ने अपनी पुरानी सुषुप्ति और काहिली दूर कर दी थी। जापानी बम बरसानेवालों ने बडे-बडे शहरों को धूल में मिला दिया और हजारों आदमी मौत के मुँह में ढकेल दिये गये। जापान पर भी बोझ बढ़ रहा था और ऐसे लक्षण दिखाई पड़ रहे थे मानों उसकी आर्थिक व्यवस्था टूटनेवाली है। स्वभवतः हिन्दुस्तान के लोगों की हमदर्दी चीनवालों के साथ थी, जैसे कि स्पेनी प्रजातन्त्र के साथ थी। हिन्दुस्तान, अमेरिका तथा कई दूसरे देशों में जापानी चीजों

का बायकाट करने के जबर्दस्त आन्दोलन उठ खडे हुए।

फिर भी जापान की महासैनिक मशीन चीन में आगे ही बढ़ती गई। जापानी फौजों को नुकसान पहुँचाने के लिए चीनियों ने छापा मारने का रणकौशल इख़्तियार किया। इसमें उनको बडी कामयावी हासिल हुई। जापान नें शंघाई और नानकिंग पर कब्जा कर लिया और जब वह कैण्टन और हैंकाऊ के नजदीक पहुँचा तो चीनियों ने खुद अपने इन बडे शहरों में आग लगा दी और उन्हें राख कर दिया। जापानी फ़ौजों ने इन खण्डहरों पर कब्ज़ा किया—जैसे नेपोलियन ने मास्को पर क़ब्ज़ा किया था—पर वे चीनी प्रतिरोध को तोड़ न सकीं, जो हर मुसीबत के साथ बढ़ता और मजबूत ही होता जाता है।

आस्ट्रिया

अब हमें फिर यूरप की तरफ़ लौट चलना चाहिए और आस्ट्रिया की कहानी को उसके दुःखदाई अन्ततक पहुँचा देना चाहिए। यह छोटा प्रजातन्त्र टटपूँजिया, दीवालिया, था और आपस में फूट भी थी। एक तरफ़ से इसे नाजी जर्मनी दवा रहा था और दूसरी तरफ़ से फ़ासिस्ट इटली। यद्यपि वियना में एक प्रगतिशील समाज-वादी म्युनिसिपैलिटी थी, पर देश देसी ढंग के फ़ैसिस्ट-दल के हाथ में था। डालफस चांसलर था, जिसने नाजी हमलों एवं दबावों से बचने के लिए मुसोलिनी पर भरोसा कर रक्खा था। वार्साई के सुलहनामे के ख़िलाफ़ इटली डालफस को हथियार भेजता रहा और मुसोलिनी ने उसे समाजवादियों को दबाने की सलाह दी। डालफस ने वियना के समाजवादी कार्यकर्त्ताओं को निःशस्त्र करने का निश्चय किया। इसकी वजह से ही फरवरी १९३४ में प्रतिक्रान्ति हो गई। वियना में चार दिन तक लड़ाई होती रही। समाजवादी लोगों के मकानों पर गोलावारी की गई और उन्हें नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। डालफस की जीत तो हुई, पर उसने उस एकमात्र शक्तिमान समूह को तोड़ दिया जो वाहरी हमलों का सामना कर सकता था।

इस वीच नाजी साजिशें जारी रहीं और जून १९३४ में वियना में नाजियों द्वारा डालफस का क़त्ल कर दिया गया। साजिश यह थी कि इस घटना के साथ ही जर्मनी हमला कर दे। हिटलर सीमा के उसपार अपनी फ़ौजें भेजने ही वाला था कि मुसोलिनी की इस धमकी से रुक गया, कि अगर जर्मन फ़ौजें आस्ट्रिया पर हमला करेंगी तो मुझे आस्ट्रिया की रक्षा के लिए इटली की फ़ौजें भेजनी पडेंगी। मुसोलिनी नहीं चाहता था कि जर्मनी आस्ट्रिया को निगल जाय और जर्मन सीमा ठेठ इटली तक पहुँच जाय। १९३५ में हिटलर ने ऐलान किया कि वह आस्ट्रिया को जर्मनी में नहीं मिलायेगा, न 'ऐंशलस (आस्ट्रिया-जर्मनी मिलाप) की पूर्ति करेगा।

पर एबिसीनिया के साथ इटली का जो युद्ध हुआ उसमें इटली कमजोर पड़ गया। उधर ब्रिटेन और फ्रांस के साथ भी इटली की खटकती ही गई। इसलिए मुसोलिनी को हिटलर से समझौता कर लेना पड़ा। अब हिटलर को आस्ट्रिया में मनमानी करने का मौक़ा मिला। नाज़ियों की कारगुज़ारियाँ बढ़ गईं। १९३८ के शुरू में ब्रिटिश प्रधान मंत्री चैम्बरलेन ने यह बात साफ़ कर दी कि आस्ट्रिया की रक्षा के लिए इंग्लैण्ड दखल न देगा। इसके बाद घटनायें तेजी के साथ घटने लगीं और जब आस्ट्रिया के चांसलर शुशनिग ने जनता का मत लेने का निश्चय किया तब हिटलर ने इसपर ऐतराज किया और मार्च १९३८ में आस्ट्रिया पर चढ़ दौड़ा। उसका कोई प्रतिरोध नहीं हुआ और 'ऐंशलस' यानी आस्ट्रिया के जर्मनी में मिला लेने का ऐलान कर दिया गया। इस तरह यह प्राचीन देश ख़त्म होगया—वह देश जो बहुत दिनों तक साम्राज्य का केन्द्र रह चुका था। यूरोप के नक़शे से आस्ट्रिया ख़त्म होगया। उसके अन्तिम चांसलर शुशनिग को जर्मनों ने क़ैद कर लिया और उसपर इस जुर्म म मुक़दमा चलाने की धमकी दी गई कि उसने नाज़ियों की इच्छानुसार काम करने से इन्कार कर दिया था। शुशनिग अभीतक नाज़ियों के हाथ बन्दी है।

आस्ट्रिया में जर्मन नाज़ियों के आगमन के साथ ऐसी भयानकता आई जैसी जर्मनी में नाज़ियों के प्रभुत्व के शुरू के दिनों में भी नहीं दिखाई पडी थी। यहूदियों पर बड़ा अत्याचार हुआ और वे अब भी मुसीबतज़दा हैं। जो वियना शहर एक दिन अपनी खूबसूरती और संस्कृति के लिए मशहूर था, वहाँ आज बर्बरता का राज्य है और एक वीभत्सता के ऊपर दूसरी वीभत्सता हो रही है।

चेकोस्लोवाकिया

आस्ट्रिया की नाज़ी-विजय से यूरप स्तब्ध रह गया, पर सबसे ज्यादा असर चेकोस्लोवाकिया में हुआ, क्योंकि अब वह तीन तरफ़ से नाज़ी जर्मनी से घिर गया था। बहुत-से लोगों ने समझ लिया कि अब इस देश पर नाज़ी हमला होगा। इसकी भूमिका शुरू भी होगई और नाज़ियों ने साज़िश करने और अपने परिचित फ़ैसिस्ट ढंग से सीमान्त के ज़िलों में बखेडे खडे करने की कोशिशें शुरू कर दीं।

चेकोस्लोवाकिया के सुडेटन प्रदेश में, जिसका पुराना नाम बोहेमिया था, जर्मन ज़बान बोलनेवाले बाशिंदे थे। आस्ट्रिया-हंगरी साम्राज्य के दिनों में इस प्रदेश की बडी धाक थी। इन लोगों ने चेक राष्ट्र का निर्माण करने की कोशिश को कभी अच्छी निगाह से नहीं देखा। उनकी बहुतेरी जायज़ शिकायतें भी थीं। वे अपने प्रदेश में आन्तरिक स्वतंत्रता चाहते थे; उनकी जर्मनी में मिलने की कोई ख्वाहिश न थी। उनमें बहुत-से जर्मन तो ऐसे भी थे जो नाज़ी शासन के बिलकुल विरोधी थे। बोहेमिया

पहले कभी जर्मनी का हिस्सा बनकर नहीं रहा था। आस्ट्रिया के लोप होजाने के बाद यह उम्मीद की जा रही थी कि हिटलर चेकोस्लोवाकिया पर हमला करेगा; इससे वहाँके ज्यादातर बाशिन्दे डर गये और वे अपनी रक्षा के लिए वहाँके नाज़ी-दल में शामिल होगये।

अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से चेकोस्लोवाकिया की स्थिति मज़बूत थी। वह एक उन्नत औद्योगिक राज्य था; बहुत अच्छी तरह संघटित था और उसके पास एक शक्तिमान और कुशल सेना थी। फ्रांस और सोवियट यूनियन से उसकी दोस्ती और गुटबन्दी थी और यह ख़याल किया जाता था कि लड़ाई होने की हालत में इंग्लैण्ड भी उसका साथ देगा। चूँकि मध्य-यूरप में सिर्फ़ यही एक प्रजातंत्र राज्य बच गया था, इसलिए सारी दुनिया के प्रजातंत्रवादियों—जिनमें अमेरिका भी शामिल है—की उसके साथ हमदर्दी थी। इसमें कुछ भी शुबहा न था कि लड़ाई छिड़ने की हालत में फ़ैसिस्ट ताक़तों की हार होगी, बशर्तेकि प्रजातंत्र के पक्ष की सब शक्तियाँ मिल-जुलकर, सहयोग से, काम करें।

सुडेटनों के अल्पमत का सवाल उठाया गया था और यह ठीक ही था कि उनकी शिकायतें रफ़ा की जायँ। पर यह बात भी बिलकुल ठीक थी कि चेकोस्लोवाकिया में अल्पमत के साथ जितना अच्छा सलूक किया जाता था वैसा मध्य-यूरप में किसी भी अल्पमत को हासिल न था। असली सवाल तो अल्पमत का न था, बल्कि सारे दक्षिण-पूर्व यूरप पर प्रभुत्व जमाने का हिटलर का इरादा था। वह इस इरादे को जबर्दस्ती और युद्ध की धमकी से पूरा करना चाहता था।

अल्पमत की समस्या को हल करने की चेक सरकार ने जबर्दस्त कोशिशें कीं और इस बारे में जितनी माँगें रक्खी गई थीं क़रीब-क़रीब उन सबको उसने मान लिया। पर ज्योंही एक माँग मंजूर करली जाती त्योंही दूसरी और उससे ज्यादा गहरी और जबर्दस्त माँग उपस्थित कर दी जाती। यह सिलसिला यहाँतक चला कि खुद राष्ट्र की हस्ती ही ख़तरे में पड़ गई। साफ़-साफ़ बात यह थी कि हिटलर का उद्देश्य इस प्रजातंत्र राष्ट्र को ख़त्म कर देना था, क्योंकि यह उसकी तरफ़ एक काँटा था। इस मसले का शान्तिपूर्ण हल खोज निकालने की आड़ में ब्रिटिश-नीति ने हिटलर को हमले के लिए उत्साहित कर दिया। ब्रिटिश सरकार ने लार्ड रंसिमैन को इसलिए प्रेग (चेकोस्लोवाकिया की राजधानी) भेजा कि वह जाकर 'मध्यस्थ' का काम करें, पर असल में यह मध्यस्थता नहीं थी। इसकी आड़ में चेक सरकार पर बराबर दबाव डाला गया कि वह नाज़ी माँगों के आगे झुक जाय। आख़िरकार चेक लोगों ने लार्ड रंसिमैन के ही प्रस्ताव मंजूर कर लिये, जिनका असर बहुत गहरा और दूर तक होता

था। किन्तु नाजी इसपर भी सन्तुष्ट न हुए; उन्होंने माँग और बढ़ा दी और अपनी माँगों को पूरा कराने के लिए जर्मन फ़ौज का संचालन भी शुरू कर दिया। इसपर चैम्बरलेन ने स्वयं बीच-बचाव किया। वह हिटलर से मिलने हवाई जहाज से बर्चटेसगेडन पहुँचे और वहाँ उन्होंने हिटलर के अल्टीमेटम को मंजूर कर लिया, जिसमें चेकोस्लोवाकिया के बडे-बडे क्षेत्रों को जर्मनी के हवाले कर देने की माँग की गई थी। इसके बाद इंग्लैण्ड और फ़्रांस ने अपने दोस्त और साथी चेकोस्लोवाकिया को खुद अपना अल्टीमेटम भेजा, जिसमें तुरन्त हिटलर की शर्तें मंजूर करने का आदेश था और यह धमकी भी थी कि अगर वह इसे न मानेगा तो वे उसका क़तई साथ न देंगे और उससे अलग हो जायेंगे। अपने ही दोस्तों की इस दग़ाबाजी से चेक लोग चकित रह गये; उनको गहरी चोट लगी। बेचारे क्या करते? आख़िरकार बडी व्यथा और निराशा के साथ उनकी सरकार ने इस अल्टीमेटम के आगे सिर झुका दिया। चैम्बरलेन फिर दूसरी बार हिटलर से मिलने गये। इसबार राइन प्रदेश के गोड्सबर्ग में दोनों की भेंट हुई। वहाँ चैम्बरलेन को पता चला कि अभी हिटलर बहुत कुछ चाहता है। चैम्बरलेन तक उन बातों के लिए राजी न होसके और सितम्बर १९३८ के आख़िरी हफ्ते में युद्ध—संसारव्यापी युद्ध—की काली और गहरी छाया सारे यूरप पर पड़ती दिखाई दी। लोग अपने गैस-रक्षक चोगों को लेने और बग़ीचों तथा उपवनों में हवाई हमलों से बचने के लिए खाइयाँ खोदने को दौड़ पडे। फिर चैम्बरलेन हिटलर के पास गये। इस बार म्यूनिच में मुलाक़ात हुई। दलेदियर और मुसोलिनी भी वहाँ गये। फ्रांस और चेकोस्लोवाकिया का मित्र और साथी सोवियट यूनियन नहीं बुलाया गया और जिस चेकोस्लोवाकिया की क़िस्मत का फ़ैसला होने जा रहा था और जो फ़्रांस और इंग्लैण्ड का दोस्त था उससे तो सलाह भी नहीं ली गई। हिटलर की नई और दूर तक पहुँचनेवाली माँगें, जिनके साथ युद्ध और हमले की धमकी लगी हुई थी, क़रीब-क़रीब पूरी-की-पूरी मंजूर करली गईं और २९ सितम्बर को इन सब माँगों को शामिल करके 'म्यूनिच का का समझौता' तैयार हुआ, जिसपर ऊपर की चारों महाशक्तियों (इंग्लैण्ड, फ़्रांस, जर्मनी और इटली) ने दस्तख़त कर दिये।

फ़िलहाल युद्ध टल गया और सभी मुल्कों के लोगों में इस गहरी मुसीबत से छुटकारा पाने की भावना फैल गई। लेकिन इसके लिए जो क़ीमत दी गई वह फ्रांस और इंग्लैण्ड की लाज और बेइज्जती की क़ीमत थी। यूरप में प्रजातंत्र को एक भयंकर धक्का लगा; चेकोस्लोवाकिया का अंग-भंग हो गया; शान्ति स्थापित करने के साधन-रूप में राष्ट्रसंघ का खात्मा होगया और मध्य तथा दक्षिण-पूर्वी यूरप में

नाज़ीवाद की बडे ज़ोरों की एक फ़तह हासिल हुई। और जो शान्ति ख़रीदी गई वह सिर्फ़ थोडे वक्त के लिए युद्ध बंद कर देनें की शान्ति थी, जिसमें हरेक मुल्क आनेवाली लड़ाई के लिए ज़ोरशोर से हथियारबंदी करनें में लग गया।

यूरप और दुनिया के इतिहास में 'म्यूनिच का समझौता' एक नई दिशा का सूचक था। यूरप का एक नया विभाजन शुरू हो गया और ब्रिटिश तथा फ्रेंच सरकारों ने खुल्लमखुल्ला नाज़ीवाद और फैसिज्म का पक्ष लेना शुरू कर दिया। ब्रिटेन नें आगे बढ़कर ऐंग्लो-इटालियन राज़ीनामे पर मंजूरी भी दे दी। इसमें एबिसीनिया पर इटली का क़ब्ज़ा मंजूर कर लिया गया और इटली को स्पेन में खुलकर खेलने को छोड़ दिया गया—इंग्लैण्ड, फ्रांस, जर्मनी और इटली के बीच चार शक्तियों की गुटबंदी की भूमिका शुरू होगई, जो रूस तथा स्पेन और दूसरी जगहों की प्रजासत्तात्मक शक्तियों के खिलाफ़ एक संयुक्त मोर्चा के रूप में है।

यह एक उल्लेखनीय और प्रशंसनीय बात है कि बडी ताक़तों की साजिशों और पवित्र वादों के भंग के इन सालों और महीनों में सोवियट रूस ने बराबर अपनी अन्तर्राष्ट्रीय ज़िम्मेदारियों का पालन किया। वह हमेशा सुलह के पक्ष में रहा और जबर्दस्तियों तथा हमलों की मुख़ालफ़त की। आख़िर तक उसने अपने साथी और दोस्त चेकोस्लोवाकिया का साथ नहीं छोड़ा। लेकिन इंग्लैण्ड और फ्रांस ने उसकी उपेक्षा की, और हमलावर राष्ट्रों से दोस्ती पैदा की। यहाँतक कि फ्रांस और इंग्लैण्ड से धोखा खाने के बाद चेकोस्लोवाकिया भी नाज़ी चक्कर में पड़ गया और उसने रूस से अपना सम्बन्ध तोड़ दिया। चेकोस्लोवाकिया का अंगभंग कर दिया गया और भूखे गिद्धों की तरह हंगरी और पोलैण्ड ने इस मौक़े से फ़ायदा उठाया। अन्दरूनी तौर पर भी वहाँ कई बडी तब्दीलियाँ हुई हैं। स्लोवाकिया अन्दरूनी मामलों में स्वशासन चाहता है। चेकोस्लोवाकिया के पास जो-कुछ बचा है वह भी आज क़रीब-क़रीब एक जर्मन कालोनी (उपनिवेश) की शक्ल में ही रह गया है।

इस तरह सोवियट यूनियन को वैदेशिक नीति को कड़ा धक्का लगा है। इतने पर भी यूरप और एशिया में वह फैसिज्म तथा प्रजातन्त्रवाद-विरोधी ताक़तों के ख़िलाफ़ एक ताक़तवर और एकमात्र प्रभावशाली रोक के रूप में खड़ा है। इसकी वजह यह है कि गो हाल के महीनों में इंग्लैण्ड और फ्रान्स ने रूस की उपेक्षा की है मगर आज वह एक ज़बर्दस्त ताक़त है। पहली पंच-वार्षिक योजना आमतौर पर कामयाब रही, गोकि तफ़सील की बहुत-सी बातों में उसे सफलता नहीं हासिल हुई। जो चीज़ें बनाई गई वे गुण में कुछ बहुत अच्छी न थीं। मिस्त्री और मशीनों के कार्यकर्ता अपनी विद्याओं में शिक्षित और अनुभवी न थे। फिर सामान पहुँचाने के साधनों ने

भी ठीक काम न दिया। बड़े उद्योगों पर ही सारा ध्यान लग जाने से जरूरत की बहुत-सी चीजों की कमी हो गई और लोगों की गुजर-बसर की मर्यादा घट गई। लेकिन तेजी के साथ रूस को उद्योग-प्रधान बनाने और उसकी खेती को सामूहिक रूप देने के इस प्रयत्न के जरिये आगे की तरक्की की नींव डाल दी गई। दूसरी पंच-वार्षिक योजना (१९३३—१९३७) में बड़े-बड़े उद्योगों की जगह छोटे उद्योग-धन्धों पर जोर दिया गया। पहली योजना में जो भूलें या खामियां थीं उनको दूर करना इसका उद्देश्य था और इसमें उन सब चीजों को बनाने की तरफ़ ज्यादा ध्यान दिया गया जो लोगों के दैनिक जीवन में ज्यादा काम आती हैं। इस दिशा में बहुत तरक्क़ी हुई; जिन्दगी की मर्यादा बढ़ती गई और बराबर बढ़ती जा रही है। सांस्कृतिक दृष्टि से, तालीम के ख़याल से और दूसरी कई बातों के ख़याल से सारे ही सोवियट यूनियन में जो तरक़्क़ी हुई है वह उल्लेखनीय और प्रशंसनीय है। इस तरक़्क़ी की चाल को जारी रखने और अपनी समाजवादी अर्थनीति को मजबूत और संघटित करने के विचार से सोवियट यूनियन ने अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में बराबर सुलह की नीति से काम लिया है। राष्ट्री-संघ में इसने सदा पर्याप्त निःशस्त्रीकरण यानी फौजों और हथियारबन्दी में काफ़ी कमी करने पर जोर दिया है; इसने सामूहिक या संयुक्त-रक्षा की नीति का बराबर समर्थन किया है। यह हमलों तथा जबर्दस्तियों के ख़िलाफ़ मिलजुलकर कार्र-वाई करने का हामी रहा है। इसने पूंजीवादी महाशक्तियों से अपना सम्बन्ध जोड़ने की कोशिश की और इसके फलस्वरूप साम्यवादी दल ने और प्रगतिशील दलों से मिलकर 'लोकप्रिय मोर्चे' या 'संयुक्त मोर्चे' बनाने का प्रयत्न किया।

आमतौर पर इस तरक़्क़ी और बढ़ती के होते हुए भी इस जमाने में सोवियट यूनियन को एक ज़बर्दस्त अन्दरूनी संकट या मुसीबत के बीच से गुजरना पड़ा। मैं तुमसे स्टालिन और ट्राटस्की के संघर्ष की बात पहले ही कह चुका हूँ। वर्तमान शासन से असन्तुष्ट तरह-तरह के लोग धीरे-धीरे एक में मिलते गये और कहा जाता है कि इनमें से कुछ ने फासिस्ट राज्यों से अन्दर-ही-अन्दर रिश्ता भी जोड़ लिया। यहाँतक कहा जाता है कि सोवियट जासूसी विभाग (जी० पी० यू०) का प्रधान यगोडा तक इन आदमियों के साथ शामिल था। दिसम्बर १९३४ ई० में सोवियट सरकार का एक प्रधान सदस्य किरोव क़त्ल कर दिया गया। तब सरकार ने अपने विरोधियों के ख़िलाफ़ कड़ी कार्रवाई की और १९३७ से एक के बाद एक कई मुक़दमे चलाये गये, जिनको लेकर सारी दुनिया में जबर्दस्त वाद-विवाद खड़ा होगया। क्योंकि इन मुक़दमों में बहुत-से मशहूर और प्रधान आदमी शामिल किये गये थे। मुक़दमे चलाकर जिन लोगों को सजा दी गई वे ट्राटस्की-दल के या दक्षिण-मार्गी थे (राइ-

कोव, टाम्सकी, बुख़ारिन); उनमें कुछ ऊँचे फ़ौजी अफ़सर थे, जिनका प्रधान मार्शल टूख़ेवस्की था।

इन मुकदमों या उन घटनाओं पर, जिनकी वजह से ये मुकदमे चलाये गये, निश्चित राय देना मेरे लिए मुश्किल है; क्योंकि बातें जटिल और अस्पष्ट हैं। लेकिन इसमें कोई शकोशुबहा नहीं कि इन मुक़दमों ने बहुत ज्यादा लोगों के मन को अशान्त कर दिया, जिनमें बहुतेरे रूस के मित्र भी थे, और इनकी वजह से सोवियट यूनियन के ख़िलाफ भावनाओं को दृढ़ होने में मदद मिली। जो लोग नजदीक से या ध्यान से इन घटनाओं का अध्ययन करते रहे हैं, उनका कहना है कि स्टालिन के शासन के ख़िलाफ एक बडी साजिश की गई थी और मुक़दमे जायज और सही थे। यह भी जान पड़ता है कि इस साजिश के पीछे जनता का कोई सामूहिक समर्थन नहीं था और जनता में जो प्रतिक्रिया हुई वह निश्चित रूप से स्टालिन के विरोधियों के ख़िलाफ़ थी। फिर भी दमन का विस्तार, जिसकी लपेट में बहुतेरे निर्दोष आदमी भी आये होंगे, स्वास्थ्य की ख़राबी का लक्षण था और इसने अन्तर्राष्ट्रीय रूप से सोवियट की स्थिति को चोट पहुँचाई।

आर्थिक पुनरुद्धार

१९३० में जो महान् व्यापारिक मन्दी शुरू हुई थी और जिसने कई सालों तक पूंजीवादी दुनिया को लंगड़ा कर रक्खा था, उसमें आखिरकार सुधार के लक्षण दिखाई पडे। ज्यादातर देशों में आंशिक उन्नति या पुनरुत्थान हुआ; ब्रिटेन में दूसरे मुल्कों की बनिस्बत ज्यादा उल्लेखनीय तरक़्क़ी हुई। पौण्ड के मूल्य को अनिश्चित कर देने, चुंगी बढ़ा देने और साम्राज्य के बाजारों के उपयोग से ब्रिटेन को बडी मदद मिली। चुंगी लगाकर और सरकारी सहायता देकर तथा कृषि-सम्बन्धी सुधारों और होड़ में कमी करने के ख़याल से उत्पादकों का संगठन करके देशी बाजार को बढ़ाया और उन्नत किया गया। थोक-बिकरी और उत्पादन को नियोजित और संगठित करने की कोशिश की गई। डेनमार्क और स्कैण्डेनेवियन देशों (नार्वे, स्वीडन) पर भी ब्रिटिश माल ख़रीदने के लिए दबाव डाला गया।

गोकि इससे काफ़ी हदतक सुधार हुआ, पर अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार को इससे बड़ा धक्का लगा। इस तरह इसे एक ख़ास अर्थ में और आंशिक ही सुधार कह सकते हैं। असली सुधार या पुनरुद्धार तो अन्तर्राष्ट्रीय व्यापार के सुधार या पुनरुद्धार पर निर्भर है। यह भी याद रखना चाहिए कि ब्रिटेन ने अमेरिका को कर्ज अदा नहीं किया है और न अदा करने का उसका इरादा ही मालूम पड़ता है। आर्थिक सुधार की एक वजह यह भी है कि मुख़्तलिफ़ मुल्कों में बडे जोर-शोर से हथियारबन्दी और फौजी

तैयारी का काम चल रहा है। ऐसा सुधार साफतौर पर अनिश्चित और अस्थायी है। सामूहिक बेकारी अब भी जारी है।

ब्रिटिश साम्राज्य

पर यद्यपि फ़िलहाल इंग्लैण्ड ने आर्थिक संकट पर पैवन्द लगाकर किसी तरह मामला सुधार लिया है, ब्रिटिश साम्राज्य बहुत रोगी है और उसे भंग करने और बिखेरनेवाली राजनैतिक और आर्थिक ताक़तें दिन-दिन ज्यादा बलवान होती जाती हैं। इसके शासकों का भी इसमें पहले जो विश्वास था उसका अन्त हो गया है और उनको भी इसके बराबर जारी रहने की उम्मीद अब नहीं रह गई है। वे अपने अन्दरूनी मसलों को हल नहीं कर सकते; आज़ादी हासिल करने पर तुला हुआ हिन्दुस्तान बराबर ज्यादा ताक़तवर होता जा रहा है। छोटे-से फ़िलिस्तीन (पैलेस्टाइन) ने उनको हिला दिया है। पूंजीवादी दुनिया में इंग्लैण्ड का ज़बर्दस्त प्रतिद्वन्द्वी अमेरिका ब्रिटेन की प्रधानता को चुनौती दे रहा है और जैसे इंग्लैण्ड फ़ैसिस्ट ताक़तों की तरफ़ झुकता जा रहा है वैसे ही अमेरिका दिन-दिन इंग्लैण्ड से दूर हटता जाता है। सोवियट रूस कामयाबी के साथ समाजवाद का निर्माण कर रहा है, जो सब तरह के साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ है। जर्मनी और इटली लालच-भरी आँखों से ब्रिटिश साम्राज्य की क़ीमती भेंट की तरफ़ देख रहे हैं। म्युनिच में उनकी धमकियों के आगे इंग्लैण्ड के झुक जाने की वजह से वे उसे अब सिर्फ़ एक-दूसरे दर्जे की ताक़त (राज्य) समझने लगे हैं और उसके साथ ऐसा ही बर्ताव करते हैं तथा अनुचित भाषा में उसका ज़िक्र करते हैं। इंग्लैण्ड चाहता तो प्रजातन्त्र की पद्धति का विस्तार करके और संयुक्त रक्षा यानी प्रजातन्त्रवादी राष्ट्रों के संगठन के ज़रिये एक-दूसरे की हिफ़ाज़त के उसूल पर क़ायम रहकर अपनी स्थिति को मज़बूत बना सकता था। इसकी जगह उसने उलटा रास्ता पकड़ा; इस नीति को छोड़ दिया और हिटलर की ताईद की। अब ब्रिटिश साम्राज्यवाद बड़ी बुरी दुविधा और मुसीबत में पड़ गया है, जिससे बचाव की कोई उम्मीद नहीं दिखाई देती। वह ऐसी बहुतेरी परस्पर-विरोधी बातों के बीच पड़ गया है, जो म्यूनिचवाली नीति से निकलती हैं।

उपनिवेश

अब जर्मनी उपनिवेशों की माँग करने लगा है और हमसे कहा जाता है कि वह एक 'अपहृत' (Have-not) और असन्तुष्ट ताक़त (राज्य) है। पर उन देशों या ताक़तों का क्या होगा, जो जर्मनी से भी छोटे हैं और जिनके पास कोई उपनिवेश नहीं हैं? सारी दलील का आधार साम्राज्यवादी प्रथा क़ायम रखने पर है। किसी देश का सन्तोष-असन्तोष वहाँ बरती जानेवाली अर्थनीति पर निर्भर है और साम्राज्यवाद के

साथ में सदा असन्तोष रहेगा, क्योंकि वहाँ सदा विषमता रहेगी। क्रान्ति के पहलेवा
जारशाही रूस के बारे में यही कहा जाता था कि वह एक असन्तुष्ट बढ़ती हुई ताक़
(राज्य) है। आज सोवियट रूस क्षेत्रफल के लिहाज़ से इनसे छोटा है, पर व
'संतुष्ट' है, क्योंकि उसकी साम्राज्यवादी आकांक्षायें नहीं हैं और वह एक दूसरी अर्थ
नीति पर चल रहा है।

जर्मनी उपनिवेश इसलिए नहीं चाहता कि वह दूसरी तरह से अपनी ज़रूरत
का कच्चा माल नहीं हासिल कर सकता, क्योंकि उसके लिए भी बाजार खुले हैं जह
वह खरीद सकता है; वह उपनिवेश चाहता इसलिए है कि अपने फ़ायदे के लिए इन
उपनिवेशों के निवासियों का इस्तेमाल कर सके। वह उन्हें अपने घटे मूल्य वाले
सिक्कों की शक्ल में क़ीमत अदा करना चाहता है और उन्हें अपने लिए जर्मन माल
ख़रीदने को मजबूर करना चाहता है।

मैंने तुम्हें पिछले पाँच सालों के ख़ास-ख़ास वाक़यात में से चन्द के बारे में ही
लिखा है और उनके जो नतीजें निकले उनका ज़िक्र किया है। मैं नहीं जानता कि
मुझे कहाँ रुक जाना चाहिए, क्योंकि हर जगह उथल-पुथल, तब्दीली और संघर्ष है
और स्थानीय या राष्ट्रीय ढंग पर दुनिया के मसलों पर विचार करना तक असंभव
होता जा रहा है—फिर उन्हें हल करना तो दूर की बात है। इन मसलों के लिए
विश्वव्यापी हल ज़रूरी है। इस बीच दुनिया बद से बदतर होती जा रही है तथा युद्ध
और हिंसा ने उसपर प्रभुत्व कर रक्खा है। आधुनिक दुनिया का मग़रूर लीडर यूरप
जंगलीपन की तरफ़ लड़खड़ा रहा है। उसके पुराने शासक-वर्ग अब बेदम हैं और उनको
जिन मुश्किलों और दिक्क़तों ने घेर लिया है उनसे बाहर जाने का रास्ता खोज
निकालने के बिलकुल नाक़ाबिल हैं।

म्यूनिच के समझौते ने दुनिया के अस्थिर समतौल को बिगाड़ दिया। दक्षिण-
पूर्वी यूरप नाज़ी ताक़त के जाल में फँसने लगा और हर मुल्क में नाज़ी साज़िशें
बढ़ने लगीं। ओस्लो-समूह के मुल्कों (डेनमार्क, नार्वे, स्वीडन, फिनलैण्ड, नेदरलैण्ड्स,
बेलजियम और लक्समबर्ग) ने यह महसूस करके कि ब्रिटेन की दोस्ती की उनके लिए
कोई क़ीमत या उपयोगिता नहीं है, अपनी तटस्थता का ऐलान कर दिया और कोई
सामूहिक जिम्मेदारी लेने से इन्कार कर दिया। सुदूर पूर्व में जापान ज्यादा हमलावर
रुख़ इख़्तियार करता गया। उसने कैण्टन पर क़ब्ज़ा कर लिया और हांगकांग के
ब्रिटिश हितों एवं स्वार्थों से उसका संघर्ष हो गया। फिलिस्तीन (पैलेस्टाइन) में स्थिति
बड़ी तेज़ी से ख़राब होती गई। अमेरिका और इंग्लैण्ड के रिश्ते में इतनी बेरुखी आती
गई जितनी पहले कभी न थी। जब चैम्बरलेन फासिस्ट ताक़तों का साथ दे रहे थे

तब राष्ट्रपति रूज़वेल्ट नाज़ीवाद के उद्देश्यों और ढंग की जोरों से निन्दा कर रहे थे। यूरप के झगड़ों और फासिस्ट हमलों के प्रति ब्रिटेन एवं फ्रांस के रुख़ से खीझकर अमेरिका अलग हो गया और साथ ही बहुत बड़े पैमाने पर हथियारबन्दी और फौजी तैयारी शुरू कर दी। सोवियट यूनियन ने भी ऐसा ही किया। पश्चिम में उसकी गुटबन्दी और आक्रमण न करने के समझौते की नीति कामयाब नहीं हुई और वह अकेला पड़ता गया। इतने पर भी अमेरिका और रूस दोनों यह जानते हैं कि आज की इस व्याकुल और घबराई हुई दुनिया में अकेलापन या तटस्थता मुमकिन नहीं हैं। इसलिए अगर लड़ाई हुई तो उसमें इनका खिंचना लाज़िमी है। इसीके लिए वे तैयारी कर रहे हैं।

अमेरिका

संयुक्तराष्ट्र में राष्ट्रपति रूज़वेल्ट की अन्दरूनी नीति में कई तरह की रोक और बाधायें आईं। सुप्रीम कोर्ट और प्रतिगामी तत्त्व उनके मार्ग में रोड़े खड़े करते रहे, और करते हैं। हाल में जो चुनाव हुए हैं उनसे काँग्रेस में उनके प्रति रिपब्लिकन विरोधियों की ताक़त बढ़ गई है। इतने पर भी रूज़वेल्ट की निजी लोकप्रियता और अमेरिकन जनता पर उनका प्रभाव बना हुआ है।

रूज़वेल्ट ने दक्षिण अमेरिका की सरकारों से दोस्ताना ताल्लुक़ात बढ़ाने की नीति का भी अनुसरण किया है। मैक्सिको में वहाँकी सरकार तथा अमेरिकन और ब्रिटिश तेल-कम्पनियों में झगड़ा हुआ। मैक्सिको में एक बहुत दूर तक असर डालने-वाली क्रान्ति हो गई, जिसने ज़मीन पर जनता का हक़ क़ायम कर दिया है। तेल के मालिकों, ज़मींदारों तथा चर्च को अब बहुतेरे ख़ास अधिकारों और सहूलियतों से वंचित कर दिया गया। इसलिए उन्होंने इन तबीलियों की मुख़ालफ़त की।

तुर्की

संघर्ष की इस दुनिया में आज सिर्फ़ तुर्की ही एक बहुत ज्यादा शान्त देश दिखाई देता है, जिसके कोई बाहरी दुश्मन नहीं मालूम पड़ते। पुराने ज़माने से यूनान और बाल्कन देशों से चले आते हुए झगड़े तय हो गये हैं। सोवियट यूनियन और इंग्लैण्ड के साथ उसके अच्छे रिश्ते हैं। तुम्हें अलेक्ज़ेण्ड्रेटा का नाम याद होगा। सीरिया के जिस हिस्से पर फ्रांस को शासनादेश (Mandate) प्राप्त है, उसके फ्रांस द्वारा बनाये पाँच राज्यों में से यह एक राज्य है। इस अलेक्ज़ेण्ड्रेटा के बारे में तुर्की की फ्रांस से तनातनी चल रही थी। अलेक्ज़ेण्ड्रेटा के ज्यादातर बाशिन्दे तुर्क हैं। फ्रांस ने तुर्की की बात मान ली और वहाँ अन्दरूनी मामलों में एक खुदमुख़्तार राज्य क़ायम कर दिया।

इस तरह अपने जातीय और दूसरे मामलों से फारिग़ होकर, कमाल अतातुर्क के

बुद्धिमत्तापूर्ण नेतृत्व में, तुर्की ने अपनी अन्दरूनी तरक्क़ी की तरफ़ ध्यान दिया। अतातुर्क ने अपने देश के लोगों की अच्छी सेवा की थी और जब वह १० नवम्बर १९३८ को मरे तब उनको यह जानने की ख़ुशक़िस्मती हासिल थी कि उनके काम में ज़बर्दस्त कामयाबी हासिल हुई है। उनके बाद तुर्की के राष्ट्रपति के पद पर उनके पुराने साथी जनरल इस्मत इनेनू बिठाये गये।

इस्लाम

कमाल अतातुर्क ने मध्य-एशिया में इस्लाम की शक्तिमान प्रेरणा को एक नई तरफ़ मोड़ा। इसने नई, आधुनिक, पोशाक इख़्तियार की, मध्ययुग की प्रवृत्तियों को छोड़ दिया और इस तरह अपनेको आज की दुनिया की पंक्ति में ला दिया। मध्य-एशिया के सभी इस्लामी मुल्कों पर अतातुर्क के उदाहरण का ज़बर्दस्त असर पड़ा और आज कई आधुनिक राष्ट्र विकसित हो गये हैं, जो धर्म की जगह राष्ट्रीयता पर दारोमदार रखते हैं। हिन्दुस्तान जैसे देशों में यह असर इतना उल्लेखनीय नहीं है, जहाँ मुसलमान जनता और लोगों की तरह ही साम्राज्यवादी हुकूमत के तले पिस रही है।

दुनिया संघर्ष में

आज यूरप और प्रशान्त महासागर ये दो संघर्ष के बडे रंगमंच हैं और इन दोनों महाक्षेत्रों में आक्रामक—हमलावर—फैसिज्म प्रजासत्ता और स्वतन्त्रता को कुचलने तथा दुनिया पर प्रभुत्व जमाने की कोशिश कर रहा है। एक तरह का फ़ैसिस्ट अन्तर्राष्ट्रीय संगठन (फ़ैसिस्ट इण्टरनेशनल) बन गया है जो न सिर्फ खुली और बग़ैर ऐलान की हुई लड़ाइयाँ लड़ता है बल्कि मुख़्तलिफ़ मुल्कों में सदा इस तरह की साज़िशें करता रहता और ऐसे फ़साद खडे करता रहता है जिनसे इसे दस्तन्दाज़ी करने का मौक़ा हाथ आये। युद्ध और हिंसा की खुले तौर पर प्रशंसा की जाती है और इतना व्यापक और ज़बर्दस्त झूठा प्रचार-कार्य किया जा रहा है जितना पहले कभी नहीं किया गया था। यद्यपि अन्तर्राष्ट्रीय साम्यवाद कहीं भी आक्रामक नहीं है और कई सालों से वह विश्वशान्ति और प्रजासत्ता के पक्ष में है, फिर भी साम्यवाद-विरोध के रणनाद की आड़ में यह अपनी साम्राज्यवादी योजनाओं को बढ़ाता और चालें चलता है। संयुक्तराष्ट्र अमेरिका में नाज़ी साज़िशों का पता चला और मुक़दमे हुए। दिसम्बर १९३७ में फ्रांस में (फ्रेंच) प्रजातन्त्र के ख़िलाफ़ एक षड्यन्त्र का पता लगा। इस षड्यन्त्र का संगठन करनेवाले कैगोलार्ड या 'नक़ाबपोश' थे। इनको जर्मनी और इटली से हथियार पहुँचाये जाते थे। ये बम फेंकते और ख़ून करते थे। इंग्लैण्ड में प्रभावशाली दलों या छोटे समूहों के ज़रिये ब्रिटिश वैदेशिक नीति पर असर डालकर उसे फ़ैसिस्ट दिशा में चलाने की कोशिश की जाती है।

यह अन्तर्राष्ट्रीय फ़ैसिज्म बड़े उग्र और कट्टर ढंग का साम्राज्यवाद ही नहीं है, बल्कि मध्य युगों की तरह इसने धार्मिक और जातीय संघर्ष भी पैदा कर दिये हैं। जर्मनी में कैथलिक चर्च और प्रोटेस्टेण्ट दोनों तरह के ईसाई सम्प्रदायों को दबाया जा रहा है। जर्मनी में, और बाद में इटली में, जाति (Race) की भावना पर अभिमान की वृत्ति पैदा की जा रही है एवं उसे यशस्वी रूप दिया जा रहा है। और यहूदियों तथा यहूदियों के वंशजों तक को जिस बेरहमी और वैज्ञानिक भयंकरता के साथ निकाला तथा नष्ट किया जा रहा है उसकी इतिहास में कोई दूसरी मिसाल नहीं है। नवम्बर १९३८ के शुरू में एक जवान पोलिश यहूदी ने, अपनी जाति पर होनेवाले निर्दय अत्याचारों से पागल होकर, एक जर्मन कूटनीतिज्ञ का पेरिस में खून कर दिया। यह एक व्यक्ति का काम था, पर इस वाक़ये के होते ही जर्मनी में सारे यहूदी बाशिन्दों के ख़िलाफ़ सरकारी तौर पर संगठित अत्याचार शुरू होगये। देश के एक-एक यहूदी मन्दिर आग लगाकर भस्म कर दिये गये। यहूदी दुकानों को बड़े पैमाने पर लूटा और नष्ट-भ्रष्ट कर दिया गया। आम सड़कों पर और घरों के अन्दर मर्द-औरतों पर बेशुमार वहशियाना हमले और दुर्व्यवहार किये गये। इन सबको नाज़ी लीडरों ने मुनासिब क़रार दिया और इनके अलावा जर्मनी के यहूदियों पर आठ करोड़ पौण्ड का जुर्माना भी किया गया।

बहुतों ने आत्महत्या करली; कितने भाग खड़े हुए। युगों के स्मरणातीत दुःखों के बोझ से झुके हुए शोकमग्न, असहाय, लावतन लोगों का एक बड़ा देश-त्याग। लम्बी क़तारों में चलते हुए—ऐसी क़तारों में जिसका अन्त ही नहीं मालूम होता। पर ये कहाँ जायेंगे ? दुनिया आज शरणार्थियों से भरी हुई है—यहूदी, सुडेटन प्रदेश से भागनेवाले जर्मन सोशल डेमोक्रेट (सामाजिक प्रजातन्त्रवादी), फ़्रांको के जीते हुए प्रदेशों के स्पेनी किसान, चीनी, एबिसीनियावाले या हबशी। ये नाज़ीवाद और फ़ैसिज्म के कड़वे फल हैं। दुनिया भय से सन्न हो रही है और शरणार्थियों की मदद के लिए बहुत-सी संस्थायें बनाई जा रही हैं और संगठन किये जा रहे हैं। इतने पर भी इंग्लैण्ड और फ्रांस की प्रजातन्त्रवादी कही जानेवाली सरकारें जिस नीति पर चल रही हैं वह नाज़ी जर्मनी और फ़ैसिस्ट इटली से दोस्ती और सहयोग की नीति है। इस नीति के कारण वे फ़ैसिस्ट आतंकवाद और सभ्यता तथा शिष्टाचार के विनाश को उत्तेजन दे रही हैं। इसके कारण लाखों इन्सान भाग-भागकर शरणार्थी बन रहे हैं, जिनके पास अपना कहने को न कोई घर है, न कोई देश है। यदि यही वह चीज़ है जो आज फ़ैसिस्ट ताक़तें चाहती हैं, तब तो, जैसा गाँधीजी कहते हैं, "इसमें शक नहीं कि जर्मनी से कोई मेल नहीं हो सकता। एक राष्ट्र जो न्याय और प्रजातन्त्र के लिए खड़े

होने का दावा करता है उसमें और उस राष्ट्र में जो इन दोनों का घोषित शत्रु ह
मेल कैसे हो सकता है ? या इंग्लैण्ड हथियारबन्द सर्वाधिकारी शासन (डिक्टेटरशिप
और उससे जो सब मतलब निकलता है उसकी तरफ़ खिसकता जा रहा है ?"

जब इंग्लैण्ड और फ्रांस ही फ़ैसिस्ट ताक़तों की ताईद करने और उनकी हिफ़ा
जत और बचाव करनेवाले बन गये तब इसमें कोई ताज्जुब नहीं है कि मध्य औ
दक्षिण-पूर्वी यूरप के छोटे-छोटे राज्य पूरी तरह फ़ैसिस्ट जाल में फँस जायँ। अस
बात तो यह है कि ये तेज़ी से फ़ैसिज्म के हाथ में कठपुतली राज्य बनते जा रहे हैं—
नाज़ी जर्मनी जिनका कर्ताहर्ता हो जाता है। जर्मनी ने इटली को चालाकी में औ
कूटनीति में पीछे छोड़ दिया है और इटली आज फ़ैसिस्ट संगठन में बस छोटा हिस्से
दार है। जर्मनी और इटली दोनों उपनिवेशों का विस्तार करना चाहते हैं, पर जर्मनी
का असली दबाव तो पूर्व की तरफ़ यूक्रेन और सोवियट यूनियन की तरफ फैलने क
है। और बहुत मुमकिन है कि इंग्लैण्ड और फ्रांस इस सपने को इस झूठे ख़याल
बढ़ावा दें कि इससे वे अपने उपनिवेश महफ़ूज़ रख सकेंगे।

इन सबके बीच दो महान् देश अलग खड़े हैं—सोवियट यूनियन और संयुक्त
राष्ट्र अमेरिका। ये दोनों आज की दुनिया के दो सबसे ताक़तवर राष्ट्र हैं। दोन
अपने दूर-दूर तक फैले हुए प्रदेशों के अन्दर आत्मनिर्भर हैं, यानी अपनी जरूरतें अप
ही प्रदेशों में पूरी कर लेने की ताक़त रखते हैं। दोनों क़रीब-क़रीब अजेय हैं। मुख़्त
लिफ़ वजूहात से दोनों फ़ैसिज्म और नाज़ीवाद के ख़िलाफ़ हैं। यूरप में तो फ़ैसिज
के ख़िलाफ़ सिर्फ़ सोवियट रूस ही एक रोक है। अगर वह नष्ट हो गया तो यूरोप
प्रजासत्ता का एकदम ख़ात्मा होजायगा—जिसमें फ़्रांस और इंग्लैण्ड भी शामिल
हैं। संयुक्तराष्ट्र यूरप से बहुत दूर है और वह न तो आसानी से इसके मामलों
दख़ल ही दे सकता है और न उसको वैसा करने की इच्छा ही है। पर अगर यूरप य
प्रशान्त महासागर में ऐसा दख़ल दिया जायगा तो अमेरिका की जबर्दस्त ताक़त क
लोग अच्छी तरह महसूस करेंगे।

स्वतन्त्रता के तरफ़दारों में हिन्दुस्तान और पूर्व की उठती हुई प्रजासत्तायें हैं
कुछ ब्रिटिश उपनिवेश ब्रिटिश सरकार से कहीं आगे बढ़े हुए—प्रगतिशील—हैं
प्रजासत्ता और स्वतन्त्रता आज घोर सकट में हैं। यह मुसीबत और ख़तरा इसलि
और ज्यादा है कि अपनेको प्रजासत्ता और स्वतन्त्रता के दोस्त कहनेवाले ही पीछे
उनकी पीठ में छुरा घुसेड़ रहे हैं और चोट कर रहे हैं। लेकिन स्पेन और चीन ने हमा
सामने प्रजासत्ता की सच्ची भावना की आशाजनक और उत्साहप्रद मिसालें पेश की हैं
इन दोनों देशों में युद्ध की भयकरताओं के बीच एक नई क़ौम—एक नया राष्ट्र जन

ले रहा है। और क़ौमी जिन्दगी के कई क्षेत्रों में पुनरुत्थान और पुनर्जागरण दिखाई पड़ रहा है।

१९३५ में एबिसीनिया पर हमला हुआ; १९३६ में स्पेन पर आक्रमण किया गया; १९३७ में चीन पर फिर ताज़ा हमला हुआ; १९३८ में आस्ट्रिया की बारी आई, उसपर आक्रमण किया गया और नाज़ी जर्मनी द्वारा दुनिया के नक़शे से मिटा दिया गया। इसी तरह जर्मनी ने चेकोस्लोवाकिया का अंग-भंग करके उसे महज़ ग़ुलाम या संरक्षित राज्य बना दिया। हरेक साल मुसीबत की पूरी फस्ल लिये आया है। १९३९ में, जिसकी देहली पर हम खड़े हैं, क्या होनेवाला है? यह हमारे लिए और दुनिया के लिए क्या सौग़ात लायेगा?

आगे होनेवाले प्रकाशन

१. **जीवन शोधन**—किशोरलाल मशरूवाला

२. **समाजवाद : पूंजीवाद**—

३. **फेसिस्टवाद**

४. **नया शासन विधान**—(फेडरेशन)

५. **हमारे गांव**—(चौ० मुख्तारसिंह)

६. **हमारी आज़ादी की लड़ाई**(२ भाग)—(हरिभाऊ उपाध्याय)

७. **सरल विज्ञान**—१ (चन्द्रगुप्त वार्ष्णेय)

८. **सुगम चिकित्सा**—(चतुरसेन वैद्य)

९. **गांधी साहित्य माला**—(इसमें गांधीजी के चुने हुए लेखों का संग्रह होगा-इस माला में २० पुस्तकें निकलेंगी। प्रत्येक का दाम ।।) होगा। पृष्ठ संख्या २००–२५०)

१०. **टालस्टाय ग्रन्थावलि**—(टालस्टाय के चुने हुए निबन्धों, लेखों और कहानियों का संग्रह। यह १५ भागों में होगा। प्रत्येक का मूल्य ।।), पृष्ठ संख्या २००–२५०)

११. **बाल साहित्य माला**—(बालोपयोगी पुस्तकें)

१२. **लोक साहित्य माला**—(इसमें भिन्न-भिन्न विषयों पर २००पुस्तकें निकलेंगी। मूल्य प्रत्येक का ।।) होगा और पृष्ठ संख्या २००–२५० होगी। इसकी ५ पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।)

१३. **नवराष्ट्र माला**—इसमें संसार के प्रत्येक स्वतंत्र राष्ट्र-निर्माताओं और राष्ट्रों का परिचय है। इस माला की पुस्तकें २००—२५० पृष्ठों की और सचित्र होंगी। मूल्य ।।।)

१४. **नवजीवनमाला**—छोटी-छोटी नवजीवनदायी पुस्तकें।

कांग्रेस का इतिहास

[सन् १९३५ से मई १९३९ तक]

प्रस्तावना लेखक

डॉ० बी. पट्टाभिसीतारामैया

लेखक

कृष्णचंद्र विद्यालंकार

सस्ता साहित्य मण्डल

लखनऊ :: दिल्ली

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

संस्करण
मार्च १९३९ : ५००
मई १९३९ : १५००
मूल्य
पाँच आना

मुद्रक
एस. एन. भारती
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस
नई दिल्ली।

प्रस्तावना

मुझे यह जानकर खुशी हुई कि मेरी इस छोटी-सी पुस्तक के हिन्दी अनुवाद का तीसरा संस्करण निकल गया है। इससे यह भी मालूम होता है कि हमारे देश के हिन्दुस्तानी जाननेवाले लोगों में ज्ञान प्राप्त करने की कितनी ज्यादा अभिलाषा है। जनता तक यह तीसरा संस्करण पहुँचाते हुए यह स्वाभाविक ही था 'कांग्रेस का इतिहास' 'अपटूडेट' यानी आजतक की घटनाओं से पूर्ण कर दिया जाता। और खुशी की बात है कि साहसी प्रकाशकों ने यह काम कर दिया है। इस परिशिष्ट भाग के लेखक मेरे मित्र श्री कृष्णचन्द्र विद्यालंकार सम्पादक व लेखक के नाते काफ़ी प्रसिद्ध हैं और पाठकों के सामने मुझे उनकी तारीफ़ करने की जरूरत नहीं जान पड़ती। घटना-क्रम बड़ी तेजी से बदल रहा है। उसके साथ-साथ कांग्रेस का क्षेत्र भी इस जल्दी से बढ़ रहा है कि इन महान् संस्था ने रियासती जनता के अधिकारों व स्वतंत्रताओं तक अपना कार्यक्षेत्र बढ़ा लिया है। इस तरह कांग्रेस सच्चे अर्थों में अब अखिल भारतीय राष्ट्रीय महासभा बन गई है। मुझे आशा है कि दिसम्बर १९३५ के बाद की घटनाओं का यह इतिहास मूल पुस्तक की लोकप्रियता को बहुत बढ़ा देगा, जिसे मैंने आज से साढ़े तीन साल पहले स्वर्णजयन्ती-समारोह के अवसर पर तुच्छ भेंट के रूप में लिखा था।

दिल्ली, किंग्सवे
१४ फरवरी १९३९

—बी० पट्टाभिसीतारमैया

दो शब्द

जब कांग्रेस की स्वर्णजयन्ती मनाई गई थी तब वह महज एक पूर्णस्वराज के लिए लड़नेवाली संस्था थी। अब वह एक शासक संस्था बनगई है और आधे से ज्यादा हिन्दुस्तान में कांग्रेसी मंत्रिमण्डल बना हुआ है जिनके घरों पर तिरंगा झण्डा अपनी शान के साथ फहरा रहा है। इससे कांग्रेस के ऊपर जहाँ एक नई जिम्मेदारी आई, तहाँ उसे नया अनुभव भी होरहा है और नई कठिनाइयाँ भी सामने आरही हैं—मंत्रिमण्डल के सामने भी और कांग्रेस-संगठन के सामने भी। इससे कांग्रेस की शक्ति, साधन, अनुभव, प्रभाव सब दिशाओं में वृद्धि ही हुई है और वह पहले से कहीं अधिक पूर्ण-स्वराज्य के नजदीक पहुँच रही है। इसलिए इन पिछले ३–४ साल का कांग्रेस का इतिहास लिखना मामूली बात नहीं है और न यह इतिहास कांग्रेस के सूक्ष्म अन्तःप्रवाह एवं तमाम प्रकट परिवर्तनों और प्रभावों—आघात-प्रत्याघातों—का विस्तृत या शास्त्रीय इतिहास ही है। यह तो घटनाक्रम का एक शृंखलाबद्ध वर्णन है, जो सफल और सुबोध भाषा में लिखा गया है। इससे पाठकों को आजतक की कांग्रेस-संस्था के स्थूल चित्र-दर्शन में बहुत सुविधा होगी। इसमें मुझे कोई सन्देह नहीं है।

जयपुर-सत्याग्रह-कार्यालय
आगरा

हरिभाऊ उपाध्याय

विषय-सूची

कांग्रेस का इतिहास

[परिशिष्ट भाग]

—सन् १६३५ से मार्च १६३६ तक—

: १ :

लखनऊ कांग्रेस

स्वर्ण-जयन्ती

सन् १९३५ की सबसे अन्तिम घटना थी कांग्रेस की स्वर्ण-जयन्ती। इसी मौक़े के लिए डा० पट्टाभि सीतारमैया ने कांग्रेस का वह इतिहास लिखा, जो पिछले पृष्ठों में पाठकों ने पढ़ा है। मूल इतिहास तो अंग्रेज़ी में लिखा गया था, लेकिन हिन्दी, गुजराती, मराठी, उर्दू, तमिल और तेलगू आदि अनेक प्रान्तीय भाषाओं में इसके उलथे प्रकाशित हुए। काँग्रेस कमेटी के दफ़्तर ने राष्ट्रीय समस्याओं पर छोटी-छोटी पुस्तिकायें भी इस अवसर पर प्रकाशित कीं। बहुत-सी प्रान्तीय या ज़िला काँग्रेस कमेटियों ने भी अपने-अपने क्षेत्र के राष्ट्रीय आन्दोलन के संक्षिप्त इतिहास प्रकाशित किये। स्वर्ण-जयन्ती मनाने का फ़ैसला बहुत देर बाद किया गया था, फिर भी सारे देश ने इस उत्सव को बड़ी धूमधाम व उत्साह से मनाया। बहुत-से शहरों में भारत की सबसे बड़ी और सच्ची प्रतिनिधि संस्था के सैकड़ों आपत्तियों में से गुज़रने और ५० साल पहले बोये गये एक छोटे-से बीज से बढ़कर विशाल वटवृक्ष होने की ख़ुशी में दीवाली मनाई गई। बम्बई, कराची, हैदराबाद, नागपुर, गोहाटी, मुजफ्फरनगर और लखनऊ आदि शहरों में ग्रामोद्योग-प्रदर्शिनियों और मेले के आयोजन द्वारा साधारण जनता ने राष्ट्रीय महासभा की ख़ुशी में भाग लिया। बहुत-से नगरों, क़स्बों और गाँवों में खेल-कूद, कवि-सम्मेलन, मुशायरे व संगीत-सम्मेलन वग़ैरा किये गये। कुछ शहरों में भारत की प्राचीन विधि के अनुसार ग़रीब लोगोंको भोजन तथा वस्त्र दान दिये गये। अंग्रेज़ी और प्रान्तीय भाषाओं के ज्यादातर दैनिक, साप्ताहिक और मासिक पत्रों ने इस अवसर पर छोटे-बड़े विशेषांक निकालकर समस्त राष्ट्र में नवजीवन का संचार कर देनेवाली राष्ट्रीय महासभा को श्रद्धांजलि अर्पित की। बहुत-से शहरों की म्यूनिसिपैलिटियों ने भी इस राष्ट्रीय समारोह में भाग लिया। सैकड़ों सार्वजनिक संस्थाओं ने देश की सबसे बड़ी सार्वजनिक संस्था को बड़ी शान के साथ ५० साल पूरे करने पर बधाई दी।

राष्ट्रपति राजेन्द्र बाबू उन दिनों बम्बई में थे और बम्बई में ही काँग्रेस का प्रथम अधिवेशन हुआ था। गोकुलदास तेजपाल पाठशाला, जहाँकि पहला अधिवेशन

हुआ था, इस समारोह का केन्द्र होगया। राष्ट्रपति ने २७ दिसम्बर को सर दीन
वाचा के, जो काँग्रेस के पुराने जीवित सभापतियों में सवसे अधिक वयोवृद्ध थे, घ
जाकर उनके दर्शन किये और उन्हें प्रणाम किया। इसके दूसरे दिन २८ ता० को सा
देश ने इस राष्ट्रीय समारोह को अभूतपूर्व तौर पर मनाया। प्रभातफेरी, झंडाभि
दन, जलूस और विराट् सभायें दिन-भर का कार्यक्रम था। वाजारों की दुकानों, लो
के अपने घरों, तांगों और मोटरों व साइकलों पर राष्ट्रीय तिरंगे झण्डे फहराये गये
राष्ट्र के नेताओं ने इस अवसर पर सन्देश दिये। विदेशों से भारत-हितैषियों ने भ
सन्देश भेजकर काँग्रेस की सफलता पर हार्दिक प्रसन्नता प्रकट की और वधाई दी
राष्ट्रपति राजेन्द्रवावू का सन्देश तमाम मुल्क में पढ़ा गया। इसके कुछ अंश ये हैं:–

"५० साल पहले आज के दिन वम्वई में थोड़े-से प्रतिनिधियों ने इस सभा क
स्थापना की थी। वे लोग जनता द्वारा चुने हुए प्रतिनिधि तो शायद ही कहे जा सकें,
लेकिन वे थे भारतीय जनता के सच्चे सेवक। इस काँग्रेस का एक निश्चित ध्येय था–
जनता की स्वतंत्रता। स्वतंत्रता का अर्थ पहले निश्चित न था, लेकिन आज इसक
अर्थ निश्चित होगया है। इसका अर्थ है पूर्ण स्वराज्य या मुकम्मिल आज़ादी। इसक
अर्थ है भारतीय जनता द्वारा चुने गये प्रतिनिधियों का सरकारी मशीनरी पर निय
त्रण। इसका अर्थ एक श्रेणी या एक जाति की स्वतन्त्रता नहीं, इसका अर्थ है स
हिन्दुस्तानियों—ग़रीव-से-गरीव हिन्दुस्तानी के लिए स्वतंत्रता। जनता के आर्थि
शोषण का अन्त करने के लिए राजनैतिक स्वतंत्रता में सच्ची आर्थिक स्वतन्त्रता भ
मिली होनी चाहिए।

"स्वराज्य-प्राप्ति के साधन भी निश्चित हो चुके हैं। वे उचित और शान्ति
मय होने चाहिएँ।......

"काँग्रेस का प्रारम्भ वहुत छोटे रूप में हुआ था, लेकिन आज भारत की य
सवसे वड़ी राजनैतिक संस्था वन गई है। यह समस्त देश की—सभी भारतीयों क
प्रतिनिधि संस्था है। इसकी शाखायें सारे मुल्क में—उत्तर में हिमालय से लेकर दक्षि
के अंतिम सिरे कन्याकुमारी तक फैल गई हैं। इसका वर्त्तमान कार्यक्रम वहुत विस्तृ
और विशाल है। असेम्वली की सदस्यता, चरखा, खद्दर तथा अन्य ग्रामोद्योगों क
उन्नति, ग्रामों के आर्थिक, सामाजिक, शिक्षासम्वन्धी जीवन में विकास, अस्पृश्यता
निवारण, साम्प्रदायिक एकता, पूर्ण मद्यनिषेध, राष्ट्रीय शिक्षा, वयस्कों में शिक्षा
प्रचार, किसान-संगठन, मज़दूर-संगठन, और घरेलू धन्धों द्वारा किसानों की आर्थि
सहायता—ये सव कार्यक्रम काँग्रेस ने अपना लिये हैं। इस तरह राष्ट्रीय जीवन क
हरेक पहलू काँग्रेस के क्षेत्र में है।.........

"आइए, आज हम उन सव ज्ञात या अज्ञात स्त्री, पुरुष और वच्चों के आ

अपना सिर झुकायें, जिन्होंने भारत की आज़ादी के लिए अपनी जान तक कुरबान कर दी है, तरह-तरह के कष्ट और अत्याचार सहे हैं और जो आज भी अपनी मातृभूमि को प्यार करने के कारण कष्ट पा रहे हैं। उन लोगों की सेवाओं का भी हमें कृतज्ञता व सम्मान के साथ स्मरण करना चाहिए, जिन लोगों ने इस महान् संस्था का बीज बोया और अपने निःस्वार्थ परिश्रम व बलिदान से इसका पोषण किया।"

भारत के कोने-कोने में, पूर्व-पश्चिम और उत्तर-दक्षिण, सभी दिशाओं में, इस दिन जो शानदार समारोह किया गया, उससे एक बार यह फिर साफ़ हो गया कि कांग्रेस सारे देश की—छोटे-बड़े, बालक-बूढ़े, स्त्री या पुरुष सबकी—हिन्दू, मुसलमान, ईसाई, सिक्ख, पारसी और व्यापारी, व्यवसायी, वकील, डाक्टर, दुकानदार, किसान,मज़दूर आदि सभी श्रेणियों की प्रतिनिधि संस्था है और उसपर सबको विश्वास है। कुछ महाराष्ट्रीय युवकों ने तेजपाल संस्कृत पाठशाला में एक ज्योति जलाकर उसे अखण्ड रखने का निश्चय किया। इसके अनुसार यह ज्योति जलाई गई और कांग्रेस के अधिवेशनों के अवसर पर भी पहुँचाई गई।

यहाँ यह बताना अप्रासांगिक न होगा कि सरकार ने इस राष्ट्रीय समारोह में साधारणतः किसी प्रकार की दस्तंदाजी नहीं की, फिर भी कुछ स्थानों पर स्थानीय अधिकारियों ने रुकावट डाली।

राष्ट्रपति का दौरा

बम्बई की कांग्रेस १९३४ के अक्तूबर में हुई थी। उसका अगला अधिवेशन लखनऊ में अप्रैल १९३६ में हुआ। राष्ट्रपति राजेन्द्रप्रसाद का कार्यकाल इस तरह १॥ साल तक रहा। इन १८ महीनों में राजेन्द्र बाबू ने बहुत अस्वस्थ होते हुए भी जिस उत्साह, जिस लगन और कर्तव्यपालन की जिस भावना के साथ काम किया, वह कांग्रेस के इस समय तक के इतिहास में अद्वितीय है। बिहार में भूकम्प-पीड़ितों की सहायता का जो बड़ा भारी काम चल रहा था, उसका भार भी उन्हींके कन्धों पर था। इतनी बड़ी और कठिन ज़िम्मेदारी होते हुए उन्होंने राष्ट्रपति के नाते महाराष्ट्र, कर्नाटक, बरार, पंजाब, तामिलनाड, आँध्र, केरल और महाकोशल आदि प्रांतों का दौरा किया। राष्ट्रपति का दौरा अप्रैल १९३५ से शुरू हुआ और फरवरी १९३६ में जाकर समाप्त हुआ। चौमासे में उनका दौरा स्थगित रहा। इस दौरे में उनका सभी जगह शानदार स्वागत हुआ। कांग्रेस कमेटियों के अलावा म्यूनिसिपैलिटियों, लोकल बोर्डो, पंचायतों, व्यापारिक संस्थाओं और दूसरी सार्वजनिक संस्थाओं ने उन्हें मानपत्र दिये। अक्सर सभी स्थानों में उन्हें थैलियाँ भी भेंट की गईं। कुल मिलाकर सब प्रान्तों में उन्हें ८९२९७ रु०१० आ० ५ पाई मिला। इसमें से महाराष्ट्र,

तामिलनाड, आंध्र और केरल प्रान्तों से उन्हें क्रमशः २४९५०) रु०, २०४२१) रु० ३५०७७) रु० और ४२०५) रु० मिले। निश्चित उद्देश्य से दी गई रकमों के सिवा बाकी रुपये का आठवाँ भाग अ० भा० कां० कमेटी ने लिया और शेष प्रान्तों को वापस कर दिया गया। इस दौरे में हज़ारों मील मोटर से और हज़ारों मील रेल गाड़ी से उन्होंने सफ़र किया। इस दौरे की सबसे बड़ी विशेषता यह थी कि यह दौरा केवल बड़े-बड़े शहरों तक सीमित न था। प्रान्तों के अन्तर्वर्ती गाँवों और कसबों में जाकर राष्ट्रपति ने किसान-किसान तक राष्ट्र का स्फूर्तिदायक संदेश सुनाया। राष्ट्रपति को भेंट में मिली थैलियाँ इस बात का प्रमाण हैं कि उनका संदेश किस तरह भारत के सच्चे नागरिक दरिद्र किसानों तक पहुँचा। इन थैलियों में किसानों ने एक-एक पैसा जमा करके दिया था और कई थैलियाँ तो सैंकड़ों रुपयों के पैसों से भरी हुई मिलीं। वस्तुतः पूँजीपतियों की बड़ी रकमों की अपेक्षा ये पैसे-पैसे की रक़में ज्यादा क़ीमती हैं।

१ जनवरी १९३६ को बम्बई में वर्किंग-कमिटी की बैठक हुई, जिसमें लखनऊ-काँग्रेस का कार्यक्रम नियत किया गया और बंगाल के कांग्रेसियों के पुराने झगड़े को समाप्त करने के लिए राष्ट्रपति को अधिकार दिये गये। राष्ट्रपति को यह भी अधिकार दिया गया कि जबतक बंगाल प्रान्तीय काँग्रेस का बाकायदा चुनाव न हो जाय, तबतक के लिए वह श्री शरतचन्द्र बोस के परामर्श से कमिटी के सदस्यों और अधिकारियों को मनोनीत करलें। एक और प्रस्ताव द्वारा उन लोगों को काँग्रेस-कमेटियों के सदस्य बनने और चुनाव में भाग लेने की छूट दी गई, जो जेल में कैद रहने, नज़रबन्द होने या भारत से सरकार की आज्ञा द्वारा निर्वासित रहने के कारण छः मास पहले काँग्रेस के सदस्य न बन सके हों या इन कारणों से शारीरिक श्रम न कर सके हों।

देश की क्षति

लखनऊ-काँग्रेस की चर्चा करने से पहले इस समय तक की कुछ और घटनाओं का ज़िक्र करलें। श्री शशमल, श्री अभ्यंकर और श्री तसद्दुक़ अहमद खाँ शेरवानी के, जो केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव में सफल हो चुके थे, देहान्त का ज़िक्र पहले किया जा चुका है। इनके अलावा भी कई महान् व्यक्ति देश से छिन गये। सिन्ध के प्रसिद्ध विद्वान् और नेता आचार्य गिडवानी, दिल्ली के अनथक कार्यकर्ता श्री आरिफ़ हस्वी, बिहार के प्रसिद्ध दानी श्री दीपनारायण सिंह जो असेम्बली के चुनाव में सफल हुए थे, इंग्लैण्ड में भारत की ओर से आन्दोलन करनेवाले सर शापुरजी सकलातवाला, आसाम के काँग्रेस-आन्दोलन के प्राण श्री नवीनचन्द्र बारडोलाई और

बम्बई के सर दीनशा वाचा, जिनके चरणों में जाकर कुछ ही दिन पहले राष्ट्र-पति राजेन्द्र बाबू ने प्रणाम किया था, लखनऊ-कांग्रेस से पहले ही चल बसे। एक और व्यक्ति के देहान्त ने भी सारे देश को शोकसागर में डुबो दिया। यह व्यक्ति थी पं० जवाहरलाल नेहरू की पत्नी श्रीमती कमला नेहरू। उन्होंने अपने लगातार गिरते हुए स्वास्थ्य की चिन्ता न करके देश के लिए हर क़िस्म की कुरबानी की। भारतीय स्त्रियों को राजनैतिक क्षेत्र में लाने में उनका काफ़ी बड़ा हाथ था। वह योग्य पति की योग्य पत्नी थीं। जेल-प्रवास के बाद से ही वह बीमार चली आरही थीं और विदेशों में चिकित्सा के जो भी सर्वोत्तम साधन प्राप्त हो सकते हैं उनके बावजूद वह बच न सकीं। समस्त राष्ट्र ने इस अवसर पर पं० जवाहरलाल नेहरू से सहानुभूति प्रकट की।

दमन क़ानून

१८ दिसम्बर १९३५ को वाइसराय ने एक घोषणा द्वारा क्रिमिनल ला अमेण्ड-मेण्ट एक्ट को सम्पूर्ण ब्रिटिश भारत में लागू कर दिया। इस बिल को सितम्बर में असेम्बली ने रद्द कर दिया था। १९ नवम्बर को युक्तप्रान्तीय कौंसिल ने स्पेशल पावर्स एक्ट पास किया। इसका आधार यह बताया गया था कि संयुक्तप्रांत में सोशलिस्टों की जबरदस्त पार्टी है, जो जमींदारी प्रथा का खातमा करना चाहती है। इसी आशय का एक बिल पंजाब-कौंसिल ने भी १८ नवम्बर को पास किया। दिल्ली-सरकार ने एक सूचना निकालकर पंजाब क्रिमिनल ला अमेण्डमेण्ट एक्ट को दिल्ली में भी जारी कर दिया। इन क़ानूनों के द्वारा सरकार ने प्रजा के आन्दोलन का दमन करने के लिए वे सब अधिकार अपने हाथ में कायम रक्खे, जो आर्डिनेंस राज के समय से चले आते थे।

समाजवादी दल

दिसम्बर १९३५ में अखिल-भारतीय सम्मिलित मज़दूर बोर्ड ने यह अनुभव किया कि मज़दूरों की समस्या का हल करने के लिए काँग्रेस का सहयोग अनिवार्य है और इसलिए बोर्ड ने नागपुर में काँग्रेस की मजदूर-समिति से बातचीत करने का निश्चय किया। समाजवादी दल का निर्माण तो पहले ही हो चुका था, लेकिन उस की पहली कान्फ्रेंस श्रीमती कमलादेवी चट्टोपाध्याय के सभापतित्व में मेरठ में हुई। इस काँग्रेस में हम देखते हैं कि काँग्रेस के वाम-पक्ष के रूप में इसका काँग्रेसी नीति से विरोध और भी प्रबल हुआ। इस कान्फ्रेंस में पदग्रहण के विचार का तीव्र विरोध किया गया, नये विधान का मुक़ाबिला करने के लिए सत्याग्रह आदि प्रत्यक्ष युद्ध करने

की सलाह दी गई, काँग्रेस-विधान में अधिकारियों के लिए श्रम-मताधिकार तथा खद्दर की अनिवार्यता का विरोध किया गया, काकोरी के भूख-हड़ताली क़ैदी जोगेश चटर्जी की, जिन्होंने १११दिन तक भूख-हड़ताल की थीं, सहानुभूति में दिन मनाने का निश्चय किया गया और किसानों-मजदूरों की ओर से कुछ माँगे पेश की गईं। समाजवादी दल धीरे-धीरे वल पकड़ता जारहा था और इस तरह काँग्रेस में ही रहते हुए काँग्रेस-अधिकारियों की नीति से असंतोप कुछ कुछ उग्र-रूप धारण कर रहा था।

लखनऊ कांग्रेस

लखनऊ-काँग्रेस में समाजवादी काफ़ी ज़ोर के साथ आये दीखते थे, लेकिन उनके तेज-तर्रार भापणों के अनुकूल विशेष सफलता उन्हें नहीं मिली। कुछ लोग संदेह करने लगे थे कि लखनऊ-काँग्रेस में ही काँग्रेस के दक्षिण व वाम पक्षों का विरोध अधिक न वढ़ जाय, लेकिन पं० जवाहरलाल नेहरू की धाक और दोनों दलों की काँग्रेस के प्रति निष्ठा के कारण ऐसी नौवत न आई। लखनऊ-काँग्रेस के सभापतित्व का सवाल पेचीदा था। इस समय दोनों दलों के वढ़ते हुए विरोध, और देश के सामने नये विधान जैसे जटिल व विवादास्पद प्रश्नों के कारण आपस के मेल की और भी अधिक आवश्यकता थी। राष्ट्रपति के वढ़ते हुए उत्तरदायित्व को देखते हुए एक ऐसे राष्ट्रपति की ज़रूरत महसूस की जारही थी, जिसका प्रभाव सारे देश पर हो, जिसपर दोनों दलों को विश्वास हो और जो साहस व दृढ़ता के साथ देश का नेतृत्व कर सके। इस दृष्टि से पं०जवाहरलाल नेहरू पर सवकी नज़र पड़ी। उनपर दोनों दलों को विश्वास था और शेप आवश्यक गुणों की भी उनमें कमी न थी। इसलिए जिस सूवे में काँग्रेस हो रही हो, उससे दूसरे सूवे का सभापति चुनने की प्रथा को पहली वार तोड़कर भी उन्हें ही राष्ट्रपति का पद दिया गया। लखनऊ-काँग्रेस से पहले स्वागत-समिति के स्थानीय काँग्रेसी कार्य-कर्ताओं के पारस्परिक मतभेद से कुछ नाजुक हालत पैदा होगई थी, लेकिन पं० जवाहरलाल नेहरू के हस्तक्षेप से मामला सुलझ गया। वम्वई के अधिवेशन में काँग्रेस के परिवर्तित विधान के अनुसार प्रतिनिधियों की संख्या कम करदी गई थी, इसलिए इस वर्ष प्रायः सभी प्रान्तों में प्रतिनिधियों के चुनाव में काँग्रेसियों में काफ़ी कशमकश रही, जो प्रायः प्रतिवर्प वढ़ती जाती है।

पुरानी सव प्रथाओं को तोड़कर लखनऊ-काँग्रेस के सभापति पं० जवाहरलाल नेहरू का जलूस पैदल निकालने का निश्चय किया गया था। वह कुछ मिनट पैदल भी चले, लेकिन भीड़ के कारण यह सम्भव न हो सका और उन्हें घोड़े पर सवार होजाना पड़ा। १२ अप्रैल को काँग्रेस का अधिवेशन प्रारम्भ हुआ। स्वागताध्यक्ष

बाबू श्रीप्रकाश के भाषण के बाद राष्ट्रपति का हिन्दुस्तानी में भाषण हुआ। इसमें प्रायः सभी सामयिक समस्याओं पर उन्होंने अपने विचार दृढ़ता से प्रकट किये।

लखनऊ-काँग्रेस में कुल १५ प्रस्ताव पास हुए। पहला प्रस्ताव हस्बमामूल शोक-प्रस्ताव था, जिसमें उपर्युक्त दिवंगत व्यक्तियों के सिवा सर्वश्री मोहनलाल पंड्या, सेठ नथमल चोरड़िया, गणपतराव टिकेकर, टी० वी० वेंकटराय, आगा मुहम्मद सफ़दर और महादेवप्रसाद सेठ की मृत्यु का भी उल्लेख था। दूसरे प्रस्ताव में विविध सरकारी क़ानूनों के शिकार देशभक्त क़ैदियों, निर्वासितों और नज़रबन्दों को बधाई दी गई और सीमाप्रान्त व बंगाल के उन लोगों से, जो कड़े क़ानूनों के शिकार थे, हार्दिक सहानुभूति प्रकट की गई। तीसरे प्रस्ताव में देश-निर्वासन के लम्बे काल के बाद आते हुए श्री सुभाषचन्द्र की गिरफ्तारी पर रोष प्रकट करके उन्हें साधुवाद और सहानुभूति का संदेश दिया गया। बाक़ी प्रस्तावों द्वारा नागरिक अधिकारों के अपहरण की निन्दा की गई; प्रवासी भारतीयों तथा अन्य देशों की राष्ट्रीय, अन्तर्राष्ट्रीय और मज़दूर आदि संस्थाओं से सम्पर्क रखने के लिए कांग्रेस कमेटी का एक वैदेशिक विभाग खोलने का निश्चय किया गया; विश्व-शान्तिपरिषद् के निमन्त्रण के लिए श्री रोमां रोलां को बधाई दी गई और उक्त परिषद् से सहानुभूति प्रकट की गई; साम्राज्यवादी युद्ध में भारत के भाग न लेने की घोषणा की गई, अबीसीनिया से सहानुभूति तथा राष्ट्रसंघ की नपुंसकता की निन्दा की गई; कांग्रेस के विधान में कुछ परिवर्तन किये गये, रियासती प्रजा के लिए जनतन्त्रात्मक स्वतन्त्रता के अधिकार की घोषणा की गई और काँग्रेस का आगामी अधिवेशन महाराष्ट्र में करने का निश्चय किया गया। इनके अलावा कुछ और भी मुख्य प्रश्न थे। उनपर समाजवादियों ने वर्किंग कमेटी के मूल प्रस्तावों का तीव्र विरोध किया, लेकिन उन्हें सफलता न मिली। भावी शासन-विधान और उसमें पदग्रहण करने न करने का प्रश्न सबसे महत्त्वपूर्ण था। इस प्रस्ताव पर सबसे अधिक बहस हुई, और कई संशोधन पेश हुए, लेकिन अन्त में मूल प्रस्ताव ही बहुत अधिक मत से पास हो गया। इसके अनुसार नया शासन-विधान अस्वीकृत किया गया, कंस्टिट्युएण्ट असेम्बली की माँग की गई, पार्लमेण्टरी बोर्ड तोड़कर सब अधिकार वर्किंग कमेटी को दे दिये गये। नये विधान के अनुसार प्रान्तीय कौंसिलों का चुनाव लड़ने का निश्चय किया गया और पदग्रहण का विवादपूर्ण प्रश्न समय आने पर अखिल-भारतीय काँग्रेस कमेटी के निर्णय के लिए स्थगित किया गया। देश की साधारण जनता से सम्पर्क बढ़ाने के उपायों पर विचार करने के लिए बाबू राजेन्द्रप्रसाद, श्री जयरामदास दौलतराम और श्री जयप्रकाश नारायण की एक उपसमिति नियत की गई। इसपर भी बहस हुई। काँग्रेस में किसान और मज़दूर सभाओं के प्रत्यक्ष प्रति-

निधित्व का संशोधन पास न हो सका। किसानों के सम्बन्ध में एक अखिल भारतीय कार्यक्रम बनाने के लिए सब प्रान्तीय काँग्रेस-कमेटियों के पास एक प्रश्नावली भेजकर सिफ़ारिशें माँगने का प्रस्ताव भी लखनऊ-काँग्रेस का एक महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव था। इस प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस ने किसानों की बहुत-सी माँगों को स्वीकार कर लिया। इसके अनुसार सब प्रान्तीय काँग्रेस-कमेटियाँ किसानों की स्थिति का विस्तृत अध्ययन करने लगीं, जिनका लाभ आज खूब उठाया जा रहा है, जबकि विभिन्न प्रान्तों में काँग्रेसी सरकारों को किसानों-सम्बन्धी क़ानून बनाने पड़ रहे हैं। विश्व-शान्तिपरिषद् में श्री कृष्णन मेनन को कांग्रेस के प्रतिनिधि के तौर पर भेजा गया।

नागरिक स्वाधीनता संघ

लखनऊ-काँग्रेस के प्रस्तावों पर तुरन्त ही अमल किया गया। पं० जवाहरलाल नेहरू ने कविवर रवीन्द्रनाथ ठाकुर के सभापतित्व में नागरिक स्वाधीनता संघ (सिविल लिबर्टी यूनियन) की स्थापना की। इसमें उन्हें भिन्न-भिन्न राजनैतिक दलों और विचारों के १५० प्रतिष्ठित नेताओं का सहयोग प्राप्त होगया। यह संघ अबतक उत्साह से काम कर रहा है। यह संघ ब्रिटिश भारत व रियासतों में नागरिक अधिकार-अपहरण की तथा राजनैतिक क़ैदियों के साथ दुर्व्यवहार की पूरी जानकारी रखता और प्रकाशित करता है। अन्य देशों की नागरिक अधिकार-संरक्षक संस्थाओं से भी यह संघ पूरा सम्पर्क क़ायम रक्खे हुए है।

वैदेशिक और आर्थिक विभाग

वैदेशिक विभाग भी डॉ० राममनोहर लोहिया के चार्ज में खोल दिया गया। शुरू में वैदेशिक विभाग के कुछ बुलेटिन पुलिस उठा ले गई, क्योंकि ज़िला-मजिस्ट्रेट की राय में ये भी अख़बार की परिभाषा में आते थे। बाद में बाक़ायदा इजाज़त लेकर बुलेटिन छपाये जाने लगे। यह विभाग जहाँ विदेशों की भिन्न-भिन्न संस्थाओं और पत्रों को भारतीय स्थिति का प्रामाणिक परिचय देता है, वहाँ अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की घटनाओं से भारत की जनता को भी परिचित रखता है। विभिन्न देशों के स्वाधीनता-आन्दोलनों और जन-आन्दोलनों से पूरा सम्पर्क रखने का यह विभाग प्रयत्न करता है। राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू ने अपने सभापति-काल के दो वर्षों में भारत को अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति से सम्बद्ध रखने की आवश्यकता पर बहुत जोर दिया है और उसका आज यह परिणाम हुआ है कि भारत की आम शिक्षित जनता भी अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति में दिलचस्पी लेने लगी है और उससे लाभ उठाने की चर्चा करने लगी है। वैदेशिक विभाग के अलावा डॉ० अशरफ़ के नेतृत्व में राजनैतिक व

आर्थिक विभाग भी कांग्रेस-कार्यालय में क़ायम किया गया, जिसका काम भारत की राजनैतिक व आर्थिक समस्याओं का अध्ययन, आंकड़ों का संग्रह और लेखों, पैम्फलेटों व पुस्तकों का प्रकाशन है।

केन्द्रीय असेम्बली में काँग्रेसपार्टी

कांग्रेस के प्रस्ताव के अनुसार पार्लमेण्टरी बोर्ड तोड़ दिया गया। प्रान्तीय कौंसिलों का चुनाव करने के लिए वर्किंग कमेटी ने एक पार्लमेण्टरी कमेटी की नियुक्ति की। इसके अध्यक्ष सरदार वल्लभभाई पटेल तथा मंत्री श्री राजेन्द्रप्रसाद और श्री गोविन्दवल्लभ पन्त चुने गये। उम्मीदवारों का अन्तिम निर्णय करने के लिए एक कार्यकारिणी समिति नियुक्त की गई। प्रान्तों में पार्लमेण्टरी कार्यों के लिए प्रान्तीय पार्लमेण्टरी बोर्ड बनाये गये। कांग्रेस ने चुनावों में शानदार फ़तह कैसे हासिल की, इसकी चर्चा हम आगे करेंगे। यहाँ केन्द्रीय असेम्बली में कांग्रेसपार्टी के कार्यों पर एक नज़र डाल लेना काफ़ी होगा। असेम्बली के शरत्कालीन अधिवेशन में काँग्रेसी सदस्यों ने कई प्रश्नों पर विचार करने के लिए बहुत-से स्थगित प्रस्ताव पेश किये। बहुत-से प्रस्ताव गवर्नर-जनरल ने पेश होने से ही रोक दिये और जब वायसराय के इस रुख पर स्थगित प्रस्ताव पेश किया गया तो अध्यक्ष सर अब्दुर्रहीम ने यह कह कर उसकी इजाज़त न दी कि असेम्बली वायसराय के कुछ कार्यों पर बहस नहीं कर-सकती। इण्डियन सिविल सर्विस में गोरों की भरती को तरजीह देने की निन्दा का स्थगित प्रस्ताव पास हो गया। वायसराय के भाषण के अवसर पर काँग्रेसी ग़ैरहाज़िर रहे। जब अध्यक्ष ने तटकरनीति की निन्दा के ख़िलाफ़ स्थगित प्रस्ताव पर अन्तिम समय अर्थसदस्य को बोलने की इजाज़त दी, तो काँग्रेसी सदस्यों ने इसके विरोध में वाक-आउट कर दिया। किसानों की आर्थिक अवस्था की जाँच करने के लिए कमेटी नियुक्त करने का प्रस्ताव पास हो गया। इण्डियन कम्पनी एक्ट अमेण्डमेण्ट बिल के अन्तिम रूप को बनाने में काँग्रेसी सदस्यों ने खूब भाग लिया। इससे पहले के बजट अधिवेशन में भी काँग्रेसी सदस्यों ने खूब हलचल मचा दी थी। सैकड़ों प्रश्नों और स्थगित प्रस्तावों द्वारा सरकारी नीति की आलोचना की गई। असेम्बली और कौंसिल आफ़ स्टेट के सदस्यों की एक सम्मिलित सेना-समिति नियुक्त करने और ब्रिटिश भारत के सब भागों में शासनविधान का प्रतिनिधितन्त्र-विधान चालू करने के प्रस्ताव पास किये गये। रेलवे की आर्थिक नीति की निन्दा पर कटौती-प्रस्ताव पास होगया। फ़ौज का सप्लाई खर्च सिर्फ़ एक रुपया रखने का कटौती प्रस्ताव भी असेम्बली ने पास कर दिया। असेम्बली ने कटौती-प्रस्तावों द्वारा क्वेटा के निर्माण के लिए वार्षिक आय में से रुपया लगाने की निन्दा की, वाइसराय की कार्यकारिणी का ख़र्च पास करने से

इन्कार कर दिया, सीमाप्रान्त तथा अन्य प्रान्तों में दमननीति की निन्दा की, दमनकानून हटाने की सिफ़ारिश की, पोस्टकार्ड की क़ीमत दो पैसा कर देने की माँग की, श्री सुभाषचन्द्र को दी गई धमकी पर निन्दा का प्रस्ताव पास किया और पिछले साल की भांति वाइसराय के सिफ़ारिशी फ़ाइनेंस बिल को ठुकरा दिया। मतलब यह कि भारत के लोकमत को काँग्रेसपार्टी असेम्बली में बहुत स्पष्टता और तीव्रता के साथ रखने में काफ़ी सफल हुई।

काँग्रेस द्वारा नियुक्त मजदूर सब-कमेटी ने देश की मजदूर-संस्थाओं के प्रतिनिधियों से मजदूर-समस्या के विविध पहलुओं पर चर्चा की। कमेटी ने मिलमालिकों से, काँग्रेस-कार्यकर्ताओं से और असेम्बली के सदस्यों से मजदूरों की ओर ज्यादा ध्यान देने की अपील की। कांग्रेस कमेटियों को जगह-जगह मजदूर-संघ खोलने की सलाह भी इस कमेटी ने दी।

राष्ट्रपति का दौरा

इस वर्ष काँग्रेस ने अत्यन्त तेजस्वी, साहसी व योग्य व्यक्ति को अपना नेता चुना था। इसलिए यह असंभव था कि काँग्रेस-कार्य में प्रगति न होती। उन्होंने सबसे पहले काँग्रेस-कार्यालय के संगठन पर जोर दिया। कर्मचारी बढ़ाये गये। प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों से सम्पर्क बढ़ाया गया। सरक्यूलरों, पत्रों और वक्तव्यों द्वारा प्रान्तीय कांग्रेस कमेटियों की मार्फ़त सारे देश को समय-समय पर भावी कार्य-क्रम के बारे में नेतृत्व व परामर्श दिया जाने लगा। समय-समय पर सारे देश में ख़ास-ख़ास दिवस मनाने की घोषणाओं द्वारा जनता को जागृत, सतर्क और काँग्रेस के प्रति निष्ठावान रखने की कोशिश की गई। ९ मई को अबीसीनिया-दिवस, १० मई को सुभाष-दिवस, १७ मई को डा० अंसारी दिवस, १३ सितम्बर को जतीन्द्र-दिवस, २७ सितम्बर को फ़िलस्तीन दिवस और ११ नवम्बर को युद्धविरोधी दिवस मनाये गए। समय-समय राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं पर निकले राष्ट्रपति के वक्तव्यों के कारण भी देश में काफ़ी हलचल रही। लेकिन सबसे ज्यादा हलचल रही राष्ट्रपति के दौरों से। पिछले राष्ट्रपति बा० राजेन्द्रप्रसाद ने दौरों की जो प्रथा चलाई थी, उसे पं० जवाहरलाल ने और भी अधिक उत्साह से आगे बढ़ाया। उन्होंने पंजाब, दिल्ली, बम्बई, सिंध, संयुक्तप्रान्त, बंगाल, उत्कल, तामिलनाड़, आंध्र और मध्यप्रान्त में दौरा किया। लाखों आदमियों ने उनका संदेश सुना। सिंध और पंजाब में उन्होंने २५२ और तामिलनाड में २०३ सभाओं में भाषण दिये। अनुमानतः इन तीनों प्रान्तों में ४० लाख व्यक्तियों ने उनका संदेश सुना। बड़े-बड़े शहर से छोटे-छोटे गाँव तक उन्होंने राष्ट्रीयता का संदेश पहुँचाया। इन दौरों में वह प्राय:

सभी स्थानों पर सभी श्रेणियों के प्रतिनिधियों से मिले। किसान और मज़दूर, म्यूनिसिपल कमेटियों के सदस्य, विद्यार्थी, वकील और दूकानदारों आदि से मिले और सभी को उन्होंने कांग्रेस में सम्मिलित होने की सलाह दी।

नई विचार-धारा

राष्ट्रपति के भाषणों और लेखों ने समस्त भारत में एक नई विचार-धारा को प्रोत्साहन दिया। उन्होंने बताया कि भारत शेष संसार से जुदा नहीं है। जो शक्तियाँ शेष संसार को चला रही हैं, वही भारत में काम कर रही हैं। युद्ध, साम्राज्यवाद और पूंजीवाद की प्रतिगामी शक्तियां अबीसीनिया, स्पेन, चीन और भारत में काम कर रही हैं। इनके विरुद्ध जनतंत्र, मजदूर और किसानों के संगठन तथा समाजवाद की शक्तियाँ भी समस्त देशों में संघर्ष कर रही हैं। भारत का आन्दोलन भी इसी संघर्ष का एक भाग है। राष्ट्रपति ने अपने भाषणों में आर्थिक समस्याओं पर ज़ोर देते हुए समाजवादी विचार-धारा को बहुत उत्तेजना दी। उन्होंने बताया कि साम्प्रदायिक समस्या बहुत तुच्छ समस्या है। मुख्य समस्या आर्थिक है, उसका हल कर लेने पर छोटी-छोटी समस्यायें स्वयं हल हो जायेंगी। एक जाति की शक्ति सरकारी नौकरियों से नहीं, लेकिन इससे पहचानी जाती है कि देश के मुक्ति-यज्ञ में उसका कितना बड़ा भाग है। देश में दो ही दल हैं, एक ओर काँग्रेस है और दूसरी ओर सरकार। सभी काँग्रेस-विरोधी दल, चाहे वे कितना ही राष्ट्रीय नाम क्यों न रक्खें, देश के राष्ट्रीय संग्राम में रुकावट डालते हैं, फलतः वे सरकार के साथ हैं। राष्ट्रपति के इन संदेशों का सचमुच बहुत असर हुआ। साधारण शिक्षित जनता इस नई विचार-धारा को अपनाने लगी, अंग्रेज़ी और देशी भाषाओं के पत्र इन विषयों पर खूब चर्चा करने लगे। इसी प्रसंग में यह कह देना भी उचित होगा कि राष्ट्रपति समाजवादी दृष्टि से उग्र विचार रखते हुए भी कभी उन समाजवादियों का साथ न दे सके, जो मजदूर और किसानों के संगठन के नाम पर काँग्रेस का विरोध करने और तिरंगे झण्डे के बजाय लाल झण्डे को तरजीह देने लगे थे। राष्ट्रपति ने कुछ काँग्रेसियों में बढ़ती हुई इस प्रवृत्ति का तीव्र विरोध किया और ऐसे लोगों पर अनुशासन की कार्रवाई की धमकी भी दी। उन्होंने लाल झण्डे के प्रति सम्मान प्रकट करते हुए भी बताया कि उसका अपना एक स्थान है, लेकिन वह काँग्रेसी झण्डे का, जो समूचे देश का झण्डा है और जिसके नीचे सारा देश इकट्ठा होकर राष्ट्रीय मुक्ति का प्रयत्न कर रहा है, स्थान नहीं ले सकता। उनकी इस सामयिक चेतावनी ने काँग्रेस के दक्षिण और वाम पक्षों में बढ़ती हुई विरोधाग्नि को काफ़ी शान्त कर दिया। उन्हें इन दौरों में ३८८४०) रु० की थैलियाँ मिलीं।

अनुशासन की प्रवृत्ति

राष्ट्रपति ने काँग्रेस में अनुशासन की ओर भी काफ़ी ध्यान दिया। उनका विचार था और वह ठीक था कि अब काँग्रेस इतनी महत्वपूर्ण और उत्तरदायी संस्था हो गई है कि उसके सदस्यों का नीतिविरुद्ध व्यवहार उसे काफ़ी नुकसान पहुँचा सकता है। फिर प्रान्तीय असेम्बलियों के चुनाव सिर पर आ रहे थे। इनमें व्यक्तियों के स्वार्थों के परस्पर टकराने और काँग्रेस-कार्य में अव्यवस्था की, जिसका परिणाम चुनाव में काँग्रेसी उम्मीदवारों की हार होता, बहुत अधिक संभावना थी। इसलिए संगठन, काँग्रेस के प्रति अद्भुत निष्ठा, आज्ञापालकता और अनुशासन आदि गुणों की आवश्यकता राष्ट्रपति ने बड़े ज़ोरों से अनुभव की। इन्हीं दिनों श्री राजगोपालाचार्य ने इस बिना पर वर्किंग कमेटी से इस्तीफ़ा दे दिया कि डॉ० राजन ने, जो काँग्रेसी सदस्य थे, त्रिचनापली म्यूनिसिपल कमेटी में सभापति-पद के लिए ग़ैरकाँग्रेसी उम्मीदवार को वोट देकर अनुशासन भंग किया है। डॉ० राजन केन्द्रीय असेम्बली में भी कांग्रेसी सदस्य थे। इस घटना ने अनुशासन की और भी ज्यादा आवश्यक़ता सिद्ध की। वर्किंग कमेटी ने अगस्त में डॉ० राजन के व्यवहार पर खेद-प्रकाश किया। दिसम्बर की बैठक में वर्किंग कमेटी ने एक लम्बे प्रस्ताव द्वारा निश्चय किया कि वर्किंग कमेटी उन काँग्रेस कमेटियों और काँग्रेसियों के विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई करेगी, जो काँग्रेस के कार्यक्रम और निश्चयों के विरुद्ध आचरण या प्रचार करेंगे, उच्च अधिकारियों और नियत किये मध्यस्थ के निर्णय को न मानेंगे, काँग्रेसी पैसे के दुरुपयोग के अपराधी सिद्ध होंगे, काँग्रेस की प्रतिष्ठा को कम करनेवाला कार्य करेंगे और सदस्यों की भर्त्ती में धोखेबाजी से काम लेंगे। यह दण्ड काँग्रेस कमेटियों के भंग या काँग्रेसियों को पदाधिकार और सदस्यता से च्युत करने या चुनाव में भाग लेने की इजाज़त न देने के रूपों में दिया जा सकता है। प्रान्तीय कांग्रेस कार्यकारिणी समितियों को भी यह अधिकार दिया गया। जब वर्किंग कमेटी की बैठक का समय न हो, तब राष्ट्रपति को अनुशासन की कार्रवाई करने का अधिकार दिया गया। अनेक अवसरों पर यह कठोर कार्रवाई करनी भी पड़ी, लेकिन इसका फल बहुत सन्तोषजनक रहा। अनुशासन के भय ने कांग्रेस को विशृंखल और अव्यवस्थित होने से बचा लिया। श्री नरीमान और डॉ० खरे जैसे प्रभावशाली व्यक्ति भी इसके वज्र से न बच सके। बंगाल के प्रमुख काँग्रेसी नेता श्री नलिनीरंजन सरकार ने जब अस्थायी मन्त्रिमण्डल की सदस्यता स्वीकार करली, तब उनसे भी कांग्रेस-सदस्य होने का अधिकार छीन लिया गया।

चुनाव का घोषणापत्र

१९३६ के दिसम्बर में ही फैजपुर-काँग्रेस हुई थी, लेकिन उसकी चर्चा करने

से पूर्व आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी की बम्बई की बैठक की चर्चा कर लेना ठीक होगा। लखनऊ-कांग्रेस के निश्चय के अनुसार चुनाव के घोषणापत्र पर अ० भा० कांग्रेस कमेटी की स्वीकृति लेना आवश्यक था। इसलिए अगस्त में बम्बई में इसकी बैठक बुलाई गई। इसमें डॉ० अन्सारी और श्री अब्बास तैयबजी के देहावसान पर समवेदना-प्रकाश के बाद ख़ान अब्दुलगफ़ारख़ाँ पर, जो १ अगस्त को रिहा कर दिये गये थे, पंजाब व सीमान्त में न जाने की पाबन्दी तथा सीमाप्रान्तीय कांग्रेस पार्लमेण्टरी बोर्ड के कार्य-कर्त्ताओं की गिरफ्तारी की निन्दा की गई। इसके बाद श्री राजेन्द्र बाबू ने चुनाव-घोषणापत्र पेश किया। अनेक संशोधनों में से दो स्वीकृत कर लिये गए। स्वीकृत घोषणापत्र निम्नलिखित है :—

"पचास साल से अधिक समय से कांग्रेस भारत की आज़ादी के लिए कोशिश कर रही है। जब-जब इसकी ताकत बढ़ी और यह भारतीय जनता की ब्रिटिश साम्राज्य द्वारा होनेवाले शोषण को अन्त करने की इच्छा और भावना को प्रकट करने लगी, तब-तब इसे सरकार से संघर्ष में आना पड़ा है। पिछले १६ सालों में कांग्रेस ने मुल्क की आज़ादी के लिए कई बड़े आन्दोलन चलाये हैं। शान्त सांमूहिक कार्रवाई तथा जनता के संयममय बलिदान व कष्टसहन द्वारा आज़ादी हासिल करने की कोशिश की है। कांग्रेस के नेतृत्व को जनता ने बहुत उत्साह के साथ स्वीकृत किया और इस प्रकार स्वराज्य के जन्मसिद्ध अधिकार को पुष्ट किया। आज़ादी की वह लड़ाई आज भी जारी है और जबतक भारत आज़ाद नहीं हो जाता, तबतक जारी रहेगी।

"पिछले सालों भारत और संसार में आर्थिक संकट रहा है। इस कारण भारत की सभी श्रेणियों की माली हालत लगातार गिर रही है। ग़रीबी की सताई जनता आज लगातार विनाश की ओर जा रही है। इसका तुरन्त क्रान्तिकारी हल होना चाहिए। हमारे किसानों व मज़दूरों के भाग्य में ग़रीबी और बेकारी सदा से रही है, लेकिन आज तो यह अन्य वर्गों, कारीगरों, व्यापारियों, छोटे-छोटे व्यापारियों, मध्यम श्रेणियों और बुद्धिजीवियों तक भी फैल गई है और उन्हें तबाह कर रही है। आज़ादी ही वस्तुतः हमारी सब समस्याओं को हल कर सकेगी। लेकिन दूसरी ओर सरकार ने उन बन्धनों को, जिनसे वह भारत को जकड़े हुए है, और अधिक मज़बूत करने तथा भारत के शोषण को स्थायी बनाने के विचार से गवर्नमेण्ट आफ इण्डिया एक्ट बनाया है। भारत इस लादे गये विधान को स्वीकार नहीं करता, और न वह किसी ऐसे विधान को स्वीकार करेगा, जो किसी बाहरी शक्ति द्वारा लादा जायगा और जो भारत के स्वभाग्यनिर्णय के सिद्धान्त को नहीं मानता। भारत की पूर्ण स्वतन्त्रता के आधार पर राष्ट्रीय पंचायत (कांस्टिट्यूएण्ट असेम्बली) द्वारा तैयार किये गये विधान को ही भारत स्वीकार करेगा।

"कांग्रेस धारासभाओं से बाहर के रचनात्मक कार्य और जनता के संगठन में अब भी पहले की भाँति विश्वास रखती है, तथापि विदेशी प्रभुत्व और शोषण को मजबूत बनाने वाली प्रतिगामी शक्तियों को रोकने के लिए आगामी निर्वाचन में प्रान्तीय धारा-सभाओं का चुनाव लड़ने का निश्चय किया गया है। मगर कांग्रेसियों को धारासभा में भेजने का उद्देश्य विधान के साथ किसी तरह से सहयोग करना नहीं है, बल्कि उससे लड़ना है और उसका अंत करना है। यथासंभव कांग्रेस का उद्देश्य विधान को रद करने की कांग्रेस-नीति को कार्य में परिणत करना, ब्रिटिश साम्राज्यवाद और भारत पर उसके शासन का मुकाबिला करना और भारतीय जनता का शोषण रोकना है।"

असेम्बलियों के सदस्यों को भी कुछ सूचनायें इस घोषणा-पत्र में दी गई थीं। उनके अनुसार कांग्रेसी प्रतिनिधि धारा-सभाओं में जाकर नये विधान में वर्णित वाइसराय व गवर्नरों के विशेषाधिकारों और संरक्षणों का प्रतिरोध करेंगे, हरेक सम्भव उपाय से भिन्न-भिन्न दमनकारी कानूनों व आर्डिनेंसों को समाप्त कराने की चेष्टा करेंगे, नागरिक स्वाधीनता की स्थापना की कोशिश करेंगे, तथा राजनैतिक कैदियों व नजरबन्दों को छुड़वाने की कोशिश करेंगे।

इन धारा-सभाओं से आजादी हासिल नहीं होनेवाली है, फिर भी कांग्रेस ने इस आशय से अपना कार्यक्रम पेश किया, जिससे मालूम हो जाय कि शक्ति हाथ में आने पर कांग्रेस क्या करना चाहती है। करांची वाले प्रस्ताव के अनुसार कांग्रेस किसानों-मजदूरों की आर्थिक व सामाजिक अवस्था ऊँची करेगी, किसानों की क़र्ज़दारी, मजदूरों की बेकारी व बीमारी का बीमा, छोटे या बड़े धन्धे को प्रोत्साहन और हरिजनों व स्त्रियों के नागरिकता के मौलिक अधिकारों की रक्षा पर विशेष ध्यान देगी। विवादास्पद साम्प्रदायिक निर्णय पर भी इस घोषणा में अपनी नीति फिर से स्पष्ट की गई थी : "साम्प्रदायिक निर्णय पर बहुत-सा विवाद उठ खड़ा हुआ है और कांग्रेस के रवैये को समझने में प्रायः गलती होती रहती है। नये शासन-विधान के रद होते ही उसका एक हिस्सा साम्प्रदायिक निर्णय भी स्वयं रद हो जायगा। नवीन शासन-विधान के अलावा भी साम्प्रदायिक निर्णय कांग्रेस को पूर्णतया अस्वीकार्य है, क्योंकि यह स्वाधीनता और प्रजातंत्र की भावनाओं को नष्ट कर देता है। आर्थिक और सामाजिक प्रश्नों के मार्ग में रोड़ा अटकाता है, राष्ट्रीय प्रगति में बाधक है और भारतीय एकता को जड़ से उखाड़ देता है।" इसके द्वारा सरकार के अलावा किसी भी दल को लाभ नहीं पहुँचता, "इसलिए इसके बारे में कांग्रेस का रवैया तटस्थता या उदासीनता का नहीं है। वह तो इसे नापसन्द करती है और ख़त्म करना चाहती है। कांग्रेस ने हमेशा प्रमुख जातियों के पारस्परिक सहयोग और सद्भावना पर जोर दिया

। इसीसे यह समस्या हल होगी। ब्रिटिश सरकार की सहायता से दूसरे दल के
ल्य पर अपना स्वार्थ सिद्ध करना साम्प्रदायिक विद्वेष को और भी बढ़ा देगा और
रकार इसके द्वारा दोनों जातियों को लूटना चाहेगी। भारत के राष्ट्रीय सम्मान
' यह सर्वथा प्रतिकूल है और स्वाधीनता-संग्राम के साथ यह मेल भी नहीं खाता।
सलिए कांग्रेस की सम्मति में इस अवस्था के प्रतिकार का तरीका यह है कि
वाधीनता-संग्राम को और ज्यादा बढ़ाया जाय और इस बीच में सर्व-सम्मत सम-
ौते का उपाय भी किया जाय। एक सम्प्रदाय से दूसरे सम्प्रदाय के विरोध के
ावजूद इस निश्चय को बदलवाने के प्रयत्नों से शायद यह निर्णय चिरस्थायी हो
ायगा और सरकार को भी दोनों के झगड़े का लाभ उठाकर इसे लागू करने में
ासानी हो जायगी।" यह भी कहा गया था कि साम्प्रदायिक समस्या बड़ी अवश्य
ै, लेकिन ग़रीबी और बढ़ती हुई बेकारी उससे भी अधिक महत्त्वपूर्ण है। पदग्रहण
े प्रश्न को इस घोषणा में भी चुनावों के बाद के लिए स्थगित कर दिया गया था।
इस घोषणपत्र के साथ कराची का मौलिक अधिकारों वाला प्रस्ताव और लखनऊ का
किसानों सम्बन्धी प्रस्ताव भी जोड़ दिये गये थे।

यह चुनाव-घोषणापत्र प्रकाशित होने के साथ ही सारे देश में चुनावों की चर्चा
ल पड़ी। नवम्बर में पार्लमेण्टरी कमेटी ने चुनाव के लिए धन की अपील प्रकाशित
ी। सारे देश में चुनाव का काम ज़ोर-शोर से शुरू होता देखकर काँग्रेस-विरोधियों ने
ी विभिन्न राष्ट्रीय और प्रगतिशील नाम रखकर काँग्रेस का मुकाबिला करने का
ंश्चय किया। कांग्रेस के सिद्धान्तों का विरोध आसान न था, इसलिए कुछ लोगों
ा काँग्रेस पर कीचड़ उछालने के ख़याल से तिलक-स्वराज्य-फण्ड के दुरुपयोग की
र्चा शुरू की। इसपर वर्किंग कमेटी ने २९-३० जून के एक प्रस्ताव द्वारा इस
ाकार के निराधार अभियोगों के लिए अदालत की शरण लेने और दफ्तर का हिसाब
्रेक को देखने की व्यवस्था करने का निश्चय किया। इसी प्रस्ताव के अनुसार
ाँग्रेस के खजांची सेठ जमनालाल बजाज ने नागपुर के एक मराठी पत्र व दिल्ली
े एक प्रकाशक पर दावा भी दायर कर दिया। यद्यपि सरकार ने चुनाव के मामलों
से तटस्थ रहने का वचन दिया था, तथापि अनेक स्थानों से ऐसी खबरें मिलीं कि
सरकार चुनाव में हस्तक्षप कर रही है। कोर्ट आफ़ वार्ड्स यू० पी० ने सब ज़िला-
अफ़सरों को हिदायत दी थी कि संरक्षित जमींदारों का हित काँग्रेसी-विरोधी के सम-
र्थन और कांग्रेसी उम्मीदवार को बुरी हार देने में है।

: २ :

देश में नये युग की शुरुआत

फ़ैज़पुर-कांग्रेस

पं० जवाहरलाल नेहरू को फ़ैज़पुर-कांग्रेस का सभापति चुनकर फिर एक प्रथा को तोड़ा गया। कांग्रेस के इतिहास में अबतक एक बार भी ऐसा मौक़ा नहीं आया था कि एक सभापति को दूसरे वर्ष भी सभापति चुना गया हो। लेकिन पं० जवाहरलाल को फिर भी समस्त देश ने सभापतित्व देने में संकोच नहीं किया। चुनाव सिर पर थे, अत्यन्त तेजस्वी, शक्ति और साहसयुक्त नेतृत्व के बिना काम न चल सकता था। फ़ैजपुर-कांग्रेस की दूसरी विशेषता यह थी कि यह किसी बड़े शहर में न होकर रेलवे लाइन से दूर एक छोटे-से गाँव में हो रही थी। यहाँ शहर की सुविधायें न थीं, लेकिन श्री शंकरराव देव की अध्यक्षता में कांग्रेस की स्वागत-समिति ने इसकी कोई चिन्ता न की। कवि रवीन्द्र की प्रसिद्ध संस्था शान्ति-निकेतन के कलाकार श्री नन्दलाल बोस का सहयोग भी तिलकनगर व प्रदर्शिनी के निर्माण के लिए मिल गया। गाँधीजी की इच्छानुसार इतने बड़े नगर को बनाने के लिए न कोई विदेशी सामान मँगाया गया और न कोई ऐसा सामान जो गाँवों में न मिल सकता हो फिर भी तिलकनगर बहुत शानदार बन गया। प्रदर्शिनी का काम भी चरखा-संघ व ग्रामोद्योग-संघ के सुपुर्द था, जिसमें घरेलू धंधों की रचना और निर्माण के तरीक़े दिखाये गये थे। गाँव में कांग्रेस करने से जहाँ हज़ारों गाँववालों को आर्थिक सहायता मिली, वहाँ कांग्रेस का सन्देश गाँवों के किसानों तक फैलने में भी बहुत मदद मिली। राष्ट्रपति का जलूस भी बैलों के रथ पर निकाला गया।

राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल ने अपने भाषण में प्रायः वही विचार दुहराये जो लखनऊ में प्रकट किये थे। साम्राज्यवाद और प्रजातन्त्रवाद के संसार के अनेक भागों में होनेवाले संघर्ष का परिचय देते हुए दुनिया की भिन्न-भिन्न घटनाओं में राष्ट्रपति ने एक सम्बन्ध का प्रतिपादन किया। दुनिया में फैली हुई बुराइयों और बीमारियों का सर्वोत्कृष्ट उपाय समाजवादी सिद्धान्तों पर समाज का संगठन है, यह मानते हुए भी राष्ट्रपति ने कहा कि आज हमारी लड़ाई का ध्येय समाजवाद नहीं है। हमारा उद्देश्य पूर्ण प्रजातन्त्र स्थापित करना है, यह और बात है कि घटनाओं

का स्वाभाविक विकास हमें समाजवाद की ओर ले जाय। नये विधान को रद करना, कांस्टिट्यूएण्ट असेम्बली की मांग, देशी रियासतों का प्रतिगामी रुख आदि पर विचार प्रकट करने के बाद पं० जवाहरलाल ने नई धारा-सभाओं में पदग्रहण के विरुद्ध अपनी व्यक्तिगत सम्मति को स्पष्ट शब्दों में दुहराया। लेकिन फ़ैजपुर-कांग्रेस ने इस प्रश्न पर गरमागरम बहस के बाद इसे फिर से चुनावों के बाद तक के लिए टाल दिया। इसी प्रस्ताव में नये विधान को पूरी तौर पर रद करने, राष्ट्रीय पंचायत की मांग करने, इसी उद्देश्य से कांग्रेस का संगठन करने, चुनाव-घोषणा-पत्र के समर्थन और चुनाव-आन्दोलन में जनता के सहयोग की अपील आदि की भी चर्चा थी। पदग्रहण के प्रश्न को टालने के विरुद्ध समाजवादियों ने काफ़ी कोशिश की, लेकिन उन्हें सफलता न मिली। शेष २१ प्रस्तावों में डा० अंसारी, श्री अब्बास तैयबजी, डा० वी. सुब्रह्मण्यम्, पं० प्यारेमोहन दत्तात्रेय आदि के देहावसान पर शोक, विश्व-शान्ति-परिषद् से सहयोग, बरमा के पृथक् होने पर कांग्रेस-विधान में परिवर्तन, स्पेन के गृहयुद्ध में अन्य राष्ट्रों की सेनाओं के आगे न आने की निन्दा और स्पेन की जनता से सहानुभूति, पिछड़े प्रदेशों व चीफ़ कमिश्नरों के प्रान्तों में प्रतिनिधिशासन, दुर्भिक्ष, बाढ़, तूफ़ान आदि दैवी विपत्ति-ग्रस्तों से सहानुभूति, ब्रिटिश साम्राज्यवाद के हित की दृष्टि से किये गये किसी युद्ध में भाग न लेने का निश्चय, नज़रबन्दों की रिहाई की प्रार्थना, उनके साथ किये जानेवाले दुर्व्यवहार और अण्डमान के निर्वासन को फिर से जारी करने की निन्दा, प्रवासी भारतीयों से सहानुभूति, बंगाल व बिहार में कोयले की खानों की दुर्घटनाओं के कारणों की जांच और बंगाल नागपुर रेलवे के हड़ताली मज़दूरों से सहानुभूति के प्रस्ताव पास किये गये। कुछ मुख्य प्रस्ताव इस आशय के थे :—नये विधान का विरोध करने के लिए अप्रैल १९३७ को, जिस दिन से नया विधान शुरू होना था, देशव्यापी हड़ताल की जाय। ब्रिटिश नरेश के व्यक्तित्व का अपमान न करते हुए भी उसके दरबार या अन्य किसी समारोह में भाग न लेने का निश्चय किया गया, क्योंकि कांग्रेस साम्राज्यवादी नियंत्रण को नष्ट करने और पूर्णस्वराज्य प्राप्त करने की प्रतिज्ञा से बँधी हुई है। एक प्रस्ताव में मतदाताओं से कांग्रेसी उम्मीदवारों को ही असेम्बलियों के चुनावों में मत देने का अनुरोध किया गया। ब्रिटिश भारत व रियासतों में अबतक भी लगातार होनेवाले नागरिक अधिकारों के अपहरण की तीव्र निन्दा की गई और कहा गया कि अबतक भी सैकड़ों कांग्रेस-कमेटियाँ, मज़दूर-किसान-संस्थायें ग़ैरक़ानूनी हैं, दमनकारी क़ानून जारी हैं। सी-कस्टम्स एक्ट के अनुसार बहुत-से अखबारों व किताबों पर पाबन्दी लगी हुई है, बिना मुकदमे के हज़ारों लोग नज़रबन्द किये गये हैं, सीमाप्रान्त व बंगाल में नागरिकों की स्वतन्त्रता पर बड़े-

बड़े बंधन लगाये गये हैं। एक महत्वपूर्ण प्रस्ताव द्वारा प्रान्तीय असेम्बलियों के चुनाव के बाद एक कन्वेंशन बुलानें का निश्चय किया गया, जिसका उद्देश्य राष्ट्रीय पंचायत की माँग करना व संघ-शासन को रोकने तथा चुनाव-घोषणापत्र में की गई प्रतिज्ञाओं को अमल में लाने के उपायों पर विचार करना रखा गया। कांग्रेस का जनता से संपर्क बढ़ाने के उद्देश्य से विधान में तब्दीली करने पर विचार करने के लिए एक कमेटी क़ायम की गई। किसानों की समस्या को देश की सबसे महत्व-पूर्ण समस्या मानते हुए इस प्रश्न के व्यापक अध्ययन के बाद एक देशव्यापी योजना बनाने की आवश्यकता अनुभव की गई और तबतक के लिए लगान-मालगुजारी में कमी, जिन ज़मीनों से बचत नहीं होती उनपर लगान-मालगुजारी की माफ़ी, खेती की आमदनी पर इन्कमटैक्स की दर से कर लगाने, आबियाना कम करने, बेगार और नाजायज करों का खातमा, क़र्जदारी से किसानों को छुड़ाना, बकाया धीरे-धीरे खत्म करना आदि उपायों पर ज़ोर दिया गया।

चुनाव-संग्राम

फ़ैज़पुर-काँग्रेस समाप्त होते ही बड़े-से-बड़े नेता से लेकर छोटे-छोटे स्वयं-सेवकों तक सभी कार्यकर्ता प्रान्तीय असेम्बलियों के चुनाव में जी-जान से जुट पड़े। वर्किंग कमेटी के सभी सदस्य प्रान्त-प्रान्त का दौरा करने लगे। राष्ट्रपति के तूफ़ानी दौरों ने तो सारे देश में तहलका मचा दिया। सप्ताह में १५०० मील की तेज़ चाल से उन्होंने साढ़े तीन मास तक दौरा किया। कभी-कभी तो उन्हें मोटर में लगातार १३-१४ घण्टे तक भी बैठना पड़ा। एक दिन में ६-६ सभाओं में और बहुत बार तो १०-१२ सभाओं तक में उन्हें बोलना पड़ा। दिन-रात, सप्ताह और महीने राष्ट्रपति ने एक कर दिये। न उन्हें खाने की चिन्ता थी, न सोने की। सारे देश में उनके इन तूफ़ानी दौरों से तहलका मच गया। उन्होंने कम-से-कम एक करोड़ आदमियों को काँग्रेस का सन्देश सुनाया। अन्य नेताओं नें भी काँग्रेस के प्रचार में ग़ज़ब कर दिया। सारे देश में काँग्रेस-प्रचार की एक बाढ़-सी आगई। इस विशाल देश का गाँव-गाँव छान डाला गया। चुनाव का परिणाम तो पीछे निकला, लेकिन इन दौरों से, भाषणों, लेखों, हैण्डबिलों और अखबारों से, साधारण जनता को भारत की राज-नैतिक समस्याओं की अमूल्य शिक्षा मिली। बड़े-बड़े ज़मींदार, पूंजीपति और प्रभाव-शाली व्यक्ति काँग्रेस के मुक़ाबिले में खड़े हुए, लेकिन जनता उनसे पूछती कि जब काँग्रेसियों पर लाठियाँ बरस रही थीं, उनपर गोलियाँ चलाई जा रही थीं, उन्हें जेलों में ठूँसा जारहा था, तब तुम क्या कर रहे थे ? तुमने सरकारी कुर्सियों पर बैठकर हमारे लिए क्या कर लिया ? काँग्रेसी उम्मीदवार की योग्यता-अयोग्यता का

सवाल ही न था, वहाँ तो सवाल था काँग्रेस का। श्रीमती नायडू ने कहा था कि काँग्रेस एक बाँस को भी खड़ा करदे, तो उसे ही वोट मिलेगा। सचमुच चुनाव में यही हालत थी। विरोधी उम्मीदवार जब रुपयों की वर्षा कर रहे थे, तब मतदाता पैदल जा-जाकर या बैलगाड़ियों में जाकर गाँधी और जवाहरलाल के नाम पर काँग्रेसी उम्मीदवार को वोट दे रहे थे। राष्ट्रपति ने मतदाताओं को यही संदेश दिया कि वोट देना तुम्हारा धर्म है, तुम स्वयं जाओ, वोट दे आओ; तुम्हें बुलाने के लिए न लारी आयगी, न स्वयंसेवक। ग्रामीणों पर ज़मींदारों ने कितने ही अत्याचार किये, कितनी धमकियाँ और प्रलोभन दिये, लेकिन वे अपने हित और अहित को समझ चुके थे। काँग्रेस के मार्ग में सरकार की सब रुकावटें भी बेकार गई। काँग्रेसी उम्मीदवार हज़ारों वोटों से जीते। बहुत-से प्रतिष्ठित विरोधी उम्मीदवार अपनी जमानत तक खो बैठे। युक्तप्रान्तीय कौंसिल के भूतपूर्व अध्यक्ष सर सीताराम एक स्थान पर ७००० वोटों से हारे और दूसरी जगह जमानत भी खो बैठे। मिदनापुर में जहाँ सरकार के सभी दमन-क़ानून ज़ोरों से काम कर रहे थे, कांग्रेसी उम्मीदवार ६४९३२ वोटों से जीता। श्री सी० वाई० चिन्तामणि और राजा बोबिली भी हार गये। जस्टिस पार्टी के एक और नेता १५००० वोटों से हारे। कुल ११ प्रान्तों में चुनाव हुआ। बम्बई, युक्तप्रान्त, मद्रास, मध्यप्रान्त, उड़ीसा और बिहार में तो काँग्रेस का स्थायी बहुमत रहा। तीन प्रान्तों—सीमाप्रान्त, आसाम, और बंगाल म सबसे बड़ी पार्टी काँग्रेस की ही रही। पंजाब और सिंध में काँग्रेस अल्पसंख्या में रही। सारे देश में विजय का परिणाम सुनकर हर्ष का पारावार न रहा। सरकार और ब्रिटेन के राजनीतिज्ञ दाँतों-तले अंगुली दबाकर कहने लगे कि हमने तो समझा था कि लार्ड विलिंगडन के आर्डिनेन्स-राज ने काँग्रेस को तबाह कर दिया, लेकिन वह तो पहले से भी अधिक प्रभाव, बल और प्रतिष्ठा के साथ आज हमारा मुक़ाबिला करने के लिये उपस्थित है!

पदग्रहण की समस्या

चुनाव भी समाप्त होचुके। अब पदग्रहण के प्रश्न को, जो डेढ़-दो साल से टलता आरहा था, और टाला नहीं जासकता था। १ अप्रैल से नया शासन-विधान शुरू होजाना था। उससे पहले इस विषय पर निश्चय कर लेना ज़रूरी था। काँग्रेस में इस प्रश्न पर दो मत थे और दोनों बहुत मज़बूत थे। सारे समाजवादी पदग्रहण के विरोधी थे। डा० पट्टाभि सीतारामैया, सरदार शार्दूलसिह, श्री पुरुषोत्तमदास टण्डन आदि भी इस प्रश्न पर समाजवादियों के साथ थे; और सबसे बड़ी बात यह कि स्वयं राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल पदग्रहण के कट्टर विरोधी थे। इन लोगों का कहना था कि पदग्रहण से काँग्रेस की वह क्रान्तिकारी मनोवृत्ति नष्ट होजायगी, जिसे उसनें

पिछले १६-१७ सालों से गाँधीजी के नेतृत्व में त्याग, तपस्या और बलिदान द्वारा उत्पन्न किया है। हम पदों पर रहकर जनता का वास्तविक हित भी नहीं कर सकेंगे। एक तो बहुत से संरक्षण रख लिये गये हैं, और फिर गवर्नर मंत्रियों के किसी भी निश्चय को अपने विशेषाधिकारों द्वारा रद कर सकता है। दूसरी ओर पदों के समर्थक दल के नेता श्री सत्यमूर्ति थे। समाजवादियों का कहना था कि 'कांग्रेस हाईकमाण्ड' (यह शब्द इन्हीं दिनों से वर्किंग-कमेटी के लिए बहुत अधिक प्रयुक्त होने लगा है) भी पदग्रहण का समर्थक था। पदग्रहण के समर्थक कहते थे कि पदग्रहण से ही क्रान्तिकारी मनोवृत्ति नष्ट नहीं होजायगी। नये विधान को और ख़ासकर संघ-विधान को कुचलने के लिए सरकार के सभी सामरिक मोर्चों पर अधिकार करके काम में रुकावट (डेडलाक) पैदा करना और विधान की पोल खोल देना अधिक आवश्यक है। दोनों दल अपनी पूरी ताक़त के साथ दिल्ली में होनेवाली अ० भा० काँग्रेस कमेटी में उपस्थित हुए। यह भय किया जाने लगा था कि कहीं इसी प्रश्न पर काँग्रेस में दलबन्दी न होजाय। महात्मा गाँधी यद्यपि काँग्रेस से बम्बई से ही अलग होगये थे, लेकिन नेता सदा उनसे परामर्श करके विकट समस्याओं को सुलझाया करते थे। इस प्रश्न पर भी नेताओं ने इस राष्ट्रपितामह से परामर्श माँगा। उन्होंने एक प्रस्ताव बनाया। उस समय तो नहीं, लेकिन पीछे जाकर यह अनुभव हुआ कि इस प्रस्ताव का गंभीर अर्थ क्या था और इसमें कितनी गज़ब की दूरदर्शिता और राजनीतिज्ञता भरी हुई थी। वर्किंग-कमेटी ने उसे स्वीकार कर लिया और अ० भा० काँग्रेस कमेटी ने भी १० घण्टे की गरमागरम बहस के बाद उसे स्वीकार कर लिया। अनेक संशोधन पेश हुए और सभी गिर गये। इस प्रस्ताव का आशय यह था—राष्ट्र ने काँग्रेस का चुनाव में साथ देकर यह साबित कर दिया है कि वह नये विधान को नष्ट करने की काँग्रेस की नीति का पूर्ण समर्थक है। यदि सरकार तीव्र लोकमत को ठुकराकर भी इस विधान को भारत पर लादे, तो असेम्बलियों के सदस्यों का कर्तव्य है कि वे काँग्रेसी नीति के अनुसार असेम्बलियों के अन्दर और बाहर इसका मुकाबिला और विध्वंस करने की कोशिश करें। अ० भा० काँग्रेस कमेटी असेम्बली की काँग्रेस-पार्टियों को, जहाँ वे बहुमत में हैं, पदग्रहण की आज्ञा देती है, बशर्ते कि काँग्रेस-पार्टी के नेता को गवर्नर यह विश्वास दिलादे कि विधान के अन्तर्गत कार्य करते हुए मंत्रियों के फ़ैसलों को गवर्नर अपने विशेषाधिकार से नहीं ठुकरायेगा। पदग्रहण के समर्थकों ने इस शर्त को स्वीकार कर लिया, लेकिन विरोधी अपने मत पर दृढ़ रहे। आख़िर यह प्रस्ताव ७० के विरुद्ध १२७ मतों से पास होगया। यह प्रस्ताव पेश करते हुए बा० राजेन्द्रप्रसाद ने कहा था कि काँग्रेस महज़ इसीलिए पदग्रहण करती है, ताकि पूर्ण स्वराज्य-प्राप्ति की लड़ाई के लिए देश को संगठित करने में उससे पूरी सहायता ली जासके।

कनवेन्शन

अ० भा० कॉं० कमेटी के अधिवेशन के बाद दो दिन तक दिल्ली में ही कनवेंशन किया गया। इसमें अ० भा० कांग्रेस कमेटी के २१५ सदस्य तथा केन्द्रीय और प्रान्तीय असेम्बलियों के ५०० कांग्रेसी सदस्य सम्मिलित हुए थे। इसमें राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल ने निम्नलिखित प्रतिज्ञा-पत्र पढ़ा और सबने उसे दोहराया:—

"इस आल इण्डिया कन्वेशन के मेम्बर की हैसियत से, जिसे नेशनल कांग्रेस ने बुलाया है, मैं अहद और प्रतिज्ञा करता हूँ कि हिन्दुस्तान की सेवा करूँगा और असेम्बली या कौंसिल के अन्दर और बाहर हिन्दुस्तान की आज़ादी (पूर्ण स्वराज्य) हासिल करने और उसकी ग़रीबी व शोषण को मिटाने की पूरी कोशिश करूँगा। मैं यह भी वचन देता हूँ कि कांग्रेस का अनुशासन व हुक्म मानते हुए कांग्रेस के आदर्श व मकसदों को कामयाब बनाना हमेशा मेरा काम रहेगा, ताकि हिन्दुस्तान पूरी तौर पर आज़ाद हो और उसकी जनता उन भारी मुसीबतों के बोझ से छुटकारा पाये, जिनके तले वह दबी जारही है।"

इसकी एक विशेषता यह थी कि हिन्दुस्तानी के उक्त शब्दों में ही सबने प्रतिज्ञा कर हिन्दुस्तानी के राष्ट्रभाषा के अधिकार को स्वीकार किया। जिन सदस्यों को हिन्दुस्तानी का ज्ञान न था, उन्हें अंग्रेजी में इसका अर्थ सुना दिया गया। इसके बाद कन्वेंशन ने नये शासन-विधान की अस्वीकृति, राष्ट्रीय पंचायत की माँग और असेम्बलियों में शासन-विधान को रद करने के प्रस्ताव पेश करने का निश्चय, कांग्रेस वर्किंग-कमेटी द्वारा निर्धारित कार्यक्रम को अमल में लाने का फैसला, तथा धारासभाओं से बाहर भी काम करते रहने का व्रत आदि सम्बन्धी प्रस्ताव पास किये। यहाँ उस कार्यक्रम का निर्देश कर देना भी अप्रासंगिक न होगा, जो २७-२८ फरवरी १९३७ को वर्किंग-कमेटी ने वर्धा में असेम्बलियों के कांग्रेसी सदस्यों के लिए नियत किया था। कांग्रेस वर्किंग-कमेटी ने एक लम्बे प्रस्ताव द्वारा पहले यह घोषणा की कि कौंसिल-प्रवेश का उद्देश्य ब्रिटिश सरकार से सहयोग नहीं, बल्कि नये विधान का मुक़ाबिला करना है। कांग्रेस का उद्देश्य पूर्ण स्वराज्य है और वह बालिग़-मताधिकार पर निर्मित राष्ट्रीय पंचायत द्वारा बनाये गये विधान को ही स्वीकार करेगी। इसलिए कांग्रेसी सदस्यों का पहला फ़र्ज़ है कि वे असेम्बलियों में कांस्टिट्युएण्ट असेम्बली की माँग पेश करें और नये संघ-विधान के चालू होने में पूरी रुकावटें डालें। भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद की शक्ति और प्रतिष्ठा को बढ़ानेवाले किसी समारोह या कार्य में उन्हें भाग न लेना चाहिए। सरकारी समारोह या सामाजिक पार्टियों से उन्हें दूर रहना चाहिए। कोई कांग्रेसी सदस्य सरकार का कोई ख़िताब स्वीकार न करे। प्रत्येक

असेम्बली की काँग्रेस-पार्टी को संगठन व अनुशासन में रहना चाहिए। कोई काँग्रेसी सदस्य सरकार से कोई ताल्लुक न रक्खे, पार्टी से विना छुट्टी लिये ग़ैरहाजिर न रहे,और सभी काँग्रेसी सदस्य खद्दर पहनें। असेम्बली के किसी ग़ैर-काँग्रेसी दल से विना वर्किंग-कमेटी की राय लिये मेल न करे। काँग्रेसी सदस्य इस कार्यक्रम को शीघ्र-से-शीघ्र अमल में लाने की कोशिश करें—लगान-मालगुजारी में काफी कमी, आनुपातिक आय-कर और कृषि-कर, किसानों की मौरूसी ऋणों से मुक्ति, सब दमनकारी क़ानूनों का रद किया जाना, राजनैतिक कैदियों और नजरवन्दों की रिहाई, भद्र-अवज्ञा-आन्दोलन में ज़ब्त जमीनों व जायदादों की वापसी, वेतन में कमी किये बग़ैर आठ घण्टे का दिवस, नशाबन्दी, बेकारी की समस्या का हल, भारी वेतनों, भत्तों और सरकारी ख़र्चे में कमी। जब कभी गवर्नर विशेषाधिकारों का प्रयोग करके काम में रुकावट पैदा करने का अवसर लावें, तब उनसे न बचने की भी सलाह दी गई। फौज़, आर्थिक नीति आदि सार्वदेशिक प्रश्नों पर भी जोर देने की हिदायत की गई। इसी कार्यक्रम को कनवेंशन में उपस्थित काँग्रेसी सदस्यों ने अमल में लाने का निश्चय किया था।

वैधानिक संकट

इस तरह काँग्रेस और काँग्रेसी सदस्य भविष्य के बारे में निश्चय कर रहे थे, लेकिन अभी भारत के राजनैतिक रंगमंच पर एक छोटा-सा प्रहसन और होना था, इसलिए काँग्रेसी पदग्रहण न कर सके और न उक्त कार्यक्रम ही असेम्बलियों में पेश किया जा सका। काँग्रेस ने पदग्रहण की इस शर्त पर ही इजाज़त दी थी कि गवर्नर विशेषाधिकारों का प्रयोग न करने का आश्वासन देदें। सरकार यदि इसे मान लेती तो प्रान्तीय शासन की रूपरेखा तैयार करते समय अपने हितों और प्रभुत्व की रक्षा करने के लिए बड़े-बड़े आला अंग्रेज़ राजनीतिज्ञों ने भारी जो मेहनत की थी, वह सब योंही बरबाद होती थी, और यदि वह आश्वासन न दें, तो सारी-की-सारी मेहनत—तीन-चार साल तक की की कराई पूरी योजना पर ही पानी फिरता था। सरकार चक्कर में पड़ गई। न हाँ करते बनता था, न ना करते। आखिर ब्रिटिश-सरकार ने समस्या को टालने की कोशिश की। गवर्नरों ने काँग्रेसी दलों के नेताओं को मंत्रिमण्डल बनाने के लिए बुलाया, लेकिन दस्तंदाज़ी न करने का वचन न दिया, फलतः उन्होंने मन्त्रिमण्डल बनाने से इन्कार कर दिया। नया विधान पैदा होने से पहले ही मर गया। गवर्नरों के सामने एक मार्ग यह था कि वे नये शासन-विधान को स्थगित कर देते, लेकिन यह तो स्पष्ट पराजय थी। इसके साथ ही भारत और ब्रिटेन के बड़े-बड़े राजनैतिक सूत्रधारों और राजनीति विशारदों में एक भारी विवाद छिड़ गया कि काँग्रेस की यह माँग वैधानिक है या नहीं। सरकार का कहना था

कि पार्लमेण्ट ने गवर्नरों को जो अधिकार दिया है, उससे वे (गवर्नर) कैसे इन्कार कर सकते हैं ? लेकिन कांग्रेसियों का कहना था कि अधिकारों का प्रयोग न करना उनकी इच्छा पर निर्भर है और विना एक्ट वदले भी वे इस प्रकार का आश्वासन दे सकते हैं। विशेपाधिकारों का प्रयोग करने के लिए वे वाधित नहीं हैं। इस वैधानिक प्रश्न पर जो विवाद चला, उसमें इंग्लैण्ड के प्रसिद्ध विधानशास्त्री प्रो० कीथ ने काँग्रेस का प्रवल समर्थन किया। भारतमंत्री लार्ड जैटलैण्ड,मि० वटलर, लार्ड स्टैनले, म० गांधी, भूलाभाई देसाई, सर तेजवहादुर सप्रू, श्री सत्यमूर्ति आदि नें इस विवाद में विशेष भाग लिया।

इधर यह विवाद होरहा था, उधर १ अप्रैल आगई। विधान आरम्भ होने का दिन आगया, उसे जारी न करना सरकार की स्पष्ट हार होती, इसलिए विधान के एक छिद्र का सहारा लेकर अल्पसंख्यक दलों के हाथ में ही शासन की वागडोर देकर अस्थायी मंत्रिमण्डल वनाये गये। पंजाव, वंगाल, आसाम, सिन्ध और सीमाप्रान्त में काँग्रेस का स्थायी वहुमत न था, इसलिए वहाँ तो वाक़ायदा मन्त्रि-मण्डल वन गये। लेकिन वम्वई, मद्रास, उड़ीसा, विहार, मध्यप्रान्त और युक्तप्रान्त में अस्थायी मंत्रि-मण्डल वनाये गये। सारे देश में इनकी निन्दा होने लगी। इनपर असेम्वली के सदस्यों को कोई विश्वास न था, असेम्वली का अधिवेशन वुलाने पर इनपर अविश्वास का प्रस्ताव पास होना अनिवार्य था, इसलिए इन ६ प्रान्तों में असेम्वली ही नहीं वुलाई गई। लेकिन वकरे की माँ कवतक खैर मना सकती है ? ६ मास वाद असेम्वली को वुलाना क़ानूनन आवश्यक था। आखिर लार्ड ज़टलैण्ड के भाषणों में नरमी आई और वाइसराय, जो अवतक विलकुल चुप थे, २७ जून को वोले। उन्होंने कहा कि शासन-चक्र चलाने के लिए काँग्रेस का यह माँग करना ज़रूरी न था। उन्होंने भारतीय जनता को यह विश्वास दिलाया कि गवर्नर न केवल मंत्रियों से छेड़छाड़ कर संघर्ष पैदा न करने के लिए, वल्कि ऐसे संघर्ष के अवसरों को वचाने की भी कोशिश करने के लिए उत्सुक रहेंगे। तीन मास तक कांग्रेस के अपनी वात पर अड़े रहने, अस्थायी मन्त्रि-मण्डलों के वहुत वदनाम होने और अन्तर्राष्ट्रीय परिस्थिति के विषम होने से यह स्पष्ट प्रतीत होरहा था कि व्रिटिश राजनीतिज्ञ भले ही प्रतिष्ठा के भय से स्पष्ट शब्दों में स्वीकार न करें, लेकिन वे अव काँग्रेस की वात मान लेंगे। जुलाई के प्रथम सप्ताह में वर्किंग-कमेटी की वैठक वर्धा में हुई। उसने लार्ड जटलैण्ड, लार्ड स्टैनले और लार्ड लिनलिथगो (वाइसराय) के वक्तव्यों को पूरा संतोपजनक न मानते हुए भी पदग्रहण करने की सलाह देदी, क्योंकि कमेटी की सम्मति में उपर्युक्त वक्तव्यों में काँग्रेस की इच्छा के समीप पहुँचने की कोशिश की गई थी और अव गवर्नरों के लिए अपने अधिकारों को प्रयोग में लाना आसान न रह गया था।

काँग्रेसी सरकारें

इस प्रस्ताव का पास होना था कि अस्थायी मंत्रिमण्डलों ने स्वयं इस्तीफ़े दे दिये। गवर्नरों ने फिर काँग्रेसी दलों के नेताओं को बुलाया और उनसे मंत्रिमण्डल बनाने का अनुरोध किया। परन्तु उनका ज़िक्र करने से पूर्व अस्थायी मंत्रिमण्डलों के बारे में यह न कहना उनके साथ अन्याय करना होगा कि देश-भर में तीव्र विरोध के होते हुए भी अस्थायी मंत्रिमण्डलों ने देश-हित की योजना बनाने की भरसक कोशिश की। उन्होंने काँग्रेस से मिलते-जुलते कार्यक्रम पेश करके लोकप्रिय बनने का प्रयत्न किया। शिक्षा, स्वास्थ्य, सार्वजनिक हित आदि के कार्यों की कई योजनायें बनाई गईं। यह ठीक है कि सम्पूर्ण देश में उनका प्रबल विरोध जहाँ इसकी प्रेरणा कर रहा था, वहाँ वे समय की बदली हुई गति को भी अनुभव करने लगे थे। नये शासन-विधान से मिले हुए अधिकारों का उपयोग करने की भी उन्हें उत्सुकता थी। यद्यपि वे काँग्रेस के विरोधी थे, तो भी यह मानना होगा कि उनका रुख काँग्रेस के प्रति बहुत असहानुभूतिपूर्ण नहीं रहा। वे अपनी आलोचनाओं के जवाब में यही कहते रहे कि काँग्रेसियों का असेम्बली में बहुमत है, इसलिए यदि वे शासनसूत्र हाथ में लेना चाहें तो वे उसी क्षण त्याग-पत्र दे देंगे; और काँग्रेस के तैयार होने पर उन्होंने ऐसा करने में देर नहीं की। बम्बई में श्री बी० जी० खेर, मद्रास में श्री राजगोपालाचार्य, मध्यप्रान्त में डा० खरे, संयुक्तप्रान्त में पं० गोविन्दवल्लभ पन्त, बिहार में बाबू श्रीकृष्णसिंह और उड़ीसा में श्री विश्वनाथ दास ने प्रधानमंत्री का पद सम्हाल लिया।

इस समाचार से काँग्रेस के पदग्रहण-विरोधी क्षेत्रों में भले ही कुछ असंतोष हुआ हो, लेकिन आम लोगों में आनन्द और उत्साह का पारावार न रहा। सभी काँग्रेसी मंत्रियों ने शपथ-ग्रहण के बाद, असेम्बली के अधिवेशन के समय या ऐसे अन्य अवसरों पर वन्देमातरम् के राष्ट्रीय गीत, जनता की हर्षध्वनि और काँग्रेसी तिरंगे झण्डों का स्वागत किया। सरकारी समारोहों में वन्देमातरम् और राष्ट्रीय झण्डा सरकारी अधिकारियों व साधारण जनता की दृष्टि में ही नहीं, बहुत-से काँग्रेसी कार्यकर्ताओं के लिए भी आश्चर्य के विषय थे। इसके बाद गाँधी टोपी व खद्दर-धारी चप्पल पहने हुए मंत्रियों ने सैक्रेटेरियट के कर्मचारियों, पुलिस के अधिकारियों और सिपाहियों को नये युग का राष्ट्रीय संदेश सुनाया और बताया कि काँग्रेस का शासन जनपीड़न के लिए नहीं होगा, काँग्रेस जनहित के लिए शासनसूत्र हाथ में ले रही है। सरकारी कर्मचारियों को जनता के निकट-सम्पर्क में आना चाहिए। जनता को दिये गये संदेश में नये मंत्रियों ने अपनी कार्यनीति बताई और कहा कि चुनाव

के घोषणापत्र में प्रकाशित कार्यक्रम को पूरा करने की वे कोशिश करेंगे। दूर-दूर के गाँवों से देहाती किसानों ने आकर बड़ी-बड़ी सरकारी आलीशान इमारतों में, जिनके पास वे फटक भी न सकते थे, आकर अपने प्रतिनिधियों को सरकारी ओहदों पर बैठे हुए देखना शुरू किया। इससे वे समझने लगे कि अब उनके दुःखों की मुक्ति निकट आगई है। पिछले अफ़सर जनता से बहुत दूर रहते थे, उन्हें जनता देख तक न सकती थी, मिलने की तो बात ही दूर। नये काँग्रेसी मंत्री उनके देखे भाले थे, वे उन्हीं में से थे, उन्हीं में काम करते थे, उनके लिये जेल गये थे, तरह-तरह की तकलीफें बरदाश्त की थीं। कुछ ही समय बाद सीमाप्रान्त भी इन काँग्रेसी प्रान्तों की श्रेणी में आ गया। बात यह हुई कि ज्योंही सीमाप्रान्तीय असेम्बली का अधिवेशन बुलाया गया, कांग्रेस-पार्टी ने सर अब्दुल क़यूम के मंत्रिमण्डल पर अविश्वास का प्रस्ताव पेश कर डाला। अब्दुल क़यूम की सरकार बहुत ही कम बहुमत से सरकार बनी थी। अविश्वास के प्रस्ताव पर आठ ग़ैरकाँग्रेसी सदस्यों ने काँग्रेस का साथ दिया। इन आठ सदस्यों ने इस प्रतिज्ञा-पत्र पर भी हस्ताक्षर कर दिये कि हम असेम्बली में सदा काँग्रेस-पार्टी का पूरा साथ देंगे, क्योंकि हम काँग्रेस के कार्यक्रम पर विश्वास करते हैं, हम सदा काँग्रेस-पार्टी के निर्णयों को मानेंगे, तथा उसके नियंत्रण में रहेंगे। इस स्थिति में गवर्नर के पास डा० खान साहब को सरकार बनाने के लिए बुलाने के सिवा और कोई चारा न था। इस तरह सीमाप्रान्त में भी काँग्रेसी सरकार बन गई। और सितम्बर १९३८ से आसाम में भी काँग्रेसी नेता श्री बारडोलाई के नेतृत्व में संयुक्त मंत्रिमण्डल बन गया है, जो काँग्रेस-वर्किंग-कमेटी के आदेशानुसार काम कर रहा है। मुस्लिम लीगी और यूरोपियन दल ने मिलकर इस मंत्रिमण्डल पर अविश्वास का प्रस्ताव पेश किया था, लेकिन यह उस अग्नि-परीक्षा में भी उत्तीर्ण सिद्ध हुआ। सिन्ध की सरकार भी काँग्रेस-पार्टी के थोड़े-बहुत प्रभाव में है। इस तरह आज ११ प्रान्तों में से बंगाल व पंजाब को छोड़कर सभी प्रान्तों में काँग्रेस प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से शासन कर रही है। इन काँग्रेसी सरकारों ने जनता के लाभ के लिए क्या-क्या किया, यह लम्बी चर्चा करने से पहले सन् १९३७ की अन्य घटनाओं पर नज़र डाल लेना आवश्यक होगा।

अण्डमान के क़ैदी

इस वर्ष जिन समस्याओं ने देश का ध्यान ख़ास तौर से अपनी ओर खींचा, उनमें से एक थी अण्डमान के राजनैतिक कैदियों की समस्या। ३१ जुलाई को भारत-सरकार के एक वक्तव्य से सारे देश में तहलका-सा मच गया। इस वक्तव्य में कहा गया था कि अण्डमान की सेल्युलर जेल के २२५ कैदियों ने अपनी तकलीफ़ें दूर

कराने के लिए २४ जुलाई से भूख-हड़ताल करदी है। अण्डमान कालापानी के नाम से मशहूर है। इसका जलवायु निहायत खराव है। यहाँ मलेरिया वग़ैरा के फैलने से मौतें वहुत होती हैं। अण्डमान की जेल वीच में वन्द करदी गई थी, लेकिन कुछ समय से फिर राजनैतिक कैदियों के लिए खोल दी गई। यहां क़ैदी अपने देश, अपने रिश्तेदारों आदि से विलकुल सम्वन्ध-विच्छेद करके रक्खे जाते हैं। तीन मास में एक पत्र से अधिक नहीं लिख सकते। तरह-तरह की और भी असुविधायें उन्हें वहाँ रहती थीं। जव राजनैतिक कैदियों ने इन दुःखों से छुटकारे का कोई उपाय न देखा, तव निराश होकर उन्होंने भूख-हड़ताल करदी। इस समाचार ने सारे देश को स्तव्ध कर दिया। वंगाल में तो सव जगह देश के इन २२५ वीर और देशभक्त युवकों के जीवन की रक्षा के लिए आन्दोलन शुरु होगया। वंगाल के वहुत-से नजरवन्दों ने भी उनकी सहानुभूति में भूख-हड़ताल कर दी। ९ अगस्त को सारे वंगाल में अण्डमान-दिवस मनाने का निश्चय हुआ। राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल ने इसे देशव्यापी रूप देकर समस्त भारत में यह दिवस मनाने का आदेश दिया। केन्द्रीय असेम्वली में इस प्रश्न पर सरकार की निन्दा का प्रस्ताव भी पास किया गया। सरकार का कहना था कि पहले भूख-हड़ताल समाप्त की जाय, फिर शिकायतें दूर की जावेंगी। काँग्रेस वर्किंग कमेटी तथा देश की राजनैतिक संस्थाओं ने इन वीर क़ैदियों से अनशन छोड़ने की प्रार्थना की। कविवर रवीन्द्रनाथ ने भी उनसे प्रार्थना की। लेकिन कोई लाभ न हुआ। वे अपने निश्चय पर दृढ़ थे। अन्त में भारत के पितामह महात्मा गांधी के गम्भीर प्रयत्न से यह समस्या सुलझी। उन्होंने भारत-सरकार की मार्फ़त अण्डमान के क़ैदियों से भूख-हड़ताल छोड़ने की हृदयस्पर्शी प्रार्थना की। इसे वे ठुकरा न सके। उन्होंने हड़ताल समाप्त करने की सूचना देते हुए म० गांधी को यह भी लिखा कि "हममें से जो लोग हिंसा पर पहले विश्वास करते थे, वे अव उसपर विश्वास नहीं करते और यह मान गये हैं कि देश के राजनैतिक ध्येय को प्राप्त करने के लिए इस हथियार का अवलम्वन निरुपयोगी है। हम यह भी घोपणा करते हैं कि हिंसा या आतंकवाद देश को आगे लेजाने के वजाय पीछे ही ले जाता है।" उन्हीं दिनों वंगाल के नज़रवन्दों की रिहाई का सवाल भी खड़ा हो चुका था। नज़रवन्द और वंगाल के राजनैतिक क़ैदी भी हिंसा-मार्ग की उपयोगिता पर अव विश्वास छोड़ वैठे थे। उन्होंने भी अहिंसा की उपयोगिता पर खुले आम विश्वास की घोपणा कर दी थी। यह अहिंसा की काँग्रेस-नीति की वहुत वड़ी विजय थी। अहिंसा के सच्चे पुजारी सरलहृदय म० गांधी का हृदय यह सुनकर प्रसन्नता से पूर्ण हो गया। वे अण्डमान के राजनैतिक क़ैदियों व नज़रवन्दों की रिहाई की कोशिश में लग गये। अण्डमान के सव राजनैतिक क़ैदी कुछ टुकड़ियों में धीरे-धीरे

भारत में वापस बुला लिये गये। गांधीजी अस्वस्थ होते हुए भी कलकत्ता गये और बंगाल के गवर्नर व मंत्रिमण्डल से मिले। उनके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप १९३७ के अन्त तक बंगाल-सरकार ने १५०० नजरबन्दों को रिहा कर दिया और शेष पर भी विचार करने का आश्वासन दिया। १९३८ में भी बहुत-से रिहा किये गये। बाक़ी के सम्बन्ध में सरकार ने गांधीजी की सलाह को मानने से इन्कार कर दिया। पंजाब के क्रान्तिकारी क़ैदियों ने भी बाद में भूख-हड़ताल की, लेकिन गांधीजी की प्रार्थना पर तोड़ दी। गांधीजी ने उनकी रिहाई की भी कोशिश की। अब उनमें से कई रिहा हो चुके हैं।

जंज़ीबार की लौंग-समस्या

जंज़ीबार के लौंग-सत्याग्रह ने भी देश का ध्यान अपनी ओर खींचा। वहाँ बहुत-से प्रवासी भारतीय व्यापारी लौंग का व्यापार करते हैं। जंज़ीबार-सरकार ने एक नया बिल पेश किया, जिसके अनुसार लौंग का सारा व्यापार भारतीयों के हाथ से निकलकर सरकार या ब्रिटिश पूंजीपतियों के हाथ में चला जाता। जंजीबार के भारतीय व्यापारियों ने उसका खूब विरोध किया और व्यापार से बिलकुल हाथ खींचकर सत्याग्रह करने का निश्चय किया। काँग्रेस वर्किंग कमेटी ने २६ अप्रैल १९३७ की बैठक में इस बिल की निन्दा की और इसे १८८६ व १८९८ की संधियों के विरुद्ध बताया। इसके बाद भी कई बैठकों में इस प्रश्न पर विचार हुआ और १९३८ में तो बाक़ायदा लौंग-बहिष्कार का आन्दोलन जारी होगया। बड़े-बड़े शहरों में लौंग के गोदामों पर पिकेटिंग होने लगी। बन्दरगाहों पर लौंग की पेटियों को आये हुए सप्ताह होजाते, लेकिन कोई माल लेने वाला न मिलता। जंज़ीबार-सरकार इस घाटे को बरदाश्त न कर सकी, उसे समझौता करना पड़ा और तब मई १९३८ में बहिष्कार भी समाप्त होगया। प्रवासी भारतीयों के किसी प्रश्न पर काँग्रेस की यह पहली जीत होने के कारण काँग्रेस के इतिहास में इसका विशेष स्थान है।

गाँधी वाइसराय मुलाक़ात

गाँधी वाइसराय मुलाक़ात का यद्यपि बाहरी तौर पर कोई विशेष राजनैतिक परिणाम नहीं हुआ, फिर भी यह इस साल की एक विशेष घटना है। वाइसराय ने म० गाँधी को निजी परिचय बढ़ाने के लिए मिलने का निमंत्रण दिया था। महात्मा गाँधी ने इस अवसर का लाभ उठाकर सीमाप्रान्त के खान बन्धुओं पर लगाई गई पाबन्दी का विरोध किया। इसका फल यह हुआ कि कुछ समय बाद उनपर से सीमाप्रान्त न जाने की पाबन्दी उठा ली गई। ग्राम-सुधार और किसानों की स्थिति

विरोध करें। इसी प्रस्ताव के अनुसार प्रान्तों की असेम्बलियों में काँग्रेसी सरकारों ने फ़ेडरेशन-विरोधी प्रस्ताव पेश किये थे। मद्रास में काँग्रेस-सरकार ने एक सोशलिस्ट कार्यकर्ता श्री बाटलीवाला को हिंसात्मक भाषण देने के अपराध में गिरफ्तार कर लिया था। १२४ ए और १४४ धारा का प्रयोग भी कुछ काँग्रेसी सरकारों ने किया था। इसके विरुद्ध सोशलिस्टों में बहुत असंतोष था। इस पर काफ़ी गरमागरम बहस के बाद यह विषय वर्किंग कमेटी को सौंप दिया गया। प्रान्तीय सरकारों से ज़ब्त पुस्तकों पर से पाबन्दी उठाने, सरकार द्वारा दिये गये खिताबों व तमगों की प्रथा बन्द करने की प्रार्थना करने और भाषा-क्रम से प्रान्तों के पुनर्विभाजन पर ग़ैरसरकारी प्रस्ताव पेश हुए, जो पास होगये। मैसूर में नागरिक अधिकारों की प्राप्ति के लिए किये गये आन्दोलन के दमन की तीव्र निन्दा की गई और वहाँ की जनता को बधाई दी गई। यह प्रस्ताव पीछे से वर्किंग कमेटी में म० गाँधी के समझाने से वापस ले लिया गया। इन्हीं दिनों वर्किंग कमेटी ने बम्बई के प्रसिद्ध नेता श्री नरीमान पर अनुशासन की कार्रवाई की और उन्हें काँग्रेस में किसी भी जिम्मेदारी के पद के अयोग्य ठहरा दिया। इसका कारण यह था कि उन्होंने जाँच-कमेटी रिपोर्ट और क्षमा-प्रार्थना के बाद फिर अपना वक्तव्य बदल दिया था। उनपर अभियोग यह था कि उन्होंने सन् १९३४ में केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव में काँग्रेसी उम्मीदवार को उचित सहायता न दी थी। इसी कारण उन्हें बम्बई-असेम्बली की काँग्रेस पार्टी का नेता न चुना गया था। इसपर श्री नरीमान के साथियों ने आन्दोलन किया और इसी सिलसिले में १९३४ के चुनाव का प्रश्न सामने आया।

काँग्रेसी सरकारों का शासन

काँग्रेसी सरकारों ने शासनसूत्र हाथ में लेते ही बहुत उत्साह व ज़ोर के साथ सुधार करने शुरू कर दिये। काँग्रेस वर्किंग कमेटी के आदेशानुसार मंत्रियों ने अपना वेतन ५००) रु० तथा २५०) रु० मोटर व मकान भत्ता प्रतिमास से अधिक न लेना निश्चित किया, जबकि ग़ैर काँग्रेसी मंत्री २५०० और ३००० रु० से भी ऊपर वेतन ले रहे थे। सबसे पहले काँग्रेसी सरकारों का ध्यान नागरिक स्वाधीनता की ओर गया। सभी प्रान्तों में राजनैतिक कैदी रिहा किये जाने लगे, राजनैतिक कार्यकर्ताओं पर से सब पाबन्दियाँ उठाई जाने लगीं, कुछ अखबारों की तो ज़ब्त जमानतें भी वापस दे दी गई। बारडोली आदि के सत्याग्रह के समय ज़ब्त और बेच दी गई ज़मीनें भी वापस दिलाई जारही हैं, सार्वजनिक सभाओं के भाषणों की खुफ़िया पुलिस द्वारा रिपोर्ट लेने की प्रथा बन्द करदी गई। राजनैतिक संस्थाओं, फिल्मों और पुस्तकों पर से पाबन्दियाँ उठाई जाने लगीं। मोपला कैदी और युक्तप्रांत में क्रान्ति-

कारी काकोरी क़ैदी तक रिहा कर दिये गये। राष्ट्र के शासन-व्यय को कम करने की ओर विशेष ध्यान दिया गया। मंत्रियों ने अपने वेतन व भत्ते जहाँ कम किये, वहाँ असेम्बली के सदस्यों का भत्ता भी कम रक्खा गया। सिर्फ़ वम्बई में ही इस कारण मंत्रियों के मद में २० लाख रु० की बचत की गई। बजट में अनेक प्रान्तों को सार्वजनिक हित के कार्यों में और विशेषकर ग्राम-सुधार पर बहुत अधिक व्यय करने के कारण कुछ घाटा ज़रूर हुआ, लेकिन बहुत नहीं। काँग्रेसी सरकारें जनता के उपयोगी कामों में कितना व्यय कर रही हैं, इसका एक ही उदाहरण देना पर्याप्त होगा। युक्तप्रांत सरकार ने निम्न मदों के लिए नीचे लिखी रक़में मंजूर कीं:—

ग्राम-सुधार—१० लाख रु०, ग्राम पुस्तकालय २० लाख रु०, बड़े शहरों में शुद्ध दूध—२० लाख रु०, शुद्ध घी उत्पत्ति—१२॥ लाख रु०, खेती की उन्नति—५॥। लाख रु०, खद्दर-व्यवसाय की उन्नति—१। लाख रु०, मज़दूर वेलफेयर—१० हजार रु०, डाक्टरी सहायता—१॥ लाख रु०, व्यावसायिक उन्नति—१ लाख रु०। किसानों को सभी प्रान्तों में छूट दी गई, बकाया की वसूली, कुर्की आदि रोक दी गई। अव प्राय: सभी प्रान्तों में किसानों के लिए नये-नये कानून बन रहे हैं। इन नये कानूनों से किसानों की अवस्था में क्रान्तिकारी परिवर्तन हो जायगा। इन विलों के क़ानून वनने में सरकार को जमींदारों का तीव्र विरोध सहना पड़ रहा है, लेकिन काँग्रेसी सरकारें तो जनता की हैं, जनता का शोषण नहीं सहन कर सकतीं। कुछ प्रान्तों में कुछ कानून वन चुके हैं और कुछ में अभीतक विल क़ानून नहीं बन सके। किसानहित के नये-नये विल भी तैयार किये जा रहे हैं। नये विधान के अनुसार प्रान्तीय सरकारों की शक्ति सीमित है। वे अपनी इच्छानुसार व्यय में कमी नहीं कर सकतीं और इसीलिए टैक्सों का भार बहुत कम नहीं किया जा सकता, फिर भी काँग्रेसी सरकारें अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ हैं। शराबबन्दी काँग्रेस का एक महत्त्वपूर्ण कार्यक्रम रहा है, अव शराव की आय को अर्थाभाव के बहाने से वरदाश्त नहीं किया जा सकता था। इसलिए सभी प्रान्तों में काँग्रेसी सरकारों ने इधर विशेष ध्यान दिया। एकदम सारे प्रान्तों में शराबवन्दी तो नहीं हुई, लेकिन प्रत्येक प्रान्त के कुछ भागों में शराबवन्दी जारी कर दी गई। दूसरे वर्ष १९३८ में शराववन्दी का क्षेत्र भी विस्तृत कर दिया गया है। इससे भी लाखों रुपये की हानि काँग्रेसी सरकारों को हुई। साधारण शासन-प्रवन्ध में भी सुधार की ओर ध्यान दिया जा रहा है। रिश्वतखोरी व जनता की अन्य वहुत-सी असुविधायें दूर करने, जेलों की अवस्था सुधारकर क़ैदियों से मनुष्यतापूर्ण व्यवहार करने की भी कई योजनायें चालू की जा रही हैं। हिन्दी या हिन्दुस्तानी को राष्ट्रभाषा मानकर इसकी भी पढ़ाई अनिवार्य की जारही है।

: ३ :

हरिपुरा-कांग्रेस और उसके बाद

वैधानिक-संकट

काँग्रेस प्रान्तों में शासनचक्र ज़रूर चला रही थी, लेकिन उसका उद्देश्य नये शासन-विधान को सफल करना नहीं था। वह तो अपनी शक्ति वढ़ाने तथा शासन-विधान का मुकाविला करने के लिए कुर्सियों पर वैठी थी, और इसमें सन्देह नहीं कि ये दोनों कार्य सिद्ध हो रहे थे। काँग्रेस की ताक़त खूव वढ़ रही थी। लोग यह महसूस कर रहे थे कि अव हम खुद राज्य करने लगे हैं, जगह-जगह काँग्रेसी कार्यकर्ता सरकारी अधिकारियों को सहयोग देने लगे थे। शासन-विधान को उसी अर्थ में चलाना आवश्यक नहीं है, जिस इरादे से सरकार ने वनाया है—यह कहकर गाँधीजी ने इस वात की छुट्टी दे दी थी कि विधान की धाराओं का अपने अनुकूल अर्थ निकालने में कोई आपत्ति नहीं है। इसीलिए धारा-सभाओं में अंग्रेजी पर प्रान्तीय भाषाओं को तरजीह दी जाने लगी थी। सरकार कवतक यह चुपचाप सहन करती? उसने एक वार फिर अपनी शक्ति को आजमाने का निश्चय किया। काँग्रेस की आज्ञानुसार मंत्री राजनैतिक कैदियों को रिहा कर रहे थे, वहुत से क़ैदी छोड़ भी दिये गये थे, लेकिन कुछ क़ैदियों की रिहाई में यू० पी० और विहार के गवर्नरों ने रुकावट डालनी शुरू की। इधर देश में राजनैतिक क़ैदियों की रिहाई में विलम्व होने पर काँग्रेस मंत्रि-मण्डलों के विरुद्ध असन्तोष वढ़ रहा था। काँग्रेस अपने चुनाव घोषणा-पत्र में राजनैतिक क़ैदियों की रिहाई की नीति को स्वीकार कर चुकी थी। जव वार-वार कहने पर भी गवर्नर मंत्रियों के काम में दखल देने से वाज न आये, तव युक्तप्रान्त और विहार के मंत्रिमण्डलों ने इस्तीफा दे दिया। हरिपुरा-काँग्रेस के एक प्रस्ताव के अनुसार, काँग्रेस की स्थिति यह थी—"जिस समय गवर्नरों ने काँग्रेस के प्रतिनिधियों को मंत्रि-मण्डल वनाने का निमन्त्रण दिया था, उन्हें मालूम था कि काँग्रेस के घोषणा-पत्र में नीति के प्रधान अंग के रूप में राजनैतिक क़ैदियों की रिहाई का उल्लेख किया गया है।······ काँग्रेस की राय में कैदियों की रिहाई का मामला प्रतिदिन के शासन-क्षेत्र की सीमा के भीतर ही आता है और यह ऐसा मामला नहीं है कि जिसमें गवर्नर से किसी लम्वी-चौड़ी वहस की जरूरत हो। गवर्नर का काम मंत्रियों को सलाह देना

और उनकी रहनुमाई करना है। उनका काम प्रतिदिन के कर्तव्य-पालन में मंत्रियों के फैसलों के कार्यान्वित होने में बाधा डालना नहीं है।.........काँग्रेस की राय में इन प्रान्तों के प्रधान मंत्रियों के निर्णयों में गवर्नर ने जो हस्तक्षेप किया है, वह केवल पहले दिये हुए आश्वासन के ही विरुद्ध नहीं है, बल्कि गवर्नमेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट की धारा १२६/५ का दुरुपयोग भी है। इसमें अमन-अमान को भारी ख़तरा पहुँचाने का कोई सवाल ही न था।"

यह नाज़ुक परिस्थिति ठीक ऐसे समय हुई, जबकि काँग्रेस का हरिपुरा-अधिवेशन शुरू होने को था। इसलिए इसके विस्तार में जाने से पहले इस अधिवेशन से पहले की दो-तीन और घटनाओं का भी संक्षेप से निर्देश कर देना आवश्यक है। वर्त्तमान शिक्षापद्धति के दोषों को प्रायः सभी शिक्षा-शास्त्री स्वीकार करते हैं। महात्मा गाँधी ने भी इस विषय पर बहुत मनन किया और एक नई पद्धति का विचार देश के सामने रखा। उसपर विचार करने के लिए अक्तूबर १९३७ में भारत के बहुत-से शिक्षा-शास्त्रियों की कांफ्रेंस वर्धा में की गई, जिसके सभापति स्वयं महात्मा गाँधी थे। इस शिक्षा का मुख्य उद्देश्य किसी शिल्प को केन्द्र में रखकर विद्यार्थी को साधारण प्रारम्भिक शिक्षा देना तय हुआ। इस योजना के विस्तार में न जाकर इतना ही कहना काफ़ी है कि आज बहुत-से प्रान्तों में वर्धा-शिक्षा के अनुसार कार्य का श्रीगणेश कर दिया गया है।

मुस्लिमलीग से चर्चा

मुस्लिम-लीग के प्रधान श्री जिन्ना तथा अन्य कुछ मुस्लिमलीगी नेताओं ने काँग्रेस के विरुद्ध आक्षेप करने शुरू किये थे। काँग्रेस को हिन्दू-संस्था कहकर वे भारत के मुसलमानों को काँग्रेस के बरखिलाफ़ भड़का रहे थे। अनेक नई माँगें पेश की गई, 'वन्देमातरम्'-गीत को, जिसपर अबतक कोई आपत्ति न उठाई गई थी और जो गीत स्वयं मुस्लिम काँग्रेसी नेताओं द्वारा गाया जाता रहा है, अब इस्लाम-विरोधी कहा जाने लगा। काँग्रेस द्वारा हिन्दुस्तानी भाषा के प्रचार को भी हिन्दूपन का प्रचार कहा जाने लगा। इसपर राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू ने व्यर्थ की बहस में न पड़कर मुस्लिम-लीग की माँगों पर शान्ति से विचार प्रकट करने की इच्छा की। आपस में पत्रव्यवहार शुरू हुआ, जो हरिपुरा-काँग्रेस के बाद नये राष्ट्रपति श्री सुभाषचन्द्र बोस ने जारी रखा। म० गाँधी ने भी श्री जिन्ना से पत्र-व्यवहार किया और स्वयं अस्वस्थ होते हुए भी बम्बई जाकर श्री जिन्ना से उनके घर पर मिले। श्री जिन्ना शायद समझौते के उत्सुक न थे, इसलिए निश्चित प्रश्नों को छोड़कर इस बात पर ज़ोर देने लगे कि काँग्रेस हिन्दू-संस्था है और वह मुस्लिमलीग को ही समस्त मुसलमानों की एकमात्र प्रतिनिधि मानकर उससे बात करे। काँग्रेस इस साम्प्रदायिक स्थिति को मान लेती,

तो उसके अवतक के सारे किये-किराये पर पानी फिर जाता। वह तो सारे देश का प्रतिनिधि है, उसके झण्डे-तले हजारों मुसलमान इकट्ठे होकर जेल गये हैं, गोलियां खा चुके हैं, कई मुसलमान उसके सभापति तक हो चुके हैं, सीमाप्रान्त के खुदाई खिदमतगारों का त्याग, तपस्या और वलिदान काँग्रेस के नियन्त्रण पर ही हुआ था। काँग्रेस इस स्थिति को छोड़ नहीं सकती थी, फलतः वातचीत विना किसी परिणाम पर पहुँचे ही ख़त्म हो गई।

इस साल भी राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू ने उत्साह और परिश्रम से काम किया। जंजीवार-दिवस (२१ जून) ,चीन-दिवस (२६ सितम्वर), नवविधानविरोधी-दिवस, (१ अप्रैल), अण्डमान-दिवस, स्वतन्त्रता-दिवस (२६ जनवरी), सीमाप्रान्त दिवस (२२ मई) आदि कई दिन मनाये गये। भिन्न-भिन्न समस्याओं पर राष्ट्रपति ने वक्तव्य प्रकाशित किये। आर्थिक और वैदेशिक विभाग भी इस साल अधिक संगठित होजाने के कारण उत्साह से अपना काम करते रहे। भिन्न-भिन्न ग़ैरकाँग्रेसी प्रान्तों व रियासतों में दमन-चक्र वरावर चल रहा था, कार्यकर्ता गिरफ्तार किये जा रहे थे, उनपर पावन्दियाँ लगाई जा रही थीं और पत्रों की ज़मानतें ज़ब्त हो रही थीं। नागरिक स्वाधीनता-संघ (सिविल लिवर्टी यूनियन)इन सव घटनाओं की सूचनायें वरावर प्रकाशित करता रहा।

हरिपुरा-काँग्रेस

पद-ग्रहण से काँग्रेस की शक्ति एकाएक वढ़ जाने से प्रतिनिधियों के चुनाव में वहुत कशमकश हुई। विहार में तो किसान-सभावादियों और काँग्रेसियों में वड़ा झगड़ा होगया। किसान-सभावादी, काँग्रेसी सोशलिस्ट और काँग्रेसी सरकारी नीति के समर्थकों ने काँग्रेस पर अधिकार करने की पूरी कोशिश की। कुछ लोगों का रवैया ऐसा होरहा था कि उनके विरुद्ध काँग्रेस को अनुशासन की भी कार्रवाई करनी पड़ी। इन दिनों वातावरण इतना दूपित हो रहा था और वैमनस्य इस चरम सीमा तक पहुँच गया था कि हरिपुरा-काँग्रेस में दो दल होने की पूरी सम्भावना की जा रही थी, लेकिन ऐसा नहीं हुआ। इसका श्रेय है यू० पी० व विहार के गर्वनरों को, जिन्होंने ऐसी नाजुक परिस्थिति पैदा कर दी, जिससे मंत्रिमण्डलों को इस्तीफ़ा देना पड़ा जिसका उल्लेख हम पहले कर आये हैं।

वारडोली इलाके के हरिपुरा गाँव में इस साल १९ से २१ फ़रवरी तक काँग्रेस का अधिवेशन हुआ। राष्ट्रपति-पद के लिए चुने गये श्री सुभापचन्द्र वोस। पिछले वहुत-से सालों से सरकार उन्हें वरावर देश से निर्वासन या जेल की सजा दे रही थी। सरकार उन्हें इतना खतरनाक समझती थी कि कई सालों तक रोगी और निर्वासित

रहने के बाद ज्योंही उन्होंने भारतभूमि पर पैर रक्खा, वे एकदम गिरफ्तार कर लिये गये। पीछे स्वास्थ्य बहुत ख़राब हो जाने पर वे रिहा किये गये थे। हरिपुरा-काँग्रेस गाँव में होनेवाली दूसरी कांग्रेस थी, इसलिए फैज़पुर से पूरा अनुभव उठाया गया। दर्शकों व प्रतिनिधियों के लिए सब प्रकार की सहूलियतों का प्रबन्ध किया गया। इससे हज़ारों गाँववालों को रोज़ी मिली। राष्ट्रपति का जलूस ५१ बैलोंवाले रथ पर निकाला गया। रथ भी ८० साल पुराना लिया गया। राष्ट्रपति ने अपने भाषणों में देश की प्रायः सभी समस्याओं पर अपने विचार प्रकट किये। पिछले राष्ट्रपति पं० जवाहरलाल नेहरू ने अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति के प्रति भारतीयों में एक ख़ास दिलचस्पी पैदा कर दी थी। श्री सुभाष बोस ने भी अपने भाषण में अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति की खूब चर्चा की। आपने ब्रिटिश साम्राज्य की पतनोन्मुखता का ज़िक्र करते हुए कहा कि "आज ब्रिटिश साम्राज्य का इतिहास उस स्थान पर पहुँचा है, जहाँसे उसका रुख पलट सकता है। या तो इसकी वही गति होगी जो दूसरे साम्राज्यों की हुई है, या इसे अपना कायापलट करके अपनेको स्वतंत्र राष्ट्रों का संघ बनाना पड़ेगा। यह चाहे जो मार्ग पकड़ ले। १९१७ ई० में ज़ार का साम्राज्य मिट्टी में मिल गया और उसके खण्डहरों पर रूस के पंचायती साम्यवादी प्रजातंत्रों के संघ की इमारत खड़ी हुई।" राष्ट्रपति ने ब्रिटेन को चेतावनी देते हुए कहा—"अब भी समय है कि ब्रिटेन रूस के इतिहास के इस पन्ने से सबक़ ले। सवाल तो यह है कि क्या वह कुछ शिक्षा ग्रहण करेगा?"

"प्रत्येक साम्राज्य की नींव भेदनीति पर है, किन्तु ब्रिटिश साम्राज्य के सिवा और किसी साम्राज्य ने इस नीति का इस खूबी, सुव्यवस्था और धड़ल्ले के साथ पालन किया हो, इसमें मुझे सन्देह है।" पर "ऐसा जान पड़ता है कि इन सबके परिणाम-स्वरूप ग्रेट ब्रिटेन अपने ही बिछाये हुए जाल में फँस गया है। भारत में वह हिन्दुओं या मुसलमानों में से किसे संतुष्ट करेगा? फिलस्तीन में अरबों या यहूदियों में से किसे अपनायगा? अथवा ईराक में अरबों और कुर्दों में से किनपर दया-दृष्टि करेगा? मिस्र में वह राजा का पक्ष लेगा या वफ्द का? साम्राज्य के बाहर भी वह इसी चक्कर में है; वह स्पेन में फ्रैंको की पीठ ठोंके या नियमित सरकार की? यूरोपीय राजनीति के विस्तृत क्षेत्र में वह जर्मनी का साथ दे या फ़्रांस का?"

"आज ब्रिटेन मुश्किल से अपने को समुद्रों की रानी कह सकता है। १८वीं और १९वीं सदी में सामुद्रिक शक्ति के कारण ही उसकी उन्नति हुई। विश्व के इतिहास में एक नये साधन हवाई शक्ति का प्रादुर्भाव बीसवीं सदी में उसके साम्राज्य के पतन का कारण होगा। युद्ध के इस नये साधन—हवाई ताक़त—के कारण ही उद्धत इटली भूमध्यसागर में एकत्र सारी ब्रिटिश जल-सेना को ललकार सका।.........एक

भीमकाय साम्राज्य का दुनिया के सामने आज इस तरह पर्दा फ़ाश हुआ है, जैसा उसके पहले कभी नहीं हुआ था। दुनिया की शक्तियों की इस धुक्कम-धुक्का में [illegible] पहले से कहीं अधिक शक्तिशाली बन गया है।" अल्पसंख्यकों की समस्या का ज़िक्र करते हुए आपने यह कहकर सभी कांग्रेसजनों के भावों को व्यक्त किया कि "हम राष्ट्रीयता के मूल सिद्धान्तों को हनन न करते हुए इस समस्या का हल करने की भरसक कोशिश करने को उत्सुक हैं।.........राष्ट्रीय महासभा तो सर्वभारतीय जाति के समान राजनैतिक और आर्थिक अधिकारों की रक्षा के लिए वचनबद्ध है। वह किसीके विवेक, धर्म, संस्कृति के सम्बन्ध में पूर्ण तटस्थ रहेगी।"

देश के सामने उपस्थित सबसे बड़ी समस्या संघ-विधान को आपने खूब आड़े हाथों लिया। आपने कहा कि "देशवासियों को यह याद दिला देना ज़रूरी है कि सत्याग्रह या अहिंसात्मक असहयोग का प्रयोग हमें शायद फिर करना पड़े। प्रान्तों में पद-ग्रहण करने का यह अर्थ नहीं है कि हम केन्द्र में भी पद-ग्रहण कर लेंगे। बहुत सम्भव है कि हमारे ऊपर ज़बरदस्ती संघ-शासन की व्यवस्था लादने का विरोध करने का हमारा निश्चय सविनय-अवज्ञा आन्दोलन की पुनरावृत्ति करने को विवश करे।" चूँकि कांग्रेस सात प्रान्तों में शासनसूत्र चला रही थी, इसलिए राष्ट्रपति का भाषण भी सिर्फ़ आन्दोलन या संग्राम की चर्चा से भिन्न रचनात्मक क्षेत्र में भी जाना स्वाभाविक था। आपने राष्ट्र के पुनर्निर्माण की संक्षिप्त योजना पर काफ़ी ज़ोर दिया और आर्थिक समस्याओं पर रोशनी डालते हुए कहा कि अब हमें स्वाधीन भारत की परिभाषा में सोचना शुरू कर देना चाहिए। कांग्रेस वर्किंग कमेटी को अपनेको स्वाधीन भारत के मन्त्रिमण्डल की प्रतिमूर्ति समझकर सब समस्याओं पर विचार करना चाहिए।

हरिपुरा-कांग्रेस में विषय तो बहुत-से पेश हुए, लेकिन बिहार और युक्तप्रान्त के वैधानिक संकट की चर्चा ने बाक़ी सब बातों को पीछे छोड़ दिया। [illegible] विदेशी सरकार से फिर सम्मिलित संग्राम की चर्चा में कांग्रेस के वामपक्ष और दक्षिणपक्ष के पारस्परिक विरोध की चर्चा भी चल पड़ी। इस प्रश्न पर जो प्रस्ताव पास हुआ, उसका कुछ अंश हम ऊपर दे चुके हैं। इसी प्रस्ताव में आगे कहा गया था कि कांग्रेस अभी सत्याग्रह आदि की विकट परिस्थिति पैदा नहीं करना चाहती और इसलिए अन्य प्रान्तों में मंत्रिमण्डलों को इस्तीफ़ा देने के लिए आदेश नहीं करती। गवर्नर-जनरल से इस विषय पर पुनर्विचार करने की प्रार्थना भी की गई। गवर्नरों के इस हस्तक्षेप से नये विधान की सारहीनता प्रकट होती है, यह कहकर कांस्टिट्यूएण्ट असेम्बली की माँग फिर पेश की गई। अहिंसा पर पुनः विश्वास और राजनैतिक क़ैदियों से रिहाई के लिए भूख-हड़ताल आदि न करने की भी प्रार्थना इस प्रस्ताव में की गई थी और अन्त में वर्किंग कमेटी को आवश्यक होने पर यथोचित कार्रवाई

करने का अधिकार दिया गया था। अनेक उग्र विचारकों ने इसी प्रश्न पर तत्काल सब प्रान्तों में वैधानिक संकट पैदा करने व सत्याग्रह शुरू करने की सलाह दी, लेकिन बहुमत ने अभी इसकी आवश्यकता नहीं समझी। श्रीमती स्वरूपरानी नेहरू, सर जगदीशचन्द्र वसु श्री शरत्चन्द्र चटर्जी, श्री मणिलाल कोठारी आदि की मृत्यु पर शोक, आसाम की बहादुर नागा महिला की रिहाई की माँग, ब्रिटिश गाइना के भारतीयों को वहाँ बसने की शताब्दि पर बधाई, सरकारी औपनिवेशिक नीति की निन्दा, जंजीबार के लौंग-सत्याग्रह पर बधाई, लंका के भारत-विरोधी कानूनों की निन्दा, चीन पर जापान के आक्रमण की निन्दा और चीन से सहानुभूति, सरकार की फिलस्तीन-नीति की निन्दा, भावी विश्वव्यापी युद्ध में भाग न लेने का निश्चय, वर्जित क्षेत्रों और कमिश्नर के सूबों में प्रजातन्त्र की माँग, अजमेर-मेरवाड़े के गाँव रियासतों को देने पर क्रोध, फेडरेशन की योजना का विरोध, राष्ट्रीय शिक्षा के सिद्धान्त को स्वीकार कर शिक्षा- बोर्ड की स्थापना, अल्पसंख्यक जातियों के अधिकारों की घोषणा, केनिया में भारत-विरोधी नीति की निन्दा और मिदनापुर में काँग्रेस-कमेटियों पर पाबन्दी की निन्दा के प्रस्ताव पास किये गये। दो प्रस्तावों पर बहुत गरमागरम बहस हुई। इनमें से एक प्रस्ताव था रियासतों के सम्बन्ध में, जिसका आशय यह था कि रियासतें भारत का ही एक अंग हैं, उनमें भी पूरी जिम्मेदार सरकार चाहिए। इस उद्देश्य को पूरा करना काँग्रेस का अधिकार है, यह मानते हुए भी मौजूदा हालत में काँग्रेस के रियासतों में काम करने में बहुत-सी कठिनाइयाँ हैं। काँग्रेस वहाँ राष्ट्रीय झण्डे का अपमान नहीं सह सकती। लेकिन काँग्रेस प्रजा द्वारा उठाये गये प्रत्येक अहिंसात्मक आन्दोलन का स्वागत करेगी। व्यक्तिगत रूप से कोई भी काँग्रेसी रियासती आन्दोलन में भाग ले सकता है, लेकिन काँग्रेस के नाम से कोई आन्दोलन नहीं चलाया जा सकता। इसके लिए रियासतों में पृथक् संगठन क़ायम होने चाहिएँ। दूसरा प्रस्ताव किसानों के सम्बन्ध में था। काँग्रेस किसानों के संगठन के अधिकार को मानती है, लेकिन वह स्वयं भी मुख्यतः किसानों की ही संस्था है, वह हमेशा किसानों की तरफ़दार रही है और रहेगी, इसलिए गाँव-गाँव में किसानों को उसे और भी आधिक प्रबल बनाने के लिए उसके सदस्य बनना चाहिए और कोई ऐसा काम न करना चाहिए जिससे काँग्रेस कमज़ोर हो। किसानों के संगठन का अधिकार मानते हुए भी वह काँग्रेस के मूलभूत सिद्धान्तों के विरुद्ध किसी कार्रवाई से सम्बन्ध नहीं रखती और जहाँ-जहाँ काँग्रेसवादी ऐसे काम कर रहे हों, जिनसे काँग्रेस की नीति व सिद्धान्त के विरुद्ध वातावरण पैदा होता हो, वहाँ प्रान्तीय काँग्रेस कमेटियों को उचित कार्रवाई करने का आदेश और अधिकार देती है। इन दोनों प्रस्तावों की रचना पर उग्रदली बहुत असंतुष्ट हुए। वे जहाँ रियासतों में हस्तक्षेप को सामयिक और आव-

श्यक मानते थे, वहाँ किसान-सभाओं के सम्बन्ध में भी कोई बन्धन न चाहते थे। लेकिन प्रस्ताव पास होगये और पीछे की घटनाओं ने यह बता दिया कि ये प्रस्ताव भी बुद्धिमत्तापूर्ण थे। रियासतों में आजकल जो जागृति हो रही है, उसका बहुत कुछ श्रेय इसी प्रस्ताव को है। मैसूर, त्रावणकोर, हैदराबाद, राजकोट, बड़ौदा, उदयपुर और जयपुर आदि में प्रजामण्डल संगठित होकर अपना काम कर रहे हैं। और अनेक रियासतों में आन्दोलन को सफलता भी मिली है। किसानों को उत्तेजना देनेवाले किसान-सभावादी काँग्रेसियों पर अनुशासन की कार्रवाई का भी उचित परिणाम हुआ।

संकट समाप्त

हरिपुरा-काँग्रेस के अवसर पर राष्ट्र ने एक बार फिर यह सिद्ध कर दिया कि वह आपस में कोई मतभेद रखते हुए भी विदेशी शक्ति से लड़ने के लिए सम्मिलित है और पद-ग्रहण करके सरकारी कुर्सियों की मौज लेने के बाद वह उसे ठुकराने में भी एक क्षण की देरी नहीं करता। इसी प्रश्न पर वाइसराय व गाँधीजी के वक्तव्य भी निकले। सरकार काँग्रेस की शक्ति को मान गई और ज्योंही बिहार व यू० पी० के प्रधानमंत्री हरिपुरा-काँग्रेस से अपने-अपने प्रान्तों में वापस गये, गवर्नरों ने उन्हें बुलाया। दोनों में चर्चा हुई। गवर्नरों ने मंत्रियों के साथ सहयोगपूर्वक काम करने का आश्वासन दिया और राजनैतिक क़ैदियों के मामले पर व्यक्तिगत विचार करके उन्हें रिहा करने का निश्चय प्रकट किया। फलतः मंत्रिमण्डलों ने इस्तीफ़े वापस ले लिये और फिर प्रान्तीय शासन की गाड़ी यथापूर्व चलने लगी। कुछ दिनों बाद उड़ीसा में भी एक वैधानिक संकट पैदा होते होते बचा। गवर्नर छुट्टी जानेवाले थे। उनकी जगह मंत्रिमण्डल के अधीन काम करनेवाले कर्मचारी को स्थानापन्न गवर्नर बनाना तय हुआ। गाँधीजी ने और काँग्रेस वर्किंग कमेटी ने इसका विरोध किया और ऐसी स्थिति उत्पन्न होने पर मंत्रिमण्डल को इस्तीफ़ा देने की सलाह दी। मंत्रियों ने भी इसमें अपना अपमान समझा। सरकार ठीक समय पर मान गई और गवर्नर ने प्रान्त के हित के ख़याल से छुट्टी मंसूख करा ली।

खरे-प्रकरण

अब वर्किंग कमेटी की बैठकों में जहाँ स्वराज्य-आन्दोलन को आगे बढ़ाने के उपायों पर विचार होता था, वहाँ भिन्न-भिन्न प्रान्तों की शासन-सम्बन्धी, आर्थिक और व्यावसायिक समस्याओं पर भी विचार होने लगा। कभी बिहार के बिहारी बनाम बंगाली झगड़े पर विचार हो रहा है, तो कभी बरार व मध्यप्रांत के आर्थिक प्रश्नों पर; कभी सीमाप्रान्त का सवाल है, तो कभी मद्रास, बिहार और युक्तप्रान्त

का। वर्किंग कमेटी द्वारा नियत पार्लमेण्टरी सब-कमेटी सभी प्रान्तों में एक-सी आर्थिक और शासन-सम्बन्धी नीति चलाने के लिए सब सरकारों से निकट-सम्पर्क में रहती है। किसानों, मजदूरों और व्यापार-व्यवसाय के विकास के सम्बन्ध में तरह-तरह के नियम तैयार किये जा रहे हैं और वर्किंग कमेटी सब प्रान्तों का सूत्र-संचालन कर रही है। सभी प्रान्तों की आन्तरिक समस्याओं पर उसे नियंत्रण रखना पड़ता है और इसमें सन्देह नहीं कि कुछ ही समय में उसने यह सिद्ध कर दिया है कि भारतवासी अपने शासन के पूर्ण योग्य हैं। इस बीच में एक दुःखद घटना भी हुई। मध्यप्रान्त के मंत्रिमण्डल में कुछ पारस्परिक मतभेद होगये। सरदार पटेल ने उन्हें सुलझाने का प्रयत्न किया। एक समझौता भी होगया, लेकिन कुछ दिनों बाद प्रधानमंत्री डा० खरे ने उसे तोड़ दिया। इससे स्थिति और भी पेचीदा होगई। डा० खरे ने दो मंत्रियों के साथ कांग्रेस पार्लमेण्टरी कमेटी से बिना पूछे ही गवर्नर के हाथों में इस्तीफ़ा दे दिया। गवर्नर ने उनका इस्तीफ़ा स्वीकार कर लिया और शेष तीन को बरखास्त कर नये सिरे से मंत्रिमण्डल बनाने के लिए डा० खरे को बुलाया। डाक्टर सा० ने महाकोशल के तीनों मंत्रियों की जगह और मंत्री रख लिये। इसपर वर्किंग कमेटी ने उनकी निन्दा की और उन्हें कांग्रेस-संस्थाओं में ज़िम्मेदारी के पद के अयोग्य क़रार दिया। गवर्नर की जल्दबाज़ी की भी निन्दा की गई। इसके बाद डा० खरे ने फिर इस्तीफ़ा दिया और मध्यप्रान्तीय असेम्बली की कांग्रेसपार्टी ने श्री रविशंकर शुक्ल को अपना नेता चुना और वही मध्यप्रान्त के प्रधानमंत्री हुए। डा० खरे जैसे प्रभावशाली व्यक्ति को इस तरह अनुशासन-दण्ड देना बड़े साहस का काम था। महात्मा गाँधी को भी डा० खरे से बहुत विचार-विनिमय करना पड़ा, लेकिन जब डा० खरे किसी तरह न माने, तब वर्किंग कमेटी को सारे देश में अनुशासन क़ायम रखने के लिए और आगे ऐसी कोई घटना न होने देने के लिए यह कठोर कार्रवाई करनी पड़ी। इसपर देश के कई क्षेत्रों में बड़ी आलोचना भी की गई, लेकिन सितम्बर १९३८ में दिल्ली में होनेवाली अ० भा० कांग्रेस कमेटी ने वर्किंग कमेटी के फ़ैसले पर मुहर लगाकर यह विवाद सदा के लिए बन्द कर दिया। इससे पहले मध्यप्रान्त के एक मुसलमान मंत्री श्री शरीफ़ को भी इस्तीफ़ा देना पड़ा, क्योंकि उन्होंने बलात्कार के एक क़ैदी को रिहा कर दिया था। इसके बाद मध्यप्रान्त के मंत्रिमण्डल में अबतक किसी मुसलमान की नियुक्ति नहीं की गई है।

नागरिक स्वाधीनता का दुरुपयोग

२४, २५, २६ सितम्बर को दिल्ली में होनेवाली अ० भा० कांग्रेस कमेटी में जहाँ खरे-प्रकरण बहुत महत्त्वपूर्ण विषय था, वहाँ दो-तीन प्रश्न और भी उपस्थित

नियत हुई थी, उसकी रिपोर्ट पर भी वर्किंग कमेटी ने दिल्ली की बैठक में विचार किया और उसे स्वीकृत किया। उसके अनुसार ज़िला कांग्रेस कमेटी का चुनाव तो प्रत्यक्ष चुनाव होगा और सभी कांग्रेसी सदस्य मत दे सकेंगे, लेकिन प्रान्तीय कांग्रेस कमेटी का चुनाव सीधा साधारण सदस्यों द्वारा न होकर ज़िला कांग्रेस कमेटियों के सदस्य ही करेंगे। चुनाव की अव्यवस्था आदि रोकने के लिए भी कुछ सलाहें दी गई।

१९३८ की केन्द्रीय असेम्बली

१९३८ में भी केन्द्रीय असेम्बली की कांग्रेस पार्टी का कार्य बहुत सन्तोषजनक रहा। असेम्बली के सदस्यों को संरक्षण और वैदेशिक विभाग की मदों के बारे में १९२४ से ही वोट द्वारा अपनी राय ज़ाहिर करने का अधिकार था। इस साल यह अधिकार छीन लिया गया। इसलिए कांग्रेस पार्टी ने अन्य अनेक पार्टियों के साथ मिलकर यह तय किया कि बजट में भाग ही न लिया जाय। फलतः १५ दिनों का काम डेढ़ दिन में ही समाप्त होगया। सरकार की मांगें गिर गई। वाइसराय ने स्वीकृति देकर सिफारिश के साथ असेम्बली में फ़ाइनेन्स बिल को फिर भेजा, लेकिन असेम्बली ने उसे फिर नामंज़ूर कर दिया। कौंसिल ऑफ़ स्टेट में भी प्रगतिशील दल के सदस्य बजट की बहस के समय उठकर चले गये। शारदा-एक्ट में किये गये संशोधन का कांग्रेस-पार्टी ने पूरा समर्थन किया, जिसका उद्देश्य बाल-विवाह-निषेध क़ानून को और भी प्रभावशाली बनाना था। सरहदी सूबे में यूनिवर्सिटी क़ायम करने का प्रस्ताव पास हुआ। कई काम-रोको-प्रस्ताव वायसराय ने पेश ही नहीं होने दिये। १९३८ के शिमला-अधिवेशन और दिल्ली के विशेषाधिवेशन में इन्कमटैक्स संशोधन बिल के अन्तिम रूप के निर्धारण में कांग्रेस पार्टी का एक विशेष भाग है।

रियासतों की अपूर्व जागृति

हरिपुरा-कांग्रेस का रियासतों सम्बन्धी प्रस्ताव कितना उपयोगी सिद्ध हुआ, इसका निर्देश हम ऊपर कर चुके हैं, लेकिन इसपर कुछ अधिक विस्तार से लिखने की ज़रूरत है। दरअसल इस साल की सबसे अधिक महत्वपूर्ण घटना रियासतों में होनेवाली अपूर्व जागृति है। यद्यपि यह प्रस्ताव प्रत्यक्ष तौर पर रियासती जनता का विरोधी समझा गया था, लेकिन इसका परिणाम दूसरा ही हुआ। इससे रियासती जनता ने स्वाभिमान और आत्मनिर्भरता सीखी। आज इसका परिणाम हमारी आंखों के सामने है। काश्मीर, मैसूर, त्रावणकोर, हैदराबाद, बड़ौदा, तलचर, ढेंकानल, राजकोट, उदयपुर, आदि अनेक रियासतों में स्टेट कांग्रेस या प्रजामण्डल की ओर से जागृति और जन-आन्दोलन का श्रीगणेश हुआ। रियासतों के अधिकारियों ने दमन भी ख़ूब किया। किसी-किसी रियासत में तो दमन ने ब्रिटिश भारत को भी मात कर दिया।

गिरफ्तारियाँ, मारपीट, लूट, लाठी-प्रहार, फ़सलों का जलाया जाना, जनता को हाथियों से रोंदा जाना आदि दर्दनाक समाचारों से अखबारों के कालम भरे जाने लगे। लेकिन कहीं दमन से प्रजा की जागृति नष्ट हुई है ? इस दमन से यह आन्दोलन और भी वढ़ा। यों काँग्रेस कमेटियों का इस आन्दोलन से प्रत्यक्ष सम्वन्ध न था, लेकिन अनेक रियासतों में प्रमुख काँग्रेसी कार्यकर्ताओं ने व्यक्तिगत रूप से काफ़ी भाग लिया। इनमें सरदार पटेल का स्थान सबसे ऊँचा है। राजकोट का आन्दोलन तो उन्हींका चलाया हुआ है। इसमें सिर्फ़ राजकोट के ही नहीं, ब्रिटिश भारत के भी वहुत से काँग्रेसी कार्यकर्ता गिरफ्तार हुए। अखिल-भारतीय देशी राज्य लोक परिषद् के प्रधानमंत्री श्री वलवंतराय मेहता, कुमारी मणिवेन पटेल, कुमारी मृदुला साराभाई आदि विशिष्ट व्यक्ति गिरफ्तार हुए। लेकिन कुछ समय वाद राजकोट के ठाकुर ने सरदार पटेल को निमंत्रण देकर समझौता कर लिया। राजकोट के ठाकुर ने एक उपसमिति द्वारा सिफ़ारिश की गई शासन-सुधार-सम्वन्धी योजना को स्वीकार करने का निश्चय किया। इस आन्दोलन में वदनाम और आन्दोलन को कुचलनेवाले अंग्रेज़ दीवान सर पैट्रिक कैडल वरखास्त कर दिये गये। यह रियासती जनता की वड़ी भारी विजय थी।

राजकोट के इस आन्दोलन में काँग्रेस भी अप्रत्यक्ष तौर पर काफी दिलचस्पी ले रही थी। इसका एक खास कारण यह था कि अंग्रेज़ दीवान रियासतों में भी ब्रिटिश हुकूमत चला रहे थे और राजा व प्रजा में सीधा सम्वन्ध स्थापित होने में वाधक वन रहे थे। ब्रिटिश सरकार की फौज व पुलिस की सहायता भी दमन में ली जाने लगी थी। काँग्रेस तो ब्रिटिश सरकार से भारत की सभी श्रेणियों को मुक्ति दिलाने के लिए प्रतिज्ञावद्ध है। म० गाँधी ने राउण्ड टेवल कांफ्रेंस में काँग्रेस को 'राजाओं की प्रतिनिधि' भी कहा था। महात्मा गाँधी ने रियासतों में ब्रिटिश सरकार के अंग्रेज़ अधिकारियों की प्रमुखता और उनके अनुचित प्रभाव की कठोर शब्दों में निन्दा की। काँग्रेस वर्किंग कमेटी ने वर्धा की दिसम्वर की वैठल में रियासतों के सम्वन्ध में जो महत्त्वपूर्ण घोषणा की थी, उसका एक खास अंश यह है—"कमेटी उन शासकों की कार्रवाईयों की खास तौर पर निन्दा करती है, जिन्होंने ब्रिटिश सरकार की सहायता से अपनी प्रजा को दवाने की कोशिश की है और इस वात का ऐलान करती है कि अगर उत्तरदायी शासन की माँग के लिए चलाये गये रियासती जनता के आन्दोलनों को ब्रिटिश सरकार की पुलिस या फ़ौज की सहायता से दवाने का यत्न किया जायगा तो उस हालत में काँग्रेस को पूरा अधिकार होगा कि वह पुलिस और फ़ौज द्वारा किये जानेवाले अनियंत्रित दमन से जनता की रक्षा करे।" इस प्रस्ताव के प्रारम्भ में रियासतों की जागृति का स्वागत करते हुए शासकों की छत्रच्छाया में ज़िम्मेदार सरकार की स्थापना के आन्दोलन से सहानुभूति प्रकट करके रियासती शासकों की दमननीति

की निन्दा की गई थी। प्रस्ताव के उत्तरार्द्ध में कहा गया था कि "कमेटी हरिपुरा-काँग्रेस के उस प्रस्ताव की ओर फिर ध्यान दिलाना चाहती है, जिसमें काँग्रेस ने रियासतों के सम्बन्ध में अपनी नीति निर्धारित की है। यद्यपि काँग्रेस को इस बात का पूरा अधिकार है कि वह रियासतों में नागरिक स्वतन्त्रता और ज़िम्मेदार सरकार की स्थापना के लिए पूरा काम करे, लेकिन मौजूदा परिस्थिति में काँग्रेस को अपना कार्य-क्षेत्र सीमित रखना पड़ा है और नीति की दृष्टि से काँग्रेस रियासतों के भीतरी झगड़ों में एक संस्था की हैसियत से नहीं पड़ना चाहती। यह नीति जनता की भलाई के लिए बनाई गई थी, ताकि उसमें आत्म-निर्भरता और शक्ति आवे। उस नीति का आशय रियासतों के प्रति काँग्रेस की सद्भावना प्रकट करना भी था और उससे काँग्रेस ने यह भी आशा की कि रियासती शासक खुदबखुद समय को पहचान कर जनता की न्याय-युक्त माँगों को पूरा कर देंगे।······लेकिन इसका यह अर्थ नहीं है कि कांग्रेस उससे हमेशा बाध्य रहेगी। काँग्रेस ने हमेशा यह अपना अधिकार समझा है कि वह जैसा कि उसका कर्तव्य भी है, रियासती जनता को रास्ता बतलावे और अपने प्रभाव से उसके पक्ष का समर्थन करे। रियासतों में जो अब यह जागृति हो रही है, उसके परिणाम-स्वरूप तो कांग्रेस रियासती जनता के और भी निकट आती जायगी।" इस लम्बे प्रस्ताव में आगे ब्रिटिश भारत की प्रजा को रियासतों के सविनय आज्ञाभंग आन्दोलन में भाग न लेने और रियासती आन्दोलनों को अहिंसात्मक रखने की अपील की गई थी।

उड़ीसा की दुर्घटना

रियासतों में उत्तरदायी शासन की माँग का जो आन्दोलन चल रहा है, वह अभी समाप्त नहीं हुआ। निज़ाम हैदराबाद में स्टेट कांग्रेस ने अपना सत्याग्रह किन्हीं कारणों से स्थगित कर दिया, लेकिन यह स्पष्ट कर दिया कि वह निज़ाम-सरकार को समय दे रही है, ताकि वह स्वयं इस प्रश्न पर गंभीरता से विचार कर सके। त्रावणकोर में भी सत्याग्रह स्थगित है और गाँधीजी की सलाह के अनुसार स्टेट-कांग्रेस ने दीवान पर से अपने अभियोग वापस ले लिये हैं। उदयपुर में प्रजा-मण्डल का सत्याग्रह जारी है। बहुत-सी गिरफ्तारियाँ हो चुकी हैं। उड़ीसा की रियासतों में भी आन्दोलन जारी है। रणपुर रियासत में एक भीषण दुर्घटना होगई। अंग्रेज पोलिटिकल एजण्ट श्री बजलगेटी ने जनता के एक जलूस को राजा के महल की ओर आने से रोका। वह जलूस राजा के आगे अपनी माँगों और तक-लीफ़ों का प्रदर्शन करने जा रहा था। भीड़ ने पोलिटिकल एजण्ट की बात नहीं मानी और आगे बढ़ती गई। इसपर उन्होंने अपनी आत्मरक्षा के खयाल से या भीड़

को तितर-बितर करने के ख़याल से गोली चला दी। दो आदमी मर गये। भीड़ भी उत्तेजित हो उठी और उसने पोलिटिकल एजण्ट को मार डाला। कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने बारडोली में जनवरी की बैठक में इस हत्या की निन्दा की। लेकिन ब्रिटिश सरकार इससे शान्त नहीं हुई। उड़ीसा के गवर्नर ने कलकत्ता से फ़ौज बुला ली। वे उड़ीसा में नरेन्द्र रक्षा-विधान भी लागू करना चाहते हैं, लेकिन मालूम हुआ है कि उड़ीसा की काँग्रेसी सरकार इसके विरुद्ध है। संभव है कि इसी प्रश्न पर वैधानिक संकट पैदा होजाय और काँग्रेसी सरकार इस्तीफ़ा दे दे।

सेठ जमनालाल बजाज पर पाबन्दी

जिन रियासतों में आन्दोलन चल रहा है, वह अभी ख़त्म नहीं हुआ कि जयपुर राज्य ने सेठ जमनालाल बजाज के जयपुर-प्रवेश पर पाबन्दी और प्रजामंडल को, जिसके वे सभापति थे, ग़ैरक़ानूनी करार देने की आज्ञा जारी करके जयपुर में भी सत्याग्रह-आन्दोलन को निमंत्रण दे दिया है। श्री जमनालाल बजाज जयपुर प्रजामण्डल के अकाल-निवारण के काम को देखने व सीकर-आन्दोलन के बन्दियों की रिहाई के बारे में बातचीत करने जा रहे थे। सेठजी ने एक मास का समय जयपुर सरकार को अपनी आज्ञा पर पुनर्विचार के लिए दिया। वर्किंग कमेटी ने बारडोली की बैठक में जयपुरी नीति की तीव्र निन्दा की। गाँधीजी ने दो लेखों में जयपुर नरेश को अंग्रेज़ मिनिस्टरों के हाथ का खिलौना बताते हुए अंग्रेज़ दीवान के प्रभुत्त्व और नीति की फिर तीव्र निन्दा की और रियासती जनता को आत्म-सम्मान के लिए सत्याग्रह की सलाह दी। श्री जमनालाल बजाज ने दी हुई मियाद गुज़र जाने के बाद १ फ़रवरी को जयपुर कूच कर दिया। बी. बी. एण्ड. सी. आई. रेलवे की सीमा में जयपुर स्टेशन पर ही पुलिस अधिकारियों ने उन्हें गिरफ्तार कर लिया। लेकिन दूसरे दिन मथुरा ले जाकर छोड़ दिया। सेठजी ५ फ़रवरी को फिर जयपुर रवाना हुए और वहाँ गिरफ्तार होगये लेकिन फिर रिहा कर दिये गये। १२ फ़रवरी को वे फिर जयपुर की ओर गये और गिरफ्तार कर लिये गये। प्रजामण्डल की ओर से सत्याग्रह शुरू होगया है। कई जत्थे गिरफ्तार हो चुके हैं। अब गांधीजी की गंभीर और अर्थपूर्ण लेखनी रियासतों में सर्वोच्च सत्ता के प्रतिनिधि अंग्रेज़ अधिका-रियों की दमननीति और हस्तक्षेप के विरुद्ध आग उगलने लगी है। गाँधीजी ने जयपुर के प्रश्न को अखिल-भारतीय रूप देने और काँग्रेस के स्वयं इस प्रश्न को हाथ में लेने की संभावना प्रकट की। इन्हीं दिनों राजकोट के ठाकुर और सरदार पटेल के जिस समझौते का हम ज़िक्र कर चुके हैं, वह टूट चुका था। राजकोट के ठाकुर ने सरदार पटेल द्वारा नियुक्त सदस्यों को रखने से इन्कार कर दिया। इसमें पश्चिमी रिया-

सतों के रेजिडेण्ट मि० गिब्सन का पूरा हाथ था, जैसा कि बाद में प्रजामण्डल द्वारा प्रकाशित ठाकुर, अंग्रेज़ दीवान सर पैट्रिक कैडल, और रेजिडेण्ट मि० गिब्सन के पत्र-व्यवहार से भी प्रकट होगया।

सत्य के पुजारी महात्मा गांधी के लिए वचन भंग जैसा कोई बड़ा पाप नहीं। उन्होंने एक के बाद एक निकलने वाले लेखों में ब्रिटिश सरकार की सर्वोच्च सत्ता को खूब आड़े हाथों लिया। लोग आश्चर्य करने लगे कि रियासतों में हस्तक्षेप न करने की नीति के प्रमुख समर्थक गांधीजी अब उग्रतम रुद्र रूप दिखा रहे हैं। सरदार पटेल ने तो खुल्लमखुल्ला कहा कि हमारी लड़ाई राजकोट के ठाकुर से नहीं, राजकोट के रणक्षेत्र में ब्रिटिश सरकार से है। इधर सदा शान्त रहनेवाले सेठजी भी खूब गरम होरहे थे। जयपुर-सत्याग्रह प्रारम्भ करने से पहले उन्होंने जो भाषण दिये, वे वीर योद्धा सेनापति को ही शोभा देते थे। उन्होंने एक भाषण में कहा कि "आज सात समुद्र पार से आनेवाला अंग्रेज दीवान सर बीचम मुझे, जिसकी जन्मभूमि जयपुर है, किस हैसियत से बाहरी आदमी कह सकता है ?"

राजकोट में फिर रणभेरी बज उठी। अबके रेजिडेण्ट ने दमन में खूब सहायता दी। उसीके इशारे पर तो यह लड़ाई शुरू की गई थी। पूज्य माता कस्तूरबा गांधी भी सत्याग्रह में पहुँचीं और गिरफ्तार हो गईं। कुमारी मणिबेन पटेल (सरदार पटेल की पुत्री) भी उनके साथ गिरफ्तार हो गईं। गिरफ्तारी, तलाशी, मारपीट, जुरमाना, १४४ धारा तथा दूसरे आर्डिनेंसों का दौरदौरा चल रहा है। गांधीजी यद्यपि आन्दोलन-क्षेत्र में मौजूद नहीं हैं, लेकिन वस्तुतः सूत्र-संचालन वही कर रहे हैं। ऐसा मालूम होता है कि यह महान् सेनापति फिर रणक्षेत्र में कूद पड़ा है और किसी महान् समर का सूत्रपात करनेवाला है। जब ब्रिटिश सरकार की सर्वोच्च सत्ता ने रियासतों के मैदान पर कांग्रेस से लड़ाई प्रारम्भ कर दी,तो गांधीजी, ब्रिटिश भारत और कांग्रेस पीछे कैसे रह सकते थे, गांधीजी ने एक महान् वैधानिक संकट पैदा करने की संभावना बताते हुए ब्रिटिश सरकार को धमकी दी कि आज कांग्रेस और ब्रिटिश सरकार एक-दूसरे के मित्र हैं और रियासतें ब्रिटिश सरकार की आसामी। ऐसी स्थिति में यह असह्य है कि कांग्रेस से इन्हीं रियासतों में शत्रु और बेगाने आदमी की भाँति बर्ताव किया जाय। यद्यपि गवर्नमेण्ट आफ़ इण्डिया एक्ट द्वारा कांग्रेसी मंत्रियों को रियासतों पर कुछ भी अधिकार प्राप्त नहीं हैं, तथापि मंत्रियों के कुछ ऐसे अधिकार तथा कर्तव्य उक्त एक्ट से बाहर भी हैं। "अगर यह कल्पना कर ली जाय कि राजकोट में देश के तमाम बड़े-बड़े गुण्डे जमा होजायँ, तो बम्बई के मंत्रि-मण्डल को ब्रिटिश सरकार से इसके विरुद्ध शिकायत करने का पूरा हक़ है। यदि

उसकी बात न सुनी जाय, तो उसे इस्तीफ़ा दे देना चाहिए। जिस प्रकार महामारी के फैलने के समय काँग्रेसी सरकारें अपनी भौगोलिक सीमा में स्थित रियासतों को सहायता दिये विना नहीं रह सकतीं, उसी तरह इस मुसीबत के समय भी वे चुप नहीं रह सकतीं। इसलिए अगर उड़ीसा के मंत्री २६ हज़ार निराश्रितों को फिर तेल-चर नहीं भिजवा देते, तो वे आराम से अपनी कुर्सियों पर नहीं बैठ सकते। सर्वोच्च सत्ता या तो कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों की माँग को माने या अपने मंत्रियों को खो दे।" पदग्रहण के वाद से कांग्रेस ने जो शक्ति तथा अधिकार प्राप्त कर लिया था, उसके साथ त्यागपत्र देकर ब्रिटिश भारत में महान् वैधानिक संकट पैदा करने की गंभीर अर्थपूर्ण धमकी भारत-सरकार पर क्या प्रभाव डालेगी, यह शायद दो एक महीनों तक पाठकों को प्रकट हो जायगा। गाँधीजी ने इसी लेख में रियासती जनता से अहिंसात्मक रहने की अपील करते हुए लिखा था कि "उसकी विजय अवश्यम्भावी है, यहाँतक कि ठाकुर साहव को भी वह रेजिडेण्ट के पंजे से स्वतंत्र कर सकेगी। वह इस विजय से साबित कर दिखायेगी कि वह कांग्रेस की सर्वोच्च सत्ता के मातहत राजकोट की सच्ची शासक है।" रियासतों के मामले में काँग्रेस के लिए "सर्वोच्च सत्ता" का शायद यह पहली वार प्रयोग किया गया था। कुछ साल पहले ब्रिटिश भारत जिस आन्दोलन का क्षेत्र वना हुआ था, उस युद्ध का क्षेत्र अव भारतीय भारत हो गया है। लड़नेवाले वही दोनों हैं—काँग्रेसी और अंग्रेज़ सरकार।

ज्यों-ज्यों रियासती आन्दोलन तीव्र होता गया, रियासतों का दमन भी बर्बरता की सीमा तक पहुँचने लगा। गाँधीजी ने राजकोट की घटनाओं के लिए रेज़िडेण्ट पर 'सुसंगठित गुण्डेपन' का आरोप लगाया। सत्याग्रहियों को दूर-दूर लेजाकर नंगा करके पीटने और विना सहारे छोड़ने की आम खबरें आने लगीं। लीम्बड़ी से बड़े रोमांचकारी समाचार आये। प्रजापरिषद् के अधिवेशन पर गुण्डों ने चाकुओं, तलवारों और लाठियों से भयंकर हमला कर सैकड़ों आदमियों को घायल कर दिया। सभापति दरवार गोपालदास को स्टेशन पर सैकड़ों गुण्डों ने घेर लिया। प्रजा-परिषद् के आदमी ढूँढ-ढूँढ कर मारे व पीटे जानें लगे। एक गाँव के चारों ओर सशस्त्र गुण्डों का पहरा और फिर गांव की लूट-मार और चोरी की खबरें भी मिलीं। इधर श्री चूडगर ने एक पत्र के द्वारा गाँधीजी को वताया कि जयपुर के प्रधान मन्त्री सर बीचम ने उन्हें वातचीत में कहा था कि अहिंसात्मक युद्ध भी तो एक प्रकार का वलप्रयोग है, उसका मुक़ावला मैं दूसरे वल—मशीनगन से करूँगा। गाँधीजी ने इस पर लिखा कि "काँग्रेस में ताक़त होते हुए वह इन्तजार करती रहे, चुपचाप देखती रहे और जयपुर की प्रजा को मानसिक तथा नैतिक भूख से मरने दे—खासकर जब कि एक प्राकृतिक अधिकार पर लगाई गई ऐसी पावन्दी के पीछे ब्रिटिश-साम्राज्य

मुस्लिम लीग से चर्चा भंग

मुस्लिम लीग से समझौते की जो चर्चा चल रही थी, उसपर यह प्रस्ताव पास किया गया—"वर्किंग कमेटी ने मुस्लिम लीग की कराची की बैठक में पास हुए प्रस्ताव पर ग़ौर किया। वर्किंग कमेटी की राय है कि मुस्लिम लीग की कौंसिल ने अपनी जो स्थिति बना ली है, उसे ध्यान में रखते हुए लीग के साथ पत्र-व्यवहार जारी रखने से कोई लाभ न होगा। राष्ट्रपति को इस बात का अधिकार दिया गया कि वे श्री जिन्ना को पत्र-व्यवहार बन्द कर देने के लिए लिख दें।" राष्ट्रपति सुभाष चन्द्र बोस ने १६ दिसम्बर १९३८ को श्री जिन्ना को नीचे लिखा पत्र भेजा:—

"वर्किंग कमेटी ने आपके १८ अक्तूबर १९३८ के पत्र पर विचार किया और उसके द्वारा आपने अपना जो निश्चय ज़ाहिर किया, उसपर खेद प्रकट किया। चूंकि वर्किंग कमेटी का मुस्लिम लीग की कौंसिल से इस बात पर इत्तफ़ाक़ होना संभव नहीं हो रहा है कि समझौते की बातचीत की शर्तें क्या हों और चूंकि कौंसिल का आग्रह है कि समझौते की बातचीत शुरू करने से पहले उन शर्तों का तय हो जाना जरूरी है, इसलिए वर्किंग कमेटी हिन्दू-मुस्लिम समस्या को हल करने के लिए समझौते की बातचीत शुरू करने की दिशा में अब कुछ भी करने में असमर्थ है।..."

यद्यपि मुस्लिम लीग से चर्चा बन्द होगई, लेकिन वर्किंग कमेटी हिन्दू-मुस्लिम समस्या से उदासीन नहीं होगई। कमेटी ने बारडोली की बैठक में गंभीरता से एक योजना पर विचार किया। लेकिन, कांग्रेस के प्रधान मंत्री आचार्य कृपलानी के शब्दों में, "कार्यसमिति इस नतीजे पर पहुँची कि इस सम्बन्ध में फिलहाल कोई वक्तव्य प्रकाशित न किया जाय, क्योंकि इससे कोई ख़ास फायदा न होगा और कोई सर्वसम्मत समझौता होने में देर हो जायगी। इसलिए वक्तव्य प्रकाशित न करते हुए भी वह यह फिर स्पष्ट कर देना चाहती है कि वह तमाम जातियों के साथ न्याय करने की व समय-समय पर उठनेवाली आशंकाओं को दूर करने के लिए दिये गये आश्वासनों के अनुसार अपनी कोशिशें जारी रक्खेगी।" इसी अरसे में पं० जवाहरलाल नेहरू ने श्री जिन्ना को यह सम्मति दी कि कांग्रेसी सरकारों पर मुस्लिम-लीग जो अभियोग लगा रही है, उन्हें एक निष्पक्ष पंचायत के सामने जाँच के लिए रक्खा जाय; लेकिन श्री जिन्ना ने इसका कोई सन्तोषजनक उत्तर न दिया।

राष्ट्र का पुनर्निर्माण

श्री सुभाष के राष्ट्रपति-काल की एक और महत्त्वपूर्ण घटना की ओर निर्देश करना भी आवश्यक दीखता है। हम पहले कह चुके हैं कि कांग्रेस वर्किंग कमेटी अब सिर्फ़ आन्दोलनकर्त्री मात्र न रही थी। उसके हाथ में ब्रिटिश भारत के ११ में से

८ प्रान्तों का शासन-सूत्र भी था, इसलिए उसे देश के सामने आनेवाली सभी समस्याओं का भी हल करना था। भारत-सरकार की व्यावसायिक नीति से भारत अभी तक उद्योग-धन्धों में तरक्की न कर सका था। प्रान्तीय कांग्रेसी सरकारों ने इधर बहुत गंभीरता से ध्यान दिया। कांग्रेस वर्किंग कमेटी भी इस प्रश्न को उपेक्षा की दृष्टि से नहीं देख सकती थी। पं० जवाहरलाल नेहरू की अध्यक्षता में एक कमेटी बनाई गई, जिसका काम औद्योगिक योजनाओं को तैयार करना था। इसने सर एम० विश्वेश्वरय्या, प्रो० मेघनाद साहा, सर पुरुषोत्तमदास ठाकुरदास, डा० वी० एस० दुबे, श्री अम्बालाल साराभाई, प्रो० के० टी० शाह, श्री कुमारप्पा आदि व्यवसायियों, अर्थशास्त्रियों और वैज्ञानिकों का सहयोग भी प्राप्त कर लिया। छोटे और बड़े धन्धे, खेती, पानी से बिजली बनाने के साधन, कम खर्च पर आमदरफ्त का इन्तज़ाम, नदियों के मार्ग बदल कर बाढ़ों की रोक और सार्वजनिक स्वास्थ्य-रक्षा आदि सब इसका अधिकार-क्षेत्र है। यह आशा की जाती है कि प्रान्तीय सरकारों के सहयोग से निकट-भविष्य में यह काम सफल होगा। इसने एक प्रश्नावली बनाकर देश के अर्थशास्त्रियों, वैज्ञानिकों, व्यवसायियों, व्यापारियों, राजनीतिज्ञों आदि के पास भेज दी है।

अन्य प्रगतियाँ

कांग्रेस की प्रगति का इतिहास पढ़ते समय हमें कांग्रेस द्वारा स्थापित संस्थाओं की प्रगति को न भूल जाना चाहिए, जो अपने-अपने क्षेत्र में बहुत महत्त्वपूर्ण कार्य कर रही हैं। चरखा-संघ १,७७,४९६ कत्तिनों और १३,५९८ बुनकरों के अलावा हज़ारों ओटनेवाले, धुननेवाले, रंगने और धोनेवालों को रोज़ी दे रहा है। चरखा-संघ इस वर्ष कत्तिनों की मजूरी बढ़ाने पर विशेष ध्यान दे रहा है। ग्रामोद्योग-संघ भी किसानों तथा ग्रामीणों के लिए नित नये प्रयोग कर एक नया अर्थशास्त्र और नया विज्ञान तैयार कर रहा है, जिसका आधार पूँजीवाद न होकर ग्रामीण किसान का हित है। शिक्षाबोर्ड शिक्षा के क्षेत्र में प्रगति कर रहा है। कांग्रेस-द्वारा नियत मजूर समिति भी काम कर रही है। गांधीसेवा-संघ की सेवायें तो राष्ट्र की प्रगति के इतिहास में अद्भुत स्थान रखती है। पं० जवाहरलाल द्वारा स्थापित सिविल लिबर्टी यूनियन का काम भी उसी उत्साह से जारी है। हरिजन सेवक संघ सामाजिक उन्नति की ओर—राष्ट्र के एक बड़े भारी अंग के विकास की ओर प्रगतिशील है। आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के वैदेशिक और आर्थिक विभागों का कार्य भी ठीक चल रहा है। वैदेशिक विभाग ने चीन-जापान युद्ध के सम्बन्ध में बहुत दिलचस्पी ली। भारत में १२ जून को चीन-दिवस मनाया गया। डाक्टरों का एक मिशन भी चीनियों की सेवा के लिए कांग्रेस ने भेजकर अपनी ओर से अन्तर्राष्ट्रीय सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न किया।

: ४ :

गांधीजी का अनशन व त्रिपुरी कांग्रेस

राष्ट्रपति चुनाव का संकट

कांग्रेस के आन्तरिक संगठन की दृष्टि से त्रिपुरी-कांग्रेस के लिए सभापति के चुनाव ने अकस्मात् ही कुछ अवांछनीय रूप प्राप्त कर लिया। विभिन्न प्रान्तों के प्रतिनिधियों ने मौलाना अब्बुलकलाम आजाद; श्री सुभापचन्द्र बोस और डा० पट्टाभि सीतारामैया के नाम इस पद के लिए पेश किये। मौलाना आजाद ने अपना नाम वापस ले लिया। श्री सुभाष बोस ने एक वक्तव्य निकालकर चुनाव से अपना नाम वापस लेने में न केवल अनिच्छा प्रकट की, बल्कि फ़ेडरेशन-विरोध के सम्बन्ध में अपना दृढ़ मत प्रकट करके एक तरह से प्रतिनिधियों से अपने को ही पुन:निर्वाचित करने की अपील भी की। वर्किंग कमेटी के कुछ सदस्यों ने एक वक्तव्य निकालकर बिना असाधारण अवस्थाओं के एक ही व्यक्ति के पुनर्निर्वाचन का विरोध किया। इस-पर कांग्रेसी नेताओं में एक अवांछनीय-सा विवाद चल पड़ा। चुनाव हुआ और सुभाष बाबू को करीब २०० मत ज्यादा मिले। यद्यपि कुछ व्यक्तियों ने इसे वाम और दक्षिण पक्ष का रूप देने की कोशिश की और महात्मा गांधी ने भी इसे अपने नीति व सिद्धान्तों की पराजय समझकर दक्षिण-पक्षी नेताओं को नई वर्किंग कमेटी से अलग रहने की सलाह दी, तथापि वस्तुत: यह चुनाव गांधीवाद अथवा दक्षिण या वाम-पक्ष की कसौटी पर नहीं लड़ा गया था। बहुत-से प्रतिनिधियों ने भिन्न-भिन्न कारणों से चुनाव में मत दिये। चुनाव के बाद दक्षिणपक्षी नेताओं से विभिन्न कारणों से रुष्ट कार्यकर्ताओं ने अवांछनीय स्थिति को और भी उग्र रूप दे दिया। श्री सुभाष बाबू के गांधीजी से मुलाकात होनेपर लोगों को आशा बन्ध रही थी, लेकिन मालूम पड़ता है कि स्थिति अन्दर-ही-अन्दर बहुत ख़राब हो चुकी थी। २२ फरवरी को वर्किंग कमेटी की बैठक थी कि अकस्मात् श्री सुभाष बीमार होगये। बाकी सब सदस्य वर्धा पहुँचे। गांधीजी से और परस्पर विचार-विनिमय के बाद सरदार पटेल, डा० राजेन्द्र प्रसाद, आचार्य कृपलानी, मौ० अब्बुलकलाम आजाद, श्री भूलाभाई देसाई, श्री जमनालाल बजाज, श्रीमती सरोजिनी नायडू, श्री पट्टाभि सीतारामैया, श्री जयरामदास दौलतराम, श्री हरिकृष्ण मेहताब, श्री शंकरराव देव और ख़ान

अब्दुल गफ्फार खाँ ने इस्तीफ़ा दे दिया। उन्होंने राष्ट्रपति को लिखा कि "हमने हाल की तमाम घटनाओं पर पूरी तौर पर ग़ौर कर लिया है और राष्ट्रपति-चुनाव पर आपके वक्तव्य भी पढ़े हैं।.........अब इतना कहना ही पर्याप्त होगा कि हम लोग इस मौक़ेपर कार्यसमिति से इस्तीफ़ा देना अपना कर्तव्य समझते हैं और इसीलिए इस्तीफ़ा दे रहे हैं। आप बड़ी खुशी से ऐसी वर्किंग कमेटी बना सकते हैं, जो आपकी समिति व नीति के अनुकूल हो। हम समझते हैं कि अब ऐसा मौका आ गया है, जबकि देश के सामने साफ़-साफ़ नीति पेश की जानी चाहिए। वह नीति कांग्रेस के विभिन्न दलों या विचारों की खिचड़ी न हो।.........आपको विश्वास रखना चाहिए कि हम लोग जिन बातों में आप से सहमत होंगे, आपके साथ सहयोग करने के लिए तैयार रहेंगे।" यह इस्तीफ़ा केवल सैद्धान्तिक मतभेद पर न था, उसके अलावा भी कुछ और महत्त्व रखता था। पं० जवाहरलाल नेहरू अपने उग्र विचारों के लिए प्रसिद्ध हैं। उन्होंने भी वर्किंग कमेटी से इस्तीफ़ा दे दिया और एक लम्बा वक्तव्य प्रकाशित किया, जिससे स्थिति पर कुछ प्रकाश पड़ता है। उसके कुछ अंश निम्नलिखित हैं :—"सुभाष बाबू के दुवारा राष्ट्रपति चुने जाने के मैं खिलाफ़ था। मैं भली-भांति जानता था कि इसके क्या नतीजे निकलेंगे। प्रजातन्त्र संस्थाओं में चुनाव-प्रतिस्पर्धा कोई अस्वाभाविक बात नहीं, लेकिन आजकल की अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और भारत में राजनैतिक संकट की सम्भावना देखकर आजकल संयुक्त मोर्चे की सबसे ज्यादा ज़रूरत थी।" वाद-विवाद में बराबर प्रयुक्त होनेवाले 'वाम' और 'दक्षिण पक्ष' का ज़िक्र करते हुए आपने लिखा कि "इनसे इस समय हमें कोई मतलब नहीं। मैं जिन कारणों से इस नतीजे पर पहुँचा हूँ, उनका बताना शायद कठिन होगा और शायद अवांछनीय भी। चुनाव संघर्ष के दिनों में सुभाष बाबू ने अपने साथियों पर ऐसे इलज़ाम लगाये, जिन्हें सुनकर मुझे आश्चर्य और अत्यन्त खेद हुआ। जहाँतक मुझे मालूम है, वे निराधार थे। अगर वे सच हैं, तो वे कांग्रेस का नेतृत्व करने के बिलकुल योग्य नहीं। अगर वे सच्चे नहीं हैं, तो उन्हें बिना किसी शर्त के वापस लेना चाहिए। इसके सिवा और कोई बीच का रास्ता हो ही नहीं सकता। अविश्वास और सन्देह के वातावरण में रहकर उनके लिए कार्य करना कठिन है।.........मैंने सुभाष बाबू से कहा था कि 'दक्षिण' और 'वाम' शब्दों के ग़लत प्रयोग को ध्यान में रखते हुए उन्हें लिखित रूप में यह बता देना चाहिए कि राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय मामलों में उनकी क्या स्थिति रहेगी, ताकि विचारविमर्श में सहायता मिल सके, लेकिन उन्होंने यह नहीं किया।.........इस समय वर्किंग कमेटी भंग हो चुकी है। राष्ट्रपति को जैसा कि वे चाहते हैं, कांग्रेस के सामने अपनी योजना को रखने की खुली छुट्टी है।.........इन परिस्थितियों में मुझे खेद है

कि मैं स्वयं भी उनकी मदद न कर सकूँगा।" आगे इसी वक्तव्य में पंडितजी ने अव्यवस्था की निन्दा करते हुए कहा था कि "मैं उग्रदल का समाजवादी था और अब भी हूँ। लेकिन इसके साथ ही मैं महात्मा गांधी के उस शान्तिपूर्ण अहिंसातत्त्व को भी स्वीकार करता हूँ, जिसका गत २० वर्षों से बड़ी सफलता से प्रयोग किया जाता रहा है।"

यह संकट काँग्रेस के इतिहास में अभूतपूर्व था। सारा देश उन कर्णधारों के इस्तीफ़े का समाचार सुनकर स्तब्ध रह गया, जो पिछले २० सालों से भारतवर्ष के राष्ट्रीय संग्राम के महान् सेनापति थे और जिनपर देश को पूर्ण विश्वास था। श्री सुभाष बाबू ने उनके इस्तीफ़े स्वीकार कर लिये। फलतः कांग्रेस पार्लमेण्टरी समिति का अस्तित्व भी नहीं रहा। त्रिपुरी काँग्रेस से ठीक पहले इस आन्तरिक संकट ने एक ऐसी नाज़ुक हालत पैदा कर दी, जिस की किसीने कल्पना भी न की थी। त्रिपुरी में क्या होगा? क्या सब पुराने महारथी कांग्रेस से अलग हो जावेंगे? क्या राष्ट्रपति नई कार्यसमिति बनावेंगे या स्वयं इस्तीफ़ा दे देंगे? यही प्रश्न थे, जो त्रिपुरी कांग्रेस के प्रतिनिधियों और कांग्रेसियों को परेशान कर रहे थे। कांग्रेस से भिन्न राजनैतिक दल, सरकारी अधिकारी और विदेशों के राजनीतिज्ञ भी कांग्रेस के इस संकट में दिलचस्पी ले रहे थे और उत्सुकता से घटनाक्रम की प्रतीक्षा कर रहे थे।

गांधीजी का आमरण अनशन

यह परिस्थिति स्वयं कम विषम न थी, लेकिन अकस्मात् अकल्पित रूप से एक और भीषण घटना ने सारे देश का ध्यान अपनी ओर खींच लिया। यह घटना थी राजकोट के सम्बन्ध में महात्मा गाँधी का आमरण अनशन का निश्चय। परन्तु इसके लिए हमें कुछ दिन पीछे लौट चलना चाहिए। राजकोट के दुबारा सत्याग्रह की चर्चा हम पीछे कर चुके हैं। हम यह भी लिख चुके हैं कि गाँधीजी इसमें व्यक्तिगत रूप से काफ़ी दिलचस्पी ले रहे थे। राजकोट दरबार के अलावा उन्होंने रैजिडैण्ट पर भी सत्याग्रहियों के साथ भयंकर ज्यादती करने के आरोप लगाये थे। इसी सिलसिले में फरवरी के अन्तिम सप्ताह में राजकोट के रैज़िडैण्ट मि० गिवसन से उनकी तार द्वारा बातचीत चल रही थी। रैजिडैण्ट ने पुलिस व अपने ऊपर लगाये गये आरोपों को बिलकुल असत्य बताया। गांधीजी ने उनसे शिकायत की थी कि कैदियों के साथ दुर्व्यवहार किया जा रहा है। इन आरोपों की स्वयं जांच करने के लिए गांधीजी २५ फरवरी को वर्धा से राजकोट की ओर रवाना होगये। इससे पहले उन्होंने सरदार पटेल को राजकोट-सत्याग्रह स्थगित करने की सलाह दी, ताकि शान्त वातावरण में जांच हो सके। इसके अनुसार सरदार पटेल ने सत्याग्रह स्थगित करवा

दिया। इन दिनों गांधीजी की मनोदशा क्या थी, यह उनके तारों व वक्तव्य के, जो रवानगी से पहले दिया गया था, निम्न उद्धरणों से पता चलता है—"मैं सचाई की खोज और शान्तिप्रतिष्ठाता के रूप में आ रहा हूँ। मेरी गिरफ्तार होने की इच्छा नहीं है। मैं स्वयं सारी बातें जानना चाहता हूँ। अगर सहकारियों पर झूठे आरोप लगाने का दोष सिद्ध होगा, तो मैं उसका प्रायश्चित्त करूँगा।" "राजकोट के ठाकुर के वचनभंग से मुझे बड़ी तकलीफ़ हुई। शायद पूरी बात हम लोगों को मालूम नहीं हुई कि किन अवस्थाओं में लाचार होजाने के कारण राजकोट के ठाकुर साहब को जनता को दी गई प्रतिज्ञा भंग करनी पड़ी। मैं यह कहता हूँ कि अगर सारे हिन्दुस्तान का नहीं, तो कम-से-कम काठियावाड़ के राजाओं का यह कर्तव्य है कि वे भूल-सुधार करवायें। अगर विश्वास ही न रहा तो फिर कोई सम्मानजनक पारस्परिक समझौता ही असंभव हो जायगा। जब मैं विश्वास-भंग देखता हूँ, जैसाकि इस मामले में हुआ है, तो मुझे अपना जीवन भार-सा मालूम होने लगता है।"

राजकोट के ठाकुर को अल्टीमेटम

२७, २८ फ़रवरी और १ मार्च को महात्माजी ने स्वयं पुलिस के अत्याचारों की जांच की। राजकोट के ठाकुर ने २६ दिसम्बर को सुधारसमिति बिठाने की जो घोषणा की थी, उसकी रोशनी में ठाकुर के पिछले व्यवहार की भी जाँच की। १ मार्च तक भी किसी ने यह नहीं सोचा था कि घटनाचक्र तेजी से किसी महान् संकट की ओर जारहा है।

महात्मा गांधी ने खूब विचार और गम्भीर चिन्तन के बाद राजकोट के ठाकुर को एक पत्र लिखा। इसमें उन्होंने निम्नलिखित सात माँगें पेश कीं—(१) ता० २६ दिसम्बर को जिस घोषणा द्वारा प्रजा को शासनाधिकार देने पर विचार करने के लिए एक सुधारसमिति नियत होने की बात कही गई थी, उसे पुनरुज्जीवित किया जाय। (२) ता० २१ जनवरी का वह नोटिस रद किया जाय, जिसके द्वारा पहले नोटिस का खण्डन किया गया था। (३) प्रजापरिषद् के ५ प्रतिनिधियों को सुधारसमिति में लिया जाय और उनमें से एक सत्याग्रह आन्दोलन के नेता श्री ढेबर हों। (४) शासन सुधारसमिति के अध्यक्ष भी श्री ढेबर हों। (५) कमेटी के तीन सरकारी प्रतिनिधियों को वोट देने का अधिकार न हो। (६) राजकोट एडवाइज़री कौंसिल २६ दिसम्बर की घोषणा की भावना का पालन करे और शासन सुधारसमिति के सदस्यों की नियुक्ति गांधीजी की सलाह से की जाय। (७) सब सत्याग्रही आज ही (गुरुवार) रिहा कर दिये जावें, जुरमाने वापिस कर दिये जावें और दमनकारी आज्ञायें वापस लेली जावें। इन सात माँगों का उल्लेख

करने के बाद गांधीजी ने लिखा कि अगर कल शुक्रवार दोपहर के १२ बजे तक आ
मेरी माँगें स्वीकार न कर सकें, तो मेरा अनशन शुरु होजायगा और तबतक जारी
रहेगा, जबतक कि मेरी माँगें स्वीकृत न हो जावें।

महात्मा गांधी की इस सम्बन्ध में जो मनोदशा थी, उसका कुछ परिचय ऊपर
दिया जा चुका है। उन्होंने २ मार्च को पत्र-प्रतिनिधियों की बातचीत में अपनी
मनोदशा बिलकुल उंडेल दी। उन्होंने कहा कि—

"इस नाजुक मौक़े पर तो मैं सिर्फ़ यही कहना चाहूँगा कि रातभर के जागरण
के बाद मैं इस परिणाम पर पहुँचा हूँ कि जो लड़ाई स्थगित हो चुकी है, उसे फिर
से शुरू न करना हो और जिन अत्याचारों के बारे में मैंने बहुत-कुछ सुना है और
जिनका मुझे अखबारों को दिये हुए अपने वक्तव्य में भी उल्लेख करना पड़ा है, उन्हें
भी फिर से शुरु न कराना हो, तो मुझे इस मर्मान्तिक वेदना का अन्त करने के लिए
कोई कारगर उपाय करना चाहिए—और, ईश्वर ने मुझे यह उपाय बतला दिया।"

इसी बातचीत के सिलसिले में उन्होंने कहा कि—"यह भी याद रहना चाहिए
कि मेरा राजकोट व उसके शासकों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। ठाकुर साहब को अपने
पुत्र की भांति समझते हुए मुझे उनके स्वभाव को बदलने का अधिकार है। वचन-
भंग मुझे अन्दर तक हिला देता है, विशेषकर तब, जबकि मेरा भी वचन करनेवा
से सम्बन्ध हो और यदि इसे ठीक करने में मुझे अपना जीवन भी देना पड़े, तो मैं ए
पवित्र व गम्भीर वचन को पूरा कराने के लिए उसे देने को तैयार हूँ।"

आमरण अनशन प्रारम्भ

गाँधीजी को ३ मार्च शुक्रवार १२ बजे तक राजकोट ठाकुर का कोई उत्तर नहीं
मिला। उन्होंने १२ बजे प्रार्थना के साथ राष्ट्रीय शाला में महान् अग्निपरीक्षा का
व्रत शुरू कर दिया। करीब १॥ बजे ठाकुर सा० का उत्तर मिला, जिसमें गांधीजी
के समिति-सम्बन्धी परामर्श को २६ दिसम्बर की घोषणा के अनुकूल न मानते हुए
मानने से इन्कार किया गया था। रियासत के शासन की सारी जिम्मेदारी अपनी
मानते हुए किसी दूसरे के हस्तक्षेप की इजाजत देने में भी असमर्थता प्रकट की गई
थी। गांधीजी ने इस उत्तर को पढ़कर कहा कि "यह पत्र तो आग में घी डालने के
समान है। मुझे आशा है कि मैं प्रसन्नतापूर्वक इस अग्निपरीक्षा में उत्तीर्ण होऊँगा। मैं
यह भी जानता हूँ कि जो काम मेरे जीवन में नहीं हुआ, वह मेरे बलिदान के बाद
अवश्य पूरा होगा।" काठियावाड़ के राजाओं और राजनीतिज्ञों की ओर निर्देश
करते हुए उन्होंने कहा कि "मेरे व्रत से वे अपनी राजनीति को शुद्ध और पवित्र
बनाने की शिक्षा लें।"

वायसराय ने हल ढूँढ निकाला

गांधीजी के इस आमरण अनशन के समाचार ने सारे देश में एक तहलका सा मचा दिया। राष्ट्रपति सुभास बावू ने ५ मार्च को राजकोट-दिवस मनाने की आज्ञा दी। यह दिवस तमाम मुल्क में बड़े उत्साह के साथ मनाया गया। सारे देश ने सरकार से भारत की सर्वश्रेष्ठ विभूति की प्राणरक्षा करने के लिए हस्तक्षेप करने का अनुरोध किया। महात्मा गांधी के आमरण अनशन ने केवल ३५ करोड़ भारतीयों के हृदय को ही नहीं हिला दिया था, लेकिन भारत-सरकार भी उससे चिन्ता में पड़ गई थी। अनेक प्रान्तीय सरकारों ने स्थिति की भीषणता और उनके स्तीफ़े देने की संभावना से केन्द्रीय सरकार को परिचित करा दिया था। ब्रिटिश सरकार भी परेशान थी, सारी ज़िम्मेदारी उसी पर डाली जा रही थी, सर्वोच्च सत्ता के नाते उसका फ़र्ज़ है कि वह इस मामले में कांग्रेस से सहयोग करे। महात्मा गांधी के शब्दों में यह कहा जाने लगा था कि यदि सर्वोच्च सत्ता प्रान्तों में कांग्रेस का सहयोग चाहती है, तो उसे रियासतों में भी कांग्रेस से मित्रभाव रखना होगा। यदि वह वहाँ मित्रभाव नहीं दिखा सकती, तो उसे प्रान्तों में कांग्रेस के सहयोग की आशा छोड़ देनी चाहिए। वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने स्थिति की भीषणता समझने में देर नहीं की। वे एकदम अपना राजपूताने का दौरा स्थगित करके दिल्ली पहुँच गये। रेज़िडेण्ट की मार्फ़त गाँधीजी ने वायसराय को स्थिति से पूर्णतः परिचित कराया। वायसराय ने स्थिति की गंभीरता को देखते हुए विचार-विनिमय के बाद शीघ्र ही निर्णय किया और गांधीजी को रेज़िडेण्ट की मार्फ़त निम्न आशय का जवाब दिया—"मैं आपकी स्थिति समझता हूँ। आप वचनभंग को बहुत महत्त्व देते हैं, यह आपके वक्तव्य से स्पष्ट है। मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि ठाकुर साहब की (२६ दिसम्बर की) घोषणा और उसके साथ सरदार पटेल को भेजे जानेवाले पत्र का अभिप्राय समझने में सन्देह हो सकता है। लेकिन मेरी सम्मति में इसका सर्वोत्तम हल यह होगा कि भारतवर्ष के सबसे प्रमुख न्यायाधिकारी—फैडरल कोर्ट के चीफ़ जस्टिस के पास निर्णय के लिए यह मामला भेज दिया जाय। चीफ़ जस्टिस ही यह निर्णय करें कि ठाकुर की घोषणा व सरदार पटेल को भेजे गये पत्र के प्रकश में सुधार-समिति का किस तरह संगठन किया जाय। यदि इसके बाद भी उक्त घोषणा के सम्बन्ध में कोई सन्देह उत्पन्न हो, तो न्यायाधीश ही उसका अन्तिम निर्णय करें।" वायसराय ने यह भी स्पष्ट किया था कि "जहाँ ठाकुर साहब घोषणा में की गई प्रतिज्ञा को पूरा करने का वायदा करते हैं, वहाँ मैं भी यह आश्वासन देता हूँ कि मैं अपने प्रभाव का पूर्ण उपयोग करूँगा कि ठाकुर अपने वचन का पालन करें। इससे आपकी सब आशंकाएँ दूर हो जावेंगी।"

अनशन समाप्त

महात्मा गांधीजी ने इसके उत्तर में लिखा कि यद्यपि आपका सन्देश कई बातों में मूक है, तो भी वह अनशन-व्रत समाप्त करके करोड़ों भारतीयों की चिन्ता दूर करने के लिए पर्याप्त है। जिन बातों का ज़िक्र आपके पत्र में नहीं है, उनका दावा मैं नहीं छोड़ता, लेकिन वे बातें परस्पर बातचीत से भी तय हो सकती हैं। ज्योंही डाक्टरों ने मुझे आज्ञा दी, मैं दिल्ली आऊँगा। ७ मार्च को दुपहर के २ बजकर २५ मिनटपर ९९ घण्टे के अनशन के बाद गांधीजी ने संतरे का रस लेकर अपना अनशन तोड़ दिया और इस तरह राष्ट्र पर आनेवाला महान् संकट, जिसने समस्त भारत को छा रखा था, टल गया।

अनशन समाप्ति के बाद गांधीजी ने पत्र-प्रतिनिधियों को एक वक्तव्य दिया, जिसके मुख्य अंश निम्नलिखित हैं :—"मेरी सम्मति में उपवास की यह मंगल समाप्ति करोड़ों व्यक्तियों की मंगल प्रार्थना का उत्तर है।···मैं यह भी जानता हूँ कि भारत से बाहर शेष संसार के भी अनेक मनुष्यों की सहानुभूति और प्रार्थनाएँ मेरे साथ थीं। लेकिन समझौते का मुख्य श्रेय वायसराय को ही है।

"इस व्रत से लोगों का ध्यान रियासतों की ओर केन्द्रित होगया है। मुझे आशा है कि सभी यह स्वीकार करेंगे कि रियासती समस्या को सुलझाने में देरी नहीं होनी चाहिए। मैं राजाओं को यह विश्वास दिलाना चाहता हूँ कि मैं राजकोट में उनके मित्र के रूप में आया था। मैंने यहाँ आकर देखा कि सत्याग्रही दबाये नहीं जा सकते। उनपर भीषण अत्याचारों की कहानियाँ भी मैंने सुनीं और अनुभव किया कि यदि राजकोट में सत्याग्रह जारी रहा, तो मानव-स्वभाव की नीच प्रकृति खुलकर खेलने लगेगी और न केवल राजकोट के शासकों व सत्याग्रहियों में, बल्कि सर्वत्र राजा और प्रजा में भीषण संग्राम छिड़ जायगा। मैं जानता हूँ कि भारत में यह विचार ज़ोर पकड़ रहा है कि राजाओं का तो सुधार हो ही नहीं सकता और बर्बरता के युग के इस अवशेष का अन्त किये बिना भारत स्वतन्त्र नहीं हो सकता। मेरी हार्दिक सम्मति इसके विपरीत है। अहिंसा और इसलिए मनुष्य की सत्प्रकृति में विश्वास रखने के कारण मैं इससे भिन्न सम्मति रख भी नहीं सकता। राजाओं का भी भारत में एक स्थान है। भूतकाल की सब प्रथाओं को नष्ट किया भी नहीं जा सकता। मेरा विश्वास है कि यदि राजा भूतकाल से शिक्षा लेंगे और समय के साथ चलेंगे, तो सब-कुछ ठीक हो जायगा। लेकिन थिगड़ियाँ लगाने या थोथे सुधारों से यह समस्या हल न होगी। उन्हें साहसपूर्ण क़दम उठाने होंगे। वे भले ही राजकोट का अनुकरण न करें, लेकिन उन्हें जनता को पर्याप्त अधिकार अवश्य देने चाहिएँ। इसके सिवा भारत में रक्तमय क्रान्ति रोकने का मेरी सम्मति में और

कोई उपाय नहीं है ।" इसी वक्तव्य में भय्यतों, गिरासियों और मुसलमानों को उनके हितों के संरक्षण का आश्वासन देते हुए अन्त में गांधीजी ने कहा कि— "मुझे ठाकुर साहब की चिन्ता है, मुझे दरबार वीरावाला की भी चिन्ता है। मैंने उनकी कठोर आलोचना की है, लेकिन मित्र के नाते। मैं फिर यह दुहराता हूँ कि मैं ठाकुर साहब के पिता की तरह हूँ। अपने आलसी कामचोर लड़के के साथ जैसा मैं करता हूँ, उससे अधिक कठोर व्यवहार मैंने उनसे नहीं किया।.........राजकोट काठियावाड़ का केन्द्र है। यदि यहाँ उत्तरदायी शासन दे दिया गया तो काठियावाड़ की अन्य रियासतें भी स्वयं राजकोट की पंक्ति में आजावेंगी।" ७ मार्च को राजकोट-सत्याग्रह स्थगित होजाने के कारण सब सत्याग्रही क़ैदी भी रिहा कर दिये गये।

त्रिपुरी में विषम परिस्थिति

लेकिन गाँधीजी का अनशन समाप्त होने से पहले कांग्रेस के प्रतिनिधि त्रिपुरी की ओर रवाना हो चुके थे। और तबतक राजकोट से कोई आशाजनक समाचार नहीं आ रहे थे, इसलिए जहाँ राष्ट्रपति-चुनाव के संकट के कारण उन्हें भविष्य निराशामय दीख रहा था, वहाँ महात्माजी के अनशन से वे अपने हृदय पर एक भारी बोझ-सा भी अनुभव कर रहे थे। विपत्ति कभी अकेली नहीं आती। त्रिपुरी के प्रतिनिधियों की चिन्ता के लिए यही दो बातें कम न थीं, परन्तु उधर राष्ट्रपति की भीषण बीमारी ने स्थिति और भी नाजुक करदी। हम पहले लिख चुके हैं कि वर्धा काँग्रेस कार्यसमिति की बैठक में भी वे बीमारी के कारण उपस्थित न हो सके थे। तबसे अबतक वे रोग-शय्या पर ही थे। लोगों का ख़याल था कि वे शायद काँग्रेस में ही उपस्थित न हो सकें। कुछ लोग यह भी कल्पना कर रहे थे कि वे कार्य-संचालन में बीमारी की वजह से असमर्थ होने या विकट परिस्थिति के कारण इस्तीफ़ा दे दें। यदि वे इस्तीफ़ा दे दें और त्रिपुरी न आ सकें, तो कांग्रेस का कार्य कैसे होगा ? वर्किंग कमेटी तो इस्तीफ़ा दे ही चुकी थी। उसकी ओर से कांग्रेस को कोई निर्देश मिलने की संभावना न थी। पिछले सालों की भाँति कोई प्रस्ताव भी उसकी ओर से नहीं आना था। राष्ट्रपति से लोग किसी कार्यक्रम और नेतृत्व की आशा कर रहे थे, वे बीमार थे। इसलिए प्रतिनिधियों ने निजू तौरपर बहुत-से प्रस्तावों की सूचना कार्यालय को भेज दी थी। अधिकांश प्रस्ताव एक दूसरे के विरोधी थे, उनमें न कोई संगति थी, न कोई निश्चित योजना।

राष्ट्रपति की बीमारी

यह भीषण परिस्थितियाँ थीं, जिनमें त्रिपुरी कांग्रेस होने लगी थी। राष्ट्रपति ने वीर योद्धा की तरह मृत्यु से भी लड़ने का निश्चय कर लिया था। वे डाक्टरों

की सलाह की अवहेलना करके रुग्ण अवस्था में ही ६ मार्च को त्रिपुरी पहुँचे। रेल गाड़ी में उन्हें १०१ का बुखार था। जबलपुर स्टेशन पर उतरकर वे स्ट्रैचर द्वारा एम्बुलेंस कार में बिठाये गये, जहाँ से वे अपने डेरे पर पहुँचे। ५१ हाथियों के रथ पर राष्ट्रपति का जलूस निकालने की स्वागत समिति की सारी योजना रह गई।

आन्तरिक मतभेद

७ मार्च को आल इण्डिया काँग्रेस कमेटी की बैठक थी। राष्ट्रपति श्री सुभास बोस बीमारी के कारण उपस्थित न हो सके थे, इसलिए मौ० अब्बुल कलाम आज़ाद के सभापतित्व में कार्रवाई शुरू हुई। सबसे पहले पं० जवाहरलाल नेहरू ने म० गांधी के उपवास की समाप्ति का समाचार सुनाया। इसका सभी ने अत्यन्त हर्ष से स्वागत किया। इससे राष्ट्र के हृदय पर जो बड़ा भारी बोझ पड़ा हुआ था, वह उतर गया। लेकिन इसके साथ ही आन्तरिक मतभेद की वह आग फिर स्पष्ट हो उठी, जो महात्मा जी के अनशन के राष्ट्रीय संकट के कारण दब-सी गई थी आ० इं० काँ० कमेटी की पहली बैठक यद्यपि सिर्फ़ १५ मिनट हुई थी, तथापि वहाँ में यह स्पष्ट दीखने लगा था कि प्रतिनिधियों में समझौते की बजाय संघर्ष की भावना ज्यादा काम कर रही है। दरअसल हालत बहुत विचित्र थी। वर्किंग कमेटी के न रहने के कारण प्रतिनिधियों के सामने न कोई कार्यक्रम था, न कोई नेतृत्व। राष्ट्रपति भी बीमारी के कारण अपना कोई कार्यक्रम निश्चित रूप से नहीं रख सके। प्रतिनिधियों ने पचासों प्रस्ताव निजीतौर से पेश करने की सूचना दी थी। इन प्रस्तावों में कुछ प्रस्ताव थोड़े बहुत शाब्दिक भेद के साथ एक-से थे, लेकिन अधिकांश प्रस्ताव एक-दूसरे के विरोधी थे। पर इन्हीं प्रस्तावों के द्वारा यह पता चलता था कि प्रतिनिधियों में किस तरह अनेक विचार काम कर रहे हैं। कुछ प्रस्ताव गाँधीजी की नीति व विचार-धारा पर पूर्ण विश्वास प्रकट करते हुए गांधीजी के ही नेतृत्व को स्वीकार करने का अनुरोध करते थे। कुछ प्रस्ताव राष्ट्रपति सुभास बोस की नीति के समर्थन में थे। राष्ट्रपति सुभास पर अविश्वास के भी एक प्रस्ताव के पेश करने की सूचना मिली थी। काँग्रेस के पार्लमेण्टरी प्रोग्राम और रियासती नीति में क्रान्तिकारी परिवर्तन, नई राष्ट्रीय सेना क़ायम करने, ज़मींदारी पद्धति की समाप्ति, कंस्टिट्यूएण्ट असेम्बली, सरकार से जल्दी संग्राम छेड़ने, कांग्रेस के विधान में परिवर्तन, कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों की नीति से असंतोष और उग्र परिवर्तन, किसान संघों की कांग्रेस द्वारा स्वीकृति आदि विषयों पर परस्पर विरोधी प्रस्ताव आये हुए थे। इन सबको मुख्यतया तीन भागों में बांटा जा सकता है। पहली श्रेणी उनकी थी, जो महात्मा गांधी और पुरानी कांग्रेस वर्किंग कमेटी की नीति

पर पूर्ण विश्वास प्रकट करते थे, वे रियासतों के सम्बन्ध में, कांग्रेसी सरकारों की नीति के सम्बन्ध में और काँग्रेस विधान में—सत्य-अहिंसा के सिद्धान्त को कायम रखने के सम्बन्ध में पुरानी वर्किंग कमेटी के साथ थे। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी की ओर से भी अपने प्रकट सिद्धान्तों के कारण उग्र नीति के समर्थक प्रस्ताव पेश किये गये। इनके अलावा एक तीसरी श्रेणी थी, जो उग्र नीति की समर्थक तो थी, लेकिन उसकी तह में उग्र सिद्धान्तों की अपेक्षा राष्ट्रपति सुभास का व्यक्तिगत पक्षपात अधिक था। इसकी सम्मति में गांधीजी की नीति पर विश्वास का प्रस्ताव राष्ट्रपति पर अविश्वास का प्रस्ताव लाना था। इस दल में रायवादी थे, कुछ कम्यूनिस्ट थे, समस्त बंगाली प्रतिनिधि थे, श्री नरीमैन थे, श्री अणे थे और श्री श्रीनिवास आयंगर थे, जो एक लम्बे अज्ञातवास के बाद राष्ट्रपति चुनाव के संघर्ष के प्रकरण में फिर राजनैतिक क्षेत्र में आ गये थे। कुछ सोशलिस्ट भी इस दल के साथ थे।

पन्तजी का प्रस्ताव

त्रिपुरी के वातावरण में राष्ट्रपति बनाम गांधी का भेद अधिकाधिक गहरा हो रहा था। सम्पूर्ण मतभेद को श्री राजगोपालाचार्य ने इस तरह प्रतिनिधियों के सामने रखा कि—क्या तुम पुराने अनुभवी मल्लाह की किश्ती में बैठकर अपने को सुरक्षित समझोगे या एक नये अपरिचित मल्लाह के हाथ में अपना भाग्य सौंप देना चाहते हो? प्रश्न यह था कि गाँधीजी, जो पिछले २० साल से राष्ट्र का सफल नेतृत्व करते आ रहे हैं और जिन्होंने अपनी अद्भुत रणकुशलता, संगठनशक्ति, राजनीतिज्ञता, तपस्या और आत्मबलिदान द्वारा राष्ट्र को थोड़े से अरसे में एक सदी आगे बढ़ा दिया है, देश के नेता रहे या उग्रपक्षी सुभासबाबू और उनके नये साथी, जिनकी नीति और कार्यक्रम अभीतक निश्चित और स्पष्ट रूप में राष्ट्र के सामने न आये थे। इसके साथ-साथ व्यक्तिगत पक्षपात भी बराबर अपना प्रभाव डाल रहा था। कोई ऐसा रास्ता नज़र न आता था, जिसपर सभी दल सहमत हो जावें। नेताओं की आपस की लम्बी चर्चा और लगातार कोशिशों से भी समझौते की सूरत न निकल सकी। पं० जवाहरलाल नेहरू, जिनपर उग्रपक्षी भी विश्वास करते थे, कोई सर्वसम्मत समझौता न निकल सके। महात्मा गांधी, जो ऐसे विकट अवसरों पर सदा मार्गप्रदर्शन करते हैं, अभी उपवास के बाद यात्रा करने लायक़ न होने के कारण आ न सके थे। बहुत से लोग काँग्रेस में एकता की आवश्यकता अनुभव कर रहे थे, लेकिन कोई दूसरे की बात मानने को तैयार न था। आपस की चर्चा में उग्रता बढ़ रही थी। यह सन्देह प्रतिक्षण बढ़ रहा था कि काँग्रेस में मतभेद उग्र रूप धारण करके उसे दो टुकड़ों में विभक्त कर देगा। दक्षिणपक्षी नेताओं के

सामने मार्ग स्पष्ट था कि गांधीजी का नेतृत्व जिस तरह भी हम पा सकें, वही करना चाहिए। वे इसी में राष्ट्र की मुक्ति मानते थे। वर्किंग कमेटी के १२ सदस्यों ने अपने त्यागपत्र में यह स्पष्ट लिखा था कि "अब ऐसा मौक़ा आ गया है, जबकि देश के सामने साफ़-साफ़ नीति पेश की जानी चाहिए।" बहुत से वामपक्षी भी गांधीजी के सहयोग को अनिवार्य तो मानते थे, लेकिन सुभासबाबू और गांधीजी में कोई सामंजस्य किसी तरह न कर पाते थे। वे न सुभास को छोड़ना चाहते थे, न गांधीजी को। पर इसके लिए उन्हें मार्ग न सूझता था। कुछ ऐसे भी प्रतिनिधि थे, जो अपने को अत्यन्त उग्रवादी कहते थे और गांधीवाद के आलोचक थे। अन्त में पं० गोविन्दवल्लभ पन्त एक निश्चित प्रस्ताव लेकर सामने आये। यह प्रस्ताव अपने आप में पूर्ण और स्पष्ट था। इसमें कोई लागलपेट न थी, विभिन्न दलों को महज़ सन्तुष्ट करने के लिए राजनैतिक गोलभाषा का भी प्रयोग इस प्रस्ताव में न किया गया था। यह प्रस्ताव कांग्रेस की भावी नीति को बिलकुल स्पष्ट और असंदिग्ध शब्दों में रख रहा था, जिससे पीछे उसके शब्दों की खींचतान न की जा सके। राष्ट्रपति दूसरे दिन अखिल भारतीय कांग्रेस कमेटी में स्ट्रैचर पर उपस्थित हुए। उन्होंने इस प्रस्ताव को अनियमित करार दिया, लेकिन विषयसमिति में प्रस्ताव रखने की आज्ञा दे दी। वहां यह प्रस्ताव तीव्र विवाद के बाद बहुमत से पास होगया। सब संशोधन गिर गये। यह प्रस्ताव निम्नलिखित था :—

"राष्ट्रपति के चुनाव के सिलसिले में और उसके बाद के विवादों से कांग्रेस और देश में जो भ्रम उत्पन्न हो गये हैं, उन्हें ध्यान में रखते हुए अपनी स्थिति स्पष्ट करने और अपनी सामान्य नीति की घोषणा करने के लिए यह कमेटी उन मौलिक नीतियों और कार्यक्रम पर अपना दृढ़ विश्वास प्रकट करती है, जिनके अनुसार महात्मा गांधी के नेतृत्व में पिछले सालों में पालन किया गया है। कमेटी की यह स्पष्ट सम्मति है कि भविष्य में भी इन नीतियों में कोई अन्तर नहीं होना चाहिए और उन्हीं नीतियों के आधार पर कांग्रेस कार्यक्रम का संचालन होना चाहिए।

"यह कमेटी गत वर्ष की वर्किंग कमेटी में अपना विश्वास प्रकट करती है और उसके सदस्यों में से किसी भी सदस्य के ख़िलाफ़ लगाये गये लांछन पर खेद प्रकट करती है।

"अगले बरस भी संकटमय स्थिति उत्पन्न हो सकती है, और एकमात्र महात्मा गांधी ही ऐसे संकट-काल में कांग्रेस और देश का नेतृत्व कर सकते हैं, यह अपने ध्यान में रखते हुए, कमेटी यह आवश्यक समझती है कि कांग्रेस की वर्किंग कमेटी को उनका पूर्ण विश्वास प्राप्त हो। और इसलिए यह कमेटी राष्ट्रपति से अनुरोध करती है कि वे महात्मा गांधी की इच्छा के अनुसार आगामी वर्ष की कार्यसमिति नियुक्त करें।"

राष्ट्रपति के चुनाव में श्री पट्टाभि सीतारमैया की हार को महात्मा गांधी ने अपनी और अपने सिद्धान्तों व नीति की पराजय घोषित किया था। गांधीजी की तीव्र इच्छा के विरुद्ध भी सुभासबाबू चुनाव के लिए खड़े हुए थे और जीत गये थे। इस लिए इस प्रस्ताव के समर्थकों की सम्मति में यह जरूरी था कि यदि राष्ट्र को गाँधीजी के नेतृत्व की इच्छा हो, तो उनमें और उनके सिद्धान्तों में कांग्रेस पूर्ण विश्वास प्रकट करे। इसके सिवा महात्माजी के नेतृत्व पाने का दूसरा कोई मार्ग ही न था। यही मुख्य उद्देश्य था, जिससे प्रेरित होकर इतने स्पष्ट और निस्संदिग्ध रूप में यह प्रस्ताव पेश किया गया था। लेकिन जितनी आसानी से यह प्रस्ताव विषय समिति में पास हो गया, उतनी ही आसानी से कांग्रेस के खुले अधिवेशन में पास न हो सका। अभी कांग्रेस के रंगमंच पर एक और दुःखप्रद अभिनय होना था। लेकिन उसकी चर्चा से पहले राष्ट्रपति की चर्चा कर लें।

राष्ट्रपति का भाषण

कांग्रेस का खुला अधिवेशन निराशा और आशा, अंधकार और प्रकाश तथा पारस्परिक पार्टीवाज़ी और समझौते की इच्छा के द्वन्दमय वातावरण में शुरू हुआ। राष्ट्रपति ज्यादा बीमार थे, इसलिए स्वयं उपस्थित न हो सके। स्वागताध्यक्ष सेठ गोविन्ददास के भाषण के बाद मौलाना आज़ाद के सभापतित्व में कार्यवाही शुरू हुई। आचार्य नरेन्द्रदेव ने राष्ट्रपति सुभास का भाषण, जो बीमारी के कारण न ठीक समय पूरा-पूरा लिखा जा सका और न प्रकाशित हो सका था, पढ़ा। भाषण अत्यन्त संक्षिप्त था, पर फिर भी उसमें राष्ट्रपति के मनोभाव स्पष्टता से प्रकट हो रहे थे। राष्ट्रपति ने मिश्री-प्रतिनिधियों के स्वागत, अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति और वर्किंग कमेटी के इस्तीफ़े की चर्चा के बाद कहा :—

"मैं यह अनुभव करता आया हूँ कि अब वह समय आगया है, जब हमें स्वराज्य का सवाल उठाकर अल्टीमेटम के रूप में अपनी राष्ट्रीय मांग ब्रिटिश-सरकार के सामने रख देनी चाहिए। वह समय बहुत पीछे निकल गया है, जब हम संघ-शासन की योजना के अपने ऊपर लादे जाने के समय की इन्तजार कर सकते थे। अब सवाल यह नहीं है कि संघ-विधान की योजना कब हमारे गले उतारी जायगी। समस्या यह है कि यदि कुछ साल के लिए जबतक यूरोप में शान्ति और स्थिरता का वातावरण पैदा नहीं हो जाता, ब्रिटिश सरकार अपनी सुविधा के लिए संघ-योजना को ताक पर रखदे, तो हमारा क्या कर्तव्य होगा ? इसमें कोई सन्देह नहीं है कि यदि यूरोप में एक वार शान्ति स्थापित होगई, चाहे वह राष्ट्रों के समझौते के द्वारा हो, चाहे किसी अन्य उपाय से, तो ग्रेटब्रिटेन अपनी कठोर साम्राज्य-

पिछले ३० सालों के कांग्रेस के इतिहास में कभी देखने में न आया था। कुछ लोगों का ख़याल था कि पन्तजी का प्रस्ताव राष्ट्रपति सुभास पर निन्दा का प्रस्ताव है, यद्यपि पन्तजी ने अपने भाषण में यह स्पष्ट कर दिया था कि उनकी मंशा राष्ट्रपति पर अविश्वास करने की नहीं है और न इस प्रस्ताव में कोई ऐसी वात ही है। उनके कथनानुसार यह प्रस्ताव तो महज़ देश. गांधीजी का नेतृत्व पा सके, इसके लिए उचित वातावरण वनाने के लिए था। प्रस्ताव के विरोधी वर्किंग कमेटी के सदस्यों पर लान्छन लगाने पर खेद प्रकाश करने से वहुत असंतुष्ट थे। उनका कहना था कि यह प्रतिशोध की भावना से किया गया है, लेकिन पन्तजीने कहा कि जवतक हम नेताओं के सम्वन्ध में लगाये गये लान्छन से अपनी स्पष्ट असहमति प्रकट नहीं कर देते, हम उनका सहयोग प्राप्त नहीं कर सकते। क्या आप मातृभूमि की सेवा में अपने वाल पकाने की, अपने नेताओं को यही क़ीमत देना चाहते हैं। यदि उनपर इस जंगलीपन से आक्रमण किया जाता है, तो क्या आप खेदप्रकाश भी नहीं करना चाहते। राष्ट्रपति ने अपने वक्तव्य में जनता के अपवाद के रूप में उन नेताओं पर ब्रिटिश साम्राज्यवाद से फ़ैडरेशन के सम्वन्ध में समझौता करने का अभियोग लगाया है। इससे उनके सम्वन्ध में जो ग़लतफ़हमी फैल गई है, क्या वह दूर नहीं की जानी चाहिए? वे संदिग्ध वातावरण में कांग्रेस से कैसे सहयोग कर सकते हैं?

इस प्रस्ताव पर यदि केवल प्रस्ताव के गुण-दोष विवेचन से विचार किया जाता, तव तो कोई वात न थी, लेकिन प्रस्ताव के विरोधियों ने इसे राष्ट्रपति की भीषण वीमारी और इस प्रस्ताव के पास होने से उनपर पड़ने वाले सम्भावित प्रभाव से जोड़ दिया। इनका कहना था कि जव राष्ट्रपति भीषण रोगशय्या पर पड़े हैं, तो इस प्रस्ताव का, जो उन लोगों की सम्मति में राष्ट्रपति पर निन्दा का प्रस्ताव था, उनके स्वास्थ्य पर भीषण प्रभाव पड़ेगा। इसलिए इसे वापस ले लिया जाय या इसमें उचित संशोधन किया जाय। परिस्थिति को विषम देखकर श्री अणे ने यह प्रस्ताव पेश किया कि राष्ट्रपति के स्वास्थ्य की भयावह स्थिति को देखते हुए यह अच्छा होगा कि पन्तजी का प्रस्ताव किसी और मौक़े पर आल इण्डिया कांग्रेस कमेटी के सामने पेश किया जाय। पन्तजी ने भी राष्ट्रपति के स्वास्थ्य पर चिन्ता प्रकट करते हुए इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। मौलाना आज़ाद ने, जो उस दिन भी राष्ट्रपति के न आने के कारण सभापतित्व कर रहे थे, दो वार मत-गणना के वाद इस प्रस्ताव के पास होने की घोषणा की। लेकिन घोषणा के सुनाये जाते ही पण्डाल में गड़वड़ मच गई। वंगाली प्रतिनिधियों में प्रस्ताव वापस लेने और कुछ ने मतविभाजन की माँग चिल्लाकर पेश की। सभापति मौलाना आज़ाद ने इस

भीषण गड़बड़ी में फिर मतग्रहण असम्भव देखकर दूसरे दिन इसी प्रस्ताव पर विषयसमिति में मत लेने की सूचना दी। इस पर बड़ा ही हल्ला मचा और क़रीब ५०० प्रतिनिधियों व दर्शकों ने मंच पर जाने का रास्ता घेर लिया। इनमें से अधिकतर बंगाली थे। 'इन्किलाब ज़िन्दाबाद', 'सुभास ज़िन्दाबाद,' 'शरत् ज़िन्दाबाद' के नारे लगाये जाने लगे। पं० जवाहरलाल नेहरू लोगों को मौ० आज़ाद की सूचना बताने और शान्त कराने के लिए कई बार उठे, लेकिन उत्तेजित प्रतिनिधियों व दर्शकों ने उन्हें भी बोलने नहीं दिया। बहुत से प्रतिनिधियों ने उन्हें भी घूँसे दिखाने शुरू किये। श्री शरत् चन्द्र बोस के समझाने पर बंगाली प्रतिनिधि शान्त हुए, लेकिन नेहरू जी ज्यों ही खड़े हुए, फिर गड़बड़ी शुरू हुई। करीब १॥ घंटे की अशान्ति, होहल्ले और गड़बड़ी के बाद पण्डाल में यह घोषणा करने पर शान्ति स्थापित हुई कि श्री अणे अपना प्रस्ताव वापस ले लेंगे। श्रीअणे के प्रस्ताव वापस ले लेने से पहले पं० जवाहरलाल नेहरू ने एक अत्यन्त हृदयस्पर्शी और मार्मिक भाषण दिया। त्रिपुरी कांग्रेस के इतिहास में यह भाषण शायद सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण था। उनके लिए यह बिलकुल नया अनुभव था। उन्होंने कहा कि पिछले २५ साल से कांग्रेस से मेरा सम्बन्ध है, लेकिन ऐसा बुरा दृश्य मैंने कभी नहीं देखा। फ़िर भी मैं इसका स्वागत करता हूँ कि इससे कांग्रेस को स्पष्ट ज्ञात होजायगा कि वह कितने पानी में है। महात्मा गांधी ने काँग्रेस में अनुशासन, गम्भीरता और पवित्रीकरण के सम्बन्ध में जो लेख लिखे थे, उनका ज़िक्र करते हुए नेहरूजी ने कहा कि मैंने आज जो नज़ारा देखा है, उसके बाद में आनेवाले भीषण संग्राम की बात सोचकर सचमुच कांप उठता हूँ। हम निकट भविष्य में संग्राम की बातें सोचते हैं, हममें से कुछ ब्रिटिश साम्राज्यवाद को अल्टिमेटम देकर लड़ाई छेड़ने की बातें करते हैं, परन्तु क्या इसी तरह की उच्छृंखल और अनियंत्रित भीड़ को लेकर ब्रिटिश साम्राज्य से लड़ाई छेड़ेंगे? कांग्रेस में सभी निर्णय बहुमत से हुआ करते हैं और श्रीअणे का प्रस्ताव भी बहुमत से तय हुआ था। मुट्ठी-भर प्रतिनिधि बहुमत के फ़ैसला कर देने के बाद कार्यवाही नहीं रोक सकते। यह प्रजातंत्र नहीं है, यह तो गुण्डापन है। यह फ़ासिज्म है, यह न तो समाजवाद है और न प्रजातन्त्र।" कहते हैं कि पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा अबतक दिये हुए भाषणों में यह भाषण प्रभाव की दृष्टि से बहुत ऊँचा था। उन्होंने अपनी सारी मनोव्यथा उंडेल-सी दी थी। उनकी आवाज़ कभी दुःख से भर जाती थी, तो कभी उत्साह से पूर्ण हो जाती थी। श्रीअणे ने प्रस्ताव वापस ले लिया।

पन्तजी का प्रस्ताव दूसरे दिन फिर पेश हुआ और बहुमत से पास होगया। सोशलिस्ट पार्टी के नेताओं पर बंगाली प्रतिनिधियों के अनुशासन-भंग का इतना

प्रभाव पड़ा कि उन्होंने पन्तजी के प्रस्ताव पर अपने संशोधन वापस ले लिये और तटस्थता स्वीकार कर ली।

राष्ट्रीय मांग

त्रिपुरी-कांग्रेस द्वारा अन्य जो महत्त्वपूर्ण प्रस्ताव स्वीकृत हुए, उनमें से राष्ट्रीय माँग का प्रस्ताव मुख्य था। इस लम्बे प्रस्ताव में आधी सदी से चलनेवाले भारतीय स्वातन्त्र्य संग्राम, फैडरल विधान की अस्वीकृति और स्वयं बनाये शासन विधान की ही एकमात्र स्वीकृति आदि का ज़िक्र करने के बाद कहा गया था :—"कांग्रेस की सम्मति है कि भारत की वर्तमान स्थिति, राष्ट्रीय आन्दोलन की संगठित शक्ति, जन- साधारण की उल्लेख योग्य जागृति, देसी रियासतों की प्रजा में नवीन जागृति और संसार की ज़ोरों से बदलती हुई हालत को देखते हुए भारतवर्ष के साथ आत्मनिर्णय के सिद्धान्त को लागू करने का समय आ गया है, ताकि भारतवासी राष्ट्रीय पंचायत (कंस्टिट्यूएण्ट असेम्बली) के द्वारा स्वतन्त्र प्रजातन्त्र राज्य क़ायम कर सकें। जन्मसिद्ध अधिकार और आत्मसम्मान के खयाल से ही पूर्ण स्वाधीनता की मांग नहीं की जा रही, बल्कि इसलिए कि आर्थिक तथा जनतापर दबाव डालने वाली दूसरी समस्याएँ भी इसके बिना हल नहीं हो सकतीं। जबतक जनता को पूर्ण आत्मविकास और उन्नति का अवसर न मिले, जो सिर्फ़ स्वतन्त्रता के द्वारा ही प्राप्त हो सकता है, तबतक न तो भारत ग़रीबी से छुटकारा पा सकता है और न वह आधुनिक प्रगति में आगे बढ़ सकता है।

"प्रान्तीय स्वायत्त शासन में इस प्रकार के विकास के लिए कोई स्थान नहीं है और इसकी देश को लाभ पहुँचाने की शक्ति बहुत जल्दी खतम होती जा रही है। प्रस्तावित संघ-विधान भारत को और भी अधिक जकड़ता है और यह स्वीकार नहीं किया जा सकता। इसलिए कांग्रेस की यह दृढ़ सम्मति है कि सारे गवर्नमेण्ट आफ़ इण्डिया एक्ट की जगह भारतीय जनता द्वारा बनाया गया विधान ले ले।" इसी प्रस्ताव में आगे कहा गया था कि—"काँग्रेस के उद्देश्य की शीघ्र ही प्राप्ति को मद्देनज़र रखते हुए और सिरपर आने वाली राष्ट्रीय तथा अन्तर्राष्ट्रीय क्रान्ति का प्रभावकारी तौर पर मुकाबिला करने के विचार से यह कांग्रेस देश की सभी कांग्रेसी संस्थाओं, प्रान्तीय कांग्रेसी सरकारों तथा सर्वसाधारण जनता से अनुरोध करती है कि वे संगठित होकर और कांग्रेस को अधिक शक्तिशाली, पवित्र तथा संगठित बनाकर, इसकी कमज़ोरियाँ व अवांछनीय प्रभाव दूर करने में सहायता दे, ताकि यह लोकमत की प्रभावशाली संस्था बन सके।"

अन्य प्रस्ताव

काँग्रेस की आन्तरिक शुद्धि का प्रश्न त्रिपुरी के सामने उपस्थित प्रश्नों में सबसे महत्त्वपूर्ण था। पं जवाहरलाल नेहरू के शब्दों में यह कांग्रेस के जीवन-मरण का प्रश्न था। इस सम्बन्ध में एक प्रस्ताव द्वारा अखिल भारतीय कांग्रेस-कमेटी को कांग्रेस सदस्यों की भरती और चुनाव-संबंधी नियमों में सुधार करने, उचित उपाय काम में लाने और आवश्यक समझनें पर कांग्रेस-विधान में उचित संशोधन करके उन्हें लागू करने का अधिकार दिया गया। एक प्रस्ताव में ब्रिटेन की अन्तर्राष्ट्रीय राजनीति पर प्रजातंत्र से विश्वासघात, सामूहिक सुरक्षा की पद्धति की समाप्ति, जंगली हिंसा को उत्तेजन देने का आरोप लगाते हुए उसका विरोध किया गया था और कहा गया था कि "कांग्रेस घोषित करती है कि फ़ासिस्ट शक्तियों को बराबर सहायता देनेवाली तथा लोकतंत्र राष्ट्रों के नाश में सहायक होनेवाली ब्रिटिश नीति से हमारा कोई संबंध नहीं है। काँग्रेस साम्राज्यवाद और फ़ासिज्म दोनों के विरुद्ध है और उसका यह विश्वास है कि विश्व की शान्ति तथा उन्नति के लिए इन दोनों का अन्त कर दिया जाय। काँग्रेस की सम्मति में यह परम आवश्यक है कि भारतवर्ष एक स्वतंत्र देश की भांति अपनी वैदेशिक नीति का स्वयं संचालन करे और इस प्रकार साम्राज्यवाद और फ़ासिज्म से दूर रहकर शान्ति तथा स्वतंत्रता के मार्ग पर अग्रसर होता रहे।" देशी राज्यों का प्रश्न भी बहुत महत्त्वपूर्ण था। देसी रियासतों में होनेवाली अद्भुत जागृति का स्वागत और रियासती प्रजा की उत्तरदायी शासन व नागरिक अधिकारों की माँग के समर्थन और राजाओं की दमननीति के विरोध के बाद गाँधीजी के अनशनसमाप्ति पर संतोष प्रकट करते हुए इस प्रस्ताव में कहा गया था कि—"हरिपुरा काँग्रेस के रियासत-संबंधी प्रस्ताव से जो आशाएँ की गई थीं, वह पूरी हुई हैं और रियासती प्रजा को अपना संगठन करने व अपना स्वाधीनता-आन्दोलन स्वयं चलाने को प्रोत्साहित कर उसने अपना औचित्य सिद्ध कर दिया है। हरिपुरा की नीति रियासती प्रजा के हित में नियत की गई थी, ताकि उसमें स्वयं आत्मविश्वास और शक्ति उत्पन्न हो सके। परिस्थितियों के कारण काँग्रेस ने अपने पर कुछ पाबंदियां लगाई थीं, लेकिन इसे कभी अनिवार्य बंधन नहीं माना गया। काँग्रेस का सदा यह अधिकार तथा कर्तव्य रहा है कि वह रियासती प्रजाजनों का पथ-प्रदर्शन करे। रियासतों में होनेवाली महान् जागृति के कारण संभव है कि काँग्रेस ने अपने ऊपर जो पाबंदियाँ लगाई हैं, वे घट जावें या बिलकुल ही खतम हो जावें और इस प्रकार कांग्रेस तथा देशी राज्यों की प्रजा का आन्दोलन एक होता चला जाय। कांग्रेस फिर यह दोहरा देना चाहती है कि उसका पूर्ण-स्वाधीनता का लक्ष्य सारे भारत के लिए है, जिसमें देशी रियासतें भी शामिल हैं।

उन्हें भारत का अविभाज्य अंग होने के कारण अलग नहीं किया जा सकता। उन्हें भी उतनी राजनैतिक, सामाजिक तथा आर्थिक स्वतंत्रता का अधिकार है, जितना कि ब्रिटिश-भारत को।"

इनके अतिरिक्त भी अन्य अनेक प्रस्ताव त्रिपुरी-कांग्रेस में पास हुए। मिश्री-प्रतिनिधि मण्डल के हार्दिक स्वागत, जापानी साम्राज्यवाद के विरुद्ध वीरता-पूर्वक लड़ने के लिए चीनियों को बधाई तथा चीन में मैडिकल मिशन भेजने का समर्थन, प्रवासी भारतीयों के आन्दोलनों से सहानुभूति, फ़िलस्तीन में अरबों से सहानुभूति व ब्रिटिश सरकार की दमननीति की निन्दा, बिलोचिस्तान में उत्तरदायी शासन की मांग आदि प्रस्ताव भी स्वीकृत हुए। एक प्रस्ताव द्वारा कांग्रेस-अधिवेशन की तारीखें दिसम्बर में नियत की गई, क्योंकि फ़रवरी या मार्च में प्रायः केन्द्रीय और प्रान्तीय असेम्बलियों के अधिवेशन होते हैं। यह भी निश्चय हुआ कि आगामी अधिवेशन बिहार में हो।

तमाम अधिवेशन में राष्ट्रपति न आ सके। उनका स्वास्थ्य लगातार गिरता गया। इसलिए राष्ट्रपति के चित्र-का ही जलूस निकाला गया। फैजपुर और हरिपुरा में बैलों के रथ पर जलूस निकले थे, तो त्रिपुरी में ५१ हाथी महाकौशल के अतीत गौरव का प्रतिनिधित्व करते हुए रथ खींच रहे थे, जिस पर राष्ट्रपति का चित्र रक्खा गया था। महाकौशल बम्बई-जैसा सम्पन्न प्रान्त नहीं, इसलिए हरिपुरा जैसा आडम्बर तो नहीं था, लेकिन प्रबन्ध सन्तोषजनक था। राष्ट्रपति बीमार होकर आये और बीमार ही गये। त्रिपुरी कांग्रेस के लिए, बहुत-से प्रस्ताव पेश होने की सूचना मिली थी, लेकिन वे पेश न किये जा सके। राष्ट्रपति ने थोड़े से ही उक्त प्रस्ताव पेश करने की आज्ञा दी।

गांधीजी के नेतृत्व की विजय

त्रिपुरी अधिवेशन का काँग्रेस और भारतवर्ष के इतिहास में क्या स्थान रहेगा, यह कुछ समय बाद ही कहा जा सकेगा। लेकिन इतना अब भी निःसन्देह कहा जा सकता है कि त्रिपुरी कांग्रेस गांधीजी की व्यक्तिगत विजय थी। यों तो पिछले तीस सालों से वे काँग्रेस के अन्दर या बाहर रहकर उसका सूत्रसंचालन कर रहे थे लेकिन त्रिपुरी में उपस्थित प्रतिनिधियों ने इस प्रथापर क़ानूनी मुहर भी लगा दी। अबतक राष्ट्रपति को अपनी इच्छा से वर्किंग कमेटी के सदस्य चुनने का अधिकार था और इस प्रकार वह अपनी नीति को अमल में ला सकता था। यह ठीक है कि किसी राष्ट्रपति ने गांधीजी की सलाह लिए बिना वर्किंग कमेटी का

निर्माण नहीं किया था, लेकिन अब उसके लिए गांधीजी की सलाह के अनुसार चलना अनिवार्य कर दिया गया। राष्ट्रपति चाहे कोई भी चुना जावे, त्रिपुरी कांग्रेस ने गांधीजी के नेतृत्व में ही देश की मुक्ति समझकर राष्ट्रपति को भी उन्हीं के परामर्श से चलने का आदेश दिया। गांधी, दरअसल भारत को परमात्मा की अनुपम देन है, जो भारत की मुक्ति के लिए इस भूमिपर अवतरित हुई हैं। महात्माजी के कांग्रेस से अलग होने की संभावना ने उनमें से ज्यादातर को विचलित कर दिया था, जो उनकी नीति की आलोचना करते थे। इसलिए उन्होंने भी गांधीजी के नेतृत्व पर विश्वास प्रकट किया। त्रिपुरी कांग्रेस का यह शुभ परिणाम हुआ है कि कांग्रेसी सोशलिस्ट दक्षिणपक्षी या गांधीवादी नेताओं के अधिक निकट सम्पर्क में आ गये हैं। आशा है यह एकता राष्ट्र के लिए हितकर साबित होगी।

आन्तरिक संकट जारी

त्रिपुरी कांग्रेस ने देश में इस तरह की कोई स्फूर्ति पैदा नहीं की, जिस तरह पिछले कुछ सालों से कांग्रेस के अधिवेशन कर रहे थे। इसका मुख्य कारण था वही विवाद, जो त्रिपुरी में भीषण रूप में प्रकट हुआ था। अन्य अनेक प्रान्तों में भी कुछ इने गिने उग्र विचारक त्रिपुरी कांग्रेस की आलोचना कर रहे थे, लेकिन बंगाल ने तो सामूहिक रूप से त्रिपुरी कांग्रेस में उपस्थित गांधीवादी नेताओं की आलोचना तीव्र रूप से शुरू करदी। प्रान्तीयता के लिए बंगाल पहले से ही बदनाम है, इस अवसर पर उसमें प्रान्तीयता का भीषणता से प्रदर्शन किया। राष्ट्रपति सुभास बोस बीमारी की हालत में ही त्रिपुरी आये और उसी हालत में वापस गये। वे झरिया जाकर ठहर गये। कुछ अस्वास्थ्य और कुछ राजनैतिक मतभेद के कारण वे भी स्थिति को संभालने में असमर्थ ही रहे। वर्किंग कमेटी न बनने से त्रिपुरी कांग्रेस के प्रस्ताव बहुत समय तक अमल में नहीं आ सके। इसकी देश में तीव्र आलोचना होने लगी। सुभास बाबू ने स्थिति को शान्त करना चाहा, लेकिन उनके वक्तव्य से स्थिति ने और भी अवांछनीय रूप धारण कर लिया। इस वक्तव्य में उन्होंने पन्तजी के प्रस्ताव को अवैधानिक बताया था और गांधीजी से पूछा था कि वे इस प्रस्ताव का कैसा अर्थ समझते हैं? वर्किंग कमेटी के निर्माण के संबंध में भी गांधीजी की राय पूछते हुए अपनी यह सम्मति दी थी कि यदि गांधीजी वर्किंग कमेटी को सिर्फ़ एक विचार या पार्टी से ही संगठित करना चाहते हैं और कांग्रेस के विभिन्न दलों की प्रतिनिधि संस्था बनाने को तैयार नहीं हैं, तो मेरे और पिछली वर्किंग कमेटी के अन्य सदस्यों में सहयोग की कोई गुंजायश नहीं है। दूसरे वक्तव्य में उन्होंने अपने विचारों का समर्थन करते हुए इस संदेह का प्रतिवाद किया था कि वे पन्तजी के प्रस्ताव पर अमल नहीं करेंगे,

गाँधीजी और सुभासबाबू में बहुत समय तक पत्र-व्यवहार जारी रहा, लेकिन इसका कोई नतीजा न निकल सका। राष्ट्रपति की बीमारी और महात्मा गांधी के राजकोट के संग्राम में व्यस्त रहने के कारण दोनों की मुलाक़ात भी बहुत समय तक न हो सकी। जब कलकत्ते में अ० भा० कांग्रेस कमेटी की बैठक के अवसर पर मुलाक़ात हुई, तब भी कोई लाभ न निकला। गांधीजी और सुभासबाबू के मतभेद बराबर बने रहे और अन्त में राष्ट्रपति को इस्तीफ़ा देना पड़ा।

राजकोट का महत्त्वपूर्ण निर्णय

इस अप्रिय प्रसंग को छोड़कर हमें एक दफ़ा फिर राजकोट की ओर चलना चाहिए। गांधीजी ने वायसराय की सलाह मानकर अनशन भंग कर दिया। वे राजकोट से रवाना होकर १५ मार्च को दिल्ली पहुँचे और वायसराय से मुलाक़ात की। दो एक दफ़ा बाद में भी मिले। ३ अप्रैल को फेडरल कोर्ट के चीफ़ जस्टिस मि० सर मारिस ग्वायर ने अपना चिरप्रतीक्षित फैसला दे दिया। यह फैसला सरासर गांधीजी के पक्ष में था। उनके फ़ैसले का सारांश यह था कि—यह स्पष्ट है, दोनों पार्टियों में (सरदार पटेल व ठाकुरसाहब) में एक समझौता हो चुका था। इसके अनुसार ठाकुरसाहब सरदार पटेल के सिफ़ारिशी नामों को सुधार कमिटी में स्वीकार करने के लिए वचनबद्ध हैं, बशर्ते कि वे नाम रियासत से बाहर के लोगों के न हों। यह सच है कि कमेटी के सदस्यों की नियुक्ति का अधिकार सिर्फ़ ठाकुरसाहब के हाथ में है, लेकिन वे सरदार पटेल द्वारा सिफ़ारिशी नामों में से ही सात को नियुक्त कर सकेंगे। कमेटी के सभापति के सम्बन्ध में भी सर मारिस ने फ़ैसला किया था। इसके अनुसार दस सदस्यों में से ही किसी को ठाकुरसाहब सभापति चुन सकते हैं न कि इनके अलावा ११वें को सभापति नियुक्त कर सकते हैं, जैसाकि वे पीछे से कहने लगे थे। इस फ़ैसले के अनुसार राजकोट में जो सुधार कमेटी बनेगी, उसके सात सदस्य तो सरदार पटेल के सिफारिशी नामों में से रखे जावेंगे और तीन सदस्य ठाकुर खुद नियुक्त कर सकेगा।

रियासतों में सत्याग्रह स्थगित

इस फ़ैसले के बाद गांधीजी वायसराय से ४ अप्रैल को मिले, गांधीजी की वायसराय से मुलाक़ातों में क्या चर्चा हुई, यह अभी तक मालूम नहीं हुआ। लेकिन यह निश्चित-सा है कि राजकोट के अलावा अन्य रियासतों के सम्बन्ध में भी सामान्यतया उनकी चर्चा हुई। इन दिनों गांधीजी का समस्त ध्यान रियासतों की ओर लग रहा था। वे शायद संघ-विधान के आने से पूर्व सब रियासतों को भी ब्रिटिश

की नीति पर विश्वास प्रकट करने का अर्थ 'हाई कमाण्ड'—सरदार पटेल, राजेन्द्र बाबू आदि वर्किंग कमेटी के पुराने सदस्यों पर विश्वास प्रकट करना नहीं है, मानो गांधीजी की नीति और हाई 'कमाण्ड' की नीति भिन्न-भिन्न हों।

कांग्रेस के सामने हिन्दू मुस्लिम-समस्या, रियासतों की पेचीदी समस्या, फैडरेशन का मुक़ाबला आदि अनेक महान् समस्याएं उपस्थित हैं। लेकिन इससे भी बड़ी समस्या उसके सामने है आन्तरिक दलबन्दी और अन्दरूनी गन्दगी की, जिसके कारण उसका समस्त प्रभाव और बल ही चले जाने की आशंका है। परन्तु राष्ट्र के तपस्वी राजनीतिज्ञ विश्वविभूति गांधीजी व उनके महारथियों की असंदिग्ध देश-भक्ति, दूरदर्शिता और व्यवहार-कुशलता पर पूर्ण विश्वास है। उनके नेतृत्व में राष्ट्र बीस सालों में ही सदियों आगे बढ़ गया है और आगे भी सब बाधाओं को पारकर बलवान होगा। मंगलमय भगवान् उन्हें चिरायुष्य दें।

६–५–३९

[सामयिक साहित्य माला : छठी पुस्तक]

राष्ट्रीय-पंचायत

[कांस्टीट्युएण्ट असेम्बली पर महात्मा गांधी, पंडित जवाहरलाल नेहरू, डा० पट्टाभि सीतारामैया, श्री एम० एन० राय, श्री सम्पूर्णानन्द, श्री आसफ़अली आदि के लेख]

सम्पादक

श्री यशपाल, बी. ए., एल-एल. बी.

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

—शाखायें—

दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

संस्करण
फ़रवरी १९४० : ३०००
दाम
चार आना

मुद्रक
हरनामदास गुप्त,
भारत प्रिंटिंग प्रेस,
नया बाजार, दिल्ली

लेख-सूची

राष्ट्रीय-पंचायत

: १ :

राष्ट्रीय-पंचायत

[पंडित जवाहरलाल नेहरू]

मैंने सलाह दी थी कि राजनैतिक और साम्प्रदायिक दोनों समस्यायें विधान-सभा यानी राष्ट्रीय-पचायत के द्वारा सुलझाई जानी चाहिएँ। इस बात को काफ़ी पसन्द किया गया। गाँधीजी ने इसकी प्रशंसा की। और दूसरे बहुतों ने भी प्रशसा की है, फिर भी कुछ लोगों ने इसे ग़लत समझा है या समझने की तकलीफ़ ही गवारा नहीं की है।

अगर इसे स्वीकार किया जाय, जैसाकि होना चाहिए, कि राजनैतिक और राष्ट्रीय रूप से हिन्दुस्तानी ही अपने भाग्य के एकमात्र निर्णायक हों और इसलिए अपना विधान तैयार करने की उन्हें पूरी आज़ादी हो, तो इससे यह अर्थ निकलता है कि ऐसा एक राष्ट्रीय-पंचायत द्वारा ही हो सकता है, जिसका निर्वाचन अधिक-से-अधिक मताधिकार पर हो। जो आजादी में विश्वास करते हैं, उनके लिए दूसरा मार्ग नहीं है। जो लोग साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य की बात करते हैं, वे भी इस बात से सहमत होंगे कि निर्णय हिन्दुस्तानियों द्वारा ही होना चाहिए। यह निर्णय किस प्रकार किया जायगा? नेताओं के दल या व्यक्तियों द्वारा नहीं, और न उन आत्म-निर्वाचित संस्थाओं द्वारा 'जिन्हें 'आल पार्टीज कान्फ्रेन्स' कहते हैं और जो अगर किसी का प्रतिनिधित्व करती हैं तो छोटे स्वार्थी दलों का करती हैं और अधिकांश जनसंख्या को छोड़ देती हैं। हमें यह मानना पड़ेगा कि राष्ट्रीय क़ांग्रेस इतनी शक्तिशाली और अधिक-से-अधिक प्रतिनिधित्व करनेवाली होते हुए भी यह निर्णय नहीं कर सकती। कांग्रेस को आज़ादी है कि वह आदमियों के सहयोग से राष्ट्रीय-पंचायत पर अपना प्रभाव डाले और उसपर क़ाबू रक्खे, लेकिन राजनैतिक और सामाजिक उन्नति और खुली प्रतिक्रिया में से किसी एक को पसन्द करना होगा। साम्प्रदायिकता के किसी भी स्वरूप से सम्बन्ध रखने का अर्थ होता है प्रतिक्रिया के साधनों को और हिन्दुस्तान में ब्रिटिश साम्राज्यवाद को मजबूत करना; उसका अर्थ होता है सामाजिक और आर्थिक परिवर्तन का विरोध और अपने आदमियों के मौजूदा दुःख को बर्दाश्त करना: उसका अर्थ होता है आंख बन्द करके दुनिया की ताक़तों और घटनाओं को दरगुज़र करना।

साम्प्रदायिक संगठन क्या हैं? वे मजहबी नहीं हैं, हालांकि वे अपने को मजहबी दलों में ही मानते हैं और मजहब नाम का नाजायज फ़ायदा उठाते हैं। संस्कृति के लिए उन्होंने कुछ नहीं किया, हालांकि वे बहादुरी के साथ प्राचीन संस्कृति की बात करते हैं। वे नैतिक दल भी नहीं हैं; क्योंकि उनकी शिक्षा में नैतिकता बिलकुल नहीं है। आर्थिक दल भी वह निश्चय ही नहीं है; क्योंकि उनके सदस्यों को बांधनेवाली कोई आर्थिक कड़ी नहीं है और न आर्थिक कार्यक्रम की ही छाया उनमें है। उनमें से कुछ तो राजनैतिक होने का दावा भी नहीं करते। तब वे हैं क्या?

असल में राजनैतिक ढंग से वे काम करते हैं और उनकी माँगें भी राजनैतिक हैं; लेकिन जब वे अपने को अराजनैतिक कहते हैं तो वे असली मसले को दरगुज़र करते हैं और दूसरों के रास्ते को रोकने में ही वे कामयाब होते हैं। अगर ये राजनैतिक संगठन हैं तो हमें हक़ है कि यह जानें कि उनका उद्देश्य क्या है। वे हिन्दुस्तान की मुकम्मिल आज़ादी चाहते हैं या आंशिक—अगर वैसी भी आज़ादी कोई चीज़ है तो? क्या वे आज़ादी चाहते हैं या साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य? अच्छे-से-अच्छे शब्द भी भ्रम पैदा कर देते हैं और बहुत-से आदमी अब भी सोचते हैं कि साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य आज़ादी के ही बराबर है। असल में वे दोनों बिलकुल भिन्न हैं, विरोधी दिशाओं में जानेवाले वे दो रास्ते हैं। यह आनों का सवाल नहीं है कि चौदह आने हैं या सोलह आने; बल्कि भिन्न-भिन्न सिक्कों-जैसा सवाल है, जिनका आपस में विनिमय नहीं हो सकता।

साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य का अर्थ है अंग्रेज़ों की आर्थिक व्यवस्था के मजबूत ढांचे और स्वार्थों के अन्तर्गत काम किये जाना। साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य में इस गला घोंटनेवाले अधिकार से कोई छुटकारा नहीं है। आज़ादी का मतलब है इन बोझों से मुक्त होने की सम्भावना और अपने सामाजिक विधान को तै करने की आज़ादी। इसलिए साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य में हमें चाहे जितनी सीमित आज़ादी मिल जाय, फिर भी वह इंग्लैण्ड के बैंक और ब्रिटिश पूंजी के मुख्य अधिकार में होगी। हमारे मौजूदा आर्थिक विधान के चलने पर भी उसे निर्भर रहना होगा। इसका अर्थ है कि हम अपनी आर्थिक समस्याओं को नहीं सुलझा सकते और न कुचलनेवाले बोझ से जनता को ही मुक्त कर सकते हैं। हम दलदल में और गहरे ही फँस सकते हैं। तब इन साम्प्रदायिक संगठनों का क्या उद्देश्य है—आज़ादी या साम्राज्यान्तर्गत स्वराज्य?

व्हाइटपेपर में जो मजाक़िया विधान दिया गया है, उसका ज़िक्र करने की हमें ज़रूरत नहीं है। उससे तो सिर्फ़ हमें इसी बात की याद दिलाई जाती है कि हिन्दुस्तान में ब्रिटिश पूंजी और स्वार्थों को हर तरह से क़ायम रक्खा जायगा, जबतक

कि ब्रिटिश-सरकार में उन्हें क़ायम रखने की ताक़त है। सिर्फ़ वही आदमी जिन्हें ब्रिटिश स्वार्थों के क़ायम रखने में दिलचस्पी है या जो बहुत सीधे-सादे हैं, व्हाइट-पेपर या उसके भागों को पसन्द कर सकते हैं।

राजनैतिक ध्येय से भी अधिक महत्त्वपूर्ण आर्थिक ध्येय है। यह बात चारों तरफ़ फैली है कि राजनीति का युग गया और हम ऐसे युग में रह रहे हैं जिसमें अर्थशास्त्र राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय मामलों पर शासन करता है। साम्प्रदायिक संगठन इन आर्थिक मामलों में क्या चाहते हैं? या उन्हें जनता या निम्न मध्यम वर्गों की भूख और बेकारी का कोई पता ही नहीं है? अगर वे जनता के प्रतिनिधित्व का दावा करते हैं, तो उन्हें जानना चाहिए कि इन अभागे और दुखी लोगों के सामने सबसे बड़ी समस्या भूख की है और इस समस्या का हल, कम-से-कम उसूली ही, मिल जाना चाहिए। व्यवसाय और खेती में इन संगठनों के विचार से क्या होना चाहिए? मज़दूरों और किसानों के दुःखों को दूर करने का वे क्या उपाय निकालते हैं? ज़मीन के क्या क़ानून होने चाहिएँ? किसानों के कर्ज़े का क्या होगा? क्या उसका शोध होगा या सिर्फ़ उसकी आवाज़ को दबा दिया जायगा, या वह बाक़ी रहेगा? और बेकारी के बारे में क्या? क्या वे समाज की मौजूदा पूंजीवादी व्यवस्था में विश्वास रखते हैं, या वे नई व्यवस्था क़ायम रखना चाहते हैं? ये कुछ अजीब सवाल हैं जो उठते हैं और उनका और ऐसे ही दूसरे सवालों का जवाब हमें सम्प्रदायवादियों की माँगों के दावे और आन्तरिकता को समझने में मदद देगा। अगर ये जवाब जनता तक पहुंच सकें तो उसे भी बड़ी मदद मिलेगी। हिन्दू जनता की बनिस्बत शायद मुस्लिम जनता तो और भी ग़रीब है; लेकिन मशहूर 'चौदह बातें' इन ग़रीबी के मारे मुसलमानों के बारे में कुछ नहीं कहतीं। हिन्दू सम्प्रदायवादी भी अपने स्वार्थों के क़ायम रखने पर ज़ोर देते हैं और जनता की परवा नहीं करते।

मुझे डर है कि इन सवालों का स्पष्ट या शायद कोई भी उत्तर मुझे नहीं मिलेगा; क्योंकि प्रश्न असुविधाजनक हैं, कुछ तो शायद इसलिए भी कि सम्प्रदाय-वादी नेता आर्थिक बातों के बारे में बहुत कम जानते हैं और उन्होंने जनता की परि-भाषा में कभी नहीं सोचा है। वे तो 'फ़ी सदी' के बारे में ही सोचने में उस्ताद हैं और उनकी लड़ाई का मैदान उनकी सभा का कमरा है, खेत, फ़ैक्टरी या बाज़ार नहीं। लेकिन चाहे वे पसन्द करें या न करें, ये सवाल तो आगे आयँगे ही और जो इनका ठीक-ठीक उत्तर नहीं दे सकेंगे उनको सार्वजनिक मामलों में स्थान नहीं मिलेगा। इन सब सवालों का जवाब हम एक व्यापक शब्द में दे सकते हैं। वह शब्द है—समाजवाद और समाज का समाजवादी विधान।

लेकिन ठीक जवाब समाजवाद या साम्यवाद हो या और कोई हो, एक बात

निश्चित है—वह यह कि जवाब अर्थशास्त्र की परिभाषा में हो, केवल राजनीति की परिभाषा में नहीं; क्योंकि हिन्दुस्तान और दुनिया आर्थिक समस्याओं से परेशान है और उनसे बचा नहीं जा सकता। जबतक पूरी आर्थिक आज़ादी न मिलेगी, तबतक राजनैतिक विधान चाहे जैसा हो, हमें आज़ादी नहीं मिल सकती। आर्थिक आज़ादी में राजनैतिक आज़ादी भी शामिल है। आज की असलियत यही है। और सब आडम्बर है, भ्रम है, और इसमें भी साम्प्रदायिक आडम्बर से बढ़कर और कोई आडम्बर नहीं है।

अब राष्ट्रीय पंचायत के मामले पर वापस लौट चलें। अगर वास्तविक जनता की चुनी हुई सभा आज़ादी के साथ असली मसलों पर विचार करने के लिए बैठती है, तो तुरन्त ही इन आर्थिक समस्याओं में उसका ध्यान लग जायगा। साम्प्रदायिक समस्या पीछे पड़ जायगी, क्योंकि जनता की दिलचस्पी 'फ़ी सदी' के सवाल से ज्यादा अपने पेट की समस्या होगी। यह सभा उन साधनों को मुक्त कर देगी जो अबतक विदेशी शासकों और हिन्दुस्तानी स्थापित स्वार्थों के कारण दबे पड़े हैं। नेतृत्व जनता के हाथ में जायगा, और जनता जब स्वतन्त्र होगी तो कभी-कभी भूल करने पर भी वह असलियत की परिभाषा में सोचेगी और आडम्बरों से उसके लिए कोई लाभ न होगा। कार्यकर्ताओं और किसानों के हाथ में परिस्थिति होगी और उनका निर्णय, कभी कभी अपूर्ण होने पर भी, हमें आज़ादी की ओर ले जायगा। मैं नहीं कह सकता कि राष्ट्रीय-पंचायत क्या तय करेगी। लेकिन जनता में मुझे श्रद्धा है और उसके निर्णय को मानने के लिए मैं तैयार हूँ, और मुझे विश्वास है कि जब असली जनता की बड़ी परीक्षा होगी तब साम्प्रदायिक समस्या खत्म हो जायगी। वह कमरों की गर्मी से पैदा हुई है और सभा के कमरों के वायुमण्डल में और तथाकथित 'सर्वदल-सम्मेलनों' में उसका पालन-पोषण हुआ है। उस बनावटी वायुमण्डल में उसको नष्ट करने का हल नहीं मिलेगा; बल्कि ताज़ा हवा और धूप में वह क्षीण होकर नष्ट होगी।

: २ :

एक ही मार्ग

[महात्मा गांधी]

पं० जवाहरलाल नेहरू ने मुझे बाध्य किया है कि अन्य चीज़ों के साथ मैं राष्ट्रीय-पंचायत के फलितार्थों का भी अध्ययन करूँ। जब उन्होंने कांग्रेस-प्रस्तावों में इसे पहले-पहल दाख़िल किया तो मैंने उसे मान लिया था; क्योंकि मेरा विश्वास था कि लोकतन्त्र की बारीकियों का उन्हें अधिक ज्ञान है। लेकिन मेरा मन संशययुक्त

नहीं हुआ था। घटना-चक्र ने बहरहाल मेरे संशय को दूर कर दिया और उसी वजह से शायद मैं खुद जवाहरलाल से भी ज्यादा उत्साही हो गया। क्योंकि सार्वजनिक राजनैतिक तथा अन्य शिक्षा का वाहन होने के अतिरिक्त उसमें मुझे साम्प्रदायिक तथा अन्य रोगों का निदान दिखाई देता है। जवाहरलाल शायद यह न देख सकें।

उस योजना की जितनी अधिक आलोचनाएँ मैं देखता हूँ, उतना ही अधिक उसके प्रति मेरा मोह बढ़ता जाता है। उसके द्वारा जनता की भावनाएँ निश्चितरूप से व्यक्त होंगी। उससे हमारी अच्छाइयाँ और बुराइयाँ भी ज़ाहिर होंगी। निरक्षरता की मुझे चिन्ता नहीं है। पुरुषों और स्त्रियों दोनो के लिए मैं विशुद्ध बालिग़ मताधिकार की व्यवस्था कर दूँगा, याने उन सबको मैं वोटरों के रजिस्टर में रख दूँगा। उन्हें आज़ादी होगी कि यदि वे अपने अधिकार को अमल में न लाना चाहें, तो न लावें। मुसलमानों को मैं पृथक् मत दूँगा, लेकिन अगर आवश्यकता हुई तो पृथक मत न देकर हरेक वास्तविक अल्पसंख्यक को उसकी संख्या के अनुसार सुरक्षित मत दूंगा, हालांकि ऐसा मैं अनिच्छा से करूंगा।

इस प्रकार साम्प्रदायिक समस्या का राष्ट्रीय-पंचायत द्वारा ठीक-ठीक हल निकालने का आसान-से-आसान तरीका मिल जाता है। आज हम यह ठीक-ठीक नहीं कह सकते कि कौन किसका प्रतिनिधित्व करता है। यद्यपि कांग्रेस मानी हुई बड़े-से-बड़े पैमाने पर सबसे पुरानी प्रातिनिधिक संस्था है, फिर भी राजनैतिक और अर्ध-राजनैतिक संस्थाएँ उसके विशद प्रातिनिधिक रूप पर संशय कर सकती हैं और वे करती भी हैं। निस्सन्देह मुस्लिम लीग मुसलमानों की बड़ी-से-बड़ी प्रातिनिधिक संस्था है; मगर कुछ मुस्लिम संस्थाएँ, जो किसी तरह नगण्य नहीं हैं, उसके इस दावे से इन्कार करती हैं कि वह उनका प्रतिनिधित्व करती है। लेकिन राष्ट्रीय-पंचायत तो सब जमातों का उनके ठीक अनुपात में प्रतिनिधित्व करेगी। इसके अतिरिक्त विरोधी दावों के साथ पूर्ण न्याय करने का और कोई उपाय ही नहीं है। बग़ैर उसके साम्प्रदायिक तथा अन्य दावों का सुनिश्चय नहीं हो सकता।

और सिर्फ राष्ट्रीय-पंचायत ही एक ऐसा विधान बना सकती है जो देशी हो और जो ठीक-ठीक और पूरी तरह से जन-मत का प्रतिनिधित्व कर सके। निस्सन्देह यह विधान कोई आदर्श विधान नहीं होगा, लेकिन फिर भी सिद्धान्तवादियों या क़ानून के विद्वानों के हिसाब से चाहे जितना अपूर्ण हो; लेकिन वह वास्तविक होगा। स्वराज के स्वराज होने के लिए उसमें केवल उस जनता के मत को, जो स्वयं अपने ऊपर शासन करेगी, प्रतिबिम्बित करना होगा। अगर शासक ऐसा करने के लिए तैयार नहीं हैं तो वे स्वराज को छिन्न-भिन्न कर डालेंगे। मैं जनता की इस सम्भावना की कल्पना कर सकता हूँ कि वह बहुत-से ग़लत प्रयोगों द्वारा अपने को उचित सरकार

के योग्य बनावे। लेकिन इस सम्भावना की मैं कल्पना नहीं कर सकता कि राष्ट्र बाहर से थोपी गई सरकार के द्वारा अपने ऊपर उचित रूप से शासन करे, ऐसे ही नहीं जैसे कि कहानी का कौआ अपने शानदार साथी से पंख माँगकर मोर की चाल न चल सका। रुग्ण व्यक्ति अपने निजी प्रयत्न से स्वस्थ हो सकता है, लेकिन दूसरे से स्वास्थ्य वह उधार नहीं ले सकता।

इस प्रयोग में खतरे हैं, यह निश्चय है। इसमें आडम्बर की भी सम्भावना है। निःशंक व्यक्ति अपढ़ जनता को ग़लत पुरुषों और स्त्रियों को वोट देने के लिए ग़लत रास्ते पर ले जायेंगे। अगर हमें किसी असली और बड़ी चीज़ का निर्माण करना है तो इन खतरों को तो उठाना ही पड़ेगा। अगर हमारे और ब्रिटिश जनता के सम्मानपूर्ण समझौते के फलस्वरूप राष्ट्रीय-पंचायत जन्म लेती है, जैसी कि मुझे उम्मीद है कि वह लेगी, तो दो राष्ट्रों के सर्वोत्कृष्ट व्यक्ति मिलकर अपनी बुद्धि से एक ऐसी पंचायत का सृजन करेंगे जो भारतीय मत को अच्छी तरह से सचाई के साथ प्रतिबिम्बित करेगी। इसलिए भारत के इतिहास की वर्तमान अवस्था में इस प्रयोग की सफलता ब्रिटिश राजनीतिज्ञों की इस इच्छा पर निर्भर करती है कि भारत को घोर भयंकर अव्यवस्थित विद्रोह में डाले बिना हमें सत्ता दे दें। क्योंकि मैं जानता हूँ कि भारत अब अधीर हो उठा है। यह मेरे मन में है कि भारत अभी बड़े पैमाने पर अहिंसात्मक सविनय-भंग के लिए तैयार नहीं है। इसलिए अगर मैं कांग्रेस को उस समय तक प्रतीक्षा करते रहने के लिए राजी नहीं कर सकता जबकि अहिंसात्मक युद्ध किया जाना सम्भव हो, तो दो जमातों में विनाशकारी गृह-युद्ध देखने के लिए जीवित रहने की मेरी इच्छा नहीं है। लेकिन यह मैं निश्चित रूप से जानता हूँ कि अगर मैं कांग्रेस के सन्तोषजनक अहिंसात्मक युद्ध या निष्क्रियता का कोई तरीक़ा न निकाल सका और साम्प्रदायिक एकीकरण न हुआ, तो संसार की कोई भी शक्ति हिंसात्मक संघर्ष के छिड़ जाने को नहीं रोक सकती, जिसके परिणाम कुछ समय के लिए अराजकता और घोर बरबादी होगी। मेरी राय है कि हर जमात और अंग्रेज़ों का यह फ़र्ज़ है कि वे इस महाआपदा को रोकें।

कठिनाई से बाहर होने का एकमात्र उपाय राष्ट्रीय-पंचायत ही है। अपनी राय मैंने ऊपर दे दी है, लेकिन उसकी तफ़सील से मैं बँधा हुआ नहीं हूँ। इस लेख को मैं लगभग समाप्त कर चुका था, कि सैयद अब्दुल्ला ब्रेलवी का नीचे लिखा तार मिला —

"राष्ट्रीय पंचायत के बारे में अल्पसंख्यकों में काफ़ी भ्रम फैला है। मेरा तीव्र आग्रह है कि आप उसकी तफ़सील, मताधिकार, निर्माण, निर्णय करने के तरीक़े स्पष्ट करदें।" मेरा विचार है कि सैयद साहब के सवाल का जवाब देने के लिए ऊपर मैंने

काफ़ी लिख दिया है। अल्पसंख्यकों से उनका विचार मुख्यतः उन मुसलमानों से है जिनका प्रतिनिधित्व मुस्लिम लीग करती है। अगर एक बार यह प्रस्ताव स्वीकार हो जाता है कि सब जमातें राष्ट्रीय-पंचायत द्वारा बनाया गया स्वतंत्रता का अधिकार-पत्र चाहती हैं और उसके सिवा दूसरी किसी भी चीज़ से उन्हें संतोष न होगा, तो तफ़सीलों का तय करना तो यक़ीनन आसान हो जाता है। किसी भी अन्य तरीके का परिणाम तो थोपा हुआ विधान निकलेगा, जो मुख्यतः लोकतंत्रीय न होगा। उसका अर्थ होगा उस साम्राज्यवादी राज्य को अनिश्चित काल तक के लिए बढ़ा देना जो उन लोगों की मदद से चल रहा है जिन्हें राष्ट्रीय-पंचायत का पूर्ण लोकतंत्रीय तरीक़ा मान्य नहीं होगा। मुख्य रुकावट तो निस्सदेह ब्रिटिश सरकार है। अगर वह एक गोलमेज-परिषद बुला सकती है, जैसा कि लड़ाई के बाद बुलाने का उसका विचार है, तो वह अल्पसंख्यकों के सन्तोष का संरक्षण करते हुए निश्चय ही एक राष्ट्रीय-पञ्चायत भी बुला सकती है। 'अल्पसंख्यकों का सन्तोष' इस वाक्य को शायद अनिश्चित समझा जाये। उसका स्पष्टीकरण पहले ही समझौते द्वारा किया जा सकता है। इसलिए प्रश्न यह रह जाता है कि आया ब्रिटिश सरकार सत्ता को हमारे हाथ देना, और अपने इतिहास में एक नया अध्याय प्रारम्भ करना चाहती है? मैं पहले ही दिखा चुका हूँ कि देशी नरेशों का सवाल रास्ते में उलझा पड़ा है। यूरोपियनों के हित बिल्कुल सुरक्षित हैं, जबतक कि 'भारतीय हितों' से उनका विरोध नहीं होता। मैं समझता हूँ कि यही बात इरविन-गाँधी-समझौते में भी कही गई है।

इस प्रश्न पर आप जिस दृष्टि-बिन्दु से देखें, पता यही चलेगा कि लोकतंत्रीय स्वराज्य का मार्ग केवल उचित राष्ट्रीय-पञ्चायत—नाम उसे कुछ भी दीजिए—द्वारा ही मिल सकता है। इसलिए प्रत्यक्ष अवरोध करने का विचार करने से पहले समस्त साधन एक राष्ट्रीय-पञ्चायत का निर्माण करने में खर्च होने चाहिएँ। वह अवस्था भी आ सकती है जब प्रत्यक्ष अवरोध राष्ट्रीय-पञ्चायत के लिए आवश्यक प्रस्तावना हो। वह अवस्था अभी नहीं आई है। हरिजन-सेवक, २५ नवम्बर, १९३९.

: ३ :

एक ही रास्ता

[श्री राजगोपालाचार्य]

लोग कुछ ऐसा मान बैठे हैं कि कांग्रेस की मांग इतनी ही है कि राष्ट्रीय-पञ्चायत में कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधि हों। यह भारी ग़लतफ़हमी है। कांग्रेस ने जिस बात पर ज़ोर दिया है वह यह नहीं है कि कांग्रेस अथवा लीग या

दोनों या और कोई राजनैतिक संस्था राष्ट्रीय-पंचायत में अपने नुमायन्दे भेजें तो इन लोगों को आखिरी मसविदा तैयार करने का काम और अधिकार सौंपा जाये जिससे हर कोई दल या व्यक्ति बाद में कोई उज्र या तरमीम पेश न कर सके। अगर विधान के मसविदे को भारत की सब जातियों का बाकायदा चुना हुआ निर्वाचक मंडल पसन्द करले तो फिर किन्हीं भी स्वयम् प्रतिनिधियों को जुदा-जुदा प्रस्ताव रख-रख कर सवाल को हरा रखने का हक न रहेगा। यह मानकर चला जा सकता है कि राष्ट्रीय-पंचायत के लिए नियमित रूप से प्रतिनिधि चुनने में जो जातियाँ चाहेंगी उनके लिए पृथक् निर्वाचन का उसूल काम में लाया जायगा।

अब यह सवाल है कि सर्वसम्मति से फैसले करने का क्या तरीका होगा, इसी भी यह प्रश्न खास है कि जो थोड़ी तादाद-वाले राजी न हों उनका क्या किया जाये यह इसलिए कि आखिर हर मामले में पूरी एकमति तो नहीं हो सकेगी। कांग्रेस इस बुनियाद पर आगे बढ़ना चाहती है कि किसी खास क़ौम के अधिकांश नुमायन्दों का फैसला ही उस क़ौम का फैसला माना जाये। रहा सवाल यह कि किस जाति को कितने अधिकार दिये जायँ, तो इस बारे में महात्माजी ने पहले ही कांग्रेस की स्थिति को साफ़-साफ़ बता दिया है। वह यह है कि हर अल्पसंख्यक जाति के वाजिब हितों की रक्षा का इन्तज़ाम इस तरह किया जाये जिससे कि खुद उस जाति को सन्तोष हो। नहीं तो हम फिर अंग्रेज़ों के दबाव में फँस जायँगे।

जहांतक रियासतों का ताल्लुक़ है यह समझना भूल है कि उनकी और अल्पसंख्यकों की स्थिति एक-सी है। आज रियासतें हुकूमतें हैं, प्रजाएँ नहीं। क्योंकि वहाँ शासन के साथ प्रजा का सम्बन्ध नहीं है। उनके साथ वैसा ही बर्ताव होना चाहिए जैसा कि बग़ैर प्रतिनिधि-शासन वाले प्रांतों के साथ होगा। वे कम तादादवाली जातियों के हक़ों का दावा नहीं कर सकतीं और न यह मांग कर सकती हैं कि उनसे समझौता करके ही आगे बढ़ा जाये। उनके लिए यह मान लेना चाहिए कि जिसे पैरामाउन्ट कहते हैं और जो उनकी रक्षा करती है यानी ब्रिटिश सरकार ही उनकी प्रतिनिधि होगी। वही रियासतों का सौदा भी तय कर लेगी। मगर उन्हें क्या चाहिए, इसका फैसला सम्मति से ही होना चाहिए, न कि कम तादाद वालों की तरह इस बात से कि उन्हें क्या भाव है या उन्हें किस बात का डर है। इस मामले में संख्या का सवाल नहीं उठ सकता। अलबत्ता, राजाओं की जगह प्रजा लेले, तो स्थिति दूसरी हो जायगी।

अभी तो आमतौर पर जो झगड़ा अटका हुआ है उसे चलाने का यही ढंग समझा जाता है कि कांग्रेस और लीग में समझौते की बातचीत हो। ब्रिटिश सरकार की मन्शा भी यही है कि मेल हो। बेशक, बहुत लोग ऐसे भी हैं जो लड़ाई के बाद तक रुकना चाहते हैं। और कुछ लोग सदा इस उम्मीद में लगे भी रहते हैं। मगर

हमारे न चाहने पर भी बीस साल के अनुभव ने हमें यही सबक़ सिखाया है कि जब-तक ब्रिटिश सरकार पहले से ही वादा न करले कि जो निर्णय हिन्दुस्तानी मिलकर करेंगे उसे वह ज़रूर मान लेगी, और जान-बूझकर या अनजाने कभी एक पक्ष को और कभी दूसरे पक्ष को बढ़ावा देने का खेल वह आयन्दा न खेलेगी, तबतक कांग्रेस और लीग या और किसी संस्था के बीच सफल चर्चा नहीं चलाई जा सकती। यह भी स्पष्ट-सा लगता है कि बड़ी तादाद और छोटी तादादवाली जातियों में दलील, समझदारी और देश-प्रेम के आधार पर फ़ैसले और समझौते उसी सूरत में हो पायेंगे, जबकि विरोधी जातियाँ खूब समझ जायेंगी कि अँग्रेज़ों से कुछ नहीं मिलेगा और जो कुछ मिलना है एक दूसरे से ही मिलेगा। महात्माजी इस बात पर ज़ोर देते रहे हैं।-क्योंकि उनका कहना है कि पहले इस शर्त के मंजूर हुए बग़ैर यह उतार-चढ़ाव की क्रिया जारी ही रहती दीखती है। उन्होंने राष्ट्रीय-पञ्चायत के नारे की हिमायत इसलिए नहीं की है कि उन्हें इस लम्बे-चौड़े शब्द का कुछ मोह है। राष्ट्रीय-पञ्चायत के हिमायती पहले पंडित जवाहरलाल और अब गाँधीजी सिर्फ़ इस कड़ुवे अनुभव के कारण बने हैं कि और किसी तरह समस्या हल करने की कोशिश बेकार है। उन्होंने देख लिया कि तीसरी ताक़त के मौजूद रहते हम कभी आज़ादी हासिल करने का उद्देश्य पूरा नहीं कर सकेंगे; क्योंकि जब कभी हमारे आपस में समझदारी कारगर होती दीखेगी तभी वह ताक़त बारी-बारी से हममें से हरेक का खूब पक्ष लेगी और थोड़ा और देने को तैयार हो जायगी या माँगने की बात सुझा देगी। ऐसी हालत में हमारे लिए गृहयुद्ध के अलावा एकमात्र उपाय जनता के बाक़ायदा चुने हुए प्रतिनिधियों की पञ्चायत ही है। वही हम सबको इस बात पर राज़ी कर सकती है कि जन्मजात सद्भावना और समझदारी से काम लिया जाये और उसी आधार पर फैसले किये जायें। उग्रता और जोश के बजाय अनुभव और अक़्लमन्दी से गाँधीजी काँग्रेस और लीग को छोड़कर बाक़ायदा चुनी हुई राष्ट्रीय-पञ्चायत के लिए इतना आग्रह करने लगे हैं। यह आपत्ति की जाती है कि जिसे सहूलियत और सभ्यता की ख़ातिर गोल-मेज़-पद्धति कहा जाता है उसके बजाय राष्ट्रीय-पञ्चायत क्यों बुलाई जाय। मगर यह आपत्ति ज्यादातर ऐसे ही दलों और व्यक्तियों की तरफ़ से की जाती है जिन्हें जनता भले ही कुछ भी समझती हो, पर उनकी अपनी नज़र में उनका महत्त्व और उनकी महत्वाकाँक्षा कुछ और ही है। गोलमेज़ किसीके प्रति ज़िम्मेदार तो होती नहीं। इस-लिए जब बहुत बात कर लेने के बाद सबके लिए लाज़िमी और आख़िरी निर्णय करने की नौबत आती है, उस वक्त गोलमेज़-पद्धति बिलकुल निकम्मी चीज़ साबित होती है।

एक विषय ऐसा भी है, जिसपर अंग्रेज़ बहुत साफ़ बात नहीं करते। उनका

संकोच ठीक है और उसके कारण भी साफ़ हैं। हिन्दुस्तान में उनके अपने मोटे-मोटे स्वार्थ क्या हैं, वे इस सवाल की सीधी चर्चा करना नहीं चाहते। यह तो मानना पड़ेगा कि राष्ट्रवाद के मौजूदा स्वभाव को देखते हुए उन्हें इस बारे में चिंता होना अनुचित नहीं है क्योंकि अपने स्वार्थों की रक्षा करने के लिए आपस में लड़नेवाली जातियों की ताक़त बराबर-बराबर बनाये रखने की कोशिश न करके अंग्रेज़ों को यह बताना ही पड़ेगा कि उनके स्वार्थ कौन-से हैं और उनकी रक्षा के लिए वे कैसा बन्दोबस्त चाहते हैं। इस मुद्दे के साथ ये बातें मिलाकर गड़बड़ मचाने से काम नहीं चलेगा कि 'हमें तो भारत का भार ईश्वर ने सौंपा है और हमें सभ्यता के प्रचार और सिलसिलेवार तरक्की की बड़ी फ़िक्र है।' साम्राज्यवादी महत्त्वाकांक्षा या स्वभाव को भी इसमें शामिल नहीं करना चाहिए। अपने स्वार्थों को कम-से-कम करके उन्हें रुपये, आने, पाई में बताना चाहिए। साथ ही, यह शर्त भी हो जानी चाहिए कि आपस में समझौता न हो तो निष्पक्ष जजों से पंचायती फ़ैसला करा लिया जाय। वे जज उपनिवेशों के तीन भले मंत्री भी हो सकते हैं। यह कार्रवाई विधान बनने से पहले आसानी से की जा सकती है। मुझे कहा गया है कि आयर्लैंड के इतिहास में ऐसी नज़ीर मिलती है।

तो अब यह प्रश्न नहीं है कि हिन्दू-मुसलमानों का बातचीत करके समझौते पर पहुँचने में कितना समय लगेगा बल्कि सवाल यह है कि ब्रिटिश सरकार इस राष्ट्र की मांग स्वीकार करेगी या नहीं और करेगी तो कब। ये मांगें पेश तो कांग्रेस ने ही की हैं, मगर वे रक्खी गई हैं सारे राष्ट्र की तरफ़ से। ये हिन्दू, मुसलमान और, सच पूछें तो उन सभी लोगों के भले के लिए हैं जो दुनिया की सभ्य जातियों में स्वाभिमान और सम्मान के साथ जीना चाहते हैं। अंग्रेज़ ख़ूब जानते हैं कि आख़िर तो इसी नतीजे पर पहुँचना होगा कि इस देश में यहीं के लोगों का राज होना चाहिए और किसी का नहीं हो सकता। मौजूदा परिस्थितियों में मामूली सुशासन क़ायम रखने के लिए लोकवाद के सिवाय दूसरा कोई उपाय नहीं है। इसलिए अंत में तो अंग्रेज़ों को झुकना और हमारा पिण्ड छोड़ना ही होगा। यह कह सकना ज़रूर मुश्किल है कि उन्हें ऐसा निश्चय करने में कितने सप्ताह, महीने या वर्ष लगेंगे। महात्माजी को आशा है कि दो-तीन महीने बस होंगे।

हरिजन सेवक, ६ दिसम्बर, १९३९.

राष्ट्रीय-पंचायत

[श्री आसफ़अली, एम. एल. ए.]

राष्ट्रीय पंचायत के पीछे जो विचार है उसे भारत के भविष्य से सम्बन्ध रखने वालों को गम्भीरतापूर्वक समझ लेना चाहिए। इस विषय पर पहले से ही काफी कहा और लिखा जा चुका है; लेकिन बहुत-सी वे बातें अभी गड़बड़ी की हालत में पड़ी हुई हैं जो उस आवश्यक विचार के स्पष्टीकरण के लिए महत्वपूर्ण हैं। हरेक व्यक्ति अपने ही प्रिय सिद्धान्तों तथा पूर्व-कल्पित प्रतिकूलताओं को लेकर अपना दिमाग़ लड़ा रहा है। लोक जीवन के बहुत से व्यक्ति एक-दूसरे के बारे में चर्चा करते हैं और उनके ध्येय स्पष्ट-रूप से एक-दूसरे के प्रतिकूल हैं। इसलिए अंतर की बातों को घटाकर न्यूनतम करने का प्रयत्न इस समय किया जा सकता है, हालांकि क्रोध, निराशा और अविश्वास से भरे वातावरण में ऐसे प्रयत्न के सफल होने की अधिक आशा नहीं है। अखबारों में कुछ ने ऐतिहासिक पृष्ठ-भूमि के सर मॉरिस ग्वायर के स्पष्ट वक्तव्य का जिस प्रकार स्वागत किया, वह एक स्पष्ट चेतावनी है।

किसी नाम का विशेष सौंदर्य नहीं है। है तो उसी हद तक जहांतक उससे उन संस्थाओं का भास होता है जिनमें दीन अथवा विरोधी स्वभाव का अधिक या कुछ भी नहीं होता। इसलिए 'राष्ट्रीय पचायत' शब्द या नाम के महत्व पर बहुत ज्यादा ज़ोर देने के खतरे से बचने का हमें प्रयत्न करना चाहिए। माननीय व्यवहारों में तो हमारे संयुक्त अनुभवों ने हमें कुछ मार्ग बता दिए हैं और बिना किसी विरोध के भय के यह दावा किया जा सकता है कि अधिकांश मनुष्य-जाति की यह धारणा हो गई है कि अराजकता से अच्छी सुस्पष्ट कानूनों पर आधारित निश्चित सरकार है। मानव विकास की वर्तमान अवस्था में अराजकता से ऐसे परिणाम निकलने की सम्भावना नहीं है, जो सुगमता से स्वीकार कर लिए जा सकें।

जो लोग संसार के विभिन्न विधानों के इतिहास से परिचित हैं, वे यह जानते हैं कि पिछले दोसौ वर्षों के अर्से में—और अधिक पीछे न जायें तो—'राष्ट्रीय पंचायतें' दो प्रकार की रही हैं। एक तो वे जिन्होंने अपने विधान हिंसक हलचल, चाहे युद्ध या क्रांति, द्वारा तैयार किये हैं। और दूसरी वे जिन्होंने अपने काम को शान्ति-दायक प्रगति के साथ पूरा किया है। पहली प्रकार में तो अमरीका के संयुक्त राष्ट्र, फ्रांस, युद्ध के बाद का रूस, टर्की और जर्मनी की राष्ट्रीय-पंचायतें आ जाती हैं। एक प्रकार से वे राष्ट्रीय-पंचायतें भी उसमें आ जाती हैं जिन्होंने हालैण्ड, फ्रांस और इटली को छोड़कर बाकी यूरोप के लगभग सभी राष्ट्रों के महायुद्ध के बाद विधान निश्चित किए।

हो और आवागमन के साधन भी पूर्ण हों। सभी यह कहेंगे कि राष्ट्रीय आयनीति का आयोजन इस प्रकार हो कि देशी उद्योगों की समृद्धि बढ़े। इन विषयों पर मतभेद होते हुए भी कोई केन्द्रीय सरकार सम्भवतः विभेद-पूर्ण नीति ग्रहण नहीं कर सकती। अल्प-संख्यकों के लिए विशेष रुचि की बात जहांतक फेडरल विषयों का सम्बन्ध है, यह होगी कि वे उसमें कितना हाथ बंटा सकते हैं। विभिन्न विभागों के सुयोग्य परिचालन तथा शासन-सम्बन्धी संतुलन का यहाँ प्रश्न है। इन तथा अन्य बातों पर बाद में विचार किया जायगा।

सम्प्रदायवाद की हाल की पुकार तो उन अधिकारों से वंचित लोगों की इच्छा में से पैदा हुई है जो, उस महान् सत्ता में जिसके भारतीयों को मिलने की आशा है, एक महत्वपूर्ण भाग पाने का दावा करते हैं। वास्तव में और आवश्यक रूप से यह एक राजनैतिक पुकार है जिसे उन लोगों ने उठाया है जिन्हें अपने अधिकारों से वंचित होने का भय है या जो डरते हैं कि उनके वर्तमान अधिकार और लाभ बहुत कुछ सीमित हो जायँगे। भारतीय विदेशी राज्यों के शासक, यूरो-पियन या ऐंग्लोइण्डियन जिनमें अँग्रेज भी शामिल हैं, मुसलमान, ईसाई, बड़े पूंजी-वादी, ज़मींदार, दक्षिण के अब्राह्मण, अम्बेदकर-हरिजन और सिख, ये सब-के-सब लगभग एक-सी ही स्थिति में हैं। हाँ, ख़तरा किसी के लिए कम है, किसी के लिए अधिक।

लेकिन आज का मुख्य राजनैतिक प्रश्न तो भारत पर अँग्रेज़ों का महाशासन है और है भारतीय-विदेशी भारत। अँग्रेज़ों को या तो राज़ी किया जाय या उन्हें बाध्य किया जाय कि वे उस सत्ता को छोड़ दें जो भाग्य से उनके हाथ पड़ गई है। ब्रिटिश साम्राज्य के भारी-भरकम विस्तार पर दूरदर्शी विचारकों का बहुत समय से ध्यान रहा है। अतीत काल में कोई भी ऐसा साम्राज्य जीवित नहीं रह सका जिसका विस्तार बल-बूते से बाहर रहा हो। और कोई कारण नहीं है कि इतिहास का यह फ़ैसला मौजूदा साम्राज्य के बारे में विपरीत हो। जिस कशमकश में आज इंग्लैण्ड फँसा है, उससे वह अछूता नहीं रह सकता, चाहे उस कशमकश में उसे सफलता मिले या असफलता। ब्रिटिश साम्राज्य के सुदूरवर्ती भाग, विशेषकर भारत, सम्भवतः अब अधिक समय तक उसके मुंहदेखा नहीं रह सकते। ससार-भर की समस्त घटनायें आज यही बताती हैं। इसलिए हम यह कल्पना कर सकते हैं कि इंग्लैण्ड को यह विश्वास करने के लिए राज़ी किया जा सकेगा कि भारत को समर्थ बनने में आज सहायता देने से उसे भविष्य में अधिक लाभ होगा, बजाय इसके कि जो कुछ समर्थ वह भारत को बनाना चाहता है, उसे आनेवाली अनिश्चित कल के ऊपर छोड़ दे। लेकिनदेश के महत्वपूर्ण, यद्यपि कम शक्तिशाली, अल्पसख्यकों की भाँति ब्रिटिश को इस

देश में अपने मुख्य हितों के बारे में भारत के साथ स्पष्ट समझौता कर सकता है। तो भारतीय अल्पसंख्यक, चाहे जितने शक्तिशाली वे क्यों न हों, न भारतीय विदेश राज, देश की राजनैतिक प्रगति के मार्ग में इतने प्रभावशाली ढंग से रोड़ा अटका सकते हैं, या उसे रोक सकते हैं जितना कि ब्रिटिश पार्लमेंट कर सकती है, यदि भारत उसके साथ कोई समझौता नहीं कर पाता। लेकिन एक प्रकार से ब्रिटिश के साथ समझौते पर आया जा सकता है, क्योंकि संसार की राजनीति में ब्रिटिश का भी तो दाँव लगा है और लोक-मत की अवहेलना करके वह गैरवाजिब नहीं हो सकता। फिर भी यदि एक बार अँग्रेज भारत के अपने सरकार के रूप को निश्चित करने के अधिकार को स्वीकार करने का निश्चय कर लें तो भारतीय अल्पसंख्यकों से समझौता करना बहुत सुगम हो सकता है। कांग्रेस इंग्लैण्ड से यह घोषणा करने के लिए आग्रह कर रही है कि भारत को अपना विधान निश्चित करने का अधिकार है तो इसमें उसका ध्येय और उद्देश्य केवल यही है कि वह अल्पसंख्यकों से समझौता करने में सुविधा उत्पन्न करे। दुर्भाग्य से स्थिति बड़ी दूषित हो गई है। यदि ब्रिटिश राजनेता इस अवस्था में सत्ता छोड़ने के लिए असम्मत है, तो वे समय के साथ चले चलें जबतक कि ऐसी स्थिति न हो जाय कि उन्हें सत्ता छोड़नी ही पड़े। इसलिए यह आवश्यक है कि ग्रेट-ब्रिटेन के द्वारा भारत के आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को स्वीकार करने की माँग के साथ अल्पसंख्यकों में समझौता कराने का प्रयत्न भी दृढ़ निश्चय के साथ होना चाहिए। यदि समझौते का प्रयत्न सफल हुआ तो ग्रेट-ब्रिटेन द्वारा भारत के आत्म-निर्णय के सिद्धान्त को स्वीकार करने की बात का तो कुछ भी महत्व न रहेगा, क्योंकि अगर समूचे देश की ओर से सम्मत माँग पेश की गई तो यह अकल्पनीय है कि अँग्रेज़ सत्ता धारण किये ही जावेंगे। हाँ, सशस्त्र प्रतिरोध का सहारा लेकर वे ऐसा भले ही कर सकते हैं।

देशी रियासतें, जैसा कि बार-बार कहा गया है, सर्वोच्च सत्ता की ही वास्तव में उपज हैं और उनकी अधिक संख्या होने के बावजूद भी, उनकी सम्पूर्ण महत्ता इस बात में है कि उनके अनुचित दावों तक का सर्वोच्च सत्ता समर्थन करती है। वास्तव में ब्रिटिश भारत और देशी रियासतों में रहनेवाले भारतीयों में कोई अन्तर नहीं है। यदि ब्रिटिश भारत में कोई राजनैतिक अथवा आर्थिक परिवर्तन होते हैं तो रियासतों के लोग उनसे अछूते नहीं रह सकते। कोई एक दर्जन रियासतों को छोड़कर, बाकी रियासतें क्या हैं, वे तो शानदार ज़मीदार हैं जो मनमानी चलाते हैं। लेकिन उनकी शक्ति तो एक विडम्बना है। मामूली रियासतों के तथाकथित सरदार और शासक तो सर्वोच्च सत्ता के एजेण्टों के हाथ के बस कठपुतले हैं और उनकी तथाकथित आज़ादी ब्रिटिश भारत के निवासियों की अपेक्षा कहीं अनिश्चित है। फ़ौजी साधनों के अतिरिक्त

उनके आर्थिक साधन इतने नाकाफ़ी हैं कि वे मामूली से साल भर चलनेवाले संघर्ष को भी नहीं चला सकते। उन सबका किसी भी हालत में मेल नहीं हो सकता। हाँ, सर्वोच्च सत्ता की संयुक्त मर्ज़ी से हो सकता है। संक्षिप्त में कहा जा सकता है कि सर्वोच्च सत्ता के वे वक्त ज़रूरत के लिए सहायक हैं और सुरक्षित हैं। इसलिए यह पूर्णतया स्पष्ट है कि उनके साथ कोई समझौता नहीं हो सकता। हाँ, उनकी आक़ा सत्ता की मारफ़त हो सकता है।

इस प्रकार भारतीय समस्या का सबसे महत्वपूर्ण प्रश्न अंग्रेज़ी-सरकार का महाशासन है। अंग्रेज़ों के सम्बन्ध में विशेष दिलचस्पी की तीन महत्वपूर्ण बातें हैं जिनपर उनका दिमाग़ लगा है और जिनसे उन्हें सुरक्षित-मण्डी और साहसिक कार्य का विस्तृत क्षेत्र मिल जाता है। भारत की मुख्य लाभदायक राष्ट्रीय सम्पत्ति याने रेलवे वास्तव में अंग्रेज़ों के हाथ है। भारत की रक्षा के साधन उन्हीं की दया पर आश्रित हैं। भारत में लगभग ३० लाख अंग्रेज़ हैं जिनमें से कोई ५० हज़ार फ़ौज में और सरकारी नौकरियों पर हैं, जब कि अधिकांश व्यापार कर रहे हैं। यह ज़ोर के साथ कहा जा सकता है कि भारत ने अंग्रेज़ों को बहुत दिया है, इतना कि जितना उसने कभी अंग्रेज़ों से पाया भी नहीं था। और अब समय आ गया है कि वह साझेदारी ख़त्म हो और धरती के पुत्रों को अवसर मिले कि वे अपनी ही इच्छा और महत्वाकांक्षा के अनुसार अपनी स्थिति को उन्नत करें। अंग्रेजों को भारत के साथ संधि से ही संतुष्ट होना चाहिए। यह तो माना ही जाता है कि एक मज़बूत सरकार का सृजन होगा जो अंग्रेज़ों को उनके जायज़ अधिकार और लाभों की गारण्टी देगी। लेकिन अंग्रेज़ों का महाशासन न रहेगा। ऐसी मज़बूत सरकार तभी सम्भव है जब भारतीयों में ही उस सरकार के रूप के सम्बन्ध में समझौता हो जिनके कि शासन के मातहत उन्हें रहना है। इसलिए अब हम इस बात पर विचार करें कि राष्ट्रीय-पंचायत के द्वारा किन तरीक़ों से यह समझौता हो सकता है।

यदि हमें यह मान्यता लेकर चलना है कि राष्ट्रीय-पंचायत जो कि भारत का आत्म-निर्णित विधान तैयार करेगी, क्रांतिकारी संस्था नहीं है, बल्कि विकासशील है, तो राष्ट्रीय स्थिति का मुख्य प्रश्न, याने ब्रिटिश सत्ता को आँख ओझल नहीं किया जा सकता। प्रयत्न सफल होगा या असफल, यह तो इंग्लैण्ड की समूचे प्रश्न के हल निकालने में सहायता देने की इच्छा पर निर्भर है। गवर्नर-जनरल की घोषणाओं से अंग्रेज़ों की वैसी इच्छा का पता चलता है; लेकिन पूर्व परिस्थितियों से जिनसे कि उनकी इच्छा सीमित है, बड़ी विषैली स्थिति पैदा होती है। मज़ेदार बहाना बनाया जाता है कि जिन विशेष स्थितियों में मज़बूत सरकार का निर्माण हो सकता है, वे स्थितियाँ तो इस समय हैं ही नहीं। साम्प्रदायिक झगड़ा फैला है। यह भी कहा जाता

है कि चूंकि राष्ट्रीय समझौते की कोई गारण्टी नहीं मिल रही है, इसलिए ब्रिटिश सरकार प्रस्तावित असेम्बली की सफलता की कोई आशा नहीं कर सकती है। इस बाद की बात के दुधारे फलितार्थ हैं। यदि देश का शक्तिशाली राजनैतिक दल किसी ऐसे मार्ग पर चलता है जिसमें कठिनाइयाँ-ही-कठिनाइयाँ हैं और राष्ट्रीय-पंचायत के जिसकी कि वे मांग कर रहे हैं, श्रम का असफल साबित होना लाजिमी है तो उस बबूले को फोड़ने का सबसे इच्छा तरीक़ा यह है कि उन सबको व्यर्थता में ही फंसे छोड़ दिया जाय। कांग्रेस की ओर से कहा गया है कि उसने जो मांग की है उसके परिणाम भुगतने के लिए वह तैयार है, चाहे इससे उसकी सारी योजनाएँ ही क्यों न नष्ट हो जायँ। इसलिए ऐसा प्रस्ताव का न माने जाने से ब्रिटिश सरकार की प्रामाणिकता पर बुरी तरह आलोचनायें और सन्देह उठ खड़े होंगे। दूसरी ओर सफलता और तुक के साथ दलील दी जा सकती है कि राष्ट्रीय-पंचायत के इस प्रयोग की निष्फलता का सम्भावित भय ही विरोधियों की प्रामाणिकता का सबूत देता है। यदि आपत्ति करने वाले दूसरा सफल विकल्प बतायें तो बाद की दी गई दलील का कुछ महत्व हो सकता है।

इसलिए हम उन कुछ विकल्पों की पायेदारी की जांच करें। एक बार यह स्वीकार कर लिया जाय कि एक मज़बूत सरकार एक विस्तृत-से-विस्तृत आधार, याने राज्य की बालिग़ जनता की बड़ी-से-बड़ी सम्भव संख्या की स्वतन्त्र और सक्रिय रज़ामन्दी पर ही टिक सकती है। किसी राज्य के विधान बनाने के निर्णय चाहे एक आदमी ही निश्चय कर ले या बहुत से आदमी करें, या नुमाइन्दों का छोटा सम्प्रदाय करे या बड़ा, पर जो शक्ति वे अमल में लावें, वह निर्वाचन-क्षेत्र के समूचे सम्प्रदाय या वहां की जनता या राज्य की ओर से उनके हाथ सौंपी गई हो। यदि ऐसा नहीं होता तो कुछ व्यक्तियों के निर्णयों को बड़ी संस्थाओं के निर्णयों की भांति वे अधिकारी नुमाइन्दे जिनका हाथ उन निर्णयों में नहीं है, नामंजूर कर देंगे। यदि निर्णय शस्त्र-बल या उतने ही अधिक प्रभावशाली किसी अन्य दबाव द्वारा लोगों के गले नहीं उतारे जाते तो वे क्षणिक ही होते हैं। दबाव से दबे राज्य में भी एक मज़बूत सरकार क़ायम की जा सकती है, जैसे जर्मनी और रूस में है। यदि हमारी मांग केवल मज़बूत सरकार के लिए है तो उसके लिए सब इरादों और ध्येयों के लिए पूर्ण अधिनायकता उतनी ही अच्छी चीज़ है जितनी दूसरी और कोई। मनचाहा फल उससे मिल जाता है।

कांग्रेस, लीग और ब्रिटिश हाई कमांड के बीच प्रारम्भिक चर्चाओं और समझौतों का यह लाभ हो सकता है कि उससे समझौते द्वारा समूचे देश के निर्णय के मान्य होने का उचित वातावरण पैदा होगा; क्योंकि कांग्रेस, लीग और ब्रिटिश हाई

कमाण्ड तीनों सुव्यवस्थित खयाल किए जाते हैं। उनमें सम्मानित और जिम्मेदार नेता हैं। व्यावहारिक मूल्य इस तरीक़े का कुछ आज भी हो, लेकिन इस बात की गारण्टी कोई नहीं है कि अपनी-अपनी संस्थाओं की ओर से जो कुछ ये करेंगे वह चालीस करोड़ भारतीयों को मान्य होगा, क्योंकि भारत को चूस डालने के लिए ही तो वे बने हैं।

भारत के ब्रिटिश हितों के प्रतिनिधि की हैसियत से गवर्नर-जनरल अंग्रेजों की ही तरफ़ से नहीं बोल सकते; बल्कि भारतीय-विदेशी राज्यों की तरफ से भी बोल सकते हैं। देशी रियासतों को राज़ी करने के लिए वह किन मार्गों का अवलम्बन करेंगे, यह तो वही तै करेंगे। यह नहीं भूलना चाहिए कि रियासतों की प्रजा को ही इस बात का अन्तिम अधिकार है कि वह उस सरकार के रूप को निश्चित करे जिसके शासन के मातहत उसे रहना है। तब गवर्नर-जनरल उन लोगों से जो अल्पसंख्यकों की ओर से बोलने का दावा करते हैं संरक्षण के लिए माँगों की सूची मांगें। उन माँगों को वे छोड़ दें जो सामान्य स्वीकृत माँगों के देखते हुए अनुचित हों। अल्पसंख्यकों की मांगें कुछ भी हों, असंगत वे नहीं होनी चाहिएँ। गवर्नर-जनरल द्वारा तै की गई इस मांगों की सूची पर देश की महत्वपूर्ण राजनैतिक संस्था, याने कांग्रेस के प्रतिनिधियों से चर्चा खत्म होने पर राष्ट्रीय-पंचायत के विधान तथा अन्य बातों को सुगमता से तै किया जा सकता है।

प्रारम्भिक बातों को तै करने का एक मार्ग और है। वह कुछ अधिक वैधानिक भी दिखाई देता है। प्रांतीय असेम्बिलियाँ और कौंसिलें निश्चित संख्या में कुछ प्रतिनिधि चुनें और ये प्रतिनिधि प्रारम्भिक बातों को तै कर डालें।

एक और भी तरीका है। देश की प्रमुख पार्टी याने, कांग्रेस-कार्यसमिति प्रमुख राजनैतिक संस्थाओं के, जो प्रान्तों में उसकी विरोधी हैं, अध्यक्षों की पूर्व सम्मति से एक बेजाब्ता राष्ट्रीय परिषद् बुलाले जो प्रारम्भिक बातों को तै करे। इस तरीके में एक भारी आपत्ति हो सकती है, और वह यह कि यद्यपि विभिन्न राजनैतिक, और धार्मिक संस्थाओं के अध्यक्षों ने या राष्ट्रीय परिषद् में कोई निर्णय कर भी लिये गये तो इस बात की गारंटी नहीं है कि राष्ट्रीय-पंचायत भी उन्हें मान ही लेगी। ज़ाहिरातौर पर इसलिए एक स्वीकृत अनुशासन की आवश्यकता है और इस बारे में एकमात्र अनुशासन यह हो सकता है कि ब्रिटिश प्रतिनिधियों से पूर्व समझौता कर लिया जाय कि राष्ट्रीय-पंचायत के विचार के सारभूत आधार यही निर्णय होंगे। लेकिन यह उस आत्म-निर्णय के सिद्धान्त के विरोध में आयगा जो राष्ट्रीय-पंचायत के काम का आधार है।

यह कहा जा सकता है कि यदि विभिन्न राजनैतिक या सामाजिक संस्थाओं के थोड़े से अध्यक्षों का ही निर्णय महत्त्वपूर्ण है और उनका समझौता ही सारी स्थिति का

अन्तिम प्रश्न होगा तो राष्ट्रीय-पचायत की जरूरत ही क्या रह जाती है? ऐसी हालत में वह व्यर्थ होगी। पर विधान बनाने का काम भी तो विशेषज्ञ ही कर सकेंगे और राष्ट्रीय-पचायत भी आधारमूलक सिद्धान्तों को तै करने के बाद विधान बनाने का काम विशेषज्ञों को ही सौंपेगी।

एक तरीके पर और विचार किया जा सकता है। प्रान्तीय धारा-सभाओं में देश की बालिग़ जन-सख्या का २५ प्रतिशत प्रतिनिधित्व होता है। और इन प्रतिनिधियों को सभी कल्पनीय राजनैतिक दलों में से लाया जाता है। लीग तक इस बात का दावा करती है प्रान्तों की विभिन्न धारा-सभाओं के अधिकांश मुस्लिम प्रतिनिधि लीग के समर्थक हैं। क्या कारण है कि प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्य राष्ट्रीय-परिषद् में जिसमें प्रारम्भिक बातें तै की जाँय, और साम्प्रदायिक समस्याओं पर भी जिसमें विचार कर लिया जाय और उन्हें तै कर लिया जाय, भेजे जाने वाले प्रतिनिधियों के निर्वाचन-क्षेत्र न बन जावें? ऐसी परिषद् के प्रतिनिधि स्वाभाविक रूप से अपनी प्रातिनिधिक हैसियत में ही मिलेंगे। यदि उनके निर्णयों पर कोई ऐसी आपत्ति नहीं होती कि वे भारत की समूची बालिग़ जन संख्या का प्रतिनिधित्व नहीं करते हैं, तो शायद उन्हीं को देश की राष्ट्रीय-पचायत मान लिया जायेगा। कुछ भी हो, साम्प्रदायिक प्रश्न, आमतौर से अल्पसख्यकों के अधिकार और राष्ट्रीय-परिषद् के विधान तथा अन्य बातों पर उनके निर्णय बड़े निर्वाचन पर चुनी हुई राष्ट्रीय पंचायत की बुनियाद बनाए जा सकते हैं। इसमें तो यह भी मान्यता आ जाती है कि ब्रिटिश सरकार इस राष्ट्रीय-परिषद् और विस्तृत राष्ट्रीय-पंचायत के निर्णयों को मानने के लिए बाध्य होगी। अन्यथा उनका निश्चय देश की मूल-माँग होगी जिसका मुकाबिला केवल सशस्त्र विरोध से ही किया जा सकेगा। शायद आस्ट्रेलिया की कॉमनवैल्थ का उदाहरण इस बारे में विशेष रूप से संगत है। जिस राष्ट्रीय पंचायत ने आस्ट्रेलिया की कॉमनवैल्थ का फ़ेडरल-विधान तैयार किया था, वह शुरू में संयुक्त राज्यों के प्रतिनिधियों की एक परिषद् थी। प्रारम्भ में उस परिषद् का सम्बन्ध कुछ अपने-अपने राज्यों के फाइनेन्स से सम्बन्ध रखनेवाले आंतर-राज्य प्रश्नों से ही था। पहली बैठक के बाद अनुभव किया गया कि प्रश्न केवल फ़ाइनेन्स या कर का ही नहीं है, बल्कि सर्वसाधारण में सम्बन्ध रखनेवाले उन सभी प्रश्नों का है, जिन्हें सम्बद्ध करना होगा। इसलिए वे उन प्रश्नों पर विचार करते गए और अन्त में उन्होंने फेडरल विधान तैयार कर डाला, जिसे ब्रिटिश पार्लमेंट को रजिस्टर करना पड़ा। भारत के मार्ग-प्रदर्शन के लिए भी यह एक अच्छा वैधानिक निदर्शन है और उसके लिए ऊपर से किसी के अनुशासन की भी आवश्यकता नहीं है।

प्रान्तीय धारा-सभाओं के सदस्यों की प्रातिनिधिक हैसियत पर तो कोई शक

कर ही नहीं सकता। और उसी हैसियत में वे उन निर्णयों पर पहुँच सकते हैं जो देश की माँगें होंगे। कहा जा सकता है कि यह तरीक़ा भी मुख्य कठिनाई याने साम्प्रदायक समझौते को दरगुज़र करता है। कांग्रेस ने यह पहले ही स्पष्ट कर दिया है कि एक राजनैतिक सस्था के रूप में, जिसकी सात प्रान्तों में महत्वपूर्ण स्थिति है, वह मुस्लिम लीग के साथ जोकि भारतीय मुसलमानों के एक बड़े और प्रभावशाली भाग की ओर से बोलने का दावा करती है, समझौता करने के लिए तैयार है। बद-क़िस्मती से लीग ने कांग्रेस के प्रतिनिधियों के साथ समझौता करने से अबतक इन्कार कर दिया है। एक शर्त पर वह समझौता कर सकती है। कांग्रेस उसे भारत के मुसलमानों की एक-मात्र प्रतिनिधि मान ले। साथ ही लीग के अध्यक्ष ने जनतन्त्र के सिद्धान्त को भी छोड़ दिया है और यह कहकर उसकी निन्दा की है कि भारत की योग्यता से वह मेल नहीं खाता।

इन कठिनाइयों के बावजूद भी कांग्रेस ने लीग को भारत के मुसलमानों को एक प्रभावशाली और सुव्यवस्थित राजनैतिक संस्था के रूप में मानने की रज़ामन्दी ज़ाहिर की है।

इस अवस्था में इस विस्तार में पड़ने की आवश्यकता नहीं है कि राष्ट्रीय-पंचायत की कार्य पद्धति और रचना क्या होगी। लेकिन यह हम फिर कह दें कि आधारमूलक अधिकारों पर सर्वसाधारण का चर्चा करना स्थिति के देखते अत्याव-श्यक है। इसी चर्चा पर भारत के स्वतन्त्र राज की इमारत खड़ी होगी। कोई विशेष अल्पसख्यक या भारतीय जनता का अन्य महत्वपूर्ण अङ्ग सार्वजनिक चर्चा के लिए कोई प्रस्ताव रखने के लिए तैयार हो या न हो, देश के प्रमुख राजनैतिक दल का यह कर्तव्य है कि वह विचारों के स्पष्टीकरण के उद्देश्य ऐसी से सार्वजनिक चर्चा का श्रीगणेश करे।

: ५ :

राष्ट्रीय-पंचायत और साम्पदायिक समझौता

[डाक्टर पट्टाभिसीतारामैया]

इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं कि कांग्रेस कार्यसमिति के नवम्बर १६३६ की बैठक में पास किये हुए नये प्रस्ताव की तीव्र आलोचना हुई है। एक तरफ़ तो सहज झुक जानेवाले कुर्सीतोड़ राजनीतिज्ञ उसकी आलोचना कर रहे हैं और दूसरी ओर वे लोग भी टीका-टिप्पणी कर रहे हैं, जो कांग्रेस की उद्देश्य प्राप्ति की गति को तेज़ करने के लिए आतुर हैं। हमें यह स्वीकार करना चाहिए कि समिति के निर्णय

का आधार यह रहा कि सरकार ने हमसे समझौता करने का द्वार बन्द कर दिया है, किन्तु फिर भी हमें अपनी ओर से जल्दबाज़ी करके स्थिति बिगाड़ना नहीं चाहिए। यद्यपि हमको प्रत्येक परिस्थिति का मुक़ाबला करने की तैयारी भी करते जाना चाहिए। हमारी नीति यह थी कि हम सरकार को छेड़कर मजबूर करना नहीं चाहते, किन्तु तब तक प्रतीक्षा करना चाहते हैं जबतक कि सरकार स्वयं अपने आपको ग़लत स्थिति में न डाल ले। यह तीव्रता से अनुभव किया गया कि वर्तमान समय के और सविनय आज्ञाभङ्ग की घोषणा होने अथवा ऐसी परिस्थितियों के पैदा हो जाने के बीच में, जिससे कि सविनय आज्ञाभङ्ग करना आवश्यक हो जाय, एक ऐसा मध्यवर्ती समय भी है जिसमें कि हमें ब्रिटिश सरकार से समझौता करने की कोशिश करनी चाहिए। इसलिए यह उचित ही है कि हम स्वयं अपने सामने, भारतवर्ष के अपने समालोचकों के सामने तथा बाहरी संसार के सामने अपनी स्थिति स्पष्ट कर दें।

साम्प्रदायिक समझौता

सबसे पहले तो कार्य-समिति ने अनुभव किया कि हमें यह दिखा देना चाहिए कि हम साम्प्रदायिक समझौता करने को सचमुच इच्छुक हैं, इसलिए नहीं कि हम वायसराय के कथन को स्वीकार करते हैं, जोकि बिलकुल ग़लत है, किन्तु इसलिए कि अपनी सचाई प्रकट करना हमारा कर्तव्य है। मुसलमान मित्रों के सामने हमें अपनी स्थिति और भी स्पष्ट कर देनी चाहिए, और राष्ट्रीय पंचायत के सम्बन्ध में उन की उठाई हुई आपत्तियों का उत्तर देना चाहिए। हमने अपने प्रस्ताव में वास्तव में ऐसा उत्तर देने का यत्न किया है। यह कोई पहला अवसर नहीं है कि हम साम्प्रदायिक समस्या का हल ढूंढ़ने की कोशिश कर रहे हों। गाँधीजी के दूसरी गोलमेज़-कान्फ्रेन्स के लिए इग्लैण्ड रवाना होने के समय भी हमने साम्प्रदायिक समझौते का एक गुर तैयार किया था। सन् १६३५ में तो राजेन्द्र बाबू ने जिन्ना साहब के साथ इस समस्या को क़रीब क़रीब तय ही कर डाला था। किन्तु जिन्ना साहब की इस ज़िद के कारण कि इस हल को हिन्दू महासभा भी स्वीकार करे, वह समाप्त हो गया। इसके बाद १६३७ और १६३८ में लीग और कांग्रेस के बीच में लम्बा और आरोप प्रत्यारोपात्मक पत्र व्यवहार तक होता रहा। नवम्बर १६३६ के प्रथम सप्ताह में दिल्ली में जो बातचीत हुई, और अब उसी सम्बन्ध में जो कुछ कार्रवाई होगी, यह सब उसी दिशा के प्रयत्न का सिलसिला है। इसलिए, साम्प्रदायिक समझौते की इन बातचीतों को जारी रखते हुए हमारा यह कर्तव्य है कि हम एक युद्धशील संस्था के रूप में अपनी स्थिति को मज़बूत कर लें।

गाँधीजी की आशङ्का

आज गाँधीजी के हृदय में कांग्रेस और भारत के सविनय आज्ञाभङ्ग की लड़ाई में सफलता पा सकने के विषय में गम्भीर आशङ्का और भय है। यह आशङ्का है कि सविनय आज्ञाभङ्ग कहीं बुरी तरह दब न जाय, या कहीं साम्प्रदायिक दंगों और हिंसा का रूप ग्रहण न कर ले। यह उनका नया विचार नहीं है, क्योंकि वह बहुत समय से ऐसी आशंका प्रकट करते आरहे हैं। यहाँ इस बात का सवाल नहीं है कि जो लोग अधिक गरम और उत्तेजक कार्यक्रम के पक्षपाती हैं उनकी प्रेरणा से जल्दबाज़ी का कोई क़दम उठाना चाहिए या नहीं, न इस बात का सवाल है कि सरकार से युद्ध घोषित करने के साहस की कमी है या नहीं। गांधीजी तो सावधानी कर रहे हैं, जो अन्य परिस्थिति में वे सम्भवतः न करते। उन्होंने प्रान्तों की, तथा मज़दूरों की और किसानों की स्थिति को एक दृष्टि से समझ लिया है और अपना निर्णय कर लिया है। यह प्रश्न कभी-कभी किया जाता है कि हमारी राजनीतिक स्थिति क्या है, क्या साम्प्रदायिक समझौते की चर्चायें जारी रखनी ही पड़ेंगी, अथवा, क्या हम उन्हें गौण स्थान प्राप्त करने देंगे। किन्तु गांधीजी का सोचा हुआ उत्तर यह होगा कि अब भी हमें सर्वसम्मत समझौते पर पहुँचने का काफ़ी यत्न करना चाहिए, और इसके लिए भी तैयार रहना चाहिए कि दूसरे अल्पसंख्यक वर्ग भी अपने-अपने लिए समझौते करने को आगे आयँगे। हमें प्रत्येक अल्पसंख्यक वर्ग के सम्बन्ध में अपनी स्थिति निश्चित कर लेनी चाहिए, और वह उनको बतला देनी चाहिए, जिससे कि ब्रिटिश सरकार को सत्ता के स्थान से हटाया जा सके। यदि हम सफल हो जाते हैं तो यह एक महान सफलता होगी। यहां यह स्मरण रखना होगा कि हम समस्या की सत्यता को स्वीकार नहीं कर रहे।

क्योंकि कहा जा सकता है कि जब आप से यह पूछा जाय कि आपको कोई काम करना क्यों आवश्यक है तो आपका जवाब है कि आपको वह काम करना आवश्यक है। स्थिति को अच्छी तरह समझने के लिए हमें हाल में हुई जिन्ना साहब और गांधीजी की बात-चीतों को अपनी दृष्टि से बाहर कर देना चाहिए। इनके अलावा भी, यह हमारा काम ही है कि हिन्दुओं और मुसलमानों के बीच पैदा होने वाले भिन्न-भिन्न प्रश्नों के विषय में हमें क्या करना चाहिए इस बात का हम निर्णय कर लें। जब हम लोगों ने १४ सितम्बर १९३९ का (युद्ध-सम्बन्धी) वक्तव्य तैयार किया था उस समय भी इस तरह के समझौते का ख़याल हमारे दिमाग़ से बाहर न था। बल्कि यह सबको स्मरण होगा कि हम लोगों ने जिन्ना साहब को तार देकर निमंत्रित भी किया था, किन्तु एक सप्ताह बाद ही दिल्ली में मुस्लिम-लीग की कार्य समिति की बैठक

होनेवाली थी इस कारण उन्होंने आने की अपनी असमर्थता प्रकट की। इतना होते हुए भी जब वायसराय हमसे ही कहते हैं कि लोगों ने इस प्रश्न को हल नहीं किया है, और इसीकी घोषणा वह तुरन्त उसी रात को रेडियो पर जाकर कर देते हैं तो हमें बहुत बुरा लगता है। यदि हम ब्रिटिश सरकार को यह विश्वास नहीं दिला सकते कि वह ग़लती पर है, तो इससे हमारी योजनायें बन्द नहीं हो जातीं, और न हम अपने मार्ग से हट सकते हैं। बाहरी मुल्क भी यदि हम पर ताने कसे और हमारा मज़ाक़ उड़ाये तो भी हमें अपना कर्तव्य पालन करना पड़ेगा और प्रचार करना पड़ेगा। जो प्रचार भारतवर्ष के अन्दर किया जाता है वह बाहरी मुल्कों में भी आवश्यक रूप से प्रतिबिम्बित हो जाता है। और बाहरी देश हमारे मार्ग की समालोचना में जो कुछ कहते हैं उससे भी हमें घबराने की आवश्यकता नहीं है। हमें तो केवल इस बात का ध्यान रखना चाहिए कि हमारा मार्ग सही है। हमारे सामने यही एक कसौटी है।

उचित समय

फिर भी यह प्रश्न हो सकता है कि जब अँग्रेज़ लोग एक हाथ से तराज़ू को उठाये हुए हैं और शायद दूसरे हाथ से एक पलड़े को ज्यादा झुकाये हुए हैं, तो क्या यह समय साम्प्रदायिक समस्या को हल करने के लिए उचित है। हमारा उत्तर यह है कि इस समय का चुनाव हमने नहीं किया है। हम तो निरन्तर प्रयत्न करते रहे हैं और यह प्रयास भी उसी सिलसिले में से एक है। साम्प्रदायिक प्रश्न हमेशा खड़ा रहा है और हम यह नहीं कह सकते कि क्योंकि दूसरे लोगों ने इसे खड़ा किया है, इसलिए हम इसे हल न करेंगे। और इस दूसरे ख़याल से भी कि, वर्तमान राजतन्त्र इस मन्त्रणा को और भी बढ़ाता रहेगा, हमें रुकने की आवश्यकता नहीं है। उत्तर में हम यही कह सकते हैं कि ब्रिटिश सरकार के रहते हुए तो यह मन्त्रणा और भी लम्बे अरसे तक जारी रहेगी, और इससे साम्प्रदायिक समस्या के हल होने की ही सम्भावना रहेगी।

विधान (राष्ट्रीय) पञ्चायत

कुछ दूसरे लोगों की राय यह है कि "हमने ही अचानक साम्प्रदायिक प्रश्न को उसकी क़ब्र में से निकाल लिया है, क्योंकि उनके कहने के अनुसार हमने युद्ध के साथ शुरूआत की है। ब्रिटेन ने हमारी जानकारी या मर्ज़ी के बिना ही हमको युद्ध में सम्मिलित कर लिया है। हमारे सहयोग दे सकने से पहले हमने ब्रिटेन से चाहा कि वह हमारे सामने सिद्ध करे कि इस स्थिति में भी युद्ध न्यायपूर्ण और उचित है। उसने कुछ भी जवाब दिया हो, किन्तु वह है असन्तोषपूर्ण, और उसकी नीति आपत्ति-जनक है। दो महीने पहले हमारे कुछ भी विचार रहे हों, अब ब्रिटेन के व्यवहार

और वक्तव्यों के कारण हमने अपना खयाल बदल दिया है।" ऐसा कहनेवालों को हमारा जवाब यह है कि हमें वायसराय को सत्य कथन करनेवाला मानना चाहिए। वायसराय ने हमें चुनौती-सी दे दी है कि आप लोग ब्रिटिश सरकार के सामने कोई सर्वसम्मत योजना लेकर तो पहुँचें। इस प्रकार का सर्वसम्मत समझौता केवल राष्ट्रीय-पंचायत द्वारा ही प्राप्त हो सकता है। प्रत्येक सम्प्रदाय के हितों के लिए हर तरह का संरक्षण रक्खा जायगा। बालिग़ मताधिकार का आधार रहेगा। भिन्न-भिन्न सम्प्रदायों को सन्तुष्ट करके ही समस्या का हल निश्चित किया जायगा। मुसलमानों की इच्छायें पूरी करने और उनके हित को सुरक्षित रखने की दृष्टि से ही बालिग़ मताधिकार ग्रहण किया गया है, क्योंकि यदि शिक्षा या सम्पत्ति के आधार पर मताधिकार रक्खा जायगा तो इससे उन्हें ही हानि होगी। उन्होंने सदा बालिग़ मताधिकार की या ऐसे मताधिकार की मांग की है जिससे कि हिन्दू वोटरों के मुक़ाबिले में उनके उतने ही वोटर हों जितनी कि उनकी संख्या हिन्दुओं की संख्या के मुक़ाबिले में है। ऐसा मताधिकार या तो उनको विशेष रियायत देने से या दूसरों पर प्रतिबन्ध लगाने से हो सकता है जो कि प्रजातन्त्रवाद के विरुद्ध होगा। उपर्युक्त व्यवस्था कर देने के बाद यदि अल्पसंख्यक सम्प्रदाय स्वराज की इच्छा नहीं करता तो संसार को ज्ञात हो जायगा कि हम किस स्थिति में हैं। यदि वह स्वराज की इच्छा करता है तो हमें उसकी शर्तें मालूम हो जाती हैं। राष्ट्रीय-पञ्चायत का तथा उसके द्वारा साम्प्रदायिक प्रश्न का निबटारा कराने का तत्व-ज्ञान यही है।

भारत का अधिकार-पत्र

इस प्रकार यदि सारा भारतवर्ष बालिग़ मताधिकार के आधार पर एकत्रित होकर अपने अधिकारों की माँग करेगा, तो उस अधिकार-पत्र पर ब्रिटिश गवर्नमेण्ट को दस्तखत करने ही पड़ेंगे। यह सही है कि लार्ड ज़ेटलैण्ड हिन्दुओं, मुसलमानों और नरेशों से संयुक्त घोषणा की माँग करते हैं। हमारी राष्ट्रीय-पंचायत में नरेशों को जोड़ना और उनके होते हुए रियासतों की जनता को भी शामिल करना कठिन है। हमारा सर्वप्रथम उद्देश्य यह होना चाहिए कि रियासतों की जनता को नागरिक स्वतंत्रता दिलाई जाय, और कुशासन हटाकर अच्छे ढंग का शासन तुरन्त ही स्थापित कराया जाय। यदि एक बार हमारी इतनी मांग मंज़ूर हो जायगी, तो हम सब बाधाओं को पार कर सकेंगे और रियासतों की जनता को अपने साथ ले सकेंगे। किन्तु हमारे साथ ऐसे लोग भी हैं जो लड़ाई के लिए आतुर हो रहे हैं। फिर भी हम अनुभव कर सकते हैं कि उपर्युक्त समस्त संरक्षणों के साथ राष्ट्रीय-पंचायत की कांग्रेस की मांग को रोकना जिन्ना साहब के लिए अत्यन्त कठिन होगा।

राष्ट्रीय-पंचायत की बैठक कब हो ?

इस समय की वास्तविक समस्या यह है कि क्या सविनय-आज्ञाभंग का परिणाम राष्ट्रीय-पंचायत होगी, या राष्ट्रीय-पंचायत से ही सविनय आज्ञाभंग की आवश्यकता मिट जायगी। भारतवर्ष की सारी समस्या का सार इसी प्रश्न में सन्निहित है। आयर्लैंण्ड में हिंसात्मक संघर्ष हुआ और उसका परिणाम हुआ राष्ट्रीय-पंचायत। किन्तु भारतवर्ष में तो हिंसा का स्थान अहिंसा ने ग्रहण किया है। इसलिए यहां इस क्रम के बदल जाने की आशा करना युक्ति-संगत ही होगा, और इसलिए राष्ट्रीय-पंचायत से सविनय-आज्ञाभङ्ग की आवश्यकता मिट जानी चाहिए। इलाहाबाद में कांग्रेस-कार्यसमिति द्वारा पास किये हुए पिछले प्रस्ताव का ज़ोर इसी प्रश्न पर है, और चूंकि उसने राष्ट्रीय-पंचायत बुलाने के पक्ष में और पहला क़दम सविनय-आज्ञाभङ्ग के रूप में तुरन्त न उठाने और उसे स्थगित रखने का निर्णय किया है, इसलिए स्वाभाविक ही है कि कांग्रेस के फारवर्ड ब्लाक की तरफ़ से ताने और मज़ाक की बौछार होने लगी है, मध्यवर्ती भाग में शङ्काएँ और कठिनाइयां उत्पन्न हो गई हैं, और अनुयायियों में बड़ा गम्भीर चिन्तन पैदा हो गया है। इन तीन प्रकार के समुदायों पर विचार करना आवश्यक है। शान्तिपूर्वक समझौता करने के मार्ग की समस्त कठिनाइयों के होते हुए भी, जो कम होने के बजाय निरन्तर बढ़ती हुई-सी दिखाई देती हैं, कार्यसमिति ने समस्त विरोधी समालोचनाओं का मुक़ाबिला करने का साहस किया। यदि यह बात मानी जाय तो उसका कर्तव्य हो जाता है कि वह जनता के सामने अपने पक्ष को, ऐतिहासिक और क़ानूनी तथा राजनैतिक और नैतिक, प्रत्येक दृष्टि से सिद्ध करे।

क्रम का बदलना

पहले हम नैतिक पहलू को लेते हैं। हमने हिंसा के क्षेत्र में ब्रिटेन से युद्ध नहीं किया है, और न ऐसा करने का हमारा इरादा है। आयर्लैंण्ड-वासियों ने १९१७ में विद्रोह का झण्डा खड़ा किया, और गुरीला-युद्ध की-सी लड़ाई विशेषतः जून १९२० और नवम्बर १९२१ के बीच जारी रक्खी, जिसके कारण रायल आयरिश कान्स्टेबल-दल और आयरिश इर्रेगुलर-दल में अनेकों घृणित हत्याकाण्ड घटित हुए, जिनमें से उल्लेखनीय बेलफास्ट और कॉर्क के थे। फलतः श्री लायड जार्ज ने श्री डी वेलरा को बुलाया, और १८ धाराओं की एक सन्धि की, जिसका समर्थन बाद में राष्ट्रीय-पंचायत के रूप में बैठी हुई डेल आयरैन परिषद् ने किया, तथा ब्रिटिश पार्लमेण्ट ने भी किया। बाद में उसी सन्धि के आधार पर क़ानून बनाया गया। डेल आयरेन ने, जिसके सिपुर्द कि आयरिश जनता की इच्छा के अनुसार आयर्लैंण्ड

के लिए शासन-विधान बनाने का काम था, राष्ट्रीय-पंचायत का काम किया और इसी शासन-विधान को अँग्रेज़ों ने उस समय की पार्लमेंटरी रीति को पूर्ण करने की दृष्टि से अपनी पार्लमेंट में पास करना मंज़ूर कर लिया। याद रखना चाहिए कि यही बात आस्ट्रेलिया और दक्षिण अफ्रीका के विषय में भी हुई। कैनेडा के विषय में तो, सारा कैनेडियन क़ानून ब्रिटिश क़ानून की भांति ब्रिटिश पार्लमेंट में रखकर पास किया गया। इसलिए अन्तिम उदाहरण से तो यही आवश्यक प्रतीत होता है कि शासन विधान बनाने का अधिकार रखनेवाली एक राष्ट्रीय-पंचायत का निर्माण किया जाय, और लड़ाई बन्द कर दी जाय। आयर्लैंण्ड के समझौते की एक महत्व-पूर्ण बात यह थी कि राष्ट्रीय-पंचायत कही जानेवाली परिषद् अर्थात् आयरिश पार्ल-मेंट के रूप में बैठनेवाली डेल आयरेन कई वर्षों की लम्बी लड़ाई के, विशेषतः आयरिश और इंग्लिश लोगों की १८ महीने की आपसी खून-ख़राबी के बाद अस्तित्व में आई थी। हिंसा के क्षेत्र में तो, स्वभावतः ही राष्ट्रीय-पचायत इतना भारी और व्यापक खून-ख़राबी के बाद आयेगी, जिससे कि धैर्य की सीमा पार हो जायगी, और दोनों पक्ष समझौते के लिए आतुर हो जायँगे। किन्तु अहिंसा की योजना में इतिहास की पुनरावृत्ति की आवश्यकता नहीं है, बल्कि क्रम उलटा हो जायगा।

पण्डित जवाहरलाल नेहरू की कल्पना

भारतवर्ष में पंडित जवाहरलाल नेहरू ने सन् १९३४ में जेल से रिहा होने के बाद सर्वप्रथम राष्ट्रीय पंचायत बुलाने की आवश्यकता का ज़िक्र किया। किन्तु दैववशात् कुछ राजनीतिज्ञों ने इस विचार को कुछ समय के बाद प्रकाशित किया। जिस समय जवाहरलालजी ने कहा कि अगला क़दम राष्ट्रीय-पचायत बुलाना होना चाहिए, तो उस समय वह विचार समय से कुछ पूर्व था, क्योंकि ऐसे विचार के कार्यान्वित होने का वक़्त सचमुच नहीं आया था। निस्सन्देह हमने एक लड़ाई लड़ी थी, किन्तु हम उसमें पराजित हुए थे। सामूहिक स्वरूप के सविनय-आज्ञाभङ्ग को अगस्त १९३३ में त्यागना पड़ा था, और पूना में किये हुए व्यक्तिगत आज्ञाभङ्ग के निर्णय पर भी बहुत थोड़ा कार्य हुआ था। इसमें सन्देह नहीं कि महात्मा गाँधी तो व्यक्तिगत आज्ञाभङ्ग को भी बन्द करना चाहते थे, किन्तु पूना में आये हुए प्रान्तीय-नेताओं ने ऐसा करने नहीं दिया। उस समय उन लोगों द्वारा पूना में महात्माजी को वचन दिये जाने पर भी, सविनय अवज्ञा के स्वेच्छापूर्ण कार्य करके जेल जानेवालों की संख्या बहुत थोड़ी थी। सन् १९३४ में यह सारी घटनायें हमारे मस्तिष्क में इतनी ताज़ी थीं कि उस समय राष्ट्रीय-पंचायत की चर्चा करना भी अस्वाभाविक और शायद मूर्खतापूर्ण भी प्रतीत होता था। किन्तु एक ऐसे व्यक्ति के लिए, जो बुद्धिमत्ता-

समानार्थक शब्द हैं ; और यह तो मानी हुई बात है कि भारत ब्रिटेन के राजमुकुट में केवल सबसे तेज़ चमकता हुआ हीरा ही नहीं है, बल्कि कारीगरी या चतुराई के सारे काम का मुख्य भाग भी है। लार्ड कर्ज़न के कथनानुसार भारतवर्ष "भूमण्डल के सबसे महत्वपूर्ण तीसरे हिस्से के सैनिक केन्द्र में स्थित है।" इसीलिए प्रसिद्ध है कि "इसके हाथ में बड़ा नियन्त्रण है और इसकी स्थिति बड़ी प्रभावशाली है। इसी का परिणाम है कि नज़दीक के और दूर के अपने पड़ोसी राष्ट्रों के भाग्य-निर्णय पर इसका बड़ा राजनैतिक प्रभाव है, और उनकी किस्मत का चक्कर हिन्दुस्तान की धुरी के सहारे बहुत कुछ घूमता रहता है।" लार्ड कर्ज़न ने आगे यह भी कहा है कि "अँग्रेज़ों की विश्व-राजनीति का केन्द्र भारतवर्ष ही है और हिन्दुस्तान का वैदेशिक महकमा इङ्गलैण्ड के वैदेशिक कार्यालय की एशियाई शाखा ही है।"

मार्क्स की भविष्यवाणी

जब भारतवर्ष को औपनिवेशिक पद मिल जायगा, तब वह "ब्रिटिश साम्राज्य का सैनिक सीमाप्रान्त" न रहेगा। बहुत अरसे पहले १८५३ में, जबकि हिन्दुस्तानियों ने अपनी आज़ादी की लड़ाई हिंसा के साधन से नहीं लड़ी थी, जैसा कि १८५७ और १९२० के मध्य में भारत के पठित-वर्ग ने किया था, और न आजकल हम लोगों की भांति ही आत्मिक बल के साधन से लड़ी थी, तब ही कार्ल मार्क्स ने यह भविष्यवाणी की थी—

"जबतक कि ग्रेट-ब्रिटेन में आजकल के शासक वर्गों के स्थान पर औद्योगिक मज़दूर नहीं आ जाते, या जबतक अँग्रेज़ों के जुए को अपने कन्धे से उतार फेंकने लायक़ हिन्दुस्तानी स्वयं नहीं बन जाते, तबतक हिन्दुस्तानवासी अपने अन्दर ब्रिटिश मध्यवर्ग द्वारा बिखरे हुए समाज के नये सिद्धान्तों का लाभ नहीं उठा सकेंगे।"

ब्रिटिश-राष्ट्र-समूह

आज की स्थिति यह है कि पहली बात तो घटित हुई नहीं, और दूसरी बात लगभग होनेवाली ही है। इसलिए ब्रिटेन के सामने भारतवर्ष को अपना जन्म-सिद्ध अधिकार प्राप्त करने देने के सिवा दूसरा चारा नहीं है। भारतवर्ष को यह अधिकार ब्रिटेन से समझौता करके ही प्राप्त हो सकता है, और समझौते का अर्थ है औपनिवेशिक दर्जा। भूतकाल में दूसरी जातियों ने भी अपनी आज़ादी हासिल की है, और जिस प्रकार भूतकाल में प्रत्येक शताब्दि की राजनीति में एक-एक प्रधान विचार प्रभाव डालता रहा है, इसी प्रकार इस बीसवीं सदी में प्रत्येक दशाब्दि पर निरन्तर प्रगतिशील स्वतन्त्रता का प्रभाव पड़ रहा है, जिसके साथ अधिक-अधिक व्यापक क्षेत्र के सहयोग की भावना भी उचित रूप से सम्बन्धित होती जा रही है और जातियों के सच्चे भाईचारे

का खयाल बढ़ रहा है। ब्रिटिश राष्ट्र-समूह तो इस दिशा में स्वतन्त्र प्रयत्न के समान है, और यह हमारे लिए उचित ही है कि हम इस दृष्टि से इस प्रकार के राष्ट्रसमूह में सम्मिलित कुछ देशों की प्रगति का ब्योरेवार अध्ययन करें, और देखें कि वे साम्राज्य के अधीनस्थ शाखाओं के पद से किस प्रकार पूर्ण स्वाधीनता के पद पर जा पहुंचे, भले ही उनका नाम अब भी उपनिवेश ही रह रहा हो।

आयर्लैण्ड ने उपनिवेश-पद कैसे प्राप्त किया

अब हम पहले आयरिश-सन्धि (ता० ६-१२-२१) तथा फिर आयरिश फ्री स्टेट एक्ट (ता० ५-१२-२२) से सम्बन्ध रखनेवाले प्रमुख विचारों और प्रमुख व्यक्तियों पर ज़रा दृष्टिपात करेंगे, जिससे कि हमें मनोरञ्जन के साथ-साथ कुछ सीखने को भी मिलेगा। इस सन्धि के द्वारा ब्रिटेन और आयर्लैण्ड के बीच नीचे लिखी बातें तय हुईं—

(१) ब्रिटिश साम्राज्य कहे जानेवाले राष्ट्रसमूह में जो वैधानिक स्थान डोमीनियन ऑव केनेडा, कामनवेल्थ आव आस्ट्रेलिया, डोमीनियन आव न्यूज़ीलैण्ड और यूनियन आव साउथ अफ्रिका को प्राप्त है वही आयर्लैण्ड को प्राप्त होगा, और उसका नाम आयरिश फ्री स्टेट होगा।

(२) शासन-विधान अधिकांश केनेडा के ढङ्ग का रक्खा गया।

(३) गवर्नर जेनरल केनेडा के ढङ्ग से नियुक्त होगा।

(४) शपथ उचित प्रकार से निश्चित की गई, जिसमें आयरिश फ्री स्टेट के शासन-विधान के प्रति सच्ची श्रद्धा और निष्ठा तथा ब्रिटिश-नरेश के प्रति वफ़ादारी पर पहले ज़ोर दिया गया।

(५) आयर्लैण्ड के सरकारी ऋण तथा युद्ध-सम्बन्धी पेन्शनों की देनदारी के बारे में यदि समझौता न हो सकेगा तो ब्रिटिश साम्राज्य के नागरिक, एक या दो, पंचों द्वारा फ़ैसला करा लिया जायगा।

किन्तु ३ दिसम्बर १९२५ को पुनर्विचार होने पर दूसरा समझौता हुआ। उसकी धारा सं० २ में तय हुआ कि ऊपर की धारा सं० ५ में बताई हुई देनदारी से आयरिश फ्री स्टेट मुक्त कर दी गई।

(६) कुछ समय के लिए ग्रेटब्रिटेन तथा आयर्लैण्ड की सामुद्रिक रक्षा ग्रेट-ब्रिटेन की इम्पीरियल सेना को करनी होगी। पांच साल बाद इन शर्तों पर पुनर्विचार होगा। और एक बार के पुनर्विचार का ज़िक्र अभी किया ही जा चुका है।

(७) फ्री स्टेट शांति के समय ब्रिटेन को कुछ निश्चित बन्दरगाह और सुविधायें प्रदान करेगी, और युद्ध के समय ब्रिटिश सरकार को जो आवश्यकता होगी वह प्रदान करेगी।

(८) फ्री स्टेट के शस्त्रास्त्र ब्रिटेन के मुकाबिले में उस अनुपात से अधिक [illegible] सकेंगे जो दोनों देशों की जनसंख्या के बीच में है।

(९) फ्री स्टेट और ब्रिटेन के बन्दरगाह एक दूसरे के जहाजों के पारस लिए खुले रहेंगे।

(१०) शासक-मण्डल के परिवर्तन से जो सरकारी नौकर नौकरियों से उनको उचित मुआविज़ा दिया जायगा।

(११) धार्मिक बन्धन कोई न लगाये जायँगे। धारा सं० १२ से १६ तथा १७ और १८ में संक्रमण काल के मामलों का विधान था।

औपनिवेशिक-पद की गारण्टी

आयर्लैण्ड के औपनिवेशिक-पद की गारंटी इस बात के कारण थी कि कभी आयर्लैण्ड के अधिकार पर कोई आक्रमण होता तो प्रत्येक दूसरे उपनिवेश अनुभव होने लगता था कि उसकी स्थिति भी खतरे में है। सन्धि के बाद आयर्लै वासियों को अपने आन्तरिक मामलों में, बाहरी दस्तन्दाज़ी के बिना, अपना नियन्त्रण था। वे अपने कर, आर्थिक व्यवस्था, शासन-व्यवस्था, और घरेलू मा में क़ानून बनाने की पूर्ण सत्ता रखते थे। परिवर्तन के क्रम में कुछ कठिनाइयाँ न हों, ऐसा नहीं हुआ, क्योंकि लायड जार्ज के कथनानुसार आयर्लैण्ड तो "ब्रिटे सामने की चौकी या आगे का मोर्चा था।" सरकारी ऋण और युद्ध-सम्बन्धी पे की कठिनाई थी ही और गहरे धार्मिक विरोध-भाव से पैदा होनेवाली कठिनाई भी तीनों द्वीपों की तट-रक्षा में भी आयर्लैण्ड को हिस्सा लेने की इजाज़त थी। आय निर्यात कर के बारे में भी कठिनाई थी, किन्तु यह स्पष्ट था कि व्यापार में आयर्लै के ऊपर ब्रिटेन के निर्भर रहने की अपेक्षा तो ब्रिटेन पर ही आयर्लैण्ड अधिक नि था। अल्स्टर प्रान्त का पेचीदा सवाल किस तरह हल किया गया, यह सब जानते अल्स्टर को यह आज़ादी थी कि वह सम्पूर्ण आयर्लैण्ड की पार्लमेंट में शामिल हो या उस समय उसकी जैसी स्थिति थी, ठीक उसीमें बना रहे, और इस दूसरी स्थि सीमाओं का फिर से निर्धारण किया जाय। इस प्रकार यह पुरानी कहावत कि इंग्लैं की मुसीबत आयर्लैण्ड का सुअवसर है बदल गई, और नया दृष्टिकोण यह बना गया कि इंग्लैण्ड की मुसीबत आयर्लैण्ड की आपत्ति है।

डेल आयरेन की स्वीकृति

ग्रेट-ब्रिटेन और आयर्लैण्ड की इस सन्धि को जिसपर लन्दन में ६ दि १९२१ को दस्तखत हुए, डेल आयरेन ने स्वीकार कर लिया। उस समय कुछ

कि तीन महीने पहले डेल ने अपने प्रतिनिधि पूरे अधिकार देकर, लन्दन जाकर ब्रिटिश सरकार से बातचीत करने के लिए भेजे थे। सन्धि तैयार हुई, उसपर हस्ताक्षर हुए और स्वीकृति भी दे दी गई। १३ सितम्बर १६२१ के एक पत्र में लायड जार्ज द्वारा यह भी साफ़ कर दिया गया कि गवर्नर-जनरल आयरिश गवर्नमेंट को स्वीकार-योग्य हो, इस हेतु से सम्राट् से इस सम्बन्ध में सिफ़ारिश करने से पहले फ्री स्टेट गवर्नमेंट से परामर्श कर लिया जाया करेगा। यह भी स्पष्ट होगया कि दोनों पक्ष धारा सं० ५ के अनुसार अपने-अपने दावे पेश करेंगे। धारा सं० ६, ७, ८ और ६ की विशेष बातें केनेडा के शासन-विधान में नहीं हैं। इनसे उसके पद पर कोई असर नहीं पड़ता, किन्तु भौगोलिक स्थिति के कारण इनकी आवश्यकता पड़ी।

सन् १६२२ का क़ानून

अन्त में लायड जार्ज ने यह लिखकर दिया—"शासन-विधान का बनाना आयरिश गवर्नमेंट के हाथ में रहेगा, शर्त सिर्फ़ यह है कि सन्धि-धाराओं का, तथा अल्पसंख्यक सम्बन्धी आयरिश प्रतिनिधि मंडल द्वारा दिये हुए वचनों का ध्यान रक्खा जायगा। इसलिए दूसरी धारा-सभा की स्थापना और रचना के विषय में निर्णय करना भी आयरिश जनता के हाथ में ही रहेगा। सन्धि की बातों की जब स्वीकृति हो जायगी तब दक्षिणी आयर्लैण्ड से सम्राट् की सेना तथा सहायक-दल वापिस बुला लिये जायंगे।"

इसके ठीक एक साल बाद, ५ दिसम्बर १६२२ को आयरिश फ्री स्टेट के लिए इम्पीरियल पार्लमेंट में क़ानून पास किया गया। इस क़ानून की भूमिका में लिखा है कि आयरिश फ्री स्टेट एग्रीमेंट एक्ट, सन् १६२२ के अनुसार आयरिश फ्री स्टेट के शासन विधान का निर्णय करने के लिए राष्ट्रीय-पञ्चायत के रूप में बैठी हुई पार्लमेंट ने इस क़ानून अर्थात् कान्स्टीट्यूएन्ट एक्ट (अक्टूबर १६२२) को पास किया है। इस क़ानून के परिशिष्ट में वह क़ानून रख दिया गया, जिससे कि कान्स्टीट्यूएन्ट एक्ट ही आयरिश फ्री स्टेट का शासन-विधान घोषित कर दिया गया। यह क़ानून बड़ा सीधा-सादा था। इसमें कहा गया कि परिशिष्ट में जो कान्स्टीट्यूएन्ट एक्ट रक्खा गया है वही आयर्लैंड के लिए शासन-विधान निश्चित किया गया है। उपधाराओं में यह भी कहा गया कि कर लगाने का मौजूदा तरीक़ा अस्थायी समय के लिए जारी रहेगा, और स्वय शासन-प्राप्त उपनिवेशों पर लागू होनेवाले पिछले क़ानून आयर्लैण्ड के लिए तभी लागू होंगे, यदि वह उन्हें मंज़ूर कर लेगा।

आयर्लैण्ड का विधान आयरिश लोगों ही द्वारा

इस प्रकार देखा जा सकता है कि यह क़ानून, सर जॉन साइमन के शब्दों में, "आयर्लैण्ड के लिए आयर्लैण्ड में आयरिश लोगों द्वारा ही" तैयार किया गया। इस प्रकार वह १९६४ के आयरिश बिल और १९१४ तथा १९२० के एक्टों से भिन्न था। वह शासन-विधान जिस देश पर लागू होनेवाला था उसी देश की भूमि पर तय किया गया था। आस्ट्रेलियन-एक्ट (१९००) की भांति आयर्लैण्ड का असली क़ानून पार्लमेंट के क़ानून के परिशिष्ट में लगा दिया गया था। केनेडा के विषय में इम्पीरियल-एक्ट बना था, किन्तु उसमें क्वेबेक के उस प्रस्ताव-समूह को क़ानूनी शकल में रख देने से अधिक कुछ नहीं किया गया, जो कि केनेडियन लोगों ने स्वयं ही समझौता करके तय किया था। दक्षिण अफ्रीका के विषय में वहीं का तैयार किया हुआ शासन-विधान 'एक भी वाक्य का परिवर्तन किये बिना' सन् १९०९ में पार्लमेंट में पास किया गया। इस क्रम की विशेषता यह है कि इसमें सिद्धान्त माना गया है कि "आयर्लैण्ड में गवर्नमेंट के सारे अधिकार तथा समस्त सत्ता क़ानून बनाने, शासन-सञ्चालन करने और न्याय करने की, आयर्लैण्ड की जनता से उद्भूत होती है।" निस्सन्देह हमारे देशवासियों को ज्ञात ही है कि हाल में ही आयर्लैण्ड फ्री स्टेट में क्या-क्या घटनायें हुई हैं; राजभक्ति की शपथ हटा दी गई, यूनियन जैक की जगह आयरिश झंडा नियत कर दिया गया, गवर्नर-जनरल की नियुक्ति पहले तो हटा दी गई और बाद में आयरिश सरकार द्वारा ही करने का नियम बनाया गया, १८९९ के एग्रेरियन रिफार्म एक्ट से प्रारम्भ की हुई लैंड एन्यूइटीज़ (भूमि-सम्बन्धी मुआवजे की सालाना किस्तें) बन्द कर दी गईं, सिनेट हटा दी गई और दूसरे ढङ्ग से निर्माण की गई। प्रिवी कौंसिल में अपीलों का जाना बन्द किया गया। अन्तिम बात यह हुई है कि वर्तमान महायुद्ध में आयर्लैण्ड एक तटस्थ देश बनकर रह रहा है, यद्यपि देशरक्षण-नीति में अवश्य वह इंग्लैण्ड की सहायता कर रहा है।

औपनिवेशिक पद बनाम स्वाधीनता

वेस्ट मिन्स्टर एक्ट

अब हम उपनिवेशों के आन्तरिक प्रभुत्व और साम्राज्यान्तर्गत परस्पर-समानता के विकास पर दृष्टिपात करते हैं, जो १९२३ और १९३१ के बीच में हुआ। १९२३ की और १९२६ की इम्पीरियल कान्फ़रेन्सों में उपनिवेशों की परिभाषा निम्नलिखित तय हुई—

"ब्रिटिश साम्राज्य के अन्दर खुद-मुख्तारी रखनेवाली जमातें, दर्जे में बराबर, अपने अन्दरूनी या बाहरी मामलों में किसी प्रकार भी एक दूसरे के मातहत नहीं, और अपनी मर्ज़ी से ब्रिटिश राष्ट्र-समूह के मेम्बर बने हुए।"

परन्तु सन् १६२७-३१ के बीच में स्वयं उपनिवेशों के विचारों में ही परिवर्तन हो गया, और वे उन विचारों को प्रकट करने ही नहीं लगे, बल्कि अपनी शासन-पद्धति में उनपर अमल भी करने लगे। १६२६ की इन्टर-इम्पीरियल कान्फरेन्स में ब्रिटिश सम्राट् की पदवी, गवर्नर-जनरल की स्थिति, और विशेषतः उपनिवेश-सम्बन्धी क़ानूनों को कार्यान्वित करने के विषय में बहस हुई और इसका परिणाम यह हुआ कि १६२५ का कोलोनियल वेलिडिटी-एक्ट प्रायः रद हो गया, और यह मान लिया गया कि उपनिवेशो की पार्लमेंटों के क़ानूनों को, जो उस समय तक लन्दन भेजे जाया करते थे, रद करने के अपने अधिकार को इस्तैमाल करने की सलाह ब्रिटिश-नरेश को नहीं दी जाया करेगी। आयरिश फ्रीस्टेट के सवाल उठाने से यह भी मान लिया गया कि 'अपने हर प्रकार के मामलों में ब्रिटिश नरेश को सलाह देने का अधिकार हर उपनिवेश की सरकार को ही है।' इसलिए यह वैधानिक पद्धति के अनुकूल न होगा कि किसी भी उपनिवेश के किसी भी मामले में वहाँ की सरकार की राय के विरुद्ध सम्राट् की सरकार सम्राट् को कोई सलाह दे। जहाँ दो उपनिवेशों के किसी सामान्य या परस्पर-विरोधी मामले में कोई कार्रवाई करना ज़रूरी हो, वहाँ उनसे पहले परामर्श कर लेना तय हुआ। यह भी निश्चित किया गया कि क़ानून-निर्माण करने के अधिकार के बारे में वेस्ट-मिन्स्टर की पार्लमेंट को यदि किसी उपनिवेश के विषय में कोई क़ानून बनाना हो तो वैधानिक पद्धति यह होनी चाहिए कि ऐसा क़ानून उपनिवेश की सहमति लेकर ही पास किया जाय। उक्त कान्फरेन्स ने यह भी सिफ़ारिश की कि इन तमाम मामलों में और व्यापारिक जहाज़ों के क़ानून तथा प्रिवी-कौंसिल की अपील आदि के मामलों में जांच-रिपोर्ट और उचित सिफ़ारिशें करने के लिए उचित हिदायतों के साथ एक कमेटी नियुक्त की जाय।

विशेष स्थिति

उपनिवेश-सम्बन्धी क़ानूनों और व्यापारिक जहाज़ों-सम्बन्धी क़ानूनों के अमल की बाबत कान्फरेन्स की रिपोर्ट १६२६ में पेश हुई। उसके द्वारा एक अजीब ही परिस्थिति प्रकट हुई। न्यूज़ीलैण्ड विधान (१८५२) और ब्रिटिश नार्थ अमेरिका एक्ट (१८६७) के द्वारा ब्रिटिश नरेश को अधिकार था कि दो वर्ष के अन्दर वह उपनिवेश के क़ानून को नामंज़ूर करदें, और आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका के लिए यह मियाद एक ही वर्ष की थी। आयरिश विधान में नामंज़ूर करने का नियम न था।

किन्तु वास्तव में हस्तक्षेप करने का अवसर केनेडा में सन् १८७३ से और न्यूज़ीलैंड में १८६७ से नहीं आया था, और आस्ट्रेलिया तथा दक्षिणी अफ्रीका में तो कभी नहीं आया था। इसलिए रिपोर्ट में यह सिफ़ारिश की गई कि "यह वैधानिक-पद्धति के अनुकूल होगा कि यदि सम्बन्धित उपनिवेश प्रार्थना करे तो ही सयुक्त राज्य (ब्रिटेन) की गवर्नमेण्ट पार्लमेण्ट से आवश्यक क़ानून पास करने को कहे।"

उपनिवेशों के क़ानूनों के एक्स्ट्रा-टेरीटोरियल अमल क बाबत यह तय हुआ कि सबसे अच्छा तरीक़ा यही होगा कि सयुक्त राज्य (ब्रिटेन) की पार्लमेंट सब उपनिवेशों की सहमति लेकर एक ऐसा घोषणात्मक क़ानून बना दे जिसमें बताया जाय कि "उपनिवेश की पार्लमेंट को पूरा अधिकार होगा कि एक्स्ट्रा-टेरीटोरियल असर रखनेवाले क़ानून भी बना सके।"

कोलोनियल क़ानून

कोलोनियल लॉज़ वेलिडिटी एक्ट (१८६५) इस उद्देश्य से बनाया गया था कि जिससे कॉमन लॉ का यह नियम रद हो जाय कि यदि इंग्लैण्ड के क़ानूनों के विरुद्ध किसी कोलोनी का क़ानून होगा तो वह बेअसर होगा। उत्तरदायी शासन के नये विचारों के फैलने के बाद इस प्रकार के बन्धन के रहने से तो उत्तरदायी शासन ही झूठा हो जाता था। इसलिए कोलोनीज़ की धारा-सभाओं को अधिकार दिया गया था कि वे इंग्लिश कॉमन लॉ के विरुद्ध भी क़ानून बना सकती थीं, किन्तु ब्रिटिश पार्लमेंट के कानूनों के ख़िलाफ़ नहीं। कोलोनियल लॉज़ वेलिडिटी एक्ट द्वारा कोलोनीज़ को अपनी-अपनी विशेष आवश्यकताओं के अनुसार क़ानून बना लेने की फिर भी मुमानियत थी। किन्तु कोलोनीज़ के क़ानून का एक-सा होना, जो कि ब्रिटिश पार्लमेंट की प्रधानता के कारण हुआ था, वैधानिक रूप से डोमीनियन्स के लिए उपयुक्त नहीं था, और इसीलिए १९२६ की रिपोर्ट में दिये हुए सिद्धान्त को अमल में लाना पड़ा। इसलिए यह सिफ़ारिश की गई कि, जहाँतक किसी उपनिवेश की पार्लमेंट के पास किये हुए कानूनों का सम्बन्ध है वहाँतक उनपर कोलोनियल लॉज़ वेलिडिटी एक्ट रद समझा जायगा। एक और सिफ़ारिश इस प्रकार की भी की गई थी—

"ब्रिटिश राष्ट्रसमूह में सम्मिलित राष्ट्रों की स्थापित वैधानिक स्थिति के अनुकूल यह बात होगी कि संयुक्त-राज्य की पार्लमेंट का भविष्य में बनाया हुआ कोई भी क़ानून किसी भी उपनिवेश पर तबतक लागू न होगा जबतक कि वह उपनिवेश स्वयं माँग न करे और स्वीकृति न दे दे।"

"यह भी सिफ़ारिश की गई कि संयुक्त-राष्ट्र की पार्लमेंट में जो एक क़ानून बननेवाला है उसमें यह वैधानिक पद्धति वस्तुस्थिति के वर्णन या भूमिका के रूप में रख दी जाय।"

वेस्ट मिन्स्टर स्टेट्यूट

दिसम्बर १९३१ के वेस्ट मिन्स्टर-एक्ट की उत्पत्ति इस प्रकार हुई। सघीय स्वरूप के विधान रखनेवाले उपनिवेशों की पार्लमेंटों को क़ानून बनाने के पूरे अधिकार मिल जाने के परिणाम के एक दूसरे प्रश्न पर भी अकेले केनेडा को ही केन्द्रीय पार्लमेंट के क़ानून के बिना अपने विधान में संशोधन करने का कोई अधिकार नहीं है। आस्ट्रेलिया में पार्लमेंट तथा निर्वाचक-वर्ग के संयुक्त कार्य द्वारा शासन-विधान परिवर्तित हो सकता है। किन्तु आस्ट्रेलिया में उसके शासन विधानवाले हिस्से से पहले ८ धारायें और हैं, जिनमें परिवर्तन केवल संयुक्त राज्य की पार्लमेंट कर सकती है। न्यूज़ीलैण्ड का शासन-विधान, काफ़ी अंश में वहाँ की पार्लमेंट द्वारा संशोधित हो सकता है, किन्तु संशोधन के अधिकार पर कुछ प्रतिबन्ध लगाये गये हैं। फलतः कमेटी ने यह सिफ़ारिश की—

"इस क़ानून के किसी अंश से भी डोमीनियन आव केनेडा, कॉमनवेल्थ ऑव आस्ट्रेलिया और डोमीनियन ऑव न्यूज़ीलैण्ड के शासन विधानों को रद्द या परिवर्तित करने का कोई अधिकार न माना जायगा, सिवा उस क़ानून और वैधानिक रिवाज की सहायता के द्वारा जो कि अभीतक जारी रहा है।

"इस क़ानून के किसी अंश से भी डोमीनियन ऑव केनेडा और कॉमनवेल्थ ऑव आस्ट्रेलिया की पार्लमेंटों को कोई अधिकार न होगा कि वे केनेडा के प्रान्तों और आस्ट्रेलिया के राज्यों के अधिकार-क्षेत्र में आनेवाले किसी ऐसे मामलों में क़ानून बनायें जो क्रमशः डोमीनियन ऑव केनेडा या कॉमनवेल्थ ऑव आस्ट्रेलिया की पार्लमेंट या गवर्नमेंट की सत्ता से बाहर हैं।"

आयर्लैण्ड और दक्षिण अफ्रीका के शासन-विधान भिन्नता रखते हैं, क्योंकि वे एक-घटकात्मक सिद्धांत पर बने हैं और उन्हें क़ानूनी परिवर्तन का पूरा अख्तियार है। १९३० की इम्पीरियल कान्फ़रेन्स ने इस कमेटी की सिफ़ारिशों का समर्थन किया। ब्रिटिश राष्ट्र-समूह के छः बराबरी के सम्झेदार निश्चित किये गये—ये देश काफ़ी अंश में ऐतिहासिक और भौगोलिक भिन्नता रखते हैं, अन्दरूनी परिस्थितियों और आर्थिक दृष्टिकोण में भेद रखते हैं और भाषा और जातीयता का भी अन्तर रखते हैं। जनरल हर्टज़ोग ने अपनी ही भाषा में भाषण दिया और साम्राज्य के स्थान पर हर जगह 'राष्ट्र-समूह' शब्द का प्रयोग किया। उनके कथनानुसार १९२६ की कान्फ़रेन्स अन्तर्-राष्ट्र-समूह कान्फ़रेन्स थी, जिसमें राष्ट्र-समूह की अन्तर्गत समस्याओं और सम्बन्धों पर विचार हुआ था। उक्त कान्फ़रेन्स ने १९०९ की कमेटी के किये हुए संशोधन करने की सिफ़ारिश की जो निम्नलिखित थी—

"इस क़ानून के जारी कर देने के बाद संयुक्त राज्य की पार्लमेंट का बनाया

हुआ कोई क़ानून किसी भी उपनिवेश पर उस उपनिवेश में जारी रहनेवाले क़ानून के भाग के रूप में लागू नहीं किया जायगा, जबतक कि उस क़ानून में यह स्पष्ट लिख न दिया जाय कि उस उपनिवेश ने स्वयं ऐसी प्रार्थना की है और सहमति देदी है।"

रेखांकित शब्द बढ़ाये गये हैं। यह सिफ़ारिश इसलिए मान ली गई कि यदि वाक्य अपने प्रारम्भिक स्वरूप में ही रहता है तो परिणाम होता कि उसके बाद संयुक्त राज्य की पार्लमेंट के पास किये हुए क़ानून का वह अमल न होता जो सामान्यतः एक राज्य के क़ानून का दूसरे राज्य के प्रदेश में होता है। इस तरह वेस्ट मिन्स्टर क़ानून के बनाये जाने का मार्ग साफ़ होगया।

उपनिवेश

वेस्ट मिन्स्टर स्टेच्यूट ने केवल इतना किया कि सन् १९२६ और १९३० की इम्पीरियल कान्फरेन्सों में पास किये हुए कुछ प्रस्तावों को कार्यान्वित कर दिया। उस कानून की भूमिका में ही पहली बात तो यह लिख दी गई कि आगे यदि राज-सिंहासन के उत्तराधिकार, या ब्रिटिश नरेश की पदवी और अधिकार से सम्बन्ध रखने वाले कानून में कोई संशोधन होगा तो उसके लिए संयुक्त राज्य की पार्लमेण्ट के अलावा सारे उपनिवेशों की पार्लमेण्टों की स्वीकृति भी आवश्यक होगी और दूसरी बात यह भी लिखी गई कि सयुक्त राज्य की पार्लमेण्ट का बनाया हुआ कोई भी कानून किसी भी उपनिवेश पर उसके कानून के भाग के रूप में लागू न हो सकेगा जबतक कि उसकी प्रार्थना और स्वीकृति न हो। इसके अनुसार "केनेडा, आस्ट्रेलिया, न्यूजीलैंड, दक्षिण अफ्रीका, आयर्लैण्ड, ने पृथक-पृथक इस बात की प्रार्थना की और स्वीकृति दी कि सयुक्त-राज्य की पार्लमेण्ट में उपर्युक्त मामलों के सम्बन्ध में एक ऐसा कानून बनाकर पेश किया जाय जैसा कि आगे इस एक्ट में है।"

(१) उस कानून में उपनिवेशों की पूर्ण परिभाषा उसी प्रकार की गई जिस प्रकार कि पहले बताई गई है।

(२) कोलोनियल लॉज़ वेलिडिटी एक्ट, १८६५, आगे उपनिवेशों के बनाये हुए किसी कानून पर लागू न होगा।

जो क़ानून ब्रिटिश कानून के विरुद्ध होंगे उनके बारे में, तथा एक्स्ट्रा-टेरीटोरियल असर रखने वाले हैं तो उनके बारे में भी धारायें उसमें सम्मिलित की गई और यह बात भी रक्खी गई कि सयुक्त-राज्य का कोई भी कानून उपनिवेशों पर उनके कानून के भाग के रूप में तभी लागू होगा जबकि वे इस बाबत प्रार्थना करेंगे, इसी प्रकार, १८९४ के व्यापारिक जहाजों के कानून की और कोलोनियल कोर्ट्स ऑव एडमिरेल्टी एक्ट की पुनर्रचना करनी पड़ी, तथा और भी कई बातें शामिल करनी पड़ीं, जिससे कि उपनिवेशों के नये पद की स्पष्टता हो जाय।

स्वाधीनता

किसी भी देश की स्वाधीनता उसके टैक्स लगाने, आयात-निर्यात कर लगाने, और वैदेशिक मामलों में अपनी इच्छानुसार कार्य कर सकने के अधिकार से जांची जाती है। इस तरीके से उपनिवेश आजकल पूर्ण स्वाधीनता का उपभोग कर रहे हैं। केनेडा को तो हमेशा इंग्लैंएड की अपेक्षा यूनाइटेड स्टेट्स ऑफ अमेरिका के समान अधिक समझा जाता है। हम लोगों को मालूम ही है, कि दक्षिण अफ्रीका केवल एक वोट के अन्तर से वर्तमान महायुद्ध में अ-योद्धा देश बनने से बच गया है। उस एक वोट के कारण ही जनरल हर्टज़ोग के स्थान पर बदल कर जनरल स्मट्स की सरकार बन गई। आयर्लैंएड एक तटस्थ देश है ही। आस्ट्रेलिया को अपने खुले हुए अरक्षित तटों की रक्षा के लिए युद्ध में शामिल होना ही अधिक लाभदायक है, और किसी कष्टकर कर्तव्य के करने से हानि कम है। उपनिवेशों को अपनी इच्छानुसार टैक्स तथा आयात-निर्यात कर लगाने का अधिकार बहुत पहले से ही दिया जा चुका है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि इंग्लैंएड के साथ एक राष्ट्र-समूह में सम्मिलित हो जाने से उपनिवेशों की स्वाधीनता में किसी प्रकार की भी कमी नहीं आई है। यह विकास सन १९३१ में और उसके बाद हुआ है। राजनैतिक विचारों का विकास बहुत अज्ञात रूप से होता रहता है, और १९२९ में पूर्ण स्वाधीनता के हमारे प्रस्ताव के पास होने के बाद, उपनिवेश शब्द के अर्थ में जो भेद कर दिया गया है उस पर हमें ध्यान देना चाहिए, जिसका परिणाम है कि आजकल पूर्ण स्वाधीन घोषित किये हुए देशों में और उन देशों में जिन्हें वेस्ट मिन्स्टर एक्ट के अर्थ में औपनिवेशिक पद मिला है, कोई अन्तर नहीं रह गया है।

: ६ :

विधान-निर्णय सभा

[श्री एम० एन० राय]

दस साल पहले इंडियन नेशनल कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय की घोषणा की थी—यह कोई नया विचार था, यह बात न थी। कोई देश स्वाधीन हो सकता है, या पराधीन। इसलिए वास्तविक स्वाधीनता का अर्थ ही पूर्ण स्वाधीनता होता है।

सन् १९२९ ई० तक कांग्रेस ने पूर्ण स्वाधीनता को अपना ध्येय नहीं बनाया था। उस समय तक कांग्रेस का ध्येय ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वायत्त शासन प्राप्त करना ही था। उन दिनों के मॉडरेटों और उग्रपन्थियों में जो कुछ भेद था वह

केवल इसी विषय पर था कि स्वायत्त-शासन तो हो, लेकिन किस हद तक और कैसे। लेकिन ऐसे भी कुछ लोग थे, जो अधिक साहसपूर्ण भविष्य की कल्पना करते थे। उनकी धारणा थी कि गुलाम जाति का केवल एक ही उद्देश्य हो सकता है और वह उद्देश्य है, पूर्ण राजनैतिक स्वाधीनता प्राप्त करना। गत महायुद्ध के बाद तक इन्हीं लोगों को विदेशी शासकों का वास्तविक शत्रु समझा जाता था। ये लोग कांग्रेस से बाहर ही रहते आये थे, क्योंकि आंदोलन या सङ्गठन के नाते उस समय तक कांग्रेस का कोई विशेष महत्व न था।

लेकिन महायुद्ध के समाप्त होते-होते, भारत की स्थिति में गम्भीर परिवर्तन हो गया। देश में ज़बरदस्त जागृति हो गई, और इस जागृति को एक खुले सङ्गठन द्वारा ही व्यक्त किया जा सकता था। कांग्रेस इस जागृति का केन्द्र बन गई और वस्तुगत-दृष्टि से, राष्ट्रीय स्वाधीनता प्राप्ति का साधन बन गई। इसलिए अबतक जो इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए कांग्रेस के बाहर रह कर काम करते आये थे, वे भी काँग्रेस में शामिल हो गये। लेकिन यद्यपि काँग्रेस सार्वजनिक उथल-पुथल को व्यक्त करने का साधन बन गई थी, फिर भी परम्परा से सम्बन्ध विच्छेद वह न कर सकी, और इसके नेताओं को ऐसे भविष्य की कल्पना करने का साहस न हुआ, जिसमें भारतवर्ष ब्रिटिश-साम्राज्य की परिधि के बाहर भी रह सकता है। इसलिए, राजनैतिक दृष्टि से 'स्वराज' की मांग का ब्रिटिश साम्राज्य के अन्तर्गत स्वायत्त शासन के उपभोग करने के अधिकार के सिवाय और कुछ अर्थ न था—यद्यपि इस लक्ष्य को नाना प्रकार के विचित्र छायावादी सिद्धान्तों के आवरण से ढक दिया गया।

सन् १६२० ई० में कुछ कांग्रेसमैनों ने, भारतीय जनसाधारण की निहित आकाँक्षा को व्यक्त करने के लिये यह यत्न किया कि कांग्रेस यह घोषणा करदे कि उसका उद्देश्य पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना है। कांग्रेस के नेताओं ने, स्वयं गांधी जी ने भी, इस माँग का कड़ा विरोध किया। उसके बाद हर साल ऐसी माँग की जाती थी और उसे नामंजूर कर दिया जाता था। आखिर सन् १६२६ ई० में लाहौर काँग्रेस ने यह घोषणा कर ही दी कि कांग्रेस का ध्येय पूर्ण स्वाधीनता प्राप्त करना है।

ध्येय और साधन

प्रायः सर्वत्र इस प्रस्ताव का स्वागत किया गया— कांग्रेस ने एक बड़ा क़दम उठाया है, यह जानकर हर्ष हुआ। उस समय किसी ने यह न देखा कि उसी प्रस्ताव में ऐसे साधनों को निर्धारित कर दिया गया था जिनसे ध्येय पहुँच के बाहर चला गया। मैंने उस समय भी कांग्रेस के इस प्रस्ताव का विरोधाभास जताने का यत्न किया था। दस साल के बाद वैसी ही बात फिर हुआ चाहती है।

आखिरकार, कांग्रेस नेताओं ने विधान-निर्णय सभा की मांग को अपना लिया है। लेकिन पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव की तरह विधान-निर्णय सभा की माँग के नए समर्थकों ने इस मांग का रूप ही बदल दिया है। पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव की तरह विधान-निर्णय सभा की माँग भी नई नहीं है। पूर्ण स्वाधीनता के प्रस्ताव पास करने से पहिले भी कांग्रेस से विधान-निर्णय सभा की मांग को अपनाने का आग्रह किया गया था। मैंने, उदाहरण के लिए, तजवीज की थी कि साइमन कमीशन के विरुद्ध, विधान-निर्णय सभा की मांग को सामने रखकर ही आंदोलन खड़ा किया जाय। साइमन-कमीशन-विरोधी-आन्दोलन के संचालकों का कुछ भी तात्पर्य क्यों न रहा हो, उस आन्दोलन में ब्रिटिश पार्लमेंट में भारत का भाग्य निर्णय करने के दावे को चुनौती छिपी थी। इसलिए इस आंदोलन को प्रभावशाली बनाने के लिए किसी ठोस रचनात्मक माँग को सामने रक्खा जाना चाहिए था। अगर भारतवर्ष ब्रिटिश पार्लमेंट के इस अधिकार को स्वीकार नहीं करता, कि उसके राजनैतिक भविष्य को वह तय करे, तो उसके विकल्प-स्वरूप कोई दूसरी ऐसी ताक़त बतानी चाहिए जो भारत का भावी विधान निर्णय करने का वास्तव में अधिकार रखती हो। उस ताक़त को पैदा करना ही हमारे आंदोलन का ध्येय होना चाहिए। वास्तव में, विधान-निर्णय सभा की मांग पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय का व्यावहारिक रूप ही है। ध्येय की घोषणा करने के बाद आन्दोलन का यह कर्तव्य हो जाता है कि वह उसको सिद्ध करने के लिए उपयुक्त साधन तैयार करे।

उग्रवादियों की भूल

आज जबकि कांग्रेस के दोनों—दक्षिण और वाम—पक्ष विधान-निर्णय सभा की माँग को अपना चुके हैं, इस माँग के वास्तविक महत्व को फिर भी नहीं समझा जा रहा है। उदाहरण के लिए फ़ारवर्ड ब्लाक की कार्यसमिति ने एक प्रस्ताव पास करके घोषणा की है कि "विधान-निर्णय सभा तभी बुलाई जा सकती है, और तभी बुलाई जानी चाहिए, जब साम्राज्यवाद मिटाया जा चुका होगा और ताकत जनता के हाथ में आ चुकी होगी।" फ़ैजपुर कांग्रेस† के बाद की घटनाओं से इन उग्रवादियों ने शायद न तो कुछ सीखा ही है, और न कुछ भुलाया है। प्रश्न तो यह है कि साम्राज्यवाद किस तरह मिटाया जायगा और जनता के हाथ में ताक़त आयेगी कैसे? इस मूल प्रश्न का उत्तर वे या तो जानते नहीं, या जानते हैं तो उसको बताने का साहस नहीं होता। जो कांग्रेस की वर्तमान नीति के आलोचक हैं, उनको भी जब

† फ़ैजपुर कांग्रेस में विधान-निर्णय सभा के हक़ में प्रस्ताव पास किया गया। —अनुवादक।

यह अवस्था है तो दूसरों के विषय में क्या कहा जाय! कांग्रेस के वर्तमान नेताओं का इस विषय में जो दृष्टिकोण है, उसमें और आजकल के तथाकथित उग्रवादियों के दृष्टिकोण में, जहांतक इस विषय का सम्बन्ध है, बड़ा अन्तर नहीं दिखाई देता। प्रस्ताव भला है, या बुरा, यह जानने के लिए हम को उसके उस हिस्से पर ग़ौर करना होता है, जिसमें प्रस्तावित उद्देश्य को पूरा करने के लिए आवश्यक कार्रवाई का उल्लेख होता है। फ़ारवर्ड ब्लाक की कार्यसमिति को भी, वर्तमान लीडरों जैसी ही आशा दिखाई देती है, कि किसी तरह किसी शुभ मुहूर्त से साम्राज्यवाद मिट जायगा और ताकत जनता के हाथ में आ जायगी। कैसे? इस प्रश्न का जवाब क्या है! वर्तमान नेताओं को तो आशा है कि हमारे त्याग और बलिदान से साम्राज्यवाद का हृदय-परिवर्तन हो जायगा और वह अपने आपको मिटा लेगा! उग्रवादियों को शायद यह भ्रम है कि यदि हम ज़ोर-ज़ोर से बात करते रहें तो किसी दिन किसी तरह साम्राज्यवाद मिट जायेगा, ताकत जनता के हाथ से चली जायेगी! जब जनता के हाथ में ताकत आ जायेगी तभी विधान-निर्णय सभा निर्वाचित की जा सकती है, यदि यह मान लिया जाय, तो इस मांग का पारिभाषिक महत्त्व-भर रह जाता है। आज की वस्तु-स्थिति से तब इसका कोई सम्बन्ध नहीं रह जाता।

काँग्रेस के दक्षिण पक्ष के नेता मूर्खों के कल्पना जगत में नहीं रहते। उन्होंने विधान निर्णय की मांग को ऐसा रूप दे दिया है कि वह उनकी अपनी ही एक निराली चीज़ बन गई है। उनकी विधान निर्णय सभा में और वास्तविक, ऐतिहासिक विधान-निर्णय सभा में केवल यही अन्तर है कि यह विधान-निर्णय सभा नहीं रह गई है। लेकिन मुझसे कहा जा सकता है कि "साहब, नाम में क्या धरा है?" यदि केवल प्रत्युत्पन्न बुद्धि का परिचय देना ही किसी को मंजूर हो तो इस प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है कि "तब क्यों एक नाम को आप दूसरे नाम पर तरजीह देते हैं?" ऐतिहासिक दृष्टि से विधान-निर्णय सभा की मांग का एक विशिष्ट राजनैतिक महत्व है। शाब्दिक अर्थ भी उस महत्व की ओर ही संकेत करता है।

विधान-निर्णय सभा किसे कहते हैं?

नई राज्य व्यवस्था की स्थापना करने के लिए जब कोई सभा होती है तो उसको विधान-निर्णय सभा कहते हैं। नई राज्य-व्यवस्था के विधान का श्रीगणेश ही कुछ मूल सिद्धान्तों की व्यवस्था से होता है, अर्थात् विधान के आरम्भ ही में यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि अमुक सिद्धान्त हैं, जिनको आधार-शिला मानकर नई व्यवस्था का भवन खड़ा किया जा रहा है। जिस खरीते में इन सिद्धांतों का उल्लेख होता है, उसको विधान कहते हैं। इन सुविख्यात् सिद्धान्तों को ध्यान में रक्खें तो

यह स्पष्ट हो जाता है कि हमारे पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय में और विधान-निर्णय सभा की माँग के प्रति इतना उत्साह ऐसे समय में हम देख रहे हैं, जब पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय को चुपके से ताक में उठाकर रक्खे जाने की कोशिश हो रही है। पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय का स्थान "स्वाधीनता का सार" या "वेस्ट मिन्स्टर क़ानून के अन्तर्गत जन-पद-शासन" ने ले लिया है!

वास्तव में विधान निर्णय सभा का क्या अर्थ है, इस विषय पर एक ऐसे कोने से हमको कुछ सुनने को मिला है, जहाँसे ऐसी बात सुनने की आशा नहीं की जानी चाहिये। "श्री राजगोपालाचार्य ने विधान-निर्णय सभा को बुलाने में राज्य को इतना महत्व दिया है, जिसका औचित्य सिद्ध नहीं किया जा सकता। अगर किसी राज्य व्यवस्था के तत्वावधान में चुनाव किया जाय तो विधान-निर्णय सभा का निर्णय साधारण मत संचय ही रह जाता है और इस तरह विधान-निर्णय सभा में और जनता के साधारण प्रतिनिधियों के सम्मेलन का वह मुख्य अन्तर मिट जाता है, जो विधान-निर्णय सभा को विधान-निर्णय सभा बनाता है।"

मुख्य अन्तर

अन्य साधारण जन-प्रतिनिधियों के सम्मेलन और विधान निर्णय सभा में मुख्य अन्तर यही है कि विधान निर्णय सभा एक नई राज्य व्यवस्था की क़ानूनी नींव रखने ही को की जाती है। ऐसी व्यवस्था की स्थापना तभी हो सकती है, जब वर्तमान प्रस्थापित राज्य व्यवस्था को उखाड़ फेंका जाय। इसलिए विधान-निर्णय सभा की स्थापना हो सकती है, स्थापित राज्य व्यवस्था की अनुमति से नहीं, वर्तमान व्यवस्था द्वारा कराये गये चुनाव के परिणाम स्वरूप नहीं, बल्कि वर्तमान राज्य व्यवस्था के विरुद्ध होनेवाली सार्वजनिक उथल-पुथल के परिणाम स्वरूप। विधान निर्णय सभा की माँग उस उथल-पुथल के श्रीगणेश का नारा होता है। हम उस रास्ते पर चलना चाहते हैं, या नहीं, यह सवाल मैं यहाँ उठाना नहीं चाहता। लेकिन एक ऐतिहासिक सत्य को स्वरूप बनाकर बदनाम नहीं करना चाहिए। कम-से कम इसके वास्तविक सैद्धान्तिक अर्थ तो समझ ही लेने चाहियें।

क्या कांग्रेस के नेता अनभिज्ञ हैं ?

कांग्रेस के वर्तमान नेता विधान निर्णय सभा की माँग के वास्तविक अर्थ से अनभिज्ञ हैं यह बात नहीं है। कम-से-कम गाँधीजी तो इसके वास्तविक अर्थ को अच्छी तरह समझते हैं, ऐसा मुझे लगता है। उन्होंने उसको जान-बूझकर अपनाने से अस्वीकार कर दिया है, यह बात दूसरी है। अपने एक लेख में गाँधीजी ने लिखा

है, "विधान-निर्णय सभा तक पहुँचने के लिए प्रत्यक्ष अवरोध की कल्पना तक करने से पहले, अन्य उपायों को पूरी तरह आज़माना चाहिए। ऐसी भी अवस्था आ सकती है, जब प्रत्यक्ष अवरोध विधान-निर्णय सभा का आवश्यक पूर्व-परिच्छेद ही बन जाय।" लेकिन गाँधीजी उस अवस्था तक कांग्रेस को न जाने देंगे, क्योंकि वह कह चुके हैं कि "सब सम्प्रदायों और अँग्रेज़ों का यह कर्तव्य है कि वे इस दुर्दिन को न आने दें।" स्वाभाविक ही है कि कांग्रेस की वर्तमान नीति का क्या मार्ग है, यह पूर्व-निर्धारित है। विधान-निर्णय-सभा की माँग और ब्रिटिश-साम्राज्यवाद से समझौता—हाँ, सम्मानपूर्ण समझौता भी—साथ-साथ नहीं हो सकते—विधान-निर्णय सभा की ऐतिहासिक धारणा को भ्रष्ट कर दिया जाय तो बात दूसरी है। अगर कांग्रेस का पूर्ण स्वतन्त्रता का ध्येय इतना स्पष्ट होता कि उसमें मनचाहा हेर-फेर किये जाने की सम्भावना न होती तो, सैद्धान्तिक दृष्टि से विधान-निर्णय-सभा की माँग के अर्थ इतने स्पष्ट हैं कि उनका भ्रष्ट किया जाना सम्भव नहीं था! लेकिन जब पूर्ण स्वाधीनता के ध्येय ही को बदला जा रहा है, तब कुछ भी सम्भव है।

इसलिए विधान-निर्णय सभा की माँग का इस प्रकार पुष्ट किया जाना, मुझे शुभ चिन्ह नहीं दिखाई देता। इसको प्रकटतः अपनाकर, कांग्रेस का नेतृत्व जिनके हाथ में है, उन्होंने ब्रिटिश-साम्राज्य के अन्तर्गत स्वायत्त शासन प्राप्त करना ही अपना अपमानजनक ध्येय बना लिया है। शब्द-जाल इस कटु-सत्य को कबतक छिपाये रहेगा?

: ७ :

विधान-सम्मेलन

[श्री सम्पूर्णानन्द]

यदि भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र की भांति रहना है तो यह भी निश्चित है कि उसे अपनी शासन-योजना स्वयं बनानी चाहिए। जो योजना किसी दूसरे के हाथ से बनेगी उससे न तो भारत के हितों की पूर्णतया रक्षा हो सकेगी और न वह भारत की विशेष परिस्थितियों को उत्पन्न समस्याओं को पूर्णतया सुलझाने में समर्थ हो सकती है। अतः यह आवश्यक है कि कोई शुद्ध भारतीय पंचायत बैठकर ऐसी योजना तैयार करे। इस दृष्टि से विधान-सम्मेलन Constituent assembly. के लिए आवाज़ उठाना सर्वथा उचित है। इस सिद्धान्त को लोकप्रिय करने के लिए ही १६३४ से कांग्रेस समाजवादी दल ने इस ओर देश का ध्यान बराबर आकर्षित किया है।

पर आज मांग यह है कि ब्रिटिश सरकार के रहते ही ऐसी पंचायत बैठ जाय यह इतिहास में नई बात होगी, अन्यत्र तो पुरानी सरकार को निकाल कर ही ऐसे

सम्मेलन बैठे हैं। कनाडा आदि उपनिवेशों का उदाहरण समीचीन नहीं है। उनके यहाँ विदेशी शासन से छुटकारा पाने का प्रश्न नहीं था, न कोई क्रान्ति हो रही थी। ब्रिटिश सरकार इस माँग को स्वीकार करने में घबराती है, यह तो स्वाभाविक है। आज तो वह भारत के एक दल और एक सम्प्रदाय को दूसरे से भिड़ा देती है, कभी एक की पीठ ठोकती है, कभी दूसरे का समर्थन करती है और यह कहकर अपना काम निकालती है कि हम क्या करें सब लोग आपस में ही झगड़ रहे हैं। पर यदि कहीं विधान-सम्मेलन में एकमत हो ही गया और सब लोग एक स्वर से बोल ही उठे तो उसके लिए कठिनाई हो जायगी। जो बहाना वह पेश किया करती है वह जड़ से ही कट जायगा।

परन्तु यह एक आदर्श अवस्था है। कहा यह जाता है कि हम इस बात के लिए तैयार हैं कि चुनाव तो बालिग़ मताधिकार से हो पर जो मुख्य-मुख्य अल्प-समुदाय हैं (जैसे मुसलमान या सिख) वह अपने प्रतिनिधियों को पृथक् चुनकर भेजें। फिर यह भी वचन दिया जारहा है कि कोई निर्णय बहुमत से न हो, कम से कम जिस निर्णय में किसी सम्प्रदाय विशेष के हितों का प्रश्न हो वह बहुमत से न हो। तब तो फिर प्रायः सभी साम्प्रदायिक समस्यायें बेसुलझी रह जायेंगी, और गोलमेज सम्मेलन जैसी दशा होगी। मत-भेद की दशा में क्या होगा? कांग्रेसी नेता कहते हैं कि अंग्रेज़ सरकार अलग रहे, कोई तटस्थ संस्था, जैसे राष्ट्र-संघ या देश की अन्तर-राष्ट्रीय अदालत फैसला दे। यदि मुसलमान इस प्रस्ताव को मान भी लें तो भी यह बड़ी लम्बी प्रक्रिया हो गई और तबतक अंग्रेज़ यहाँ आनन्द से राज करेंगे। इतना ही नहीं उन्हें अपने कौटिल्य से मतभेद की आग को हवा देने का अवसर मिलता रहेगा। यदि कहीं इन अल्प-सख्यकों को खुश करने के लिए और साथ ही समय बचाने के लिए उनकी कोई ग़लत मांग, जैसे पृथक् निर्वाचन, मान ली गई तो वर्षों के लिए देश के सिर पर एक ऐसी बात लद जायगी जो फूट और अनैक्य का विष उगलती रहेगी।

मैं ब्योरे की बातों में नहीं जाता। सम्मेलन में कितने व्यक्ति बैठें कि काम सुगमता से हो, इस प्रश्न पर बहुत विवाद हो रहा है, पर इसका निपटारा हो सकता है। बालिग़ मताधिकार की न्याय्यता में किसीको आपत्ति नहीं हो सकती। यदि सचमुच मेल से काम करने और देश को विदेशी शासन से मुक्त करने की प्रवृत्ति व्यापक हो तो विधान-सम्मेलन से बढ़कर सुन्दर साधन नहीं हो सकता। पर इस प्रस्ताव में जो खतरे हैं, उनको भी समझ रखना चाहिए। बिना शासन की लगाम अपने हाथ में आये, बिना विदेशी शासकों को हटाये, बिना इस बात का निश्चय किये कि अन्ततोगत्वा बहुमत से काम होगा, ऐसे सम्मेलन को बुलाना हानिकर हो सकता है।

: ८ :

राष्ट्रीय-पंचायत: स्वतन्त्रता का प्रतीक

[युक्त प्राँतीय कांग्रेस कमेटी ने 'राष्ट्रीय पंचायत' पर निम्नलिखित बुलेटिन जारी किया है। इसमें राष्ट्रीय पंचायत के विचार के ऐतिहासिक विकास पर प्रकाश डाला गया है और उसके फलितार्थों को समझाते हुए बताया गया है कि 'राष्ट्रीय-पंचायत' का निर्माण किस प्रकार किया जा सकता है और उसे कार्यशील कैसे बनाया जा सकता है।—सं०]

तात्कालिक सत्य

आज पांच वर्ष बीत गए हैं, जब कांग्रेस ने नियमपूर्वक 'राष्ट्रीय-पंचायत' की योजना को स्वीकार किया था। तब से अबतक राष्ट्रीय-पंचायत की माँग भारत के राजनैतिक क्षेत्र में धीरे-धीरे बराबर आगे ही बढ़ती रही है। सारे भारत की आकांक्षायें तभी से राष्ट्रीय-पंचायत पर केन्द्रीभूत हो गईं। यूरोप में युद्ध छिड़ जाने और उसके कारण संस्थाओं तथा मनुष्यों के विचारों में जो भारी गड़बड़ी पैदा हो गई है, उसने राष्ट्रीय-पंचायत को हमारी राजनीति को एक मुख्य समस्या बना दिया है। चाहे जैसे हो, राष्ट्रीय-पंचायत की मांग हमारे लिए इस समय एक तात्कालिक सत्य बन गई है। महात्मा गांधी ने राष्ट्रीय-पंचायत को उत्साह के साथ स्वीकार कर लिया है और उसके हल का प्रतिपादन भी किया है।

देश की विभिन्न प्रान्तीय धारा-सभाओं में, सन् १९३७ में, वैधानिक-समस्या पर वाद-विवाद हुआ था। इस अवसर पर मद्रास के प्रधानमन्त्री ने ब्रिटिश सरकार द्वारा बलपूर्वक लादे गये विधान की एक पिंजड़े से तुलना की थी। सन् १९३५ का गवर्नमेंट ऑव इण्डिया एक्ट भारत की राजनीतिक तथा सामाजिक स्थिति को एक ज़हरीली सांकल में जकड़े हुए है। देश की जिन-जिन प्रान्तीय धारा-सभाओं में ब्रिटेन द्वारा बनाया गया यह शासन-विधान जांच के लिए आया, वहां लगभग सर्वसम्मति से सबका यही निश्चय था कि वर्तमान विधान में भारत की सामाजिक एवं राजनैतिक उन्नति बिलकुल ही असम्भव है।

सामाजिक अन्याय

ब्रिटिश सरकार के इस शासन के ढांचे का आधार किसी भी सामाजिक या राजनैतिक न्याय एवं सिद्धान्त पर नहीं है। उसमें विकास के लिए कोई गुंजायश नहीं रखी गई। उसमें ब्रिटिश पार्लमेंट की सत्ता को ही सर्वोच्च बताया है। इस विधान

में शासन का ढांचा, राष्ट्रीय-आर्थिक-व्यवस्था तथा नागरिकता के दूसरे अधिकारों के लिए नियम इस प्रकार बनाये गये हैं कि जिससे भारत ब्रिटेन के व्यापार तथा आर्थिक हितों का गुलाम बना रहे।

ब्रिटेन द्वारा तैयार किये गये ढांचे के मुक़ाबिले, या यों कहिये कि जवाब में कांग्रेस ने राष्ट्रीय-पंचायत की योजना तैयार की है। इस राष्ट्रीय-पञ्चायत की आधार-भूत बातें क्या हैं ? विभिन्न प्रान्तीय धारा-सभाओं में जो प्रस्ताव पास हुआ था उसमें यह बता दिया गया है कि "राष्ट्रीय पञ्चायत स्वतन्त्र भारत के लिए शासन-विधान तैयार करेगी और इस पंचायत का चुनाव बालिग़ मताधिकार के आधार पर होगा।" यह तो स्पष्ट ही है कि राष्ट्रीय-पञ्चायत इस बात को पहले ही मान लेगी कि ब्रिटिश पार्लमेंट के हाथ से भारतवासियों के हाथ में शासन की पूरी बागडोर चली जायगी। इसी राष्ट्रीय-पञ्चायत द्वारा भारतवासी अपनी सर्वोच्च इच्छा को प्रकट करेंगे। यह राष्ट्रीय पञ्चायत शासन का एक ऐसा ढाँचा तैयार करेगी जिसके द्वारा भारत को यह अधिकार होगा कि वह समय-समय पर उठनेवाली राजनैतिक तथा समाजिक समस्याओं पर बराबर अपना मत दे सके। इस प्रकार यहाँ ब्रिटिश सरकार से पूर्ण सम्बन्ध-विच्छेद हो जायगा। यह एक गोलमेज़-कान्फ़रेंस न होगी जिसमें हिन्दुस्तान तथा ब्रिटिश साम्राज्यवाद के प्रतिनिधि भारत के लिए विधान के बनाने के लिए बैठेंगे। उसमें ब्रिटेन के लिए हुकूमत करनेवाली सत्ता की हैसियत से कोई स्थान न होगा। उसमें तो केवल हिन्दुस्तानी ही अपने राष्ट्र के भाग्य का निर्णय करेंगे।

मुख्य विचार

राष्ट्रीय-पंचायत के सम्बन्ध में दो प्रकार के विचार मुख्यतः हैं। एक तो यह कि सभी प्रकार के क़ानून बनाने की सम्पूर्ण शक्ति जनता के हाथों में होगी। और दूसरे उस शक्ति को बालिग़ मताधिकार द्वारा समूचे देश के बालिग़ों में फैलाया जायगा।

तत्कालीन वास्तविकता

यद्यपि वास्तव में यह अभीतक एक आन्दोलनात्मक वस्तु ही रही है, लेकिन अब राष्ट्रीय पंचायत की मांग एक तत्कालीन वास्तविकता बन गई है। इसका श्रेय है यूरोप के युद्ध को। यह युद्ध अँग्रेज़ी सरकार द्वारा लादे गये विधान को परीक्षा की कसौटी पर चढ़ाता है—इस विधान के द्वारा भारतीय जनता के जनतन्त्रता और स्वतन्त्रता के विचार व्यक्त होते हैं या नहीं ? यह जांच पूरी तरह प्रारम्भ न हो पाई थी कि यह बात स्पष्ट हो गई कि इण्डिया एक्ट से भारतीय जनता के विचारों को व्यक्त करने की अपेक्षा ब्रिटिश सरकार के स्वार्थों और भावनाओं की ही अधिक

रक्षा हो सकती है। भारतीय जनता ने बिना अपनी सलाह और मर्ज़ी तथा बिना अपनी स्वतन्त्रता प्राप्त किये वर्तमान युद्ध में घसीटे जाने का विरोध किया। इसके साथ-ही-साथ वह यह भी जानना चाहती थी कि युद्ध के द्वारा किस प्रकार दुनिया में शान्ति स्थापित हो सकती है तथा जनतन्त्र शासन-प्रणाली की रक्षा हो सकती है। वर्त्तमान विधान में इस विरोध का कोई इलाज नहीं था। इसके द्वारा तो ब्रिटेन और हिन्दुस्तान के बीच केवल वही सम्बन्ध बना रह सकता है जो कि एक अत्याचारी और अत्याचार सहनेवाले के बीच रह सकता है। कांग्रेस ने मंत्रिपद ग्रहण करने के प्रस्ताव को पास करते समय भी ठीक यही विचार व्यक्त किये थे। ऐसी अवस्था में ब्रिटिश भारत के दो-तिहाई सूबों के लिए इसके सिवा और कोई रास्ता नहीं था कि वहाँ की जनता के प्रतिनिधि मंत्रिपदों को छोड़ दें। यूरोप में लड़ाई को प्रारम्भ हुए दो महीने भी पूरे न हुए थे कि अक्टूबर १९३९ में इन प्रान्तों से साधारण क़ानून का राज्य उठ गया और अंग्रेज़ी हुकूमत के गवर्नरों ने सारी ताक़तें अपने हाथ में ले लीं। इस प्रकार उस साम्राज्यवादी हुकूमत ने १९३५ के इंडिया एक्ट के उस हिस्से को स्वयं अपने ही हाथों से चकनाचूर कर दिया जिसके द्वारा थोड़ी बहुत उत्तरदायी हुकूमत दी गई थी। अब वह उस एक्ट के दूसरे हिस्से से जिसमें स्वेच्छाचारी निरंकुश शासन का बोलबाला है, राज कर रही है। ब्रिटिश सरकार के स्वार्थों और भारतीय-जनता की स्वतन्त्रता की उत्कट अभिलाषा के बीच जो संघर्ष चल रहा है, उसके परिणाम-स्वरूप सन् १९३५ का शासन-विधान आज मुर्दा हुआ पड़ा है। क़रीब ढाई वर्ष पहले मंत्रिपद ग्रहण करते समय काँग्रेस ने जिस बात की घोषणा की थी आज वही हो गई और सन् १९३५ के इंडिया एक्ट का खात्मा हो गया। काँग्रेस तो पहले ही भारतीय स्वतन्त्रता की लड़ाई के प्रति पूर्ण भक्ति प्रदर्शित कर रही थी। और उसने यह भी प्रकट कर दिया था कि वह इस बात के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ है कि आवश्यकता पड़ते ही प्रान्तीय और केन्द्रीय हुकूमत के अधिकारों पर ज़बरदस्ती लादे गये कवच को नष्ट कर देगी। अब इस कूड़े को कौन साफ़ करेंगे? और कौन इनकी पूर्ति करेगा? यही प्रश्न है। ऐसे अवसर पर ही राष्ट्रीय पञ्चायत एक तात्कालीन वास्तविकता हो जाती है।

एक बात यह भी कही जा सकती है कि केवल १९३५ के एक्ट को चूर चूर करना ही पर्याप्त नहीं है, बल्कि राष्ट्रीय-पंचायत बुलाये जाने से पहले एक प्रबल संघर्ष द्वारा ब्रिटिश शासन से शक्ति को छीन लिया जाय। यह भी कहा जा सकता है कि प्रथम इसके कि राष्ट्र अपनी सर्वोच्च इच्छा को सबसे पहले प्रकट करे, राष्ट्रीय-पंचायत तभी अपना कार्य कर सकती है, जब ब्रिटिश सत्ता का खात्मा हो जाय। अभी तक तो ब्रिटिश शासन का अन्त नहीं हुआ है। लेकिन चाहे कुछ भी हो, पर यह तो सत्य ही है कि वर्तमान अवस्था में इस बात के बहुत से प्रयत्न दिखाई दे रहे

है कि ब्रिटिश-शासन मृतप्राय: हो रहा है। राष्ट्रीय-पंचायत तो दो ही अवस्था में सम्भव है। एक तो यह कि ब्रिटिश शासन के अन्त के अवसर पर ही उसका निर्माण हो और या वह स्वयं ही उसका अन्त बने।

इन दोनों अवस्थाओं के फलितार्थों के भेद का जानना नितान्त आवश्यक है। एक में तो राष्ट्रीय-पंचायत तब बन सकती है जबकि एक सफल सविनय-अवज्ञा के आन्दोलन द्वारा ब्रिटिश सरकार को नष्ट कर दिया गया हो, और दूसरे में राष्ट्रीय-पंचायत तभी बनेगी जब ब्रिटिश हुकूमत कांग्रेस की दिन-प्रति दिन बढ़ती हुई शक्ति और युद्ध से पैदा होने वाली गड़बड़ी के फल-स्वरूप यह स्वीकार कर ले कि वह अब भारत पर हुकूमत नहीं कर सकती। दोनों ही अवस्था में राष्ट्रीय-पंचायत भारतीय स्वतन्त्रता का प्रतीक है।

तीन अवस्थायें

अब हमें यह देखना है कि राष्ट्रीय-पंचायत को किन-किन अवस्थाओं में होकर गुज़रना पड़ेगा, और उसकी क्या विशेषतायें होंगी। स्पष्टरूप से राष्ट्रीय-पंचायत की तीन अवस्थायें हैं। चुनाव, विचार-विनिमय और परिणाम। प्रत्येक अवस्था में राष्ट्रीय-पंचायत की अपनी विशेषता रहेगी।

राष्ट्रीय-पंचायत का चुनाव बालिग़ मताधिकार पर होना आवश्यकीय है। प्रत्येक बालिग़ भारतवासी को इस पंचायत के चुनने में भाग लेना चाहिए। इस प्रकार उसे स्वतन्त्र भारत के शासन विधान के मौलिक सिद्धान्तों को तैयार करने में अपने विचारों को प्रकट करना चाहिए। मताधिकारी होने के लिए शिक्षा-सम्बन्धी, डिग्री या जायदाद की योग्यता की जो क़ैद अबतक रही है, उसे रद कर देना आवश्यक है। एक राष्ट्र जो स्वतन्त्र होने के लिए चेतनामय हो गया है और अपने ऊपर स्वयं शासन करने को दृढ़ प्रतिज्ञ है, वह कभी भी इस बात पर सन्तोष नहीं कर सकता कि राजनैतिक ढांचा तैयार करने का काम केवल थोड़े से शिक्षित और सम्पत्तिशालियों तक ही सीमित रहे। बालिग़ मताधिकार द्वारा राष्ट्रीय-पंचायत के चुने जाने में कई लाभ हैं। यह राष्ट्रीय-पंचायत भारतवर्ष की भावी सरकार का ढांचा तैयार करेगी। यदि इस ढाँचे को टिकाऊ और सुरक्षित बनाना है और समय तथा परिवर्तन के आक्रमणों से इसकी रक्षा करनी है तो इसे जन-साधारण की आकांक्षाओं, आवश्यकताओं, भावनाओं और इच्छाओं के अनुसार ही बनाना चाहिए।

यह कौन कह सकता है कि एक ग़रीब मज़दूर तथा किसान के हृदय में सामाजिक न्याय तथा अच्छी सरकार की जो धारणा है वह कुछ थोड़े से पढ़े लिखे और पैसेवालों की धारणा से उच्च नहीं होगी? राष्ट्रीय-पंचायत के प्रत्येक मतदाता को उस की हरएक छोटी-छोटी बात से कुछ सरोकार न होगा। परन्तु वह तो ऐसे बड़े-बड़े

सस्ता-साहित्य-मण्डल

से प्रकाशित

सामयिक साहित्य माला की पुस्तकें

१—कांग्रेस का इतिहास (१९३५-३९)

यह पुस्तक कांग्रेस इतिहास (१८८५-१९३५) के परिशिष्ट के रूप में है। मूल पुस्तक डा० पट्टाभि सीतारामैया ने सन् १९३५ में हुई कांग्रेस स्वर्ण जयन्ती पर प्रकाशित कराने को लिखी थी। मूल्य ।—)

२—दुनिया का रंगमंच (१९३३-३८)

पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखी गई यह पुस्तक 'विश्व इतिहास की झलक' के परिशिष्ट के रूप में है। सन् १९३३ से लेकर १९३८ तक की देश-विदेश की राजनैतिक स्थिति पर यह पुस्तक प्रकाश डालती है। मूल्य ।)

३—हम कहाँ हैं ?

यह पुस्तक पं० जवाहरलाल नेहरू के लेखों का संग्रह है। देश और कांग्रेस की वर्तमान स्थिति का इस पुस्तक में सिंहावलोकन है। मूल्य =)

४ - युद्ध-संकट और भारत

यह पुस्तक वर्तमान यूरोपीय युद्ध, ब्रिटिश सरकार की नीति और भारत के रुख पर प्रकाश डालती है। ब्रिटिश सरकार की घोषणायें, महात्मा गांधी, डा० राजेन्द्रप्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू, कांग्रेस-कार्यसमिति और महासमिति के सितम्बर १९३९ से लेकर अबतक के वक्तव्यों, लेखों आदि का संग्रह है। मूल्य ।)

५—सत्याग्रह : क्यों, कब और कैसे ?

इस पुस्तक में महात्मा गांधी के सत्याग्रह के स्वरूप, आवश्यकता और उसके लिए उचित समय, पर ताजे लेखों का संग्रह है। परिशिष्ट में प० जवाहरलाल नेहरू का लेख, 'स्वतन्त्रता-दिवस की प्रतिज्ञा' आदि दिए गए हैं। मूल्य ≶)

६—राष्ट्रीय-पंचायत

इस पुस्तक में दिखाया गया है कि राष्ट्रीय-पंचायत ही किस प्रकार देश की वैधानिक समस्या को सुलझा सकती है। महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, डा० पट्टाभि सीतारामैया, एम० एन० राय, श्री सम्पूर्णानन्द आदि के लेखों का संग्रह— मूल्य ।)

—: सामयिक साहित्य माला, पुस्तक ३ :—

हम कहाँ हैं ?

लेखक

जवाहरलाल नेहरू

सस्ता साहित्य मण्डल
दिल्ली :: लखनऊ

प्रकाशक,
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, दिल्ली

संस्करण
अप्रैल १९३९ : ३०००
दाम
दो आना

मुद्रक,
एस. एन. भारती,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रे
नई दिल्ली।

दो शब्द

यह लेखमाला मार्च १९३९ में होनेवाली राष्ट्रीय महासभा (कांग्रेस) के त्रिपुरी-अधिवेशन से दस दिन पहले लिखी गई थी और लखनऊ, के अंग्रेजी दैनिक 'नेशनल हेरल्ड' में प्रकाशित हुई थी। इसका उद्देश्य हिन्दुस्तान की उस समय की स्थिति का, ख़ासकर राष्ट्रपति के चुनाव से पैदा हुए विवाद का, सिंहावलोकन करना था। अब तो त्रिपुरी-कांग्रेस हो भी चुकी और कई नई घटनायें उसके बाद हो चुकी हैं। इसलिए यह अब कुछ पुरानी तो पड़ गई हैं; पर फिर भी जिस परिस्थिति और जिन विवादों का इनमें सिंहावलोकन है उनमें मूलत: कोई अन्तर नहीं पड़ा है। इसलिए यह सिंहावलोकन उनपर विचार करने में शायद कुछ सहायक हो इस कारण इन्हें पुस्तकाकार प्रकाशित किया जा रहा है।

आनन्द भवन, इलाहाबाद
अप्रैल १९३९

जवाहरलाल नेहरू

हम कहाँ हैं ?

१

सूर्य अस्त हो ही रहा था जब मैं थका हुआ-सा, अपने साथी कृपलानी के साथ उस धूलभरी सड़क से सेगाँव से वर्धा जा रहा था। हम लोग जोकि इतने अर्से से कांग्रेस-कार्य-समिति के सदस्य थे, २२ फरवरी की उस शाम को सेगाँव में इकट्ठा हुए और जुदा हुए और लम्बी बहस खत्म हुई। दुविधा के बोझ से राहत मिली, लेकिन उस राहत से दिमाग़ को शान्ति या आशंकाओं से मुक्ति नहीं मिली। हम आश्रम के इर्दगिर्द घूम रहे थे; क्योंकि उस वक़्त का काम ख़तम हो जाने से हमें जाने की कोई जल्दी न थी। इसी दरमियान हमारे साथी दो मोटरों पर क़ब्ज़ा कर वर्धा को रवाना होगये और अगली मोटर में बैठनेवाले इस ख़याल में रहे कि हम लोग पिछली मोटर में हैं और पिछली वालों का ख़याल रहा कि हम आगे की मोटर में हैं। इस तरह हम सेगाँव में छूट गये। क़रीब एक घण्टे तक हम लोग वहाँ इन्तज़ार करते रहे। और नज़दीक की एक प्रारम्भिक पाठशाला के बच्चों के साथ खेलते रहे, लेकिन मोटर नहीं आई और हम लोगों ने ५ मील पैदल ही चलकर वर्धा जाना तय किया।

खाई

पिछले तीन बरसों में कितनी वार मैं ज्यादातर मोटर से, कुछ बार बैल-गाड़ी से और एक दो वार पैदल, उस धूलभरी सड़क से गुज़रा होऊँगा। चारों तरफ़ फैले हुए सुनसान और खुश्क मैदान से घिरे हुए, जहाँकि शायद ही कोई दरख़्त दिखाई देता हो, उस नजारे से मैं अच्छी तरह परिचित था। फिर भी आज वह दूसरी ही तरह का दिखाई दिया, शायद इसलिए क्योंकि मैं खुद ही बदल गया था, और उसकी तरफ़ दूसरी नजर से देख रहा था। सूर्य क्षितिज पर आग के गोले की तरह लटका हुआ था और स्थिर आकाश सौन्दर्य से भरा हुआ था, लेकिन उस वक़्त मैं सौन्दर्य का आनन्द लेने के धुन में नहीं था और अपने को थका हुआ और हतोत्साह-सा महसूस करता था। उस सुनसान मैदान में उदासी मुझ पर ग़ालिब आगई और लम्बी छायायें फैलती हुई और मनहूस मालूम होने लगी। हम चुपचाप चलते रहे, क्योंकि दोनों में से कोई भी बातचीत करने की धुन में न था। मैं सेगाँव

से दूर नहीं जा रहा था, बल्कि किसी ज्यादा बड़ी और ज्यादा महत्त्व की चीज़ से, जोकि इन बहुत से बरसों से मेरा हिस्सा रही है दूर जा रहा था।

अखबारों का कहना है कि मैंने कार्यसमिति से इस्तीफ़ा दे दिया, यह एकदम सच नहीं है, लेकिन फिर भी काफ़ी सच है। पन्द्रह सदस्यों की कमेटी में से जब बारह ने इस्तीफ़ा दे दिया तब बाक़ी बचा हुआ हिस्सा कमेटी की तरह काम नहीं कर सकता। जिन कारणों ने मुझे ऐसा करने के लिए मजबूर किया, वह कई हालतों में उनसे जुदा थे जिनसे कि मेरे दूसरे साथी प्रभावित हुए। लेकिन इन कारणों के सिवा भी मेरी यह प्रबल इच्छा थी कि मैं कमेटी से अलग रहकर बिना किसी रुकावट के अपनी मर्ज़ी के मुताबिक़ काम करूँ। एक ऐसी मरनेवाली कमेटी से, जिसके कि सिर्फ़ इनेगिने दिन ही बाक़ी थे, इस्तीफ़ा देना काफ़ी आसान था, लेकिन मेरे दिमाग़ में जो समस्या चल रही थी वह इससे ज्यादा गहरी थी और जो क़दम मैंने लिया था उसका अर्थ होता बहुत-से दूसरे सम्पर्कों से सम्बन्ध-विच्छेद। ऊपर से देखनेवालों के ख़याल में मैंने अपने को बारह दूसरे इस्तीफ़ा देनेवालों के साथ मिला दिया था। और वह मैंने किया भी था। लेकिन फिर भी मेरे अपने ख़याल में उनके और मेरे बीच खाई और बढ़ गई थी और मैं फिर पिछले तीन बरसों से बननेवाली कार्यसमिति की तरह की किसी कमेटी का मेम्बर न बनूंगा।

कोई दूसरा रास्ता नहीं

कुछ लोग इन इस्तीफ़ों की आलोचना करते हैं यह देखकर मुझे ताज्जुब होता है। इन सदस्यों के या बहरहाल इनमें से कुछ के पास, उनके ख़िलाफ़ लगाये गये आरोपों के बाद इसके सिवा और कोई उपाय बच ही नहीं रहता था। मामूली के तौर पर भी अगर यह समझा जाता हो कि ये लोग जिस नीति को मानते हैं, बहुमत उसे पसन्द नहीं करता तो इस्तीफ़ा इन्हें दे देना पड़ता। लेकिन मौजूदा मामले में तो इन लोगों के ख़िलाफ़ कुछ व्यक्तिगत गम्भीर आरोप भी लगाये गये थे, और इसलिए जबतक ये आरोप क़ायम रहते हैं, इन लोगों के लिए समिति का सदस्य बने रहना सर्वथा असम्भव था। परिणामतः ये आरोप ख़ुद गांधीजी के ही ख़िलाफ़ लगाये गये समझे जाने चाहिएँ; क्योंकि वही कार्यसमिति के पथप्रदर्शक और सलाहकार रहे थे। स्वभावतः ही इस तात्त्विक और वैयक्तिक पहलू ने राजनीतिक पहलुओं तक को ढक लिया, और इसलिए मैंने कांग्रेस के सभापति को दूसरी समस्याओं पर विचार करने के पहले इस रुकावट को साफ़ करने के लिए सूचित किया। लेकिन अफ़सोस है कि उन्होंने ऐसा नहीं किया। इतना ही नहीं, इस कठिनाई को और बढ़ाने के लिए सभापति ने कार्यसमिति की बैठक स्थगित करने का तार

दे दिया और समिति को मामूली ज़ाब्ते के काम तक करने की इजाज़त नहीं दी। इससे यह साफ़ था कि मौजूदा हालतों में कार्यसमिति खतम हो गई थी।

एक महान् संस्था अपने में कुछ ऐसी चीज़ रखती है जो वैयक्तिकता या शख़्सियत से ऊपर होती हैं, यह बात दूसरी है कि किसी जबर्दस्त हस्ती का उस पर ज़बर्दस्त प्रभाव हो। व्यक्ति आते हैं और चले जाते हैं, लेकिन संस्था का काम बराबर जारी रहता है। कांग्रेस ने, पिछले बरसों में, जबकि इसके सब नेता और मुख्य-मुख्य कार्यकर्त्ता बराबर जेलों में पड़े थे और क़ानून की सारी सत्ता उसके ख़िलाफ़ लगा दी गई थी, अपने इस अवैयक्तिकता के पहलू को अपूर्व रूप से सिद्ध कर दिखाया है। उस हालत में भी यह बराबर जारी रही और इसने अपनी भीतरी शक्ति का वह निश्चित चिन्ह बता दिया जो किसी भी मुसीबत या संकट से भयभीत नहीं होता।

एक अन्तर

यह ज़ाहिर था कि मौजूदा हालत में कार्यसमिति किसी महत्त्वपूर्ण विवादास्पद मामले का फैसला या कांग्रेस की विषय-निर्वाचिनी समिति के लिए प्रस्ताव बनाने की कोशिश कर नहीं सकती थी, और उसे करनी भी नहीं चाहिए थी। प्रेसीडेण्ट की ग़ैरहाज़िरी में ऐसा करना अनुचित होता और यहाँ मौजूद हरेक मेम्बर इसको पूरी तरह महसूस करता था। लेकिन यह मुनासिब होता कि सिर पर आये हुए कांग्रेस अधिवेशन का ख़याल करते हुए मामूल के काम, ख़ासकर जिनके फौरन ही किये जाने की ज़रूरत थी, उसी समय निपटा दिये जाते। लेकिन सभापति की हिदायतें रास्ते में रोड़ा अटकानेवाली मालूम हुईं। हालांकि मैं नहीं जानता कि उनकी यह मंशा थी कि नहीं कि उनके शब्दों का इस प्रकार शाब्दिक अर्थ लगाया जाय। और इस तरह करने के लिए कोई काम न रहने के कारण कमेटी बरख़ास्त हो गई और ग़ायब हो गई। यह पहला ही मौक़ा था जबकि कांग्रेस ने अवैयक्तिकरूप से काम नहीं लिया।

जबकि तराज़ू या कांटे की डंडी समतौल हो तो ज़रा-सी चीज़ से भी पलड़ों में अन्तर हो जाता है, और इसलिए सभापति के तार ने एक अन्तर पैदा कर दिया। मामूली तौर पर प्रजातन्त्री तरीक़ा तो यही था कि पुरानी कार्यसमिति सभापति के चुनाव के बाद ही और उस समय जो-कुछ हुआ उसे देखकर तुरन्त ही इस्तीफ़ा दे देती, जिससे कि नई और अधिक प्रातिनिधिक कमेटी के बनने में सहूलियत होती। लेकिन तेज़ी से बढ़ते हुए आन्तरिक और बाह्य संकट के हालात ने और एक दूसरे व्यापक संघर्ष की सम्भावना ने प्रजातन्त्र के साधारण तौर-तरीकों को ढक लिया

और किसी निर्णय पर पहुँचना मुश्किल कर दिया। लेकिन जब वहाँ मौजूद सदस्यों को यह मालूम हुआ कि मामूल के कामों तक के बारे में उनमें विश्वास नहीं है तो छोटी-सी कार्यकारिणी में सहयोग की सम्भावना दूर होगई। संस्था के अवैयक्तिक स्वरूप को हटाकर व्यक्तिगत पहलू इसका स्थान ले रहे थे। संस्था के प्रति वफ़ादारी के बजाय व्यक्ति के प्रति वफ़ादारी का ज़ोर होने लगा।

जुदाई

लेकिन कुछ भी हो यह एक मामूली बात थी और अगर आसपास का वातावरण ठीक होता तो इसका इतना अधिक ख़याल न होता। इससे मुझे कांग्रेस के अपने मौजूदा विधान की एक त्रुटि मालूम हुई, जोकि पुरानी कार्यसमिति को नये सभापति के साथ काम करने को क़ायम रखती है। यह कहीं ज्यादा अच्छा हो अगर सभापति के चुनाव के साथ ही कार्यसमिति का कार्यक्रम भी समाप्त होजाय और सभापति नई कार्यसमिति के साथ कांग्रेस में आवे। उस हालत में कांग्रेस अधिवेशन की कार्रवाई इस समिति में विश्वास के रूप में मानी जायगी। मौजूदा विधान में कार्यसमिति कांग्रेस अधिवेशन ख़तम होने के बाद बनाई जाती है, और यह बहुत मुमकिन है कि वह कांग्रेस का वास्तविक प्रतिनिधित्व न करती हो।

इस तरह दिमाग़ में सब तरह के विचारों की कतरब्योंत चलती रही और मैं सेगाँव से वर्धा वापस आया। तात्कालिक विषय पर मैंने कार्यसमिति के अपने पुराने साथियों का साथ दिया, क्योंकि मेरे लिए सिर्फ़ वही सही रास्ता था; लेकिन मेरी जुदाई दूसरों की बनिस्बत इन लोगों से ज्यादा थी। अपने इस्तीफ़े के पत्र में इन लोगों ने लिखा था कि "वक़्त आगया है जबकि देश के सामने ऐसी साफ़ और दो-टूक नीति रक्खी जाय जो कांग्रेस के परस्पर विरोधी दलों के साथ के समझौते पर आश्रित न हो।" अगर यही उनकी दो-टूक नीति होती हो, तो उनके साथ मेरा कोई स्थान नहीं है।

२

अगर कार्यसमिति दो-टूक नीति में विश्वास रखनेवालों की ही बननेवाली हो तो मेरे लिए उसमें जगह कहाँ हो सकती है? बेशक समिति एक-रस और एक इकाई की तरह काम कर सकनेवाली होनी चाहिए, नहीं तो वह बेअसर होगी। आमतौर पर वह एक ही कार्य-प्रणाली में विश्वास रखनेवाली होनी चाहिए। लेकिन अगर एक-रसता का अर्थ फ़िर्क़ेबन्दी के रूप में किया जाता हो तब तो भावी समिति उन समितियों से बहुत जुदा तरह की होगी, जैसीकि पिछले बीस बरसों से बनती

रही है। इस नये अर्थ में देशबन्धुदास या मेरे पिताजी अथवा मौ० मुहम्मद अली कहां रहे होते ? कार्यसमिति में उन्हें अपने लिए कोई स्थान न मिला होता। स्वराज्य पार्टी के शुरू के दिनों में भावी नीति तक के सम्बन्ध में महत्त्व के मत-भेद पैदा होगये थे। उस समय भी 'एक-रस' कमेटी बनाने की कोशिश की गई थी, लेकिन वह जल्दी ही नाकामयाब हो गई और कांग्रेस फिर अपने दो प्रमुख दलों के प्रतिनिधियों की संयुक्त समिति बनाने की पुरानी नीति पर लौट आई । दृष्टिकोण के मतभेद के बावजूद ये समितियाँ कई बरसों तक बा-असर तरीक़े से काम करती रहीं। अगर इसके सिवा कोई और दूसरा रास्ता अख़्तियार किया गया होता तो नतीजा यह होता कि समिति बे-असर या प्रभावहीन होगई होती, दो दलों के बीच संघर्ष बना रहता और कांग्रेस कमज़ोर हो जाती।

पंथवाद

अगर अब नये सिद्धान्त पर अमल किया गया तो मुझ-जैसे निराले आदमी के लिए समिति में कोई स्थान नहीं होगा। पुरानी समिति में, जिसे कि मैं जानता हूँ, मैं उपयुक्त हो नहीं सकता, और नई समिति में तो, जिसे कि मैं जानता तक नहीं और भी कम उपयुक्त होऊंगा। कार्यसमिति में मेरे न रहने का अर्थ यह नहीं है कि मैं रूठकर ख़ामोश होगया हूँ या अलग होगया हूँ। किसी भी मौक़े पर मैं, और जैसा कि दूसरे भी करेंगे, जितना भी सम्भव हो सकेगा सहयोग करूँगा और किसी तरह की कोई रुकावट न डालूँगा।

मेरा यह यक़ीन है कि कांग्रेस को पंथवाद और इस नामधारी संकुचित एक-रसता से बचना चाहिए, क्योंकि यह कांग्रेस के भीतर झगड़ों और विरोध की भावना को बढ़ा देगी। यह कांग्रेस का काम है कि वह अपनी नीति निश्चित कर दे और अपनी कार्यकारिणी से उसपर कड़ाई से डटी रहने को कहे। इसकी चहार-दीवारी के अन्दर बेशक एक-रसता होनी चाहिए, लेकिन इससे आगे बढ़कर इसको और भी अधिक संकुचित करके का नतीजा होगा महत्वपूर्ण अंगों का बाहर कर दिया जाना।

संयुक्त मोर्चा

यद्यपि मौजूदा परिस्थितियों में हमारे लिए संयुक्त मोर्चे की नीति अनिवार्य है, लेकिन साथ ही इसमें कुछ हानियाँ भी हैं, क्योंकि इससे दो या अधिक साथ मिलकर काम करनेवाले दलों में दबाये जाने का भाव पैदा होता है। हरेक यह महसूस करता है कि वह अपने रास्ते पर नहीं जा पाता और दूसरे दल ने उसकी

वृद्धि को रोक दिया है। पिछले कुछ वरसों में दवाये जाने का यह भाव बढ़ गया है, और शायद इसलिए यह मुनासिव है कि कार्यकारिणी एक ही दल के आदमियों की वने ताकि वह खुलकर काम कर सके; क्योंकि नीतियों में कोई वहुत अधिक भिन्नता नहीं है, इसलिए वास्तव में इससे कोई खास अन्तर नहीं होगा और इसके वाद तुरन्त संयुक्त समिति पर लौटना ही पड़ेगा, और वही असल में काँग्रेस और देश की वास्तविक प्रतिनिधि हो सकती है।

इसलिए किसीको, काँग्रेस के वर्तमान गति-अवरोव को, अशुभ होते हुए भी वहुत भयानक रूप में नहीं लेना चाहिए। हमारे आन्दोलन की वढ़ती का यह एक चिह्न है, और हमारे उन सैद्धान्तिक झगड़ों को प्रकट करता है जिन्होंने हमारे वहुसंख्यक लोगों के दिमाग़ को परेशान कर रक्खा है। लेकिन हरेक शख्स यह जानता है कि किसी भी कार्रवाई के किये जाने पर हम लोग साथ रहे हैं, और राष्ट्रीय अयवा अन्तर्राष्ट्रीय किसी भी संकट के समय हम सव एक-साथ खड़े हुए दिखाई देंगे।

सत्तावाद

अगर इसमें कोई दुर्भाग्य की वात है तो यह है वह तरीक़ा जिससे कि यह गति-अवरोव पैदा हुआ है, क्योंकि यह किसी सिद्धान्त या नीति के स्पष्ट संघर्ष का कोई प्रतीक नहीं है। काँग्रेस संस्था पर अपना नियन्त्रण रखने की इच्छा का यह परिणाम है, फिर चाहे उसकी नीति कुछ भी हो। काँग्रेस के अविनायकों में समझी जाने वाली सत्तावादी मनोवृत्ति के ख़िलाफ़ लोगों के मनों में कुछ प्रतिक्रिया थी, तिसपर भी आश्चर्य की वात है कि नये नेताओं में, उससे कहीं ज्यादा सत्तावादिता है जितनी कि काँग्रेस के इस पिछले इतिहास में किसी में रही हो। काँग्रेस के लिए उग्रनीति की वात समझ में आ सकती है। यह वात दूसरी है कि कोई उसे पसन्द करे या न करे। इसी तरह किसी कार्य-प्रणाली पर विचार किया जा सकता है और उसे मंजूर या रद्द किया जा सकता है। लेकिन सत्तावाद के साथ लगे हुए उग्र नारे एक ग़लत और खतरनाक चीज हैं। यह ग़लत इसलिए है क्योंकि इनसे लोगों को यह खयाल करने का मौक़ा मिलता है कि जोरदार भाषा वोलना और खूव चिल्लाना काम करने के समान ही है। और खतरनाक इसलिए क्योंकि उग्रतम नारे लोगों को भुलावे में डाल देते हैं और उनकी आड़ में सत्तावाद घुस वैठता है और अपने को सुरक्षित कर लेता है। मैं नहीं समझता कि काँग्रेस को इस रास्ते जाने की कोई गुंजाइश है, क्योंकि हम प्रजातन्त्रात्मक प्रणाली से वहुत अधिक वन्धे हुए हैं और इन पिछले अनेक वर्षों से हमने काम के मुक़ावले में

जोकि परिणामकारक है और ताक़त देता है, कड़ी भाषा के अभिशाप का जोकि हमें कमजोर करता है तिरस्कार कर दिया है; फिर भी हमें फूल न जाना चाहिए क्योंकि इधर के कुछ बरसों में यूरोप में अजीब घटनायें हुई हैं और हम अपनी आँखों के सामने प्रजातन्त्र की शानदार इमारत को गिरती हुई देख चुके हैं। हमे दुःख के साथ यह स्वीकार करना पड़ता है कि मूर्ख और भ्रम में पड़ी हुई जनता को अलग कर लेना और बाद को ग़लत रास्ते पर हाँक ले जाना कितना आसान है।

नये प्रश्न

इसलिए हमारे लिए यह लाज़मी होजाता है कि हम अपनी नीति और उपायों के बारे में किसी स्पष्ट और साफ़ नतीजे पर पहुँच जायँ और राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय समस्याओं के बारे में अपना निश्चित रवैया बतला दें। दुनिया बद-लती है और नई समस्यायें खड़ी होती हैं। नये सवालों को हल करना होता है, और हमेशा से प्रचलित तथा कलतक कहे जानेवाले वाक्य आज बे-मानी हो सकते हैं। हम म्यूनिक-समझौते के बाद के ज़माने में रह रहें हैं, नक्शा रोज़-ब-रोज़ बदलता जाता है और पशुता और अन्ध-प्रतिक्रिया विजयी होती जा रही है। इस समय भी जबकि मैं यह लिख रहा हूँ मेरे दिमाग़ में अपने समय की वह सबसे बड़ी भीषण दुर्घटना—स्पेन-प्रजातन्त्र की हत्या—भरी हुई है। वे बाग़ी या विद्रोही नहीं थे जिन्होंने प्रजातन्त्री स्पेन को हत्या की, न वे श्विासघाती हाथ ही थे जिन्होंने ऐसा किया। और न अन्त में फैसिस्ट राज्यों के हाथों ही, उनके कितना ही चाहने के बावजूद उसकी हत्या हुई। ब्रिटेन और फ्रांस, चेकोस्लोवाकिया के साथ किये गये विश्वासघात की तरह, इसके लिए भी ज़िम्मेदार ठहराये जाने चाहिएँ और इति-हास सदियों तक इस कलंक को याद रक्खेगा और उन्हें क्षमा न करेगा। चेकों और स्पेनियों की सतत सन्तप्त आत्मायें जिन्हें कि इन्होंने अकेला छोड़ दिया और विश्वास घात किया और मैत्री और तटस्थता की आड़ में मौत और ग़ुलामी की तरफ़ ढकेल दिया, पीढ़ी-दर-पीढ़ी उनका पीछा करती रहेंगी।

साम्राज्यवाद

ऐसी है यह दुनिया जिसमें हम रह रहे हैं। और खुद अपने यहाँ हिन्दुस्तान में भी जो समस्यायें खड़ी हो रही हैं वे यूरप जैसी ही गम्भीर हैं। जबकि हम अपनी ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ सीधी लड़ाई की भाषा में सोचते हैं, वह साम्राज्यवाद अपना स्वरूप बदलता जाता है, और अपनी शक्ति का इतना भरोसा न होते हुए भी, अप्रत्यक्ष रूप से और और भी अधिक भयंकरता के साथ उस

चुनौती का जवाब देने की कोशिश करता है। प्रतिक्रिया खुद एक जुदी ही भाषा में बात करती है और अपनी स्वार्थसिद्धि के लिए उदार वाक्यों का प्रयोग करके राजनीति से अपरिचित भोली जनता को ठगती है। साम्प्रदायिकता इससे भी ज्यादा निश्चितरूप से प्रतिक्रियावादियों और साम्राज्यवादियों का गढ़ बन जाती है।

आजकल नारों और आवाज़ों का हमारे सार्वजनिक कार्यों के साथ खतरनाक़ सम्बन्ध होगया और जबतक स्पष्ट विचार और सुनिश्चित उद्देश्य और उपायों से उनका सम्बन्ध न हो तबतक इनसे ख़तरा रहेगा। हममें से ज्यादातर लोग शायद ही कभी सोचने-विचारने की तकलीफ़ करते हैं। यह तकलीफ़देह और थका देनेवाला तरीक़ा है और यह अक्सर हमें अप्रिय परिणामों की ओर ले जाता है। लेकिन संकट और गति अवरोध जब कभी भी पैदा होते हैं, तब कम-से-कम उनसे इतना फ़ायदा जरूर होता है कि वे हमें सोचने-विचारने के लिए मजबूर कर देते हैं। तब आइए हम अपने मौजूदा गति अवरोध का इस तरह फ़ायदा उठावें।

रास्ता

यही वजह है कि मैं अपने कुछ विचारों और अनुभवों को पाठकों के सामने रखने का साहस करता हूँ। बदलती रहनेवाली और अनिश्चित स्थिति में मेरे लिए यह मुश्किल है कि मैं किसी भी तरह आत्मविश्वास के साथ मौजूदा गति अवरोध से निकलने का कोई रास्ता सुझाऊँ। यह हो सकता है कि लोग ख़याल करते हैं उसके पहले ही वह रास्ता खुद ही निकल आए। इस बीच मेरे लिए यह मुनासिब होगा कि पिछले तीन बरसों में हिन्दुस्तान में जो मनोवृत्तियाँ पैदा हुई हैं मैं उनका खाका खींचूं। ऐसा करते समय मैं पुरानी कार्यसमिति के अपने साथियों से अत्यन्त नम्रता पूर्वक क्षमा चाहूँगा, क्योंकि मुझे कुछ ऐसी घटनाओं का उल्लेख करना पड़ेगा, जिनका उनके साथ सम्बन्ध है और जो अभीतक गुप्त रक्खी गई थीं। मुझे आशा है कि ऐसा करके मैं उनके विश्वास का दुरुपयोग नहीं करूँगा।

३

तीन साल पहले, मार्च में मैं, काँग्रेस का निर्वाचित-सभापति, हवाई जहाज द्वारा यूरप से हिन्दुस्तान को वापस लौटा। मेरे विचार और सम्मतियाँ अच्छी तरह जानी-बूझी हुई थीं, और मैं किसी हदतक यह ख़याल करने का हक़दार था कि काँग्रेस के निर्वाचकों ने उनके प्रति अपनी स्वीकृति जाहिर की है। लेकिन मैं यह अच्छी तरह जानता था कि मैं ऐसा ख़याल बहुत ज्यादा हदतक नहीं कर सकता, क्योंकि चुनाव अक्सर दूसरी बातों से प्रभावित हुआ करते हैं। कोई भी यह नहीं

कह सकता था कि प्रतिनिधियों ने मुझे अपना सभापति चुन लिया है इसलिए कांग्रेस समाजवादी होगई है। लेकिन इस चुनाव का यह मतलब जरूर था कि अधिक उग्रनीति की आम माँग है और देश में समाजवादी विचार फैल रहे हैं। सविनय-आज्ञाभंग या सत्याग्रह बन्द करने के कारण जो प्रतिक्रिया छा गई थी, पिछले साल से कांग्रेस उससे तेजी से बाहर निकल रही थी। केन्द्रीय असेम्बली के चुनाव ने इसमें मदद दी और अधिक उग्र अंग संस्था की निष्क्रियता के खिलाफ़ गुस्सा दिखा रहे थे।

समाजवादी अंग

एक संगठित समाजवादी अंग पैदा होगया था, और जवानी के जोश की ज्यादती के कारण वह कांग्रेस के नेताओं की आलोचना करने लगा। वह पश्चिमी समाजवादी साहित्य से उधार ली हुई भाषा का प्रयोग करता था, जिसे कांग्रेस की आम जनता शायद ही समझ पाती हो। और इसलिए यद्यपि वह कुछ आदमियों को तो अपनी तरफ़ खींचने में सफल हुआ, लेकिन उसने बहुत-सों के रास्ते में खाई खोद दी। कांग्रेस का व्यापक मध्यम-वर्ग, जोकि राजनैतिक विचारों में उग्र, सामाजिक दृष्टि से अस्पष्ट और स्थिर लेकिन आम तौर पर किसान-पक्षपाती था, इस नये तरह के प्रचार को जिसमें उसके नेताओं पर आक्षेप किये जाते थे, सन्देह की की नज़र से देखने लगा। कुछ समाजवादी खुले शब्दों में पुराने नेताओं को हटाकर उनकी जगह ले लेने की बात कहने लगे और साफ़तौर पर इस काम के लिए अपने आपको खुदाई ठेकेदार समझने लगे। स्थानीय कांग्रेस कमेटियों के लिए अपने उम्मीदवार खड़े करने की कोशिश करने लगे और लोगों में यह खयाल पैदा होगया कि वे उनपर अपना क़ब्ज़ा करना और उन्हें अपने नियन्त्रण में रखना चाहते हैं। प्रजातन्त्रात्मक दृष्टि से वे ऐसा करने के हक़दार थे, लेकिन उनकी यह कोशिश और उनके तरीक़े खुद उनके खिलाफ़ पड़ गये और काँग्रेस के मध्यम-दल उनके विरोधी दल के साथ जा खड़े हुए। इस तरह खुद वही लोग जिनको कि समाजवाद पसन्द आना चाहिए था दूर फेंक दिये गये और विरोधी बना लिये गये। समाजवादी दल नये विचारों के लिए आत्मोसर्ग करनेवाला बनने के बजाय एक सत्तालोलुप और अपने विचारों से सहमत न होनेवालों में विरोध पैदा करनेवाला फ़िर्क़ा या सम्प्रदाय बन गया। बाज़ वक़्त कांग्रेस में पद-प्राप्त करने अथवा अधिकारपूर्ण स्थान पर क़ब्ज़ा करने के लिए समाजवाद की आड़ में सर्वथा व्यक्तिगत और स्थानीय दल खड़े किये गए।

नेताओं के विचार

कांग्रेस के नेताओं ने इन चीज़ों पर सख़्त ना-पसन्दगी जाहिर की। समाजवाद

के पेचीदा उसूलों को उन्होंने पसन्द नहीं किया और यह ख़याल बना बैठे कि समाजवाद और हिंसा का लाज़मी सम्बन्ध है, जोकि कांग्रेस के मूल सिद्धान्त के ही ख़िलाफ़ है। इस सबके अलावा व्यक्तिगत हमलों और आलोचनाओं से भी वे खीझ उठे और कभी-कभी उसी सिक्के में जवाब भी दे बैठते।

यूरप से अपनी वापिसी पर मैंने कटुता और संघर्ष का यह वातावरण पाया। मैं उस समय अपने यहाँ, कुछ यूरोपियन देशों में बनाये जाने वाले जनता के और संयुक्त मोर्चों के-से मोर्चों की कल्पना से भरा हुआ था। यूरप में जहाँकि वर्ग-विग्रह और दूसरी तरह के संघर्ष तेज़ी पर थे, इसके लिए एक सम्मिलित मंच पर यह सहयोग सम्भव हो सका था। हिन्दुस्तान में ये संघर्ष अभी अपनी प्रारम्भिक अवस्था में ही थे और साम्राज्यवाद के विरुद्ध चलनेवाले बड़े संघर्ष के नीचे बिलकुल दब गये थे। सब साम्राज्य-विरोधी शक्तियों के लिए, कांग्रेस के संयुक्त मंच पर सबके साथ मिलकर काम करना, यही प्रत्यक्ष मार्ग था। जबतक राजनीतिक स्वतन्त्रता और सत्ता हासिल नहीं कर ली जाती तबतक समाजवाद लड़ाई के तरीक़े पर असर डालने के सिवा सिर्फ़ एक तात्त्विक विषय रह जाता है। आज़ादी के पहले कोई समाजवाद हो नहीं सकता। यह ठीक था कि उपायों और साधनों के बारे में महत्त्व का मतभेद खड़ा हो सकता था, लेकिन मुझे, ख़ुद को इस बारे में कोई ख़ास परेशानी नहीं थी। मुझे विश्वास था कि काँग्रेस का शान्तिपूर्वक काम करने का तरीक़ा ही सही तरीक़ा था और ऊपरी नीति के तौर पर नहीं, बल्कि ऐसे बुनियादी तौर पर सही तरीक़े के रूप में हमें उसे आगे जारी रखना चाहिए जोकि हमें अपने उद्देश्य तक पहुँचा देगा।

अहिंसा

यूरप और उसके शान्तिवादियों को नज़रों में रखकर सोचनेवाले कुछ समाजवादी और मार्क्सवादी लोग अहिंसा के तरीक़े का मज़ाक उड़ाने की कोशिश करते हैं। मैं यूरप के शान्तिवादियों का समर्थक नहीं हूँ। लगातार एक के बाद दूसरे संघर्ष ने उन्हें न सिर्फ़ बिलकुल प्रभावहीन, बल्कि अनजाने में प्रतिक्रियावादियों और युद्ध के हामियों तक का हथियार साबित कर दिया है। उनका रुख अभीतक कुछ न करने और चुपचाप बैठे रहने का रहा है जिसका परिणाम बुराई और हिंसा के सामने झुकते जाना हुआ है। वे डरते रहे कि विरोध करने से कहीं इनके शान्ति के सिद्धान्त का भंग न हो जाय। राजनीतिक बातों में आत्म-समर्पण का निश्चित नतीजा यह होता है कि आगे चलकर नैतिक बातों में भी झुकना ही पड़ता है।

लेकिन कांग्रेस की अहिंसा इससे बिलकुल उलटी थी, और इसका आधार, राजनीतिक या नैतिक मामलों में, जिन्हें वह बुरा समझती थी उनके सामने सर न झुकाना था। अहिंसा की इस नीति में, जैसाकि दूसरी सब नीतियों में होता है, परिस्थिति के तक़ाज़े के मुताबिक़ समझौता करने की गुंजायश है, लेकिन असल में दूसरी नीतियों की बनिस्बत यह शायद ज्यादा अडिग है। यह शक्तिशाली है, निष्क्रिय नहीं; यह अविरोधी नहीं बल्कि अत्याचार करने की विरोधी है, यद्यपि वह विरोध शान्त होता है। व्यवहार में यह न सिर्फ़ प्रत्यक्ष दिखाई देने वाले परिणाम प्राप्त करने में ही, बल्कि इससे भी कहीं ज्यादा महत्त्व के काम राष्ट्र का नैतिक साहस बढ़ाने और जनता को शान्त, व्यवस्थित और एकसाथ मिलकर काम करने की तालीम देने में आश्चर्यजनक रूप से सफल सिद्ध हुई है।

क़रीब-क़रीब हरेक व्यक्ति ने, समाजवादियों तक ने, इसको राष्ट्रीय नीति के रूप में स्वीकार कर लिया है और यह महसूस कर लिया है कि इसके बदले इस जैसी कोई दूसरी चीज नहीं है। यह सही है कि कुछ ने इसको, इसके फलितार्थों को समझे बिना सहज स्वभाव ही स्वीकार न कर लिया था और कभी-कभी बिलकुल इसके मुताबिक बर्ताव नहीं करते थे। जहाँतक मेरा सम्बन्ध था, मुझे उसके स्वीकार करने में कोई दिक्क़त न थी, यद्यपि मेरे लिए वह धार्मिक विश्वास की चीज़ नहीं थी, न मैं यही कह सकता था कि हर हालतों में वह लागू हो सकती है। हिन्दुस्तान के लिए और हमारे आन्दोलन के लिए वह पूरी तरह लागू हो सकती थी और मेरे लिए इतना ही काफ़ी था।

खाई पाटना

मैंने पुराने नेताओं और समाजवादी-दल के बीच के खाई को पाटने में अपनी शक्ति लगाने का निश्चय किया। कुछ हद तक मैं इस काम के लिए उपयुक्त भी था, क्योंकि मेरा दोनों से ही घनिष्ट सम्बन्ध था। मेरा विश्वास था कि इन दोनों दलों के बिना हिन्दुस्तान का काम नहीं चल सकता और मुझे इसका कोई उचित कारण मालूम नहीं हुआ कि साम्राज्यवाद के ख़िलाफ़ लड़ाई में इन दोनों का पूरा सहयोग क्यों नहीं हो सकता। पुराने नेता तपे हुए आदमी थे, जनता में उनकी प्रतिष्ठा थी, उसपर उनका प्रभाव था और कई बरसों के आन्दोलन के सञ्चालन का उन्हें अनुभव था। किसी भी तरह वे दक्षिणपक्षी या नरम नहीं थे, राजनीतिक दृष्टि से वे कहीं अधिक वाम-पक्षी अर्थात् उग्र थे और माने हुए साम्राज्य विरोधी थे। गांधीजी उनकी पीठ पर थे, काँग्रेस संस्था से बाहर रहकर उनकी सहायता करते थे और निश्चय ही उनकी और देश की शक्ति के स्तम्भ थे। भारतीय रंगमंच पर उनक

प्रभुत्व बरावर बना रहा और बिना उनके किसी वड़े संघर्ष या लड़ाई का ख़याल तक नहीं किया जा सकता था। समाजवादियों का यद्यपि छोटा ही दल था और वे एक अल्प-संख्या की ही हिमायत करते थे, लेकिन एक महत्त्वपूर्ण और वढ़ते हुए समूह के प्रतिनिधि थे और उनका प्रभाव खासकर नवयुवकों में वहुत फैल रहा था। मैं उनके सिद्धान्त और उनके उद्देश्य से सहमत था और मेरे और वहुत से दूसरों के लिए वे भावी के प्रतिनिधि थे।

लखनऊ-अधिवेशन

लखनऊ-काँग्रेस की शुरूआत के पहले हम कार्यसमिति की वैठक में इकट्ठा हुए और यह देखकर प्रसन्नता और उल्लास हुआ कि इस समिति ने कई प्रस्ताव जो मैंने पेश किये और जो काँग्रेस को एक नया ही रंग और उसके दृष्टिकोण को अधिक उग्र वनानेवाले मालूम होते थे, पास कर दिये। इसने मेरी काँग्रेस के विभिन्न दलों को मिलाये रख सकने की क्षमता के मेरे विश्वास को वढ़ा दिया। लेकिन खुद काँग्रेस अधिवेशन ने मेरे इस ख़याल को कमज़ोर कर दिया और मुझे अनुभव हुआ कि मेरे रास्ते में कुछ कठिनाइयाँ तैयार खड़ी हैं। अधिवेशन ने मेरी कुछ महत्त्वपूर्ण सिफ़ारिशों को रद्द कर दिया और पुराने नेताओं का पूरी तरह समर्थन किया। वहाँ मैंने अपने को अल्पमत में पाया और मैं इस चक्कर में पड़ गया कि क्या मुझे अव भी सभापति वना रहना चाहिए। कार्य-समिति के निर्माण ने मुझे और भी ज्यादा परेशान किया, क्योंकि इसमें उन पावन्दियों पर ज़ोर दिया गया जिनके नीचे मुझे काम करना था। सिद्धान्त के अनुसार तो कार्य-समिति को नामज़द करना मेरा काम था, लेकिन मैं काँग्रेस् के वहुमत का उल्लघंन नहीं कर सकता था। मैंने काँग्रेस के सभापतित्व से इस्तीफ़ा दे देने का निश्चय कर लिया और काँग्रेस के खुले अधिवेशन की समाप्ति के समय मैंने जो अन्तिम शव्द कहे थे उनका मतलव यही था कि पिछले कुछ दिनों की शान-शौक़त के वाद में फिर विस्मृति के गर्भ में विलीन होने जा रहा हूँ।

४

लखनऊ-काँग्रेस समाप्त हुई और कार्य-समिति का ऐलान कर दिया गया। भारी मानसिक संघर्ष के वाद मैंने इस्तीफ़ा न देने का निश्चय किया क्योंकि इस्तीफ़ा दे देने का परिणाम भयंकर होता और सारा काँग्रेस-संगठन उससे हिल उठा होता। मैंने अपने-को अपने सामने के काम में लगा दिया और महासमिति (आल इण्डिया काँग्रेस कमेटी) के दफ्तर को वढ़ाने और उसमें कई नये विभाग खोलने की योज·

नायें तैयार कीं। अपने दिमाग़ में ये योजनायें लिये हुए मैं कार्य-समिति की पहली बैठक में गया। उनमें सिद्धान्त या किसी उच्च नीति का कोई प्रश्न नहीं था लेकिन फिर भी मुझे यह देखकर ताज्जुब हुआ कि मेरे कई साथियों ने मेरी तजवीज़ों को शक की नज़र से देखा। यह बात नहीं थी कि उनको उनपर कुछ आपत्ति थी लेकिन वे यह नहीं जानते थे कि ये बातें उन्हें कहाँ ले जायँगी। आख़िर लम्वी और थका देनेवाली बहस के बाद कुछ कमबेश मामूल की तजवीज़ें जिनके मंजूर होने में कुछ मिनटों से ज्यादा नहीं लगने चाहिएँ थे, मंजूर हुईं।

मैंने दौरे शुरू किये और दूसरी जगहों के साथ-साथ वम्बई भी गया। हर जगह मैं लखनऊ में तय हुए कांग्रेस के प्रोग्राम पर वोला और कांग्रेस को मज़बूत बनाने की आवश्यकता पर ज़ोर दिया। अपने भाषणों में मैंने हिन्दुस्तान की ग़रीवी और वेकारी के मसलों पर ज़ोर दिया और कहा कि इनका सही हल सिर्फ़ समाजवाद के ज़रिये ही होसकता है। लेकिन आज़ादी के विना सच्चा समाजवाद हो नहीं सकता और इसलिए हम सबको पहले आज़ादी हासिल करने के लिए अपनी पूरी ताक़त लगा देनी चाहिए। हर जगह अपार जनसमूह ने बड़े उत्साह के साथ मेरी इन बातों का स्वागत किया।

इस्तीफे

शुरू जुलाई १९३६ में कार्य समिति की दूसरी बैठक हुई और जिस उत्साह का मुझे प्रदर्शन हुआ था उससे उत्साहित होकर मैं वहाँ गया। मुझे यह देखकर ताज्जुव हुआ और मैं सहम गया कि मेरे कुछ साथी इससे सहमत नहीं हैं और जो कुछ हो रहा था उससे वे वहुत अधिक आशंकित थे। उन्होंने कार्य-समिति से इस्तीफ़ा दे दिया। (मौलाना अवुलकलाम आज़ाद इस बैठक में हाज़िर न होने वालों में थे) मैं यह देखकर सुन्न रह गया। ऐसा मालूम होता है कि उन्हें प्रचार-कार्य से सख्त चोट पहुँची थी; क्योंकि उनकी राय में एक तरह से वह उनके खिलाफ़ नियमित और लगातार आन्दोलन था और उसका अर्थ था कि उन्हें ऐसा व्यक्ति समझा जाता है जिसका समय वीत चुका है, जो पुराने विचारों के प्रतिनिधि हैं और जो देश की उन्नति में रुकावट डाल रहे हैं। वस्तुतः उनका यह कहना नहीं था कि मेरा इस प्रचार से कोई सम्वन्ध है, लेकिन इस तरह का प्रचार करनेवालों में से कुछ के सिद्धान्तों के साथ मेरी सहानुभूति का अर्थ उसका अप्रत्यक्ष समर्थन समझा गया।

इस सवसे मुझे वड़ा ताज्जुव हुआ। कुछ ग़ैर-ज़िम्मेदार आदमियों के वेवकूफ़ी भरे और आपत्तिजनक भाषण हुए और वक्तव्य निकले थे, लेकिन इस्तीफ़ा देने की

यह कोई माकूल वजह नहीं थी। लम्वे अर्से से चली आनेवाली कटुता और संघर्ष का मेरे साथियों पर जो असर पड़ा था शायद वही इसके पीछे रहा हो, हालाँकि उस कटुता और संघर्ष में तेज़ी से कमी होती जा रही थी। कुछ हदतक यह ख़याल था कि कांग्रेस समाजवादी दल ईमानदारी का व्यवहार नहीं कर रहा है। यद्यपि उसके तीन सदस्य कार्य-समिति में थे फिर भी दल एक तरह से विरोधी का-सा काम करता रहा। लेकिन मैं समझता हूँ सवसे वड़ा कारण उन लोगों का यह ख़याल था कि मेरे भाषण सम्भव है मतदाताओं को चौंका दे और इस तरह आनेवाले आम चुनावों पर उनका उलटा असर पड़े। लेकिन वाद को यह मालूम होगया कि चुनाव जीतने में मैं काफ़ी योग्य था।

गांधीजी को पत्र

गांधीजी के वीच में पड़ने से इस्तीफ़े वापस ले लिये गये, लेकिन मैं वर्धा से हताश-सा लौटा। मैंने सोचा कि मैं इस्तीफ़ा देदूँ और सारा मामला महा-समिति के सामने रख दूँ ताकि आगे के काम के लिए माक़ूल इन्तज़ाम होसके। मैंने इलाहा-वाद से गांधीजी को एक लम्वा पत्र लिखा, जिसके कुछ उद्धरण नीचे देता हूँ।

"जवसे मैंने वर्धा छोड़ा है में अपने शरीर में कमज़ोरी और दिमाग़ में परेशानी महसूस करता हूँ। अवश्य ही कुछ तो इसका कारण सर्दी है, जिसने मेरे गले की तकलीफ़ को वढ़ा दिया है। लेकिन साथ ही कुछ दूसरे भी कारण हैं, जो सीधे मन और आत्मा पर असर करते हैं। अपने यूरप से लौटने के वाद से मैंने देखा है कि कार्यसमिति की वैठकें मुझे वहुत थका देती हैं, और मेरी शक्ति क्षीण कर देती हैं और हरेक नई वैठक के वाद मुझे ऐसा मालूम होता है कि मैं उम्र में कई वर्ष ज्यादा वूढ़ा होगया हूँ। मुझे कुछ ताज्जुव न होगा अगर कार्यसमिति के मेरे दूसरे साथी भी ऐसा ही महसूस करते हों। यह एक अशुभ अनुभव है और किसी भी कार्य की सफलता के रास्ते में वाधक होजाता है।

"जव मैं यूरप से लौटा तव मुझसे कहा गया था कि इस समय देश में गिरावट आ गई है इसलिए हमें धीमी चाल से चलना होगा। लेकिन पिछले चार महीने में मुझे खुद को जो थोड़ा-सा अनुभव हुआ है, उससे यह ख़याल ठीक नहीं मालूम होता। जहाँ-जहाँ मैं गया वहाँ मुझे उभरता हुआ जोश ही दिखाई दिया और जनता का उत्साह देखकर मैं चकित रह गया।.........मामलों को ठीक करने और संकट के टालने में आपने जो कष्ट किया उसके लिए मैं आपका कृतज्ञ हूँ। मुझे तव भी यकीन था और अव भी मेरा विश्वास है कि उस तरह अलग होने की तज़वीज़ का अपने सारे काम पर चुनावों तक पर भयंकर असर होता। और इतने

पर भी इस समय हम कहाँ हैं और हमारे लिए भविष्य के गर्भ में क्या है ?……मैंने अपनी किताब में और उसके बाद भी अपने वर्त्तमान विचारों के बारे में विस्तार से लिखा है। वे विचार आकस्मिक नहीं हैं। वे मेरे अंग हैं, और यद्यपि यह सम्भव है कि भविष्य में उन्हें बदल दूं या उनमें सुधार कर लूँ, लेकिन जबतक मैं उन्हें मानता हूं तबतक मैं उन्हें प्रकट अवश्य करूँगा। मैं व्यापक एकता को ज्यादा महत्त्व देता हूँ इसलिए मैंने उनको अधिक-से-अधिक नम्र तरीक़े पर प्रकट किया है और निश्चित मत के रूप में रखने के बजाय उनके द्वारा विचार जागृत करने की ही भावना अधिक रही है। मुझे अपने इस तरीक़े में और कांग्रेस जो-कुछ कर रही है उसमें कोई विरोध नहीं पाया………।"

चुनाव

इस्तीफ़ा देने और सारा मामला अगले महीने बम्बई में होनेवाली महासमिति (आल इण्डिया कांँग्रेस कमेटी) की बैठक पर छोड़ने के निश्चित इरादे से मैं सिन्ध को रवाना हुआ। वहाँ मुझे स्पेन में बग़ावत हो जाने की खबर मिली और उसका मुझपर बड़ा असर हुआ। मैंने इस बग़ावत को यूरप-व्यापी ही नहीं बल्कि संसार व्यापी युद्ध में बदल जानेवाली चीज़ के रूप में देखा। बड़े-से-बड़े संघर्षों का छिड़ जाना नज़रों के सामने दिखाई देने लगा और हिन्दुस्तान का उनमें क्या हिस्सा होगा यह मसला मेरे लिए बहुत ज़रूरी होगया। मैंनें सोचा ऐसे वक़्त में जबकि हम सबका मिलकर काम करना इतना लाँज़िमी है, क्या मैं इस्तीफ़ा देकर अपनी संस्था को कमज़ोर बनानें और आन्तरिक संकट पैदा करने का कारण बनूँ ? तरह-तरह की आशंकाओं से मेरा दिमाग़ परेशान हो उठा और इस्तीफ़े का खयाल उसी में बह गया।

बम्बई में कार्यसमिति ने चुनाव-घोषणा-पत्र तैयार किया और यह ताज्जुब की बात थी कि बिना किसी लम्बी-चौड़ी बहस के वह पास होगया। हम लोगों में सहयोग का एक नया वातावरण छा गया और मनमुटाव कम हुआ मालूम होता था; जैसा कि एक साथी ने खुशी के साथ कहा, ऐसा लगता था कि मानों फिर वही पुराना समय आ गया।

ज्योंही चुनाव नज़दीक आये, हम सब उसके आन्दोलन में कूद पड़े और उस समय के लिए हमारे आपसी झगड़े ग़ायब होगये। कई महीनों तक मैं हिन्दुस्तान के एक ओर से दूसरी ओर तक घूमा और लाखों आदमियों के चेहरे मेरी नज़रों के सामने से गुज़रे। मैंने अपने इस देश के हज़ारों पहलू देखे जिनमें परस्पर बहुत भिन्नता थी, लेकिन जिनपर भारत को एक करनेवाली छाप थी। मैंने यह समझने

की कोशिश की कि उन करोड़ों आँखों के पीछे क्या चीज़ है जो मेरी ओर टकटकी लगाये हुए थी, क्या उनकी आशायें और आकाँक्षायें हैं और कितनी अगणित उनकी मूक वेदनायें और मुसीबतें हैं। मुझे ऐसी झांकियाँ दिखाई दीं, जिन्होंने मेरी आंखों को रोशन कर दिया और मुझे यह अनुभव करा दिया कि हमारे लाखों करोड़ों लोगों की समस्यायें कितनी अधिक हैं।

नई शक्तियाँ

चुनाव हुए, महासमिति ने कुछ शर्तों के साथ पदग्रहण करने का निश्चय किया, और उसके बाद अस्थायी मन्त्रिमण्डलों का समय आया। कुछ प्रान्तों में काँग्रेस ने पदग्रहण किया, और स्वयं इसके कारण जनता की शक्ति खुल गई और किसान और मज़दूर जाग उठे और आगे क़दम बढ़ाने लगे। नई समस्यायें खड़ी हुईं और आन्तरिक संघर्षों ने, जो अभीतक ज्यादातर सैद्धान्तिक थे नया रूप धारण किया। कोई भी, यहाँतक कि पदग्रहण के विरोधी तक काँग्रेस मंत्रिमण्डलों के लिए संकट खड़ा नहीं करना चाहते थे। लेकिन हड़तालियों और किसान प्रदर्शनकारियों की तरफ़ से उनपर दबाव डालने के लगातार प्रयत्न हुए, जिससे मन्त्रि-मण्डलों को बहुत-कुछ परेशानी हुई। बिहार में किसान आन्दोलन का काँग्रेस संस्था के साथ संघर्ष होगया। दूसरी जगहों पर भी, काँग्रेस मन्त्रि-मण्डलों के क़ायम होने से जो ऊँची आशाएं पैदा हो गई थीं उनके पूरा न होने के कारण असन्तोष पैदा होगया। कुछ सुधारों के ज़ारी किये जाने के बावजूद सरकार का शासन-तन्त्र पुराने तरीक़े पर ही चल रहा था। खासकर मद्रास में तो काँग्रेसी सरकार ने कुछ हद तक पुरानी सरकार के ही खतरनाक तरीक़े पर काम किया।

कुछ हदतक ऐसा होना अनिवार्य था क्योंकि सरकार का पुराना फौलादी ढाँचा वहाँ अब भी बदस्तूर क़ब्ज़ा जमाये हुए है और प्रान्तीय सरकारों के कार्यों पर रुकावटें लगाये हुए हैं। लेकिन काँग्रेस में ऐसे लोगों की तादाद दिन-पर-दिन बढ़ती गई जिनका खयाल था कि मन्त्रि-मण्डल अपने सिद्धान्तों के मुताबिक ज्यादा सफलतापूर्वक काम कर सकते थे, लेकिन वे बहुत अधिक आत्म-सन्तोषी होते जा रहे हैं। मन्त्रि-मण्डलों और प्रान्तीय काँग्रेस कमेटियों के बीच पूरा सहयोग नहीं था जोकि सफल-प्रगति के लिए ज़रूरी था, और नरीमन का मामला और बाटलीवाला की गिरफ्तारी आदि की कई घटनायें ऐसी होगईं जिनसे आन्तरिक संघर्ष को और बल मिल गया। मेरे लिए इन संक्षिप्त लेखों में इन सब मामलों पर चर्चा करना मुश्किल है, उस हालत में मैं लिखता ही चला जाऊँगा और मौजूदा स्थिति पर पहुँचने में बहुत देर लग जायगी। फिर भी यह ज़रूरी है कि इन घटनाओं और

१९३७ की कांग्रेस की आधार भूत बातों को ध्यान में रखना चाहिए और इसलिए बाद के लेख में मैं इनकी चर्चा करूँगा।

गांधीजी क्षुब्ध

लोगों में जो अस्पष्ट लेकिन आम असन्तोष था, अक्तूबर १९३७ की महासमिति की बैठक में उसने कुछ रूप धारण किया और धीमें शब्दों में प्रकाश में आया। रियासत मैसूर में लम्बे अर्से से जारी दमन का भी बहुत विरोध हुआ और एक प्रस्ताव, जिसकी भाषा अच्छी नहीं बनी थी, पास हुआ। ये प्रस्ताव, और खासकर मैसूर वाला, कार्यसमिति के बहुत-से सदस्यों के पसन्द नहीं थे, और गाँधीजी, जोकि उस समय बहुत बीमार थे, इनसे क्षुब्ध हो उठे। कार्यसमिति की एक बैठक में उन्होंने अपने विचार असाधारण रूप से कड़ी भाषा में प्रकट किये और कांग्रेस में विभिन्न दलों के बनावटी सहयोग की निन्दा की। उन्होंने कहा कि इस तरह का सहयोग चल नहीं सकता, और इसलिए संस्था ऊपर से नीचे तक एक-सी होनी चाहिए। उन्होंने कहा कि अगर काँग्रेस में तब्दीली नहीं की गई और इस रवैये को ख़तम नहीं किया गया तो वे अपने-आपको काँग्रेस से बिलकुल हटालेंगे। मैं यह साफ़ नहीं समझ सका कि वे दरअसल क्या कराना चाहते हैं, लेकिन यह साफ़ था कि मैंने जो-कुछ किया वह उन्हें सख्त ना-पसन्द था। मैंने तजवीज़ पेश की कि महा-समिति की बैठक फिर बुलाई जाय क्योंकि संकट सामने ही खड़ा दिखाई देता है। बाद को यह तय पाया कि फिलहाल जिस तरह काम चल रहा है चलता रहे।

'हरिजन' में गाँधीजी ने मैसूर के प्रस्ताव की आलोचना की और महासमिति के लिए उसे अनियमित बताया, जिसका मतलब यह हुआ कि वहाँ मैंने उसकी जो चर्चा होने दी, मेरे उस काम की उन्होंने निन्दा की। मैं इससे आश्चर्य-चकित होगया, क्योंकि मेरा यह विश्वास था और अब भी है कि विधान और क़ानून की रू से गाँधी जी ग़लती पर थे। मैंने इसपर उन्हें और कार्यसमिति के दूसरे सदस्यों को लिखा और प्रेस-वक्तव्य देने का विचार किया, लेकिन बाद को सार्वजनिक वाद-विवाद से बचने के ख़याल से अन्त में ऐसा नहीं किया। लेकिन मेरा यह ख़याल ज्यादा-ज्यादा बढ़ता ही गया कि कार्यकारिणी के एक ज़िम्मेदार सदस्य की हैसियत से मैं अब निभ नहीं सकता। मैंने ऐसा कोई काम न करने का जिससे संकट पैदा हो जाय, और जल्दी ही होनेवाले अगले काँग्रेस अधिवेशन से कार्य समिति से निकल आने का निश्चय किया। इसके अनुसार मैंने गाँधीजी को और अपने कुछ साथियों को इसकी इत्तिला दे दी और सुभाष बाबू को भी, जोकि उस समय यूरप में थे, लिख दिया। (वह उस समय तक बाक़ायदा सभापति नहीं चुने गये थे, लेकिन उनका चुनाव निश्चित था)।

मेरी परेशानी

हरिपुरा में हमें अचानक युक्तप्रान्त और विहार के मन्त्रिमण्डल के संकट ः सामना करना पड़ा और कार्यसमिति में शामिल न होने का मेरा निश्चय ि गया। दूसरा खयाल, जिसका मुझपर असर हुआ, यह था कि मेरे कार्यसमिति शामिल न होने का मतलव शायद यह लिया जायगा कि मैं सुभाष वावू को अप पूरा सहयोग नहीं देना चाहता। अवश्य ही इसका मेरे निश्चय से कोई ताल्लुक़ था, लेकिन मैं यह वात हरेक को समझाते नहीं फिर सकता था। इस वजह से मं कार्यसमिति में शामिल होने का ही निश्चय कर लिया।

लेकिन मैं परेशान था और अप्रैल १९३८ में मैंने गांधीजी को लिखा। अप उस पत्र के कुछ उद्धरण यहां देता हूँ—"जैसाकि आप जानते हैं, पिछले छः महीन में काँग्रेस की राजनीति में घटनाओं ने जिस तरह की सूरतें इख़्तियार की हैं, उन मुझे वड़ा दुःख पहुँचा है। जिन वातों ने मुझे परेशान किया है उनमें 'गाँधी सेव संघ' का जो नया स्वरूप परिवर्त्तन हुआ है वह भी एक है।·········यह देखक दुःख होता है कि गाँधी सेवा संघ भी, जिसेकि दूसरों के सामने एक उदाहरण पे करना चाहिए था और चुनाव जीतने के लिए उत्सुक एक सर्वगत संस्था होने इनकार कर देना चाहिए था, दूसरों के समान नीचे उतर आया है। मैं यह वहु ज़ोर से महसूस करता हूँ कि काँग्रेसी मन्त्रिमण्डल अयोग्यता से काम कर रहे और जितना कुछ वे कर सकते थे उतना कर नहीं रहे हैं। वे अपने आपको वहुत अधिक हद तक पुरानी ही व्यवस्था के अनुकूल वना लेना चाहते हैं और इसक उचित ठहराने के लिए सफ़ाई देने की कोशिश करते हैं। लेकिन, ख़राव होते हुए भी, इस सवको वरदाश्त किया जा सकता है। जो वात इससे भी ज्यादा ख़राव है वह यह है कि हम लोगों के दिलों में से वह अपना ऊँचा स्थान, जो हमने इतनी मिहनत के वाद हासिल किया था, खोते जा रहे हैं। हम लोग मामूली राजनीतिज्ञों की-सी स्थिति में डूवते जा रहे हैं।·········वेशक कुछ कारण तो इसका वह आम अवतरी या गिरावट है जो दुनिया-भर में छाई हुई है और कुछ कारण वह परिवर्तन का है जिसके वीच से हम गुज़र रहे हैं। ताहम यह सव-कुछ हमारी कमज़ोरियाँ और कमियाँ ज़ाहिर करता है और यह दृष्य दुःखपूर्ण है। मैं समझता हूँ काँग्रेस में काफ़ी ऐसे नेकनीयत आदमी हैं जो अगर सही तौर पर काम करें तो स्थिति को सम्हाल सकते हैं। लेकिन उनके दिमाग़ दलवन्दी के झगड़ों और अमुक व्यक्ति अथवा दल को कुचल डालने की इच्छा से भरे हैं। खुलेआम भले आदमियों की वजाय ख़राव आदमियों को तरजीह दी जाती है, क्योंकि ये लोग पार्टी की नीति को पूरी तरह पूरा करने का वादा करते हैं। जव ऐसा होता है तव पतन अवश्यम्भावी है।

अनुपयुक्त

"पिछले कई महीनों से मैं यह महसूस कर रहा हूँ कि जिस तरह की वातें हो रही हैं मैं हिन्दुस्तान में सफलतापूर्वक काम नहीं कर सकता। निस्सन्देह एक आदमी जहांतक हमेशा निभा सकता है मैंने साथ निभाने की कोशिश की है। लेकिन मैंने देखा कि मेरे लिए यहां स्थान नहीं है और मैं यहाँ के लिए अनुपयुक्त हूँ। यह था एक कारण (यद्यपि और दूसरे भी कारण थे) जिससे कि मैंने यूरप जाने का निश्चय किया। मुझे ऐसा लगा कि मैं वहाँ अधिक उपयोगी होऊँगा और किसी भी वक्त में अपने थके और परेशान दिमाग़ को ताज़ा कर सकूँगा।"

इस पत्र में मैंने गांधी सेवा संघ का ज़िक्र किया है। वाद की जांच से मुझे मालूम हुआ कि, जैसाकि मुझे विश्वास दिलाया गया था, दरअसल चोटी के लोगों में कोई नया राजनैतिक परिवर्त्तन नहीं हुआ था। ग़लती स्थानीय क्षेत्रों के कुछ व्यक्तियों की थी, जिन्होंने चुनावों के वारे में गाँधीजी के और संघ के नाम का दुरुपयोग किया।

५

प्रान्तीय स्वराज्य क्योंकि सीमित था इसलिए उसके अमल में लाने में कई ख़तरे थे। एक तो इससे, जैसीकि दरअसल इसकी मंशा थी, प्रान्तीयता बढ़ने की सम्भावना थी और दूसरे हमारी साम्राज्य-विरोधी लड़ाई संकीर्ण धाराओं में वदल जाती थी। इन कारणों से आन्तरिक झगड़े—साम्प्रदायिक, सामाजिक और संस्था-सम्वन्धी—वढ़ गये। ग़रीवी, वेकारी, ज़मीन और उद्योग-सम्बन्धी समस्याएँ हमसे अपने हल किये जाने का तक़ाज़ा कर रही थीं, लेकिन मौजूदा विधान और आर्थिक प्रणाली के अन्तर्गत उनका हल हो नहीं सकता था। हमारे लिए एक ही रास्ता खुला था, वह यह कि इन समस्याओं के हल करने में हम जितनी दूर जा सकें जायँ—लेकिन वह दूरी ज्यादा लम्वी न थी—और कुछ हद तक आम जनता का वोझ हलका करें और उसके साथ ही उस विधान और ढांचे को वदलने की अपनी तैयारी करें। वह वक्त तो आयगा ही जवकि मौजूदा विधान से प्राप्त हो सकनेवाली सव सुविधायें समाप्त हो जायँगी और हमें विधान के प्रति मूक आत्म-समर्पण अथवा उसके खिलाफ़ चुनौती, इन दो रास्तों में से एक चुनना पड़ेगा। दोनों के ही साथ संकट लगा हुआ है। क्योंकि अगर हम झुके तो वड़ी समस्याएँ हल न निकलने या रास्ता न पाने पर हमें दवा लेंगी। अगर हमने आत्म-समर्पण नहीं किया, और ऐसा करने का हमारा कोई इरादा भी न हुआ, तो ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ संघर्ष अनिवार्य है, वशर्त्ते कि वह स्वयं न झुक जाय जिसके किये जाने की कोई सम्भावना

नहीं। लेकिन एक दूसरी ही सम्भावना हो सकती है वह यह कि अगर हमारा राष्ट्रीय आन्दोलन काफ़ी शक्तिशाली होजाय तो संकटपूर्ण स्थिति को देखते हुए तो विना किसी वड़ी लड़ाई के ही हम अपना उद्देश्य प्राप्त करलें।

सामञ्जस्य

इसमें शक नहीं कि हमारी ताक़त वहुत वढ़ गई है और हमारे आन्तरिक झगड़ों और कभी-कभी झूठी सदस्यता के वावजूद कांग्रेस आज अपने पहले किसी भी ज़माने से कहीं ज्यादा शक्तिशाली है। जनता राजनैतिक दृष्टि से पहले की वनिस्वत कहीं ज्यादा जागृत है। फिर भी अगर इस शक्ति को संगठित करके ठीक दिशा में प्रवाहित न किया तो वही हमारे मार्ग में विरोधिनी हो जायगी। फिलहाल मैं साम्प्रदायिक समस्या पर विचार करना नहीं चाहता, यद्यपि मैं इसके प्रत्यक्ष महत्त्व को और उसका हमारी लड़ाई पर कितना असर पड़ता है इस वात को जानता हूँ।

हमें, अपनी संस्था—कांग्रेस और प्रान्तीय सरकार, दोनों में ही राजनैतिक संघर्ष का और जनता की सामाजिक और आर्थिक समस्याओं का सामञ्जस्य करना था। दोनों को पूरा न कर सकने का मतलव होता कमज़ोरी और वढ़ता हुआ पक्षाघात। एक तरफ़ तो हमें अपनी लड़ाई को मुख्यतया राजनैतिक और साम्राज्य-विरोधी वनाये रखना था; दूसरी तरफ़, हमें जहाँतक सम्भव हो सकता था हमें सामाजिक प्रगति की ओर जाना था। इन सवसे ज्यादा ज़रूरी यह था कि कांग्रेस को अनुशासन में वंधी हुई एक सुसंगठित संस्था वनाकर रक्खा जाय, जिसका लड़ाई के सव पहलुओं पर अच्छी तरह नियन्त्रण हो। अगर कांग्रेस कमजोर हो जाती है तो हमारे लिए कोई सफल लड़ाई लड़ने की सम्भावना नहीं रह जाती।

मन्त्रिमण्डल

जैसाकि मैं पहले संकेत कर चुका हूँ मैं कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों की प्रगति से असन्तुष्ट था। यह सच है कि उन्होंने अच्छा काम किया है, उनकी कारगुज़ारियों का हिसाव प्रभावोत्पादक था, मिनिस्टरों को वहुत कड़ी मिहनत करनी पड़ती थी, और तिसपर भी उन्हें तरह-तरह के आक्षेप और आलोचनायें सहनी पड़ती थीं, जिनका आधार अक्सर ग़लतफ़हमी हुआ करता था। उनका काम गुनाह वेलज्जत था। फिर भी मैं यह महसूस करता था कि प्रगति की रफ़्तार धीमी है और उनका दृष्टिकोण वह नहीं है जो कि होना चाहिए। न मैं उस ढंग से ही सन्तुष्ट था, जिससे कि हमारे कांग्रेसी नेता हमारे सामने उपस्थित होनेवाली समस्याओं को हल करते

की कोशिश करते थे। मतभेद का या किस बात पर कितना जोर दिया जाय इसका इतना प्रश्न नहीं था, हालांकि कभी-कभी मतभेद भी हो जाता था। जिस चीज़ नें मुझे चौंकाया वह थी ऐसे कुछ महत्त्वपूर्ण तत्त्वों को, जो बहुत आगे बढ़े हुए दिखाई देते थे अथवा प्रचलित दृष्टिकोण में ठीक बैठते हुए मालूम नहीं होते थे, दबा देने की प्रवृत्ति। यह एक खतरनाक प्रवृत्ति थी यद्यपि यह बहुत आगे नहीं बढ़ी थी, और इसने मुझे जर्मन समाजवादी-जनतन्त्रवादियों और ब्रिटिश मज़दूर दल के भविष्य की याद दिला दी। यह सच है कि कांग्रेस में कुछ तथाकथित गरमदल वालों ने ज़िम्मेदारी से काम नहीं किया और जानबूझकर इन प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन दिया जिनसे आन्तरिक संघर्ष की वृद्धि और काँग्रेस की शक्ति कमज़ोर होती थी। उनके संयुक्त मोर्चे के भाव का मतलब था कांग्रेस का पूरा संरक्षण पाना, और उसकी प्रतिष्ठा का लाभ उठाना, और इसके बावजूद बाहर से उसकी आलोचना और उसपर आक्रमण करना। लाल झण्डा जोकि अपने क्षेत्र में पूरी तरह उपयुक्त था, अक्सर राष्ट्रीय झण्डे का चुनौती-स्वरूप होगया। किसान-सभा अक्सर स्थानीय कांग्रेस कमेटी के स्थायी रूप से विरोध का काम करती थी, और कभी-कभी ऐसे प्रदर्शनों का भी आयोजन किया जाता था जिनसे संघर्ष और उत्तेजना ही पैदा हो सकती थी। यह बात ज्यादातर निम्नश्रेणियों में ही हुई, लेकिन किसान सभाओं के नेता भी आश्चर्यजनक रूप में ग़ैर ज़िम्मेदार लोग थे। गांवों में सब तरह के अवाञ्छनीय व्यक्ति जिन्हें स्थानीय कांग्रेस कमेटी में स्थान नहीं मिल पाता था या जो किसी और कारण से असन्तुष्ट होते थे स्थानीय किसान सभा में शरण पाजाते थे। कभी-कभी राजनैतिक दृष्टि से प्रतिगामी लोग भी कांग्रेस को कमज़ोर बनाने के लिए किसान सभाओं का उपयोग कर लेते थे।

इन सब बातों से कांग्रेस में छोटे-मोटे संघर्ष हुए और इससे भी ज्यादा ख़राबी यह हुई कि उसमें अनुशासन-हीनता की भावना बढ़ने लगी। अगर इससे संगठित और अनुशासित वामपक्ष की वृद्धि हुई होती तो यह अच्छी प्रगति का चिन्ह होता, भले ही उससे कोई सहमत होता या नहीं। वास्तव में यह जनता में अच्छी जागृति होने का द्योतक था, जिससे अपने को गरमदलीय या वामपक्षी कहलाने वाले पारस्परिक विरोधी विभिन्न दल अनुचित लाभ उठा रहे थे। काफ़ी अरसे तक वामपक्षी दलों की आपसी लड़ाई ने ही उनकी ज्यादातर शक्ति लेली।

अव्यवस्थित शक्तियाँ

गांधीजी की इन सैद्धान्तिक संघर्षों में कोई दिलचस्पी नहीं थी, लेकिन परिस्थिति को ताड़ने की अपनी असाधारण कुशलता के कारण उन्होंने यह अनुभव

कर लिया कि कांग्रेस में अनुशासन-हीनता बड़ी तेज़ी से बढ़ रही है और अव्यवस्थित शक्तियों को खुला छोड़ दिया गया है । वह ब्रिटिश साम्राज्यवाद से एक बड़ी टक्कर लेने के बारे में अधिकाधिक सोच रहे थे, और अनुशासन-हीनता उसकी भूमिका नहीं होसकती थी । मैं खुद इस स्थिति से दुःखी था । इससे मुझे चीनी क्रान्ति की कुछ दुःखद स्थितियों की याद हो आई और मैं नहीं चाहता था कि भारत भी उस उच्छृंखल प्रक्रिया में से गुज़रे

१९३७ का नरीमान-प्रकरण १९३८ का खरे-काण्ड इस अनुशासन-हीनता की भावना के ही चिन्ह थे । इन दोनों बातों के लिए सरदार वल्लभभाई को ही दोषी ठहराया जाता था । यह उनके साथ परले सिरे की बेइन्साफ़ी थी क्योंकि कार्य समिति के दूसरे सभी सदस्य भी इनके लिए पूरी तरह ज़िम्मेदार थे । श्री नरीमान के सम्बन्ध में जो-कुछ भी कार्रवाई की गई, कांग्रेस के सभापति की हैसियत से उनके हरेक के साथ मेरा निकट सम्बन्ध था । इसी तरह डा० खरे के सम्बन्ध में जो फ़ैसला हुआ उसके लिए राष्ट्रपति बोस ज़िम्मेदार थे ।

सत्तावाद

मैं समझता हूँ कांग्रेस में सत्तावाद की कुछ प्रवृत्ति रही है । यह प्रवृत्ति कम की जा सकती थी, लेकिन जबकि हमारे यहाँ अनुशासन इतना जरूरी था और बिना उसके हमारी इतनी बड़ी संस्था के टुकड़े-टुकड़े होजाने का खतरा था, कुछ हदतक वह अनिवार्य थी । लोगों को जिस बात पर ऐतराज़ था सम्भवतः वह कीगई कार्रवाइयों पर उतना नहीं था जितना कि उनके किये जाने के ढंग पर । लेकिन हर हालत में श्री नरीमान और डा० खरे के साथ जो-कुछ किया गया उसको लेकर कांग्रेस में फ़ासिज्म की बात करना महज़ सनकीपन और बेहूदगी थी । डा० खरे ने जो-कुछ किया वह राजनीतिक दृष्टि से और कांग्रेस के दृष्टिकोण से भी अक्षम्य था उन्होंने कार्यसमिति की पीठ पीछे और उसके शुरू होने के कुछ ही समय पहले इस इरादे से गवर्नर के साथ साज़िश की कि जब कार्यसमिति की बैठक हो तो वह अपने सामने पहले से ही सब बातें तय हुई पावें । अगर उस वक़्त उस चीज़ को चलने दिया जाता तो कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों पर से सारे नियन्त्रण का खातमा होजाता और मिनिस्टर लोग अपने आप में खुद ही क़ानून बन जाते ।

श्री नरीमान ने खुद ही आफ़त मोल ली थी । ऐसा मालूम होता है वे अपने को पार्टी का नेता नियुक्त किया जाना अपना जन्मसिद्ध अधिकार समझते थे और जब यह बात नहीं हुई तो उन्होंने एक आन्दोलन खड़ा कर दिया जो कई महीने तक जारी रहा । इस आन्दोलन ने मुझे आश्चर्य-चकित कर दिया और हैरत में

डाल दिया। मैं श्री नरीमान को तबसे काफ़ी निकट रूप से जानता था जबकि अपनी छोटी उमर में ही वह कांग्रेस में शरीक हुए थे। मैंने उन्हें शान्ति के समय और संघर्ष-काल दोनों में ही काम करते देखा है और उनके गुणों और अवगुणों के बारे में अपनी कुछ राय बना चुका था। अगर मैं इस बात के लिए मातदाता होता तो मैंने उन्हें नेता बनाये जाने के लिए अपना मत न दिया होता क्योंकि मैं नहीं समझता कि इस जिम्मेदारी को वे अच्छी तरह निभा सकते थे। बाद की घटनाओं ने मेरी इस राय को और भी मज़बूत कर दिया है और श्री नरीमान ने ज़िम्मेदारी के जिस अभाव का परिचय दिया है उसने मुझे आश्चर्य चकित कर दिया है।

लेकिन कुछ भी हो, अगर वह अधिक योग्य और अधिक उपयुक्त व्यक्ति हैं तो भी उन्होंने और उनके समर्थकों ने जो आन्दोलन चलाया उसकी सफ़ाई दी नहीं जा सकती। इसमें सबसे ज्यादा दुःखद बात यह हुई कि इस बात को साम्प्रदायिक रंग दे दिया गया। ठीक इसी तरह डा० खरे के मामले में कांग्रेस के ख़िलाफ़ महाराष्ट्रीयपन की भावना को भड़काने का प्रयत्न किया गया।

प्रजातन्त्र

नरीमान और खरे के प्रकरणों में प्रजातन्त्र का गला घोंटने की बात बहुत कही गई है। मैं समझता हूँ जो ऐसा कहते हैं उन्होंने या तो असलियत को जानने की तकलीफ नहीं की है या तो हमारे प्रजातन्त्र-सम्बन्धी विचारों में बहुत अन्तर है। नाक-भों चढ़ाना और ताने मारना तो बड़ा आसान है। और आज न सिर्फ़ कांग्रेस में ही बल्कि उन साधारण लोगों में भी जो करते-धरते तो कुछ नहीं और दूर से ही उपदेश बघारते हैं, यह एक फैशन या रिवाज-सा हो गया है। मैं समझता हूँ कि अगर कार्यसमिति इन दोनों ही मामलों में स्पष्ट कार्रवाई न करती तो अपने कर्त्तव्य से बिल्कुल च्युत होती। सिर्फ़ जोर-ज़ोर से और लगातार चिल्लाने का ही अर्थ प्रजातन्त्र नहीं है, यद्यपि कभी-कभी उसका भी महत्त्व होता है। स्वतन्त्रता तथा प्रजातन्त्र में उत्तरदायित्व, आचरण के कुछ आदर्श और आत्मानुशासन की आवश्यकता होती है। हमारी लड़ाई में खासकर जिस ढंग की लड़ाई हम लड़ रहे हैं, इन सब गुणों की आवश्यकता है और वह हममें काफ़ी मात्रा में नहीं है तो हमें समझ रखना चाहिए कि हम असफलता की जोखिम उठा रहे हैं।

वामपक्ष

वामपक्षी, अगर शब्द का सही अर्थ में प्रयोग किया जाय तो, कुछ सिद्धान्तों और नीतियों के लिए खड़े हैं। स्वभावतः वे अपनी तरफ़ सब तरह के व्यक्तियों

को आकृष्ट करते हैं—वलिदान की भावना से भरे हुए सर्वोत्तम ढंग के व्यक्तियों को भी और बौद्धिक तथा नैतिक दृष्टि से अयोग्य व्यक्तियों को भी। अगर वे सावधानी नहीं रक्खेंगे तो उनमें अयोग्य व्यक्तियों की भरमार हो जायगी और वे अपनी वह नेकनामी खो बैठेंगे जो उनकी होनी चाहिए। अव्यस्था, वे सिर-पैर के विचार अथवा ग़ैर ज़िम्मेदार कार्यवाइयों से उन्हें सफलता नहीं मिलेगी। भारत के विद्यार्थी-वर्ग को नूतन विचारों, स्पष्ट निर्णय और व्यवस्थित कर्म का पोषण-स्थल होना चाहिए। दुःख है कि अक्सर उनमें इन गुणों का अभाव दिखाई देता है।

ट्रेड्स डिस्प्यूट्स एक्ट

एक बात और है जिसका मैं ज़िकर कर देना चाहता हूँ गोकि इस विवरण में उसकी चर्चा बाद में आती है। वह है वम्बई का 'ट्रेड्स डिस्प्यूट्स एक्ट'। मुझे अत्यन्त खेद है कि जिस समय इस एक्ट पर विचार हुआ और यह पास हुआ मैं भारत से वाहर था। अगर मैं यहाँ होता तो सम्भव था कि मैं इसमें कुछ परिवर्तन करवा लेता। कुल मिलाकर यह क़ानून निश्चय ही अच्छा है, लेकिन मेरे ख़याल के मुताबिक़ इसमें कुछ ज़बर्दस्त ख़राबियाँ हैं जो मजदूरों को नुक़सान पहुँचानेवाली हैं और जो उसकी सारी विशिष्टता या ख़ूबी को ही मिटा देती हैं। जिस ढंग से यह पास हुआ वह भी दुःखपूर्ण था। दूसरी तरफ़ यह भी उतने ही दुःख की बात थी कि मजदूरों के प्रतिनिधियों ने कांग्रेस के माने हुए विरोधियों के साथ सहयोग किया और स्थिति का, कांग्रेस को हानि पहुँचाने के लिए दुरुपयोग किया। अगर कोई दूसरा रवैया इख़्तियार किया जाता और दूसरे ढंग से काम किया जाता तो सम्भव है उसका नतीजा कहीं ज्यादा बेहतर होता।

कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने कुछ निश्चित और ठोस सफलतायें प्राप्त की हैं; कुछ वातों में असफल भी हुए हैं। उनकी एक सफलता, जिससे बहुत आशाएँ हैं सार्वजनिक शिक्षा-सम्बन्धी उनका नया तरीक़ा है। साक्षरता आन्दोलन अच्छा साबित हुआ है। इससे भी ज्यादा महत्त्व की बात प्रारम्भिक शिक्षा की वह नई योजना है जिसका आधार ज़ाकिर हुसैन कमेटी की रिपोर्ट है। मैं उससे बहुत प्रभावित हुआ हूँ और मैं समझता हूँ कि हमने अपनी नई पीढ़ी की शिक्षा के लिए सही प्रणाली पाली है।

६

पिछले साल मेरी यूरप-यात्रा का अन्तर्राष्ट्रीय जगत् के तीव्र संघर्षों के समय का मेल होगया। स्वभावतः ही मैंने अपने को उसके अनुकूल बना लिया और मैं

सीधा बार्सिलोना जा पहुँचा, जिसे कि सर्वेण्टीज़ 'संसार के सुन्दर नगरों का मुकुट' कहते हैं। आह, वही मुकुट आज चूर-चूर किया जानेवाला है और स्वतन्त्रता का वह पुरातन स्थान जो फर्डीनेण्ड और इसावेला के ज़माने तक में आज़ादी के लिए जूझता रहा अब दुश्मनों के हाथों में जानेवाला है! लेकिन जिस समय मैं इस सुन्दर नगर में पहुँचा, अभी भी वह मानव की इस दुर्दमनीय भावना का यह निवास-स्थान था जो हारना जानती ही नहीं और जो आज़ादी के लिए मौत और तबाही को कुछ भी नहीं गिनती। रात को मैंने आकाश से बम गिरते हुए और जनता पर मृत्यु और ध्वंसता बरसते हुए देखा। सड़कों और गलियों में भूखों मरते हुए लोगों के झुण्ड देखे, शरणागतों की दुर्दशा देखी; मैंने मोर्चे पर की सेनायें देखीं और अन्तर्राष्ट्रीय सेना के उन नौजवानों को देखा; जिनमें के इतने नौजवान स्पेन की उस भूमि में सदा के लिए चिर-विश्राम कर रहे हैं। स्पेन के दुःखान्तक दृष्य से भरा हुआ मैं वापस लौटा—उस स्पेन के जिसका गला दुश्मनों के हाथों उतना नहीं जितना उन लोगों के हाथों घोटा जा रहा है जो अपने को प्रजातन्त्र का मित्र कहते हैं।

बाद को मैं चेकोस्लोवाकिया गया और एक दूसरा दुःखान्तक दृष्य देखा, एक और दूसरे विश्वासघात का पट अपनी आँखों के सामने खुलते देखा। इन सब घटनाओं का मुझपर ज़बर्दस्त असर पड़ा और मैंने अपने मन में अपनी आज़ादी की लड़ाई की इनके साथ तुलना करके देखने की कोशिश की। इस तेज़ी से बदलने वाले नाटक में संघ-शासन—फेडरेशन और भारत की बहुत-सी छोटी-मोटी समस्याएं हक़ीक़त में ग़ायब-सी होती दिखाई देने लगीं। ज्यादा बड़ी और महत्त्व की चीज़ें आगे आ रही थीं और वही समय था जबकि भारत भी उन्हींको सामने रखकर विचार करता।

मैं व्यक्तिगत हैसियत से यूरप गया था लेकिन स्वभावतः ही मैं कुछ प्रातिनिधिक हैसियत रखता था। मैं अपने सार्वजनिक और ख़ानगी भाषणों में इस चीज़ को भूला नहीं सकता था और इसलिए मैं इस बात में सतर्क था कि कोई बात ऐसी न कहूँ या करूँ जो भारत के मेरे सहयोगियों को उलझन या कठिनाई में डाल दे। इसलिए मैंने इस बात की सावधानी रक्खी कि अपनी सार्वजनिक और ख़ानगी सब तरह की राजनीतिक कार्रवाइयों की पूरी और विस्तृत रिपोर्ट भेजता रहा; मैं यह दर्याफ्त करता रहा कि मैंने जो रास्ता इख़्तियार किया है वह ठीक है या नहीं, मैंने पूरी हिदायतों के लिए लिखा और जवाब के लिए कुछ सवाल भी लिख भेजे। मैंने ऐसी कई रिपोर्टें भेजीं, और इनमें से हरेक काँग्रेस के सभापति के पास, कार्यसमिति के सदस्यों के लिए उसके प्रधान-मन्त्री के पास और गांधीजी

के पास पहुँची। मेरा यह दुर्भाग्य था कि सभापति ने इनकी पहुँच की स्वीकृति तक नहीं भेजी और फलतः मुझे उनकी तरफ़ से कोई हिदायत नहीं मिली। प्रधान-मन्त्री ने मुझे इत्तिला दी कि कार्यसमिति के सदस्यों ने आमतौर पर मेरे रवैये को पसन्द किया है। गाँधीजी ने भी अपनी पसन्दगी ज़ाहिर की।

यह ज़ाहिर था कि किसी वहस-मुवाहसे या वातचीत में कांग्रेस के संक्षिप्त प्रस्ताव की भाषा में ही वोलना काफ़ी नहीं होता; यह ज़रूर है कि वहस का आधार उसी पर होना चाहिए। सव तरह की सम्भावनाओं की जांच और कांग्रेस के निर्णय की छाया में सव तरह की प्रगतियों पर विचार करना होता है। किसी विषय से तफ़सीलवार विचार के लिए महज़ आन्दोलनकारी रुख़ काफ़ी नहीं होता। यही वह वजह थी कि जिससे मैं हिन्दुस्तान के कांग्रेसी नेताओं से पूरी हिदायतें चाहता था। मेरा खुद का आमरुख़ यह था कि संघ-शासन—फेडरेशन का सारा सवाल ही अव पुराना अथवा समय से पीछे पड़ गया है और यही वह समय है जबकि राष्ट्रीय पंचायत (कांस्टिटचूएण्ट असेम्वली) द्वारा वनाये गये विधान के ज़रिये भारतीय समस्या का हल किया जाय।

मुझे मालूम हुआ कि इंग्लैण्ड में पर्दे की ओट में जनता पर यह असर डालने की कोशिश की जा रही है कि संघशासन—फेडरेशन—के वारे में जो-कुछ भी मैंने कहा वह कांग्रेस अथवा गांधीजी के मत को ज़ाहिर नहीं करता, और गांधीजी ही वह व्यक्ति हैं जोकि इसका आख़िरी फैसला कर सकते हैं। उसके वारे में मैंने कार्य-समिति को और साथ ही गांधीजी को लिखा। गांधीजी ने इसके जवाव में मुझे एक तार भेजा। जिसमें उन्होंने मैंने जो-कुछ कहा उससे अपनी सहमति प्रकट की, यह वात दूसरी है कि उनकी भाषा कुछ दूसरी हो। उसी समय उन्होंने इस सम्बन्ध में 'हरिजन' में भी एक लेख लिखा।

अन्तर्राष्ट्रीय संकट और युद्ध की सम्भावना ने भी हमारे लिए महत्त्व की समस्याएं खड़ी कर दीं और मैं हिन्दुस्तान के अपने सहयोगियों से उनके वारे में हिदायतें चाहता था। काँग्रेस के सभापति की तरफ़ से मुझे किसी भी तरह की हिदायत नहीं मिली और दूसरे लोगों से जो मिलीं वह वहुत कम थीं। इससे और कई दूसरे संकेतों से मैंने समझा कि मैंने जो अन्तर्राष्ट्रीय नीति इख़्तियार की है, काँग्रेस सभापति उसे क़तई पसन्द नहीं करते।

यूरप के संघर्ष और तेज़ी से होनेवाली वहाँ की उथल-पुथलों को देखते हुए, मैं समझता हूँ हममें से अधिकांश के लिए यह सोचना लाज़मी हो गया था कि आगे उनका राजनीतिक धर्म क्या होना चाहिए। सम्भवतः संघर्ष और तनाव का यह ख़याल हिन्दुस्तान में इतना स्पष्ट नहीं था और घटनाओं ने हमें अपने पहले दावों

पर फिर नये सिरे से विचार करने को मजबूर नहीं किया। भारत के हमारे समाजवादी मित्रों ने बदलती हुई हालतों के मुताबिक़ अपने में उचित परिवर्त्तन नहीं किया। घटनाओं से विवश किये जाने पर यूरप के कम्यूनिस्ट—साम्यवादी—बदल सकते हैं, लेकिन हिन्दुस्तान के नहीं।

सोवियट यूनियन में घटनाएँ जिस तरह का रुख़ पकड़ती जा रही थीं; वहाँ जो मुक़दमे चल रहे थे और लगातार बहुसंख्यक कम्यूनिस्टों की सफ़ाई हो रही थी मैं उससे बहुत विचलित हो गया था। मेरा ख़याल है कि मुक़दमे आमतौर पर नेकनीयती से चलाये गये थे और शासन के ख़िलाफ़ निश्चित रूप से षड़यन्त्र किये गये थे और जानबूझकर आर्थिक और राजनीतिक व्यवस्था को नष्ट करने की व्यापक कोशिशें जारी थीं। इतने पर भी वहाँ जो-कुछ भी हो रहा था मैं उसके औचित्य को स्वीकार न कर सका और यह मुझे शासन में किसी ख़राबी का चिन्ह मालूम हुआ, जिसके कारण कि निरन्तर हिंसा और दमन के प्रयोग की आवश्यकता बनी रहती थी। फिर भी रूसी अर्थव्यवस्था में जो प्रगति हुई थी, जनता का दर्जा जितना ऊँचा उठता जा रहा था, सांस्कृतिक विषयों में हुई भारी प्रगति और वहां की ऐसी ही बहुत-सी दूसरी बातें मुझे बराबर प्रभावित करती रहीं। मैं सोवियट यूनीयन जाने के लिए उत्सुक था, लेकिन बदक़िस्मती से मेरी लड़की की बीमारी ने मुझे वहाँ जाने से रोक दिया।

रूस की आन्तरिक घटनाओं के बारे में मेरे कुछ भी सन्देह रहे हों, मेरे ख़याल उसकी वैदेशिक नीति के बारे में बिलकुल साफ़ थे। वह निरन्तर शान्ति और सुलह की ओर इंग्लैण्ड और फ़्रांस की नीति के विपरीत अपनी अन्तर्राष्ट्रीय ज़िम्मेदारियों को पूरा करने और विदेशों के प्रजातन्त्रों के समर्थन की हामी रही है। सोवियट यूनियन यूरप और एशिया में फ़ासिज्म के ख़िलाफ़ एक ज़बर्दस्त गढ़ के रूप में मौजूद है। सोवियट यूनियन के बिना आज यूरप का भाग्य क्या हुआ होता ? फासिस्ट प्रतिक्रियावादी हर जगह विजयी हो गए होते और प्रजातन्त्र और आज़ादी भूतकाल का स्वप्न हो गई होती।

स्पेन और चेकोस्लोवाकिया में और सारे सितम्बर[1] (१९३८) के संघर्ष में कम्यूनिस्ट पार्टी ही मुझे बिलकुल ठीक और सीधा रास्ता लेती हुई दिखाई दी। परिस्थिति का उनका विश्लेषण क़रीब-क़रीब हमेशा ही ठीक निकला और जबकि बहुत-से प्रगतिशील दलों की नाड़ियाँ ढीली हो गईं थीं कम्यूनिस्ट आमतौर पर

१. सितम्बर १९३८ में जर्मनी के भाग्यविधाता हर हिटलर ने फ्रांस और इंग्लैण्ड की अनुमति से चेकोस्लोवाकिया का सुडेटनलैण्ड प्रान्त जर्मनी में मिला लिया था।—अनु०

सावित क़दम रहे और काम करते रहे। ब्रिटिश मजदूर दल के विपरीत, जिसने नि बदलती रहने वाली ज़माने की रफ्तार को समझने में आश्चर्यजनक अयोग्यता सिद्ध की, वे घटनाओं से सबक़ सीखने और उसके अनुसार अपनी नीति निर्धारित करने की क्षमता रखते थे।

यूरप की घटनाओं,—फ़ासिज्म की वृद्धि, स्पेन का गृहयुद्ध और सबसे अधिक इंग्लैण्ड और फ्रांस की नामधारी प्रजातन्त्री सरकारों द्वारा जान-बूझकर नाज़ी और फ़ासिस्ट सरकारों को दिये गये प्रोत्साहन का मेरे दिल पर यह असर पड़ा कि सत्ता-धारी वर्गों की सबसे बड़ी ख्वाहिश यही रहती है कि उनके स्थापित हित सुरक्षित रहें, जब राष्ट्रीयता का अर्थ होता है उनके हितों की रक्षा करना तब वे राष्ट्रीय और देशभक्त बन जाते हैं, लेकिन अगर उनके हितों पर आँच आती हो तो उनकी नज़रों में राष्ट्रीयता अथवा देशभक्ति का कोई मूल्य न रहेगा। ब्रिटेन और फ्रांस के शासक वर्ग सोवियट रूस के साथ मिल कर प्रजातन्त्र की रक्षा करने के बजाय अपने साम्राज्यों की सुरक्षता तक को खतरे में डाल देने के लिए तैयार हैं, क्योंकि उन्हें डर है कि रूस के साथ सहयोग करने से कहीं ऐसी शक्तियां खड़ी न हो जायें जो उनके विशिष्ट अधिकारों की जड़ खोद डालें। प्रजातन्त्र का उनके लिए कोई अर्थ नहीं है, न आज़ादी का ही कोई मतलब, गोकि वे इनकी बड़ी लम्बी-लम्बी डींगें हांकते हैं; उनका मुख्य काम अपने स्थापित हित और विशिष्ट अधिकारों की रक्षा करना होता है। इस नीति से चलने पर भी अगर किसी तरह इनको खो बैठते हैं तो यह उनका दुर्भाग्य होगा।

मार्क्सवादी फ़िलासफी अथवा तत्त्वज्ञान व्यापक अर्थों में मुझे बहुत पसन्द है और इससे मुझे इतिहास की प्रक्रिया समझने में मदद मिलती है। मैं कट्टर मार्क्सवादी होने से बहुत दूर हूँ, न कोई और दूसरी कट्टरता ही मुझे पसन्द है। लेकिन मेरा यह विश्वास होगया है कि इंग्लैण्ड या और किसी दूसरी जगह लिब-रलों का पुराना तरीका अब उपयुक्त या जायज नहीं रहा। 'व्यक्तिगत कार्य-स्वातन्त्र्य में अ-हस्तक्षेप' का सिद्धान्त अब मर चुका है और अगर हम इस विषय में काफ़ी तेज़ी से और भारी परिवर्तन नहीं करते तो हम चाहे इंग्लैण्ड में हों चाहे हिन्दुस्तान में, विनाश हमारी प्रतीक्षा में खड़ा है। आज सामाजिक और आर्थिक न्याय की स्थापना के लिए समाज का संगठन होगा। फासिस्ट आधार पर भी यह संगठन सम्भव है, लेकिन इसमें न्याय अथवा समानता नहीं होगी और इसलिए स्वभावतः ही अनुपयुक्त है। इसके सिवा दूसरा तरीक़ा एक ही है और वह है समाजवादी तरीक़ा।

बिना समानता के स्वतन्त्रता और प्रजासत्ता का कोई अर्थ नहीं है और सम

नता तबतक स्थापित नहीं हो सकती जबतक कि उत्पत्ति के प्रमुख साधन व्यक्तिगत सम्पत्ति बने हुए हैं, इस तरह उत्पत्ति के इन साधनों का व्यक्तिगत स्वामित्व वास्तविक प्रजातन्त्र के मार्ग में बाधक है। लोकमत के निर्माण में बहुत-सी बातें काम करती हैं लेकिन उन सबमें महत्त्वपूर्ण और प्रमुख सम्पत्ति है, जिससे अन्त में सारी संस्थायें और हमारे सामाजिक सूत्र चलते हैं। जो लोग वर्त्तमान सम्पत्ति-व्यवस्था से लाभ में हैं, वे एक वर्ग के रूप में स्वेच्छा से ऐसे परिवर्त्तन से सहमत नहीं होंगे जिससे उनकी शक्ति और अधिकारों की हानि होने की सम्भावना हो। हम एक ऐसी मञ्ज़िल तक पहुँच गये हैं जिसमें वर्त्तमान अर्थ-व्यवस्था और उत्पत्ति के साधनों में विरोध अवश्यम्भावी है और प्रजातन्त्र तबतक सफलतापूर्वक काम कर नहीं सकता जबतक इस व्यवस्था में पतिवर्त्तन न हो। मौजूदा प्रणाली में वर्गयुद्ध स्वाभाविक है क्योंकि उसे बदलने और उसे आधुनिक आवश्यकता के अनुकुल बनाने के प्रयत्नों का शासक तथा पूंजीपति वर्ग की तरफ़ से भारी विरोध होता ह। आज के संघर्षों का रहस्य यही है और इसका व्यक्तियों की सद्भावना या दुर्भावना से कोई सम्बन्ध नहीं, क्योंकि जोकि अपनी व्यक्तिगत हैसियत में अपने वर्गगत सम्बन्धों से भी ऊपर उठ सकते हैं। लेकिन समष्टि रूप से वर्ग के सब आदमी एक हो जायंगे और परिवर्त्तन का विरोध करेंगे। मैं नहीं समझता कि समाजवाद में व्यक्तिगत स्वतन्त्रता काफ़ी अधिक तादाद में, बेशक मौजूदा व्यवस्था से भी ज्यादा तादाद में, क्यों न होगी। उसमें व्यक्ति को अन्तःकरण की स्वतन्त्रता होगी, विचार की स्वतन्त्रता होगी, साहसिक कार्य करने की स्वतन्त्रता होगी और परिमित रूप में व्यक्तिगत सम्पत्ति रखने की भी स्वतन्त्रता होगी। और इस सबसे बढ़कर वह स्वतंत्रता भी होगी जो आर्थिक सुरक्षा से प्राप्त होती है और जो आज सिर्फ़ थोड़े से लोगों को प्राप्त है।

मेरा ख़याल है कि अगर कोई आफ़त इस दुनिया को नष्ट न करदे तो हिन्दुस्तान और सारी दुनिया को समाजवाद की दशा में ही आगे बढ़ना पड़ेगा। यह प्रगति मुख़्तलिफ़ मुल्कों में अलग-अलग तरह की हो सकती है और यह भी सम्भव है कि इस बीच जो तरीक़े इख़्तियार किये जायँ वे एक-साँ न हों। लेकिन यह सोचना तो हद दर्जे की मूर्खता है कि विभिन्न पार्श्वभूमिवाले मुख़्तलिफ़ मुल्कों में ठीक एक ही तरह की प्रक्रियायें हों। हिन्दुस्तान अगर इस ध्येय को स्वीकार करे तो भी उसे इसके लिए ख़ुद अपना ही तरीक़ा ढूँढ़ना पड़ेगा, क्योंकि हमें व्यर्थ की क़ुरबानी और उस उच्छृंखलता से बचना होगा जो हमारी प्रगति को एक पीढ़ी के लिए अवरुद्ध कर सकती है।

लेकिन हिन्दुस्तान ने इस ध्येय को स्वीकार नहीं किया है और हमारा तात्का-

लिक ध्येय राजनीतिक स्वतंत्रता है। यह हमें याद रखना चाहिए और समस्या क
घपले में नहीं डाल देना चाहिए, नहीं तो हमें न तो समाजवाद मिलेगा और
स्वतंत्रता। यह हम देख ही चुके हैं कि योरप तक में मध्यम श्रेणीवाले अभी इत
शक्तिशाली हैं कि वे आज व्यापक सामाजिक परिवर्त्तन का उद्देश्य रखनेवाले कि
भी आन्दोलन को कुचल सकते हैं, और जब किसी खतरे की आशंका होती है त
उनका झुकाव फ़ासिज्म की ओर होता है। कम-से-कम तुलनात्मक रूप से भार
के मध्यम श्रेणीवाले भी उतने ही शक्तिशाली हैं। ऐसी हालत में अगर हम उ
अपने से दूर रखकर विरोधी बनने के लिए मजबूर करें तो यह हमारी निहाय
बेवकूफ़ी होगी। इसलिए हमारी राष्ट्रीय नीति ऐसी होनी चाहिए जिसमें राजनैति
स्वाधीनता और साम्राज्यवाद-विरोध के संयुक्त आधार पर उनमें का एक भा
बहुमत शामिल हो सके, और हमारी अन्तर्राष्ट्रीय नीति फ़ासिज्म विरोधी हो।

मार्क्सवाद या समाजवाद हिंसात्मक नीतियाँ नहीं हैं हालाँकि पूँजीवादी
नरमदल जैसे लगभग सभी दूसरे दलों की तरह उनमें भी हिंसा को अपना लेने
सम्भावना है। क्या वे काँग्रेस के शान्तिपूर्ण उपायों के साथ मेल खा सकते हैं, सि
एक अस्थायी समाधान के रूप में नहीं, बल्कि ईमान्दारी के साथ सही और सच
रूप में? अहिंसा की सारी फ़िलासफ़ी की छानबीन करने या यह सोचने की ह
कोई जरूरत नहीं कि बहुत दूर के और तीव्र मामलों में वह कहाँतक लागू ह
सकती हैं। हमारे लिए तो सवाल सिर्फ हिन्दुस्तान का है, आज और कल
हिन्दुस्तान का। और मेरा यह पूरा विश्वास होगया है कि अहिंसा हमारे लिए
केवल एकमात्र संभव उपाय है, बल्कि अपने गुणों के कारण वही सर्वोत्तम औ
सबसे कारगर उपाय है। मेरा खयाल है कि ज्यों-ज्यों इसकी क्षमता का पत
लगता जायगा त्यों-त्यों इसका प्रयोग-क्षेत्र भी बढ़ता जायगा। लेकिन यहाँ हिन्दु
स्तान में तो लोगों की एक बड़ी तादाद ने इसकी उपयोगिता को स्वीकार क
लिया है और यह हमारे आन्दोलन का ठोस आधार बन चुकी है। अभी हीं य
काफ़ी कारगर साबित हो चुकी है, लेकिन इस बात की पूरी सम्भावना है कि
भावी प्रयोगों से यह और भी विविध रूपों में लागू हो सकेगी। इसकी खिल्ली
उड़ाकर उसकी असफलताओं को दिखलाना बहुत आसान है, लेकिन हिंसात्मक
तरीक़ों की असंख्य असफलताओं को दिखलाना उससे भी कहीं आसान है। शस्त्रास्त्र
से सुसज्जित शक्तिशाली देशों को बिना किसी युद्ध के पराज्य और गुलामी क
शिकार होते हमने देखा है। लेकिन हिन्दुस्तान, शस्त्रास्त्र की सारी ताक़त के
बग़ैर भी, इस तरह कभी नष्ट न होता।

हिन्दुस्तान में हिंसात्मक उपायों का प्रयोग करने में ख़ासतौर से कई ख़तर

हैं। संगदिल और अनुशासित रूप में यहाँ इसका प्रयोग नहीं हो सकता। सामूहिक संगठन और सामूहिक कार्रवाई में इससे रुकावट पड़ती है, और इससे बड़े पैमाने पर अन्दरूनी झगड़े पैदा होना निश्चित है, जिससे उच्छृंखलता बढ़कर हमारे आन्दोलन का ही ख़ातमा हो जायगा। मैं इतना आशावादी नहीं हूँ, जो यह सोच सकूँ कि इस गड़बड़ में से स्वतंत्र, संयुक्त और उन्नत भारत का आविर्भाव होगा।

इस तरह की हिंसा की बात हिन्दुस्तान में कोई नहीं सोचता। अलबत्ता कुछ लोगों का यह खयाल ज़रूर है कि हिंसात्मक मनोवृत्ति से सर्वसाधारण की युद्ध-वृत्ति को प्रोत्साहन मिलता है, इसलिए कल-कारख़ानों के मज़दूरों और किसानों में अस्पष्ट रूप से उसको फैलाना चाहिए। लेकिन यह बेवकूफ़ी है, और अगर यह जारी रही तो इसके परिणाम बड़े ख़तरनाक हो सकते हैं। जबतक कोई सरकार नरमी से पेश आये यह बढ़ती रहेगी, लेकिन कोई सरकार इसे नष्ट करने पर तुल जाय तो वह आसानी के साथ इसको कुचलकर मज़दूरों के संगठन को बिलकुल अस्तव्यस्त कर सकती है। क्योंकि शक्ति व्यक्तियों या दलों द्वारा कभी-कदास हिंसा का प्रदर्शन करने से प्राप्त नहीं होती, बल्कि जन-संगठन और जन-आन्दोलन की क्षमता से प्राप्त होती है, और जन-आन्दोलन के प्रभावशाली होने के लिए उसका शान्तिपूर्ण होना आवश्यक है।

हर हालत में यह तय है कि काँग्रेस की नीति शान्तिपूर्ण है, और अगर हम उसको माने तो ऐसा हमें पूरी तरह और ईमानदारी के साथ करना चाहिए। ऐसा न करना तो दो घोड़ों पर एक साथ सवार होने के समान है। जो भी कोई समाजवादी या साम्यवादी मुँह से अहिंसा की तारीफ़ करते हुए अमल उससे उलटा करता है, वह अपने आदर्श को हानि पहुँचाता है और लोगों को यह सोचने का मौक़ा देता है कि वह जो-कुछ कहता है उसपर अमल नहीं करता।

७

हम अपने मत-भेदों पर बहस करते हैं और बाज़ वक्त उनपर ज़रूरत से ज्यादा ज़ोर देने लगते हैं। तो भी हमें याद रखाना चाहिए कि आज़ादी के राजनीतिक आन्दोलन के बारे में हमारी एकता बुनियादी है और दृष्टिकोणों और तरीकों का मत-भेद उसे कम नहीं कर सकता। संग्राम-काल में तो वह एकता अत्यन्त आश्चर्य-जनक रूप में सामने आ ही जाती है, दूसरे समयों में भी वह प्रत्यक्ष दिखाई देती रहती है। हमारे वाद-विवाद और आलोचनायें उस एकता पर हमला नहीं करतीं; अमल में वह भी उसके आधार पर होती हैं। यह स्वाभाविक ही है क्योंकि वर्त्तमान परिस्थितयों में भारत की स्वतन्त्रता, और साम्राज्यवाद का विरोध यही सबकी

एक-सी आकांक्षायें हैं जो हमारे देश के लाखों हृदयों को गतिमान कर रही हैं।

असली फूट साम्प्रदायिकता के दरवाज़े से हमारे अन्दर घुसती है और हमें मानना पड़ेगा कि कुछ प्रमुख संस्थायें ऐसे सिद्धान्तों का प्रचार करती हैं जो हमारी राष्ट्रीय एकता की जड़ में ही कुठाराघात करते हैं। फिर भी मैं नहीं समझता कि इन सिद्धान्तों ने उन साम्प्रदायिक संस्थाओं के सदस्यों पर भी वहुत ज्यादा हद तक असर डाला हो। ज्योंही साम्प्रदायिक वातावरण में सुधार होगा विचार का यह तरीक़ा सम्भवतः ख़तम हो जायगा।

दो विभाग या दल

जहाँतक कांग्रेस का संवन्ध है, उसके सामने कोई कठिनाई नहीं है। असली कठिनाई हम क्या करते हैं या कौन-से प्रस्ताव पास करते हैं इसमें नहीं है, वल्कि हमारे अमल के तरीक़े और अपने पास किये हुए प्रस्तावों की व्याख्या में है। कांग्रेस में, जैसाकि एक प्रभावशाली संस्था में होना चाहिए, एक-दूसरे को दवानेवाले और फिर भी एकता की श्रृंखला में वँधे हुए कई तरह के विचारों के लोग हैं, मोटे अर्थों में इनके दो विभाग या धर्म हैं—(दरअसल इनका दक्षिण या वाम पक्ष से कोई सम्वन्ध नहीं है)—एक उन लोगों का जिन्हें गाँधीवादी कहा जा सकता है और दूसरे उनका जो अपने को आधुनिकतावादी समझते हैं। ये शब्द सही या ठीक अर्थों के परिचायक नहीं हैं, क्योंकि इनसे प्रतीत होता है कि गाँधीवाद कोई प्राचीन और गये-वीते ज़माने की चीज है जवकि सचाई यह है कि यह अत्यन्त आधुनिक और कुछ अंशों में हमारे मौजूदा ज़माने से भी आगे वढ़ा हुआ है। लेकिन यह पश्चिम के आधुनिकवाद से भिन्न है और इसमें जो-कुछ धार्मिक और आध्यात्मिक पुट है वह विज्ञान की उस भावना से मेल नहीं खाता जो यूरप के आज के विचारों की सर्वोच्च प्रतिनिधि है। उसमें दिमाग़ पर या उसकी प्रक्रियाओं पर तो कम और आत्म-प्रेरणा और आप्त-प्रामाणिक व्याख्या पर वहुत अधिक जोर दिया जाता है। फिर भी कोई कारण नहीं कि गांधीवाद पर भी विशुद्ध वैज्ञानिक दृष्टि से क्यों न देखा जाय और उसे विज्ञान की भावना के उपयुक्त क्यों न वनाया जाय।

ये नामधारी आधुनिकतावादी पचरंगे लोगों का समूह है, जिसमें विभिन्न प्रकार के समाजवादी और निकम्मे आदमी शामिल हैं, जो विज्ञान और आधुनिक प्रगति की वेसिर-पैर की वातें करते रहते हैं। इनमें के वहुत-से तो गये वीते ज़माने की राष्ट्रीयता के अवशेष हैं जिनका अधुनिकतावाद और विज्ञान से कोई सम्वन्ध नहीं है।

दक्षिण और वाम

इन दो व्यापक दलों को दक्षिण या वाम पक्ष की गड़वड़ में नहीं डाल देना

चाहिए। दोनों ही दलों में दक्षिण-पक्षी भी हैं और वाम-पक्षी भी और इसमें शक
हीं कि हमारे कुछ सबसे बहादुर लड़ाका गांधीवादी दल में हैं। अगर कांग्रेस को
क्षिण और वाम-पक्ष की दृष्टि से देखा जाय तो यह कहा जा सकता है कि उसमें
क्षिण-पक्षियों का एक छोटा-सा हिस्सा है, वामपक्षी अल्पमत में हैं और ज्यादातर
ग ऐसे हैं जिनका झुकाव मध्य-वाम की तरफ़ है।

गांधीवादी दल की गिनती इसी मध्य-वाम दल में की जायगी। राजनीतिक
ष्टि से कांग्रेस बहुत-अधिक वामपक्षी है, सामाजिक दृष्टि से उसका झुकाव वाम
ा की तरफ़ है लेकिन वह है मुख्यतः मध्यवर्ती। किसानों से सम्बन्ध रखनेवाले
ामलों में वह किसान-पक्षी है।

गांधी

कांग्रेस के विभिन्न तत्त्वों का विश्लेपण करते समय गांधीजी की सबसे
बर्दस्त स्थिति को हमेशा याद रखना चाहिए। कुछ हदतक वे कांग्रेस पर हावी
, लेकिन उससे भी बहुत अधिक वह आमजनता पर हावी हैं। वह साधारणतया
िसी दल के चक्कर में नहीं आते और गांधीवादी कहे जानेवाले दल से भी वे
हुत अधिक महान् हैं। कभी-कभी वह एकचित्त क्रान्तिकारी हो जाते हैं और अपने
क्ष्य की तरफ़ तीर की तरह बढ़ते हुए लाखों को हिला देते हैं। दूसरे समयों में
गतिहीन हो जाते हैं, या ऐसे दिखाई देते हैं और दूसरों को दूरदर्शिता की नसीहत
ने लगते हैं। उनके लगातार खराब रहनेवाले स्वास्थ्य ने इस स्थिति को और भी
चीदा बना दिया है। वह राष्ट्रीय मामलों में पूरा हिस्सा नहीं ले सकते और
हुत-सी बातों के संपर्क में नहीं रह पाते; और इतने पर भी वह उसमें हिस्सा
ने और नेतृत्व करने से रुक नहीं सकते; क्योंकि उनके अपने अन्तःकरण की प्रेरणा
ौर जनता की मांग उन्हें ऐसा करने के लिए मजबूर कर देती है। उनका कांग्रेस
ा कोई बाक़ायदा सम्बन्ध है या नहीं इस बात से कोई खास फ़र्क़ नहीं पड़ता।
आज की कांग्रेस उन्हींकी सृष्टि है और स्वभावतः ही वे कांग्रेस के हैं। हर हालत
ें, देश में उनकी जो प्रमुख स्थिति है उसका ओहदे से कोई ताल्लुक़ नहीं और वे
जबतक ज़िन्दा हैं, और उसके बाद भी लोगों के हृदयों में वे अपना प्रमुख स्थान
बनाये रहेंगे। किसी भी नीति का निर्माण करते समय उनकी उपेक्षा नहीं की जा
सकती। किसी भी राष्ट्रीय संग्राम में उनका पूरा सहयोग और पथ-प्रदर्शन ज़रूरी
है। उनके बिना हिन्दुस्तान का कोई काम चल नहीं सकता।

यह है स्थिति का एक आधारभूत तत्त्व। देश के समझदार और विचारशील
वामपक्षी इस बात को समझते हैं, इसलिए गांधीजी से विचारों या स्वभाव में

उनके कितने ही मत-भेद रहे हों वे ऐसे काम से बचते रहे हैं जिसमें उनके [illegible] हो जाने का अंदेशा हो। उनका सदा यही प्रयत्न रहा है कि कांग्रेस को उसके [illegible] मान नेताओं के हाथ में, जिसका अर्थ है गांधीजी के पथ-प्रदर्शन में, छोड़ दि[illegible] जाय और साथ ही उसे वाम-पक्ष की तरह जितना ढकेला जा सके ढकेला [illegible] उसे उग्र बनाया जाय और इस तरह अपने सिद्धान्तों का अधिक-से-अधिक प्र[illegible] किया जाय।

एकता की ज़रूरत

अगर साधारणतया साधारण समय में ऐसा है तो संकट-काल में तो गांधी[illegible] का पथ-प्रदर्शन और भी ज्यादा जरूरी है। ऐसे नाजुक समय में जबकि हम [illegible] सारी सम्मिलित शक्ति आवश्यक है हममें फूट या ऐसी ही किसी चीज़ का हो[illegible] हमें अयोग्य और प्रभावहीन बना देगा।

एक तरफ़ जबकि गांधीजी और उनके दल के पुराने नेता हमारे राष्ट्री[illegible] कार्य तथा हमारे संग्राम के लिए जरूरी हैं, दूसरी तरफ़ यह भी अधिकाधिक स्प[illegible] होता जा रहा है कि कांग्रेस में या देश में दूसरे जो प्रभावशाली दल काम क[illegible] रहे हैं उनके सक्रिय सहयोग के बिना उनके काम में रुकावट रहेगी और उन[illegible] काम प्रभावहीन या किसी भी तरह कम प्रभावशाली होगा। यह बात तथाकथि[illegible] आधुनिकतावादी दल को लागू होती है; और उससे भी ज्यादा लागू होती है दे[illegible] के व्यापक किन्तु अस्थिर विचारवाले जनसमूह को, अधिकांश पढ़े-लिखे लोगों को[illegible] सीधे जनता पर यह लागू नहीं होती, लेकिन इस तरह विचार करनेवालों के ज़रिये उसपर इसका असर होता है।

इस तरह हम इस नतीजे पर पहुँचे कि इस आधुनिकतावादी दल का पूर्ण सहयोग भी कांग्रेस के सफलतापूर्वक काम करने के लिए आवश्यक है। इन दो दलों के बीच अगर सच्चे सहयोग का अभाव हो, तो अपने संयुक्त दुश्मन के सा[illegible] लड़ाई की बात सोचना मुश्किल है; क्योंकि तब कांग्रेस में संतुलन नहीं रहेगा औ[illegible] हमारी शक्ति अपने आन्तरिक झगड़ों में ही खर्च होगी, या अगर उससे बच गये तो एक दूसरे के बीच झगड़े और अविश्वास का वातावरण बढ़ेगा, जो कार[illegible] काम के लिए घातक है। चोटी के लोग एक-दूसरे के प्रति सहिष्णुता और मित्र[illegible] से भले ही पेश आयें, लेकिन संस्था के निचले दर्जे के लोगों में अनुशासन-हीन[illegible] और कलह का बोलबाला हो जायगा। कांग्रेसी मंत्रिमण्डलों पर भी इसका [illegible] असर पड़ेगा और उनके लिए काम चलाना मुश्किल हो जायगा। साम्प्रदायिकता [illegible] विघातक प्रवृत्तियों से पेश आना पहले ही उनके लिए एक काफ़ी मुश्किल काम है।

संयुक्त मोर्चा

हर तरह से विचार करने पर हम इसी नतीजे पर पहुँचते हैं कि कांग्रेस के लिए संयुक्त रूप से काम करना आवश्यक है। क्या यह नामुमकिन है ? या, जैसा कि कहा गया है, जिनके मिश्रण से इसका निर्माण हुआ है वे एक-दूसरे से मेल नहीं खाते ? इस सवाल का जवाब देते हुए, हमारे लिए यह ज़रूरी है कि हम व्यक्तियों की दृष्टि से नहीं बल्कि विस्तृत नीतियों की दृष्टि से विचार करें। अतीत ने यह बतला दिया है कि इस तरह एकता से काम लिया जा सकता है, हालाँकि इसमें कठिनाइयाँ ज़रूर हैं। इस बारे में मुझे कोई शक नहीं है कि कांग्रेस के आम लोगों में ऐसे सहयोग और संयुक्त मोर्चे की बड़ी इच्छा है। भूतकाल में जो कठिनाइयाँ पैदा हुई, वे हक़ीक़ी होते हुए भी मूलभूत नहीं थीं। मैं समझता हूँ कि इसमें कुसूर दोनों ही ओर का था।

'संयुक्त मोर्चा' शब्द अस्पष्ट है, जिनका किसी हदतक दुरुपयोग भी किया गया है। योरप में ऐसे मोर्चों के उदाहरण फूले-फले नहीं, और एक कडुआपन छोड़ गये हैं। लेकिन हमारे लिए यह याद रखना ज़रूरी है कि वहाँ आपस के मतभेद कहीं ज्यादा व्यापक थे। चीन में, दूसरी ओर, हम ऐसे दलों के बीच पूरा-पूरा सहयोग देखते हैं जो एक-दूसरे के कट्टर विरोधी थे। राष्ट्रीय संकट ने उन्हें आपस में मिल जाने के लिए बाध्य किया है। हमारे सामने जो समस्यायें और संकट मौजूद हैं, क्या हमें उनका उतना मान नहीं है ?

यह स्पष्ट है कि कांग्रेस को एक जाति का दल नहीं कहा जा सकता। यह तो राष्ट्र का प्रतिनिधित्व करती है और इसके द्वार उन सबके लिए खुले हुए हैं जो इसके उद्देश्य और साधनों में विश्वास करें। साथ ही इसको शायद मुख्तलिफ़ दलों का एक तरह का संघ या ऐसा संयुक्त सभास्थान (प्लेटफ़ार्म) नहीं समझा जा सकता, जहाँ परस्पर विरोधी मतों और उपायों को स्वीकृति के लिए पेश किया जाय और ऐसे समझौते पर पहुँचने की कोशिश की जाय जिसपर किसीको भी उत्साह न हो। कांग्रेस तो एक लड़ाकू जमात रही है और है। और अगर इसे अपने ऐतिहासिक उद्देश्य को पूरा करना है तो इसे ऐसा ही रहना होगा। प्लेटफ़ार्म कितने ही संयुक्त क्यों न हों, उनसे संग्राम नहीं चल सकता, न बहस-मुबाहसे की संस्थायें ही कोई कारगर लड़ाई चला सकती हैं।

कांग्रेसी नेतृत्व में पिछले दिनों जातिगत, संकीर्ण और इकतरफ़ा होने की प्रवृत्ति रही है। यह अवांछनीय है, क्योंकि इससे उनके और कांग्रेस तथा मुल्क के लोगों की एक बड़ी तादाद के बीच खाई पैदा होती है। इन दूसरे दलों में उग्र विरोध करने, इसके लिए ऐसे उपायों का सहारा लेने कि जो कांग्रेस-नीति से मेल

नहीं खाते, अनुशासन और ग़ैर जिम्मेदारी को प्रोत्साहन देने और एकता व संयुक्त मोर्चों की वातें करते हुए भी कांग्रेस की एकता को कमजोर करने की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से दिखलाई पड़ रही है। यही संकट और नाश का मार्ग है।

वामपक्षी

शायद एक वक्त आ सकता है जबकि समझदार वामपक्षी कांग्रेस को अपने हाथ में लेने और उसे अपनी नीति के अनुसार चलाने में काफ़ी समर्थ हो जायँ। आज वे ऐसा कर सकने की हालत में नहीं हैं। न तो उनके पीछे राष्ट्र का समर्थन है, न इस काम के लिए आवश्यक अनुशासन ही उनमें है। उनके आपस में ही कई दल हैं जो अपनी-अपनी खिचड़ी अलग ही पकाते हैं, जिनका एक-दूसरे के प्रति ज़रा भी प्रेम नहीं है और सिर्फ़ अपने समान विरोधी के विरोध करने में ही कुछ क्षण के लिए एक हो जाते हैं, और यह एकता ऐसी है जो जल्दी ही टूट जाती है। आज ये वामपक्षी ध्वंसात्मक काम कर सकते हैं रचनात्मक नहीं,—किसी चीज़ को बिगाड़ सकते हैं, बना नहीं सकते। वे अभी भी आन्दोलन के युग में रहते हैं, और इस बात को पूरी तरह नहीं जानते कि कांग्रेस और राष्ट्रीय आन्दोलन अब काफ़ी ऊँचे उठ चुके हैं और अधिकार और जिम्मेदारी के साथ बोलते हैं।

वामपक्षियों में जो समाजवादी हैं उन्हें अपने आन्दोलन को ऐतिहासिक दृष्टिकोण से देखना चाहिए और यह समझना चाहिए कि मौजूदा हालत में क्या किये जाने की ज़रूरत है। आज निश्चित हद से आगे बढ़ जाने का नतीजा बड़ी उलटी प्रतिक्रिया हो सकता है। अगर वे अपने ऐतिहासिक दर्जे को जानते हैं तो उन्हें अपने-को उसके लिए तैयार करना चाहिए, और कांग्रेस और देश का विश्वास प्राप्त करना चाहिए। इन सबसे ऊपर उन्हें अपनी शक्ति-भर अनुशासन-हीनता और उच्छृंखल प्रवृत्तियों को रोकना होगा, क्योंकि इनमें से न तो आज़ादी ही पैदा हो सकती है न समाजवाद ही।

कार्यकारिणी

कोई भी कार्यकारिणी व्यापक अर्थ में एक-समान या हम-क़िस्म होनी चाहिए अन्यथा वह प्रभावशाली न होगी। कांग्रेस जैसी किसी भी लड़ाई लड़नेवाली संस्था की कार्यकारिणी इस अर्थ में स्वभावतः ही एक-समान होनी चाहिए। लेकिन मैं कोई वजह नहीं देखता कि इस एक-समानता की व्याख्या संकुचित साम्प्रदायिक अर्थ में क्यों की जाय। कार्यकारिणी के हरेक सदस्य को उसके प्रति वफ़ादार रहना चाहिए और वहाँ किसी ऐसे दल के प्रतिनिधि के रूप में नहीं रहना चाहिए, जिस के प्रति उसकी मुख्य वफ़ादारी हो। पिछले दिनों कांग्रेस समाजवादी दल के सदस्

भी हमारी कार्य-समिति में थे वे कांग्रेस समाजवादी दल की कार्यकारिणी के सदस्य बने रहे और अक्सर वे जुदा-जुदा स्वरों में बोलते रहे। मुझे यह आवांछनीय मालूम होता है। कार्य-समिति का कोई भी सदस्य किसी ऐसे दल या समूह की कार्यकारिणी का सदस्य न होना चाहिए, जिसे उसकी आलोचना करने का मौक़ा आ सकता हो। इसका मतलब दूसरे दल से अलग हो जाना नहीं है, बल्कि नियम का पालन है जो हमें साथ मिलकर काम करने में सहायक और कार्यसमिति और उसके सदस्यों को ज्यादा रुतबा देनेवाला होगा।

इस तरह के थे मेरे ख़याल जब मैं पिछले नवम्बर में यूरप से वापस लौटा और स्थिति का अध्ययन किया। मैंने रियासतों में बढ़ते हुए संघर्ष और गांधीजी को उसकी रहनुमाई करते देखा, फेडरेशन और दूसरे मामले अधर में लटके हुए और प्रान्तीय सरकारों को मिली हुई सुविधायें समाप्त होती दिखाई दीं, और भविष्य गतिमान दिखाई दिया। अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति अधिक-से-अधिक खराब दिखाई दी। मैं भारत में सामने आते हुए संघर्ष की दिशा में विचार करने लगा।

अहिंसा

मैंने यह अनुभव किया कि कांग्रेस के दो मुख्य दलों के एक-साथ सहयोग के लिए हर तरह कोशिश करनी चाहिए। (और जैसा कि मैंने ऊपर कहा है, ये दल वाम-पक्षी या दक्षिणपक्षी नहीं हैं)। और यह सहयोग, खुले शब्दों में, कांग्रेस के मौजूदा प्रोग्राम और तरीकों, और खासकर अहिंसा की नीति के पालन के आधार पर होना चाहिए। वर्तमान नेताओं के मार्ग में जानबूझकर अड़ंगे नहीं लगाना चाहिए, लेकिन तथाकथित आधुनिकतावादी-दृष्टिकोण रखनेवाले नये लोगों को भी आगे लाना चाहिए। यह सब कार्यसमित की एक-समानता में खलल डालने के लिए नहीं, बल्कि काम का बोझ और आन्दोलन के पथ-प्रदर्शन की ज़िम्मेदारी में हिस्सा बटाने के ख़याल से ही यह सोचा गया था। गांधीजी का नेतृत्व और पथ-प्रदर्शन लाज़मी था और मेरा यकीन था कि इन शर्तों पर वह इसके लिए खुशी से राज़ी हो जाते। इन सबसे ऊपर हम सबको मिलकर कांग्रेस में से अनुशासन-हीनता और फूट की मनोवृत्ति को खतम करना था, यही आनेवाली लड़ाई की तैयारी के लिए आवश्यक भूमिका थी।

८

नवम्बर में मेरे यूरप से लौटते ही, मुझसे कांग्रेस के सभापतित्व के बारे में पूछा गया। अगले साल कौन राष्ट्रपति होगा? क्या मैं फिर राष्ट्रपति बनने को राज़ी हो जाऊँगा? मैंने इस बारे में ज़रा भी विचार नहीं किया था और मेरी कोई खास

सामयिक साहित्य माला

१. कांग्रेस का इतिहास—

सन् १९३५ से १९३९ तक की घटनाओं का सिंहावलोकन— मू० ।)

२. दुनिया का रंगमंच—(ज़वाहरलाल नेहरू)

सन् १९३३ के वाद से आजतक की दुनिया की घटनाओं का सिंहावलोकन— मू० =)

३. हम कहाँ हैं ? (जवाहरलाल नेहरू)

सन् १९३६ से आजतक की देश की तथा काँग्रेस की परिस्थिति का अवलोकन और विचार— मू० =)

[सामयिक साहित्य माला : चौथी पुस्तक]

युद्ध-संकट और भारत

महात्मा गांधी, राष्ट्रपति राजेन्द्रबाबू, पंडित जवाहरलाल नेहरू आदि के वक्तव्य और कांग्रेस कार्यसमिति के प्रस्ताव

संपादक
श्री यशपाल बी. ए., एल-एल. बी.

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली
दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल

संस्करण
२६ जनवरी १९४० : ५०००
दाम
चार आना

मुद्रक,
एस. एन. भारती,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली

युद्ध-संकट और भारत

: १ :

समझौते का कोई प्रश्न ही नहीं

[ब्रिटिश सरकार द्वारा जर्मनी के साथ युद्ध की घोषणा कर दी जाने के बाद वायसराय के निमन्त्रण पर ४ सितम्बर १९३९ को महात्मा गांधी ने शिमला में वायसराय से मुलाक़ात की। मुलाक़ात के बाद शिमला से ५ सितम्बर को महात्माजी ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया--सं०]

"जिस समय मैं दिल्ली से कालका के लिए गाड़ी पर सवार हो रहा था उस समय एक भारी भीड़ ने सद्भाव से 'महात्मा गांधी की जय' के साथ-साथ यह भी नारा लगाया कि 'हम समझौता नहीं चाहते।'

"मेरा साप्ताहिक मौन था, इसलिए मैं केवल मुस्कराकर रह गया। मेरे पास गाड़ी के पायदान पर खड़े हुए लोगों ने भी मेरी मुस्कराहट के जवाब में मुस्करा दिया और सलाह दी कि मैं वायसराय महोदय से समझौता न करूँ।

"मुझे एक कांग्रेस कमेटी ने भी पत्र द्वारा ऐसी ही चेतावनी दी थी। इन चेतावनी देनेवालों में से कोई भी मुझे नहीं पहचानता। मुझे अपनी सीमित शक्ति का ज्ञान कराने के लिए चेतावनी की जरूरत नहीं थी। दिल्ली के प्रदर्शन और कांग्रेस की चेतावनी के अतिरिक्त यह बता देना मेरा फर्ज़ है कि वायसराय महोदय से बातचीत में क्या कहा-सुना गया। मैं यह बात भलीभाँति जानता था कि इस सम्बन्ध में कांग्रेस कार्यसमिति ने मुझे कोई अधिकार नहीं दिया, न कोई आदेश ही दिया है। मैं तार द्वारा भेजे गये निमन्त्रण को स्वीकार करके पहली गाड़ी से रवाना हो गया था। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि मेरी अदम्य और पूर्ण अहिंसा मेरे साथ थी। मैं जानता था कि राष्ट्रीय माँग का प्रतिनिधित्व करने का मुझे अधिकार नहीं, और मैंने ऐसा किया तो दुर्गति होगी। इतनी बात मैंने वायसराय महोदय को भी बता दी थी। ऐसी स्थिति में मुझसे समझौता या समझौते की बातचीत का कोई सवाल ही नहीं हो सकता। मुझे यह मालूम नहीं हुआ कि उन्होंने मुझे समझौते की बातचीत के लिए बुलाया है। मैं वायसराय महोदय के स्थान से खाली हाथ लौटा हूँ। मुझसे स्पष्ट या गुप्त कोई समझौता नहीं हुआ। अगर कोई समझौता होगा, तो वह कांग्रेस और सरकार के बीच होगा।

"कांग्रेस-सम्बन्धी अपनी स्थिति को वायसराय महोदय से स्पष्ट करते हुए मैंने उन्हें बताया कि मानवता के दृष्टिकोण से मेरी अपनी सहानुभूति इंग्लैण्ड और फ्रांस

के साथ है। जो लंदन अवतक अभेद्य समझा गया है उसके विध्वंस होने की ... सोचते मेरा दिल दहल जाता है। जब मैंनें पार्लमेण्ट-भवन और वेस्ट मिन्स्टर ... तथा उनके सम्भव विध्वंस के बारे में सोचा तो मेरा दिल भर आया। मैं अधीर ... गया। हृदय के अन्दर मेरी परमात्मा से इस प्रश्न पर हमेशा लड़ाई रहती है ... वह ऐसी बातें क्यों होने देता है। मुझ अपनी अहिंसा बिलकुल नपुंसक मालूम पड़ती है। परन्तु दिनभर के संघर्ष के बाद यह उत्तर मिलता है कि न तो ईश्वर ही और मेरी अहिंसा ही नपुंसक है। नपुंसकता तो आदमी में है। चाहे मुझे अपनी कोशिश में असफलता मिले, परन्तु पूरे विश्वास के साथ मुझे अहिंसा का प्रयोग करते रहना चाहिए। मैंने २३ जुलाई को एवटाबाद से, मानों इसी मानसिक व्यथा के पूर्वाभास को पाकर, हेर हिटलर के पास निम्न पत्र भेजा था—

" 'मेरे मित्र मुझसे कह रहे हैं कि मानव-जाति की खातिर मैं आपको ... लिखूँ। लेकिन इस खयाल से कि मेरे द्वारा भेजा गया पत्र गुस्ताखी में ... होगा, मैंने उनकी प्रार्थना न मानी। लेकिन कोई शक्ति मुझसे कहती है कि ... विचार नहीं करना चाहिए, और अपील का कुछ भी नतीजा हो, मुझे आपसे ... करनी ही चाहिए। यह स्पष्ट है कि आज आप ही विश्व में एक ऐसे व्यक्ति हैं ... युद्ध को रोक सकते हैं। युद्ध होने पर यह सम्भव है कि मानवता क्षीण होकर बर्बरता में परिवर्तित हो जाय। क्या आप एक वस्तु के लिए, जिसे आप ... भी बहुमूल्य क्यों न समझते हों, यह मूल्य देंगे ही? क्या आप एक ऐसे ... की अपील को सुनेंगे जिसने खुद ही जान-बूझकर लड़ाई को छोड़ दिया है ... उसे काफ़ी सफलता भी मिली है? पत्र लिखकर यदि मैंने कोई भूल की हो ... मैं आशा करता हूँ कि आप मुझे क्षमा करेंगे।'

"क्या ही अच्छा होता कि हेर हिटलर अब भी विवेक से काम लेते तथा ... समझदार आदमियों की अपील, जिनमें जर्मन भी हैं, सुनते। मैं यह स्वीकार करने के लिए तैयार नहीं हूँ कि, आदमी की अमानवीय चाल द्वारा विध्वंस के डर से ... जैसे भारी शहरों के खाली होने की बात जर्मन लोग शान्त रहकर सोच सकते हैं ... वे शान्ति के साथ इस प्रकार के अपने और अपने स्मारकों के विध्वंस की बात ... सोच सकते। इसलिए इस अवसर पर मैं भारत के स्वराज्य की बात नहीं सोच ... हूँ। भारत में स्वराज्य होगा। लेकिन अगर इंग्लैण्ड और फ्रांस का ध्वंस हो गया ... उन्हें बरबाद जर्मनी के ऊपर विजय मिल गई, तो उसका क्या मूल्य होगा? ... ऐसा ही पड़ता है कि जैसे हिटलर किसी परमात्मा के अस्तित्व में विश्वास नहीं ... और केवल पशुबल को ही मानते हैं। मि० चेम्बरलेन के कथनानुसार वह बलप्रयोग के सिवा किसी युक्ति की परवा नहीं करते। ऐसी आफत के समय में कांग्रेसियों ... भारत के समस्त नेताओं को व्यक्तिगत रूप से तथा सामूहिक रूप से भारत का ... निर्धारित करना है।"

'हरिजन सेवक', ९ सितम्बर, १९...

: २ :

मेरी सहानुभूति का आधार

[वायसराय की मुलाक़ात के बाद शिमला से ५ सितम्बर को दिये गए अपने वक्तव्य पर हुई टीका-टिप्पणियों पर महात्मा गांधी का निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुआ—सं०]

"वायसराय की मुलाक़ात के बाद मैंने जो वक्तव्य दिया, उसपर अच्छे-बुरे दोनों ही तरह के ख़यालात ज़ाहिर किये गए हैं। एक आलोचक ने उसे भावुकतापूर्ण बकवास कहा है तो दूसरे ने उसे राजनीतिज्ञतापूर्ण घोषणा बतलाया है। दोनों अतियों में बड़ा फ़र्क़ है। मैं समझता हूँ कि अपने-अपने दृष्टिकोण से सभी आलोचकों का कहना ठीक है, लेकिन उसके लेखक के पूरे दृष्टिकोण से वे सभी ग़लती पर हैं। उसने तो सिर्फ़ अपने सन्तोष के लिए ही वह लिखा था। उसमें मैंने जो कुछ कहा है उसके एक-एक शब्द से मैं बँधा हुआ हूँ। हरेक मानवतापूर्ण सम्मति का जो राजनैतिक महत्व होता है, उसके अलावा और कोई राजनैतिक महत्व उसका नहीं है। विचारों के पारस्परिक सम्बन्ध को नहीं रोका जा सकता।

"एक सज्जन ने तो उसके ख़िलाफ़ बड़ा जोशीला पत्र मेरे पास भेजा है। उन्होंने उसका जवाब भी माँगा है। मैं उस पत्र को उद्धृत नहीं करूँगा, क्योंकि उसके कुछ अंश ख़ुद मेरी ही समझ में नहीं आये। लेकिन उसका भाव समझने में मुश्किल नहीं है। उसकी मुख्य दलील यह है—'अगर इंग्लैण्ड के पार्लमेण्ट-भवन और वेस्टमिंस्टर एबे के सर्वनाश की सम्भावना पर आप आँसू बहाते हैं, तो जर्मनी के प्राचीन स्मारकों के सर्वनाश की सम्भावना पर आपके आँसू क्यों नहीं निकलते? और इंग्लैण्ड और फ़्रांस से ही आप क्यों सहानुभूति रखते हैं? जर्मनी से आपको सहानुभति क्यों नहीं है? क्या हिटलर जर्मनी के उस पददलन का ही जवाब नहीं है, जो कि पिछले युद्ध के बाद मित्र-राष्ट्रों ने उसका किया था? अगर आप जर्मन होते, हिटलर की सी साधनसम्पन्नता आपके पास होती, और सारी दुनिया की तरह आप भी बदला लेने के सिद्धान्त में विश्वास करते होते तो जो हिटलर कर रहा है वही आप भी करते। नाज़ीवाद बुरा हो सकता है। दरअसल वह क्या है, यह हम नहीं जानते। हमें जो साहित्य मिलता है, वह इकतरफ़ा है। लेकिन मैं आपसे कहता हूँ कि चेम्बरलेन और हिटलर में कोई फ़र्क़ नहीं है। हिटलर की जगह चेम्बरलेन होते, तो वह भी इससे अन्यथा न करते। हिटलर के बारे में विशेष न जानते हुए भी उसकी चेम्बरलेन से तुलना करके उसके साथ आपने अन्याय किया है। इंग्लैण्ड ने हिन्दुस्तान में जो-कुछ किया, वह क्या किसी तरह भी उससे अच्छा है, जो कि ऐसी परिस्थितियों में दुनिया के दूसरे हिस्से में हिटलर ने किया है? हिटलर तो पुराने साम्राज्यवादी इंग्लैण्ड और

फ्रांस का एक बालशिष्य-मात्र है। मैं समझता हूँ कि वायसराय-भवन में भावुकता ने आपकी बुद्धि को दबा लिया था।'

"इंग्लैण्ड के कुकृत्यों का, सचाई का ख़याल रखते हुए, मैंने जितने ज़ोरों से वर्णन किया है उतने ज़ोरों से शायद और किसीने नहीं किया। इसी तरह जितने प्रभावकारक रूप में, मैंने इंग्लैण्ड का विरोध किया है, उतने प्रभावकारक रूप में शायद और किसीने नहीं किया। यही नहीं, बल्कि मुक़ाबिले की इच्छा और शक्ति भी मुझमें ज्यों-की-त्यों बनी हुई है। लेकिन कोई वक्त बोलने और काम करने का होता है तो कोई वक्त ऐसा भी होता है जब ख़ामोशी और अकर्मण्यता धारण करनी पड़ती है।

"सत्याग्रह के कोष में कोई शत्रु नहीं है। लेकिन सत्याग्रहियों के लिए नया कोष तैयार करने की मुझे कोई इच्छा नहीं है, इसलिए मैं पुराने शब्दों का ही नये अर्थ में प्रयोग करता हूँ। सत्याग्रही अपने कहे जानेवाले शत्रु के साथ अपने मित्र-जैसा ही प्रेम करता है। क्योंकि उसका कोई शत्रु नहीं होता। सत्याग्रही याने अहिंसा का उपासक होने के नाते मुझे इंग्लैण्ड के भले की ही इच्छा करनी चाहिए। फ़िलहाल जर्मनी-सम्बन्धी मेरी इच्छाओं का कोई सवाल नहीं है। लेकिन अपने वक्तव्यों के कुछ शब्दों में मैंने यह बात कही है कि विध्वस्त जर्मनी की राख पर मैं अपने देश की आज़ादी का महल खड़ा नहीं करना चाहता। जर्मनी के पुराने स्मारकों के सर्वनाश की संभावना से भी शायद मैं उतना ही विचलित होजाऊँ। हेर हिटलर को मेरी सहानुभूति की कोई ज़रूरत नहीं है। वर्तमान गुण-दोषों को देखने के लिए इंग्लैण्ड के पिछले कुकृत्यों और जर्मनी के पिछले सुकृत्यों का उल्लेख अप्रासंगिक है। सही हो या ग़लत, इस बात का कोई ख़याल न करते हुए कि इससे पहले ऐसी ही हालतों में अन्य राष्ट्रों ने क्या किया, मैं इस निर्णय पर पहुँचा हूँ कि इस युद्ध की ज़िम्मेदारी हेर हिटलर पर ही है। उनके दावे के बारे में मैं अपना कोई निर्णय नहीं देता। यह बहुत मुमकिन है कि डानज़िग को जर्मनी में मिलाने का, अगर डानज़िग-निवासी जर्मन अपने स्वतंत्र दर्जे को छोड़ना चाहें, उनका अधिकार असन्दिग्ध हो। यह हो सकता है कि कोराइडर को अपने कब्ज़े में करने का भी उनका दावा ठीक हो। पर मेरी शिकायत तो यह है कि वह एक स्वतंत्र न्यायालय के द्वारा इस दावे की जांच क्यों नहीं होने देते? अपने दावे का पंचों से फ़ैसला कराने की बात को अस्वीकार कर देने का यह कोई जवाब नहीं है कि ऐसे जूरियों के द्वारा यह बात उठाई गई है जिनका इसमें स्वार्थ है। क्योंकि ठीक रास्ते पर आने की प्रार्थना तो कोई चोर भी अपने साथी चोर से कर सकता है। मैं समझता हूँ कि मैं यह कहने में कोई ग़लती नहीं करता कि हेर हिटलर अपनी माँग की एक निष्पक्ष न्यायालय द्वारा जांच होने दें। उन्होंने जो तरीक़ा इख़्तियार किया है उसमें उन्हें सफलता हो गई तो वह उनके दावे की न्याय्यता का सबूत नहीं होगी। वह तो इसी बात का सबूत होगी कि अभी मानवी मामलों में 'जिसकी लाठी उसकी भैंस' का न्याय ही एक बड़ी ताक़त है। साथ ही वह इस बात का भी सबूत होगी कि हम मनुष्यों ने यद्यपि अपना रूप तो बदल दिया है, पर पशुओं

के तरीक़ों को नहीं बदला है ।

"मैं आशा करता हूँ कि आलोचकों को अब यह स्पष्ट होगया होगा कि इंग्लैण्ड और फ्रांस के प्रति मेरी सहानुभूति मेरे आवेग या उन्माद के प्रमाद का परिणाम नहीं है। वह तो अहिंसा के उस कभी न सूखनेवाले फव्वारे से निकली है, जिसे पिछले पचास सालों से मेरा हृदय पोसता आया है । मैं यह दावा नहीं करता कि मेरे निर्णय में कोई ग़लती नहीं हो सकती । मैं तो सिर्फ़ यही दावा करता हूँ कि इंग्लैण्ड और फ्रांस के प्रति मेरी सहानुभूति है, वह युक्तियुक्त है । जिस आधार पर मेरी सहानुभूति है उसे जो लोग स्वीकार करते हैं उन्हें मैं अपना साथ देने के लिए आमंत्रित करता हूँ । यह दूसरी बात है कि उसका रूप क्या होना चाहिए । अकेला तो मैं केवल प्रार्थना ही कर सकता हूँ । वायसराय से भी मैंने यही कहा है कि युद्ध में प्रवृत्त लोगों को सर्वनाश का जो मुक़ाबिला करना पड़ रहा है उसके सामने मेरी सहानुभूति का कोई ठोस मूल्य नहीं है ।"

'हरिजन-सेवक', १६ सितम्बर, १९३९

: ३ :

कांग्रेस-कार्यसमिति का युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव

[कांग्रेस-कार्यसमिति ने अपनी वर्धा की बैठक में युद्ध-सम्बन्धी निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया —सं०]

"यूरोप में लड़ाई की घोषणा के कारण जो विषम संकटापन्न परिस्थिति पैदा हो गई है, उस पर कार्यसमिति ने अच्छी तरह विचार किया । युद्ध के समय राष्ट्रों को जिन उसूलों के अनुसार काम करना चाहिए, उनकी चर्चा काँग्रेस ने बराबर की है, और अभी केवल एक ही महीना हुआ है जब कि इस कमेटी ने उन उसूलों को दोहराया था और हिन्दुस्तान में ब्रिटिश सरकार ने जिस तरह भारतीय लोकमत की उपेक्षा की, उस पर कमेटी अपनी नाराज़ी भी ज़ाहिर कर चुकी है । ब्रिटिश सरकार की इस नीति से अपने को अलग रखने के लिए काँग्रेस ने पहला कदम यह रक्खा कि उसने केन्द्रीय धारा सभा के काँग्रेसी सदस्यों को सभा के अगले अधिवेशन में जाने से मना कर दिया । उसके बाद ब्रिटिश सरकार ने भारत को एक 'युद्ध में शामिल' राष्ट्र घोषित कर दिया, आर्डीनेन्स जारी कर दिये, "गवर्नमेण्ट ऑव इंडिया एक्ट-संशोधन-बिल" पास किया और ऐसी कई व्यवस्थायें कीं, जिनका असर हिन्दुस्तान की जनता पर पड़ता है और जिनसे प्रान्तीय सरकारों के कार्य परिमित हो जाते हैं । यह सब हिन्दुस्तान की जनता से बग़ैर पूछे ही किया गया । भारतीय प्रजा ऐसे मामलों में अपनी जिन इच्छाओं को घोषित कर चुकी है उनकी ब्रिटिश सरकार ने जान बूझकर उपेक्षा की है । कार्य-समिति इन सब परिस्थितियों को बहुत ही गम्भीरता से ग्रहण करेगी । कांग्रेस ने अक्सर फ़ासिज्म और नाज़ीवाद के सिद्धान्तों और उनके युद्ध और हिंसा-प्रेम की निन्दा

की है, जिनके ज़रिये मानवता का दलन होता है। कांग्रेस ने उनके आक्रमण करने की चेष्टा और उग्रता का विरोध किया है, और सभ्य संसार के माने हुए व्यवहार को जिस तरह उन्होंने ठुकराया है, उसकी भी कांग्रेस ने निन्दा की है। कांग्रेस ने अक्सर फ़ासिज्म और नाज़ीवाद में साम्राज्यवादी सिद्धान्तों को देखा, जिनके विरुद्ध भारतवासी खुद लड़ाई जारी किये हुए हैं। इसलिए कार्यसमिति जर्मनी की नाज़ी सरकार के ताज़े हमले की बिना संकोच निन्दा करते हुए पोलेण्ड के साथ हमदर्दी रखती है, जो इस समय नाजियों का मुकाबिला कर रहा है।

"कांग्रेस ने यह कह दिया है कि हिन्दुस्तान के लिए युद्ध या शान्ति-सम्बन्धी बातों का निर्णय करनेवाला खुद हिन्दुस्तान है। और कोई भारतीय अधिकारी यह निर्णय हिन्दुस्तान पर नहीं लाद सकता और न भारतवासी इसकी इजाज़त ही देंगे कि उनके साधनों से साम्राज्यवादी उद्देश्य पूरे किये जायँ। अगर भारतवासियों पर वैसा कोई निर्णय लादा गया या उसकी मंजूरी के बग़ैर भारतीय साधनों से काम लिया गया, तो वे इसका निश्चय ही विरोध करेंगे। अगर एक अच्छे उद्देश्य के लिए सहयोग प्राप्त करने की इच्छा है तो ऐसा सहयोग जबर्दस्ती नहीं पाया जा सकता और बाहरी अधिकारियों द्वारा प्रकाशित की गई आज्ञाओं को कमेटी पूरा नहीं होने दे सकती। सहयोग तो बराबरवालों में होना चाहिए, जिसमें एक-समान उद्देश्य को पूरा करने के लिए दोनों पारस्परिक स्वीकृति से काम करें। भारतीय जनता ने इधर हाल में बहुत बड़े जोखिम का सामना किया, और उसने अपनी स्वतन्त्रता तथा हिन्दुस्तान में लोकतन्त्र स्थापित करने के लिए बहुत बड़ी कुर्बानी की। हिन्दुस्तानियों की सहानुभूति पूरे तौर से लोकतन्त्रवाद और स्वतन्त्रता के साथ है, पर हिन्दुस्तान ऐसे किसी युद्ध में शरीक नहीं हो सकता, जिसके बारे में यह कहा जाय कि वह युद्ध लोकतन्त्रवाद और स्वतन्त्रता के लिए लड़ा जारहा है, जबकि वही स्वतन्त्रता हिन्दुस्तान को नहीं मिल रही है, और जो थोड़ी-सी सीमित स्वतन्त्रता मिली भी है वह भी उससे छीन ली गई है।

"कार्यसमिति यह जानती है कि ग्रेटब्रिटेन और फ्रांस की सरकारों ने यह ऐलान किया है कि वे लोकतन्त्रवाद और स्वतन्त्रता की रक्षा के लिए जर्मनी से लड़ रही हैं, और वे आक्रमण तथा उद्दंडता का खात्मा कर देना चाहती हैं। पर हाल के इतिहास में ऐसे उदाहरण मौजूद हैं जिनसे मालूम होता है कि कहे हुए शब्दों, घोषित आदर्शों और असली उद्देश्यों में बहुत फ़र्क होता है, जैसा कि सन् १९१४-१८ के महायुद्ध से प्रकट हो चुका है। युद्ध के उद्देश्य घोषित किये गये थे कि लोकतन्त्रवाद, आत्म-निर्णय और छोटे-छोटे राष्ट्रों की स्वतन्त्रता की रक्षा करना मुख्य काम है, पर जिन राष्ट्रों ने उन उसूलों की घोषणा की, उन्होंने ही तुर्की के साम्राज्य को खत्म कर देने के लिए गुप्त संधियां की थीं। उन राष्ट्रों ने उस समय यह कहा था कि वे कोई राज्य नहीं लेना चाहते, पर तो भी विजयी राष्ट्रों (फ्रांस और इंग्लैण्ड) ने बहुत बड़े देश अपने औपनिवेशिक साम्राज्य में मिला लिये।

"वर्तमान युद्ध से भी यह मालूम होता है कि वर्साई-सन्धि किस तरह विफल हुई और उस सन्धि के निर्माताओं ने अपने वादे तोड़कर साम्राज्यवादी संधि को किस तरह पराजित राष्ट्रों पर लागू किया। उस सन्धि के द्वारा एकमात्र आशा की झलक राष्ट्र-संघ से ज़ाहिर हुई थी, पर उस संघ को कायम करनेवाले राष्ट्रों (फ्रांस और इंग्लैण्ड) ने ही उसे अन्त में खत्म कर डाला।

"हाल के इतिहास से ही यह मालूम होता है कि किस तरह घोषित सिद्धान्त खुद भंग किये जा सकते हैं। मंचूरिया में ब्रिटिश सरकार ने जापान के आक्रमण को उत्तेजन दिया। एबिसीनिया में उसने इटली की सत्ता मान ली, चेकोस्लोवाकिया और स्पेन में लोकतन्त्रवाद ख़तरे में था और वहां जान-बूझकर लोकतन्त्रवाद को धोखा दिया गया और सामूहिक रक्षा की सम्पूर्ण पद्धति को उन्हीं राष्ट्रों ने नष्ट किया, जिन्होंने कि उसमें अपना पुख्ता विश्वास प्रकट किया था।

"यह फिर घोषणा की गई है कि लोकतन्त्रवाद खतरे में है और उसकी जरूर रक्षा की जानी चाहिए। इस वक्तव्य से कार्यसमिति की पूरी सहानुभूति है। समिति का विश्वास है कि यूरोप की जनता पर इस आदर्श और उद्देश्य का अच्छा असर पड़ेगा और इसके लिए वे आत्म-त्याग करने को भी तैयार होंगे। पर जनता के आदर्शों और उद्देश्यों की बार-बार उपेक्षा की गई और उन्हें भंग किया गया। अगर इस युद्ध के ज़रिये साम्राज्यवादी राष्ट्रों का अपनी मौजूदा स्थिति (याने उनके साम्राज्य) और स्वार्थों की रक्षा करने का हेतु है तो हिन्दुस्तान ऐसे युद्ध से कुछ भी वास्ता नहीं रख सकता। पर अगर उसके ज़रिये लोकतन्त्रवाद और उसके आधार पर विश्व के नियम की रक्षा करनी है तो हिन्दुस्तान का इस युद्ध से घनिष्ठ सम्बन्ध है। कार्यसमिति को इसका निश्चय है कि भारतीय लोकतन्त्रवाद के स्वार्थों का संघर्ष ब्रिटिश लोकतन्त्रवाद या विश्व-लोकतन्त्रवाद से नहीं होता। अगर ब्रिटेन लोकतन्त्रवाद की रक्षा करने और उसे बढ़ाने के लिए लड़ रहा है तो उसे चाहिए कि पहले अपने अधिकार के साम्राज्यवाद का अन्त करे, और हिन्दुस्तान में पूर्णरूप से लोकतन्त्रवाद स्थापित करे तथा आत्मनिर्णय के सिद्धान्त के अनुसार भारतीय प्रजा को एक विधान-पंचायत के द्वारा अपना विधान बनाने का अधिकार दिया जाय। भारत अपनी ही नीति का संचालन करे, और इन कार्यों में किसी भी बाहरी अधिकारी का हाथ न हो। स्वतन्त्र लोकतन्त्रवादी हिन्दुस्तान खुशी से दूसरे राष्ट्रों के साथ खतरे का सामना करने के लिए तैयार रहेगा और वह दूसरे राष्ट्रों से आर्थिक सहयोग भी करेगा। तब भारत स्वतन्त्र और लोकतन्त्रवाद के आधार पर संसार के सच्च निर्माण में हिस्सा लेगा और मानव-जाति की उन्नति के लिए वह संसार के ज्ञान और साधनों से काम लेगा।

"इस समय यूरोप पर जो विषम संकट आया हुआ है वह केवल यूरोप का ही नहीं, सारी मानव-जाति का है और इन युद्धों की तरह यह संकट इस तरह नहीं टल जायगा कि मौजूदा संसार की पद्धति बनी रहे। हो सकता है कि इस युद्ध से कुछ भला हो। इस समय जो राजनैतिक, सामाजिक या आर्थिक संघर्ष हैं, ये सब गत महा-

युद्ध के परिणाम हैं। गत महायुद्ध से सामाजिक और आर्थिक संघर्ष बहुत बढ़ गये और जबतक ये संघर्ष दूर न होंगे, संसार में निश्चयात्मक रूप से कोई नियम या संगठन भी न होगा। उस संगठन या सामंजस्य का आधार यही हो सकता है कि एक देश की दूसरे देश पर प्रभुता न हो और न शोषण हो, और सब की भलाई के लिए न्यायपूर्ण आधार पर राष्ट्रों के आर्थिक सम्बन्ध का फिर से संगठन हो। हिन्दुस्तान इस समस्या की एक कसौटी है और आधुनिक प्रणाली का साम्राज्यवाद हिन्दुस्तान में क़ायम है और इस जरूरी समस्या के सुलझाने का जबतक प्रयत्न न होगा तबतक संसार का कोई पुनःसंगठन सफल भी न होगा। भारत के साधन असीम हैं और वह अपने इन साधनों से विश्व-रचना की किसी भी योजना में महत्वपूर्ण काम कर सकता है। युद्ध के सम्बन्ध में कांग्रेस के निर्णय में अधिक देरी नहीं की जा सकती, क्योंकि भारत का सम्बन्ध नित्य की नीति से है जिसे वह मंजूर नहीं करता। इसलिए समिति ब्रिटिश सरकार से कहती है कि वह साफ़ घोषणा कर दे कि लोकतन्त्रवाद और साम्राज्यवाद के सिलसिले में युद्ध-सम्बन्धी उसके क्या उद्देश्य हैं और हिन्दुस्तान पर उन उद्देश्यों को मौजूदा स्थिति में किस तरह लागू किया जायगा। समिति ने युद्ध की विभीषिकाओं का ज़िक्र करते हुए कहा है कि यूरोप और चीन में उन विभीषिकाओं को रोकना चाहिए, किन्तु फासिस्टवाद और साम्राज्यवाद के दूर होने पर ही वे विभीषिकायें भी दूर होंगी। उस उद्देश्य को पूरा करने के लिए समिति अपना सहयोग प्रदान करती है।

"मगर हिन्दुस्तान जिसने इस उद्देश्य की पूर्ति के लिए अपनी शक्तियाँ बहुत खर्च की हैं, ऐसा आज़ाद राष्ट्र होकर ही कर सकता है। स्वतन्त्रता इस समय अविभाज्य है और संसार के किसी भी भाग पर साम्राज्यवादी प्रभुता क़ायम रखने के हरेक प्रयत्न का परिणाम नया संकट पैदा करना होगा। कार्यसमिति ने इस बात को नोट किया है कि बहुत-से देशी नरेशों ने यूरोप में जनसत्ता की रक्षा के लिए अपनी सारी सेवायें व अपने राज्य के तमाम साधन समर्पित करने के आश्वासन दिये हैं। अगर देशी नरेशों को विदेशों में जनसत्ता की रक्षा का पक्ष ग्रहण करना है तो समिति की यह तजवीज है कि पहले उनका काम यह होना चाहिए कि वे अपनी रियासतों के अन्दर जनसत्ता क़ायम करें, जहाँ कि इस समय निरंकुशता के लिए ख़ुद देशी नरेशों की अपेक्षा ब्रिटिश सरकार जिम्मेदार है, जैसा कि पिछले साल के अन्दर दुःख के साथ साफ़ दिखाई दिया है। उसकी यह नीति जनसत्ता और संसार की नई व्यवस्था के ख़िलाफ़ है, जिसके लिए ग्रेट ब्रिटेन का यह दावा है कि वह उसके लिए यूरोप में लड़ाई लड़ रहा है। कार्यसमिति यूरोप, अफ्रीका और एशिया की पिछली घटनाओं पर और ख़ास भारत की गुज़री और मौजूदा घटनाओं पर नज़र डालते हुए यह देख रही है कि जनसत्ता या आत्म-निर्णय के हित को आगे बढ़ाने का कोई यत्न नहीं हो रहा है और न यही दिखाई देता है कि ब्रिटिश सरकार ने जिन उसूलों के लिए लड़ाई का ऐलान किया है, उनपर अमल हो रहा है या अमल होने जा रहा है। जनसत्ता या

सच्चा उपाय साम्राज्यवाद या फासिज्म का अन्त करना है और उस आक्रमण का भी, जिसका कि इन वादों के साथ भूत और वर्तमान समय में साथ रहा है। केवल इसी आधार पर नई व्यवस्था के लिए कार्यसमिति हर तरह से सहायता देने के लिए उत्सुक है। पर समिति ऐसी किसी भी लड़ाई में सहयोग या सहायता नहीं दे सकती, जो साम्राज्यवादी तरीक़े पर चलाई जाती है और जिसका उद्देश्य हिन्दुस्तान व दूसरे स्थानों में साम्राज्यवाद का बल बढ़ाना है। लेकिन समय की गम्भीरता और इस बात को देखते हुए कि पिछले कुछ दिनों के अन्दर घटनायें मनुष्य के दिमाग़ की चाल से भी अधिक तेज़ी से घटित हो रही हैं, कार्यसमिति इस वक्त कोई आखिरी निर्णय नहीं करना चाहती, ताकि इस बात की पूरी व्यवस्था हो जाय कि हिन्दुस्तान की मौजूदा और आनेवाली स्थिति के सम्बन्ध में असली उद्देश्य क्या हैं। पर निर्णय बहुत दिनों तक नहीं टाला जा सकता, क्योंकि हिन्दुस्तान ऐसी नीति में रोज़-ब-रोज़ फँसता जा रहा है जिसके पक्ष में वह नहीं है और जिसको वह नापसन्द करता है। इसलिए कार्यसमिति ब्रिटिश सरकार से कहती है कि वह साफ़-साफ़ शब्दों में यह ऐलान करदे कि जनसत्ता और साम्राज्यवाद के बारे में संसार की नई व्यवस्था में उसके युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्य क्या हैं और हिन्दुस्तान के प्रति ये उद्देश्य किस तरह अमल में लाये जायँगे और इस समय इनपर किस तरह अमल होगा। क्या उसके उद्देश्यों में यह भी है कि हिन्दुस्तान से साम्राज्यवाद हटा दिया जाय और उसके साथ एक स्वतन्त्र राष्ट्र का-सा व्यवहार किया जाय, जिसकी कि नीति उसकी जनता की इच्छा के अनुकूल चलेगी ?

"भविष्य के लिए अगर सरकार साम्राज्यवाद और फासिस्टवाद का ख़ात्मा करने के लिए घोषणा कर दे तो इसे सभी देशों की जनता पसन्द करेगी। पर ज़रूरी यह है कि इसका तुरन्त अधिक-से-अधिक पालन किया जाय, क्योंकि तभी लोगों को यह विश्वास होगा कि यह घोषणा पूरी करने के लिए ही की गई है। किसी भी घोषणा की कसौटी यही है कि उसे पूरा किया जाय। ऐसा करने से मौजूदा काम सुधरेंगे और भविष्य के लिए उनका निर्माण होगा। यूरोप में जो युद्ध शुरू हुआ है उससे भीषणता बढ़ने की बहुत सम्भावना है, पर इधर कई बरसों में एबिसीनिया, स्पेन और चीन में जो युद्ध हुए हैं उनमें भी बहुत से आदमी मारे गये हैं, हवाई जहाज़ों के ज़रिये खुले नगरों पर बम-वर्षा में मनुष्यों का ख़ूब संहार हुआ है, भीषणता और हिंसा बराबर बढ़ रही है, और संसार उसकी छाया में बड़ा कष्ट पा रहा है। अगर यह भीषणता न रोकी गई तो भूतकाल की मूल्यवान सभी चीजें नष्ट हो जायँगी। उस भीषणता को यूरोप और चीन में रोकना है, पर उसका तबतक अन्त न होगा, जबतक कि फासिस्ट-वाद और साम्राज्यवाद का निर्मूलन न किया जायगा।

"इस उद्देश्य को पूरा करने के लिए कार्यसमिति सहयोग देने के लिए तैयार है; पर अगर यह युद्ध भी साम्राज्यवाद की भावना से लड़ा गया तो यह एक बड़ा भयानक दुःखद काण्ड होगा। कार्यसमिति यह ऐलान करना चाहती है कि हिन्दुस्तान की

जनता की जर्मन प्रजा या जापानी प्रजा से कोई लड़ाई नहीं है, या दूसरे किसी भी देश की प्रजा से कोई लड़ाई नहीं, पर भारतीय जनता की उस शासन-पद्धति से गहरी लड़ाई है जो आजादी नहीं देती और जिसका आधार हिंसा और आक्रमण करना है। हिन्दुस्तान यह नहीं चाहता कि किसी देश की विजय दूसरे देश पर हो, बल्कि सच्चे लोकतन्त्रवाद की विजय हो, जो सब देश की जनता की विजय हो और फिर संसार हिंसा तथा साम्राज्यवादी दमन से मुक्त हो जाय।

"कांग्रेस कार्यसमिति भारत की जनता से अपील करती है कि इस संकट-काल में वह भीतरी झगड़े दूर कर दे और निर्दिष्ट उद्देश्य के लिए संसार की महान् व्यापक स्वतन्त्रता में भारतीय स्वतन्त्रता की प्राप्ति के लिए तत्पर रहे।"

१४ सितम्बर, १९३९.

: ४ :

अब ब्रिटेन बतलाए

[१५ सितम्बर को कांग्रेस-कार्यसमिति द्वारा दिये गये युद्ध-सम्बन्धी वक्तव्य पर वर्धा से महात्मा गाँधी ने नीचे लिखा वक्तव्य निकाला—सं०]

"विश्व में पैदा होनेवाली संकटापन्न परिस्थिति के बारे में काँग्रेस-कार्यसमिति ने चार दिनतक विचार किया और तब उसके वक्तव्य की आखिरी रूप-रेखा निर्धारित हुई। कार्यसमिति की ओर से निमंत्रित किये जाने पर उस वक्तव्य के मसविदे को पंडित जवाहरलाल नेहरू ने तैयार किया और उसपर समिति के सभी सदस्यों ने खुले तौर से अपने-अपने विचार ज़ाहिर किये। मुझे दुःख के साथ कहना पड़ता है कि वहाँ पर केवल मैं ही एक अकेला व्यक्ति था, जिसका यह विचार था कि ब्रिटेन को चाहे जिस प्रकार की भी सहायता दी जाय, पर वह बिना किसी शर्त के दी जानी चाहिए। अगर ऐसा किया जाता तो उसका आधार केवल शुद्ध अहिंसात्मक आधार होता। लेकिन कार्यसमिति के ऊपर बहुत बड़ी जिम्मेदारी थी, जिसको उसे पालन करना था। कार्यसमिति शुद्ध अहिंसात्मक दृष्टिकोण अख्तियार न कर सकी। उसने यह महसूस किया कि देश में अहिंसा की भावना उतनी मौजूद नहीं है कि जिससे उसमें इतनी ताक़त आ जाये कि वह अपने विरोधी की कठिनाइयों से लाभ उठाने से अपनेको रोक रक्खे। लेकिन कार्यसमिति ने अपने निर्णय के कारण बताते समय ब्रिटेन के प्रति अधिक-से-अधिक सहानुभूति दिखाने की इच्छा ज़ाहिर की है।

"उस वक्तव्य के मसविदे को तैयार करनेवाला एक कलाकार है। हालांकि वह साम्राज्यवाद के प्रत्येक स्वरूप का बड़े-से-बड़ा विरोधी है, किन्तु फिर भी वह अंग्रेज़ों का मित्र है। सचमुच वह अपने विचारों और दृष्टिकोणों से एक भारतीय से अधिक एक अंग्रेज़ है। उसे अपने देशवासियों की अपेक्षा अंग्रेज़ों के साथ होने में अधिक

सहूलियत महसूस होती है। वह इस अर्थ में मानवतावादी है कि उसमें हरेक बुराई को देखकर, चाहे वह कहीं भी क्यों न होती हो, प्रतिक्रिया होती है। इसलिए वह कट्टर राष्ट्रीयतावादी है। किन्तु उसकी राष्ट्रीयता की भावना अन्तर्राष्ट्रीयता से भरपूर है। इसलिए उसका वक्तव्य एक वह घोषणा-पत्र है, जो केवल अपने देशवासियों या ब्रिटिश सरकार और ब्रिटेन की जनता को ही सम्बोधित करते हुए नहीं, बल्कि दुनिया के उन सभी देशों को भी सम्बोधित करके लिखा गया है जो हिन्दुस्तान की ही तरह शोषित हो रहे हैं। उसने कार्यसमिति के ज़रिये हिन्दुस्तान को न केवल अपनी आज़ादी के सवाल पर, बल्कि दुनिया के दूसरे शोषित देशों को भी आज़ादी के सवाल पर विचार करने के लिए बाध्य किया है।

"कार्यसमिति ने अपना वक्तव्य देने के साथ ही एक बोर्ड की स्थापना की, जिसके अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल ही हैं, जो अपनी इच्छा के अनुसार उसके सदस्य चुनेंगे और वह बोर्ड समय-समय पर आगे पैदा होनेवाली परिस्थितियों पर विचार करेगा। मुझे आशा है कि सभी कांग्रेसवादियों के बीच उस वक्तव्य को एकमत से समर्थन प्राप्त होगा। कांग्रेसवादियों में उग्र-से-उग्र लोगों को भी उसमें कोई कमी नहीं मिलेगी। देश के सबसे अधिक महत्त्वपूर्ण ऐतिहासिक अवसर पर काँग्रेसियों को यह विश्वास करना चाहिए कि अगर कार्रवाई करने की ज़रूरत पड़ी तो काँग्रेस की कार्य-शक्ति में किसी प्रकार की भी कमी नहीं आने पायेगी। अगर काँग्रेसवादी अपने को मामूली-मामूली बातों या झगड़ों में लगाये रक्खेंगे तो वह एक दुःख की बात होगी। अगर कोई बड़ा या महत्त्वपूर्ण कार्य करना है, तो हरेक काँग्रेसवादी में अविभाज्य और बिना शर्त के वफ़ादारी होनी बहुत ज़रूरी है। मुझे यह भी उम्मीद है कि दूसरे राजनैतिक दल और सभी काँग्रेस-कार्यसमिति की इस माँग को, जिसके ज़रिये उसने ब्रिटिश सरकार से अपनी नीति को स्पष्ट कर देने के लिए कहा है, समर्थन करेंगे और यथा-सम्भव उसीकी नीति के अनुसार कार्य करेंगे।

"मेरे विचार से यह ब्रिटिश सरकार द्वारा प्रतिपादित लोकतंत्र-सम्बन्धी सिद्धान्त का स्वाभाविक परिणाम निकलता है कि हिन्दुस्तान का और ब्रिटेन द्वारा शासित दूसरे सभी देशों का स्वतन्त्रता और स्वाधीनता को दर्जा स्वीकार कर लिया जाये। अगर युद्ध में इतना भी नहीं होता तो शासित देशों के द्वारा तबतक ईमानदारी से और स्वेच्छा-पूर्वक कभी भी सहयोग प्राप्त नहीं किया जा सकता, जबतक कि वह अहिंसा के सिद्धांत पर आधार नहीं रखता। इस सम्बन्ध में जिस बात की ज़रूरत है वह सिर्फ़ यही कि ब्रिटिश राजनैतिक अधिकारियों में मानसिक क्रान्ति होनी चाहिए, या और भी स्पष्ट शब्दों में इस समय जो सबसे बड़ी ज़रूरत है वह यह कि युद्ध के मौक़े पर जनसत्ता के प्रति जो घोषणा की गई है, और जो अब भी ब्रिटिश प्लेटफार्म से दोहराई जा रही है, उसे ईमानदारी के साथ अमल में लाया जाये।

"अब सवाल यह है कि क्या ब्रिटेन हिन्दुस्तान की अनिच्छा होने पर भी उसे युद्ध में घसीटेगा, या वह सच्ची जनसत्ता की रक्षा के लिए हिन्दुस्तान से इच्छुक मित्र-

राष्ट्र के रूप में सहायता प्राप्त करना चाहेगा ? काँग्रेस का समर्थन ब्रिटेन और फ्रांस के लिए नैतिक दृष्टि से सबसे महत्त्वपूर्ण होगा। क्योंकि काँग्रेस के पास सैनिक तो हैं नहीं, जिन्हें वह दे सके। काँग्रेस तो हिंसात्मक तरीक़े से नहीं, बल्कि अहिंसात्मक तरीक़े से लड़ती है, भले ही उसकी वह अहिंसा कितनी ही अपूर्ण या अपरिमार्जित क्यों न हो।"
'हरिजन-सेवक', २३ सितम्बर, १९३९.

: ५ :

हिन्दुस्तान और वर्तमान युद्ध

[वर्तमान यूरोपीय युद्ध, ब्रिटिश सरकार की नीति और भारत की स्थिति का सिंहावलोकन करते हुए पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने कांग्रेस-कार्यसमिति के वक्तव्य के बाद निम्नलिखित लेख प्रकाशित किया—सं०]

"घटना-चक्र तेजी से चल रहा है। अदम्य प्रेरणा उसे आगे बढ़ाती है और एक घटना दूसरी से आगे बढ़ जाती है। भौतिक शक्तियाँ दुनिया को इधर-उधर दौड़ा रही हैं और उन आयोजनाओं को घृणा की दृष्टि से देख रही हैं जिन्हें अधिकार-प्राप्त लोग चलाना चाहते हैं। आदमी और औरतें भाग्य के हाथ के खिलौने हो रहे हैं और लड़ाई के उबलते भँवर में खिंचे आ रहे हैं। हम सब किधर जायँगे, और इस संघर्ष का जिसमें कि राष्ट्र अपनी सत्ता बनाए रखने के लिए बेतहाशा लड़ रहे हैं, क्या होगा, यह कोई नहीं कह सकता। फिर भी हम दुनिया के अपने अध्ययन से कह सकते हैं कि दुनिया हमारी आँखों के सामने नष्ट हुई जा रही है। आगे क्या होगा, यह कोई नहीं जानता।

"दुनिया के इस महत्वपूर्ण दुखान्त नाटक में हिन्दुस्तान क्या भाग लेगा ? कांग्रेस की कार्यसमिति ने प्रभावशाली और गौरवपूर्ण शब्दों में वह मार्ग बता दिया है, जिस पर हमें चलना है। हालांकि अन्तिम निश्चय अभीतक नहीं हुआ है, फिर भी निश्चय करने वाले बुनियादी सिद्धांत बता दिये गए हैं। बुनियादी फैसला तो पहिले ही होगया है और मौजूदा हालतों के अनुसार उसे कैसे अमल में लाया जाय, यही बात अभी तय करने के लिए है। उसका अमल में लाना अब तो इस बात पर निर्भर है कि कहांतक उन बुनियादी सिद्धान्तों को ब्रिटिश सरकार स्वीकार करती है और अमल में लाती है। संक्षेप में, हिन्दुस्तान अब कभी भी इस बात पर राजी नहीं हो सकता कि वह साम्राज्य का एक भाग रहे, न वह यह चाहेगा कि उसे गुलाम राष्ट्र माना जाय जो दूसरों के हुक्म पर नाचता फिरे। चाहे शांति हो या युद्ध, हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र राष्ट्र की हैसियत से काम करने का हक़ होना चाहिए।

"हाल ही के इतिहास में कोई भी चीज इतने अचरज की नहीं है जितना कि लड़ाई के पहले ब्रिटिश-सरकार का पूरी तरह से दिवालियापन है। यह सचाई है

साथ कहा जा सकता है कि अपनी ही नीति से उसने अपनी सारी मुसीबतें अपने और दुनिया के ऊपर बुलाई हैं। मंचूरिया, एबिसीनिया, चेकोस्लोवाकिया, स्पेन और पिछले साल सोवियट रूस के साथ किया गया अपमानजनक व्यवहार, इन सबके कारण धीरे-धीरे विश्वसंकट पास-से-पास आगया है और अब हम सबको उस संकट में डूबना पड़ा है। इंग्लैण्ड बहादुरी और दृढ़ता के साथ संकट का मुकाबिला कर रहा है; लेकिन उसे अपनी पुरानी नीति के भारी बोझ को भी तो उठाना है और उसी नीति को ध्यान में रखकर उसने प्रजातन्त्र और आजादी के बारे में जो घोषणा की है उसका कोई मूल्य नहीं है। अब भी उस बोझ को उतार फेंकने का और साम्राज्यवादी परम्परा को छोड़ने का उसे मौका दिया गया है। इस तरह सब राष्ट्र एक हैसियत से सबकी आजादी के ध्येय की तरफ बिना रुकावट के बढ़ें, इसके अलावा दूसरा रास्ता नहीं है। क्या ब्रिटिश-सरकार इतनी बुद्धिमान और महान् है कि राज़ी से इस रास्ते पर श्रद्धापूर्वक चलेगी ?

"अबतक तो उसने बुद्धिमानी का बहुत ही अभाव दिखाया है और हिन्दुस्तान के सम्बन्ध में कुछ ऐसी कार्रवाइयां भी की हैं जो भारतीयों की इच्छा के एकदम प्रतिकूल हैं। क्या वह सोचती है कि वह जनता जिसमें स्वाभिमान है और जिसे अपनी शक्ति का ज्ञान है, ऐसे व्यवहार को स्वीकार कर सकती है ? हिन्दुस्तान अब विदेशी सत्ता के हुक्म पर चलने के लिए न खींचा जा सकता है, न बाध्य किया जा सकता है। समय आगया है कि साम्राज्य की भावना का अन्त कर दिया जाय और स्वतंत्र राष्ट्रों की मित्रता और सहयोग प्राप्त किया जाय। बराबरी की हैसियत की शर्त पर हिन्दुस्तान को स्वतन्त्र देश माना जाना चाहिए और वैसा ही उसके साथ व्यवहार होना चाहिए। ऐसा न किया गया तो उससे संघर्ष होगा और वह सब राष्ट्रों के लिए बदक़िस्मती का बायस होगा।

"दूसरे आदमियों की तरह, हमारे अपने आदमियों के लिए भी यह भारी परीक्षा का समय है। अगर हम इस परीक्षा में असफल हुए तो पीछे रह जायँगे और दूसरे आग बढ़ जायँगे। हम इस दल या उस दल, यह या वह जमात या मजहबी दल, उग्र या नरम पक्ष की परिभाषा में नहीं सोच सकते। सोचना भी नहीं चाहिए। हिन्दुस्तान और दुनिया की आजादी के महान लक्ष्य के लिए राष्ट्रीय संगठन की इस समय जरूरत है। अगर हम अपने मामूली कलहों को जारी रक्खें, अपने मतभेदों पर जोर दें, एक-दूसरे में बुरे हेतुओं की आशंका करें, और किसी दल या पार्टी के लिए फायदा उठाने की कोशिश करें, तो उससे हमारा ही छोटापन जाहिर होता है, जबकि बड़े मसले खतरे में हैं। उससे तो हिन्दुस्तान और हिन्दुस्तानियों को हानि ही पहुँचाई जाती है।

"कांग्रेस की कार्यसमिति ने हमें मार्ग बताया है। भारत ने आवाज उठाई है, और उसकी पुकार ने हमारे हृदयों में प्रतिध्वनि पैदा की है। हम सबको उसीपर चलना चाहिए और इस संकट के समय में आवाज़कशी नहीं करनी चाहिए। हरेक कांग्रेसजन

को चाहिए कि सोच-समझकर कुछ कहे या करे, ताकि वह कुछ ऐसा न कहे या करे जिससे राष्ट्र के इरादे में कोई कमजोरी आवे या उससे कांग्रेस की शान कम हो। हम सब एक हैं, एकसाथ बोलते हैं और हिन्दुस्तान के लिए, जिसके प्रेम से अबतक हमने प्रेरणा पाई है और जिसकी सेवा हमारा परम सौभाग्य रहा है, हम एकसाथ काम करेंगे। भविष्य हमें इशारा कर रहा है। आइए, आजादी के ध्येय की ओर हम सब एक साथ बढ़ें !"

२१ सितम्बर, १९३९

: ६ :

नया अध्याय खोलिए

[२८ सितम्बर १९३९ को भारत मंत्री, लार्ड जेटलैण्ड ने लार्ड-सभा में भाषण दिया था जिसमें अन्य बातों के साथ कांग्रेस की युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों को स्पष्ट करने की ब्रिटिश-सरकार से की गई माँग को उन्होंने 'असामयिक' बताया और कहा कि कांग्रेस प्रातिनिधिक संस्था नहीं है। लार्ड जेटलैण्ड के इसी भाषण पर महात्मा गान्धी ने वर्धा से निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया—सं०]

"लार्ड-सभा में भारतीय मामलों पर जो बहस हुई है उनकी 'रायटर' द्वारा तैयार की गई संक्षिप्त रिपोर्ट की पहिले से भेजी गई प्रति मुझे दिखलाई गई है। शायद इस समय मेरे चुप रहने से भारत और इंगलैण्ड दोनों की कुसेवा होगी। मैं इस बात के लिए तैयार नहीं था कि लार्ड-सभा की बहस में भारत के प्रति अप्रिय तुलनायें की जायँगी और बहस को इस प्रकार से चलाया जायगा। मेरा दावा है कि कांग्रेस पूर्ण प्रातिनिधिक संस्था है। किसीके विरुद्ध बिना कुछ कहे हुए कांग्रेस के सम्बन्ध में यह कहा जा सकता है कि यह वह संस्था है कि जिसने आधी सदी से अधिक समय से बगैर किसी प्रतिद्वन्द्वी संस्था के मुकाबिले के भारतीय जनता की समस्त श्रेणियों और सिद्धान्तों का प्रतिनिधित्व किया है। कांग्रेस का एक भी ऐसा कोई स्वार्थ नहीं है, जो मुसलमानों या देशी रियासतों की प्रजाओं के हित के विरुद्ध हो। पिछले कुछ वरसों ने यह पूरे तौर से सिद्ध कर दिया है कि कांग्रेस निश्चयात्मक रूप से देशी राज्यों की प्रजाओं के हितों का प्रतिनिधित्व करती है। यह वह संस्था है जिसने यह कहा है कि ब्रिटेन के क्या इरादे हैं, यह स्पष्ट रूप से बतला दिया जाय। अगर अंग्रेज लोग सभी देशों की स्वतन्त्रता के लिए लड़ रहे हैं, तो उनके प्रतिनिधियों को जितना अधिक सम्भव हो उतना स्पष्ट शब्दों में यह कहना होगा कि जिस उद्देश्य के लिए लड़ाई लड़ी जा रही है, उसमें भारत की स्वतन्त्रता भी आवश्यक रूप में शामिल है। ऐसी स्वतन्त्रता में क्या रहेगा, इसका निर्णय भारतीय लोग ही बस कर सकते हैं। निस्सन्देह लार्ड जेटलैण्ड के लिए यह शिकायत करना अनुचित है, हालांकि उन्होंने बहुत शिष्ट शब्दों में शिकायत की है कि कांग्रेस ने ब्रिटिश इरादों की स्पष्ट

घोषणा करने की बात ऐसे समय पर उठाई है जिस समय कि ब्रिटेन जिन्दगी और मौत की लड़ाई में लगा हुआ है। मेरा यह कहना है कि कांग्रेस ने इस तरह की घोषणा करने की बात कहकर कोई आश्चर्यजनक या सम्मानरहित बात नहीं की है। केवल स्वतन्त्र भारत की ही सहायता मूल्यवान होगी और कांग्रेस को यह जानने का पूरा हक़ है कि वह जनता के पास जाये और उससे कहे कि लड़ाई के खत्म होने पर भारत का पद उसी स्वतन्त्र देश का-सा होना निश्चित है जिस तरह का कि ग्रट-ब्रिटेन का पद है। इसलिए अंग्रेज लोगों के मित्र की हैसियत से मैं अंग्रेज राजनीतिज्ञों से अपील करता हूँ कि वे पुराने साम्राज्यवादियों की भाषा भूल जायँगे और सब लोगों के लिए, जो साम्राज्य के बन्धन में रहते आये हैं, एक नया अध्याय आरम्भ करेंगे।"

'हरिजन-सेवक', ७ अक्तूबर, १९३९.

: ७ :

पंडित जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य

[कांग्रेस युद्ध-उपसमिति के प्रधान पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लार्ड ज़ेटलैण्ड के वक्तव्य पर इलाहाबाद से निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया—सं०]

"लार्ड-सभा में लार्ड ज़ेटलैण्ड ने जो बयान दिया, उसकी रिपोर्ट मैंने बड़े दुःख के साथ पढ़ी। मैं इस मामले में उनके साथ किसी बहस में नहीं पड़ना चाहता। कांग्रेस-कार्यसमिति ने कांग्रेस की स्थिति साफ जाहिर करदी है। लेकिन लार्ड ज़ेटलैण्ड ने इस मामले में कांग्रेस-कार्यसमिति के उदाहरण का अनुकरण नहीं किया।

"हम लोगों ने युद्ध व शान्ति के विस्तृत उद्देश्यों को अपने सामने रखते हुए भारत की समस्या पर गौर करने की कोशिश की और बाद में ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की कि वह साफ ऐलान करे कि इस लड़ाई में उसके उद्देश्य क्या हैं और जहाँ-तक वर्तमान काल में सम्भव हो, वह उन्हें अमल में भी लावे।

"कार्यसमिति और कांग्रेस नेताओं ने यह साफ कर दिया था कि हम कोई सौदा नहीं करना चाहते और न ब्रिटेन की मुसीबत से फ़ायदा ही उठाना चाहते हैं। लेकिन हमारी राय में भारत और विश्व की दृष्टि से यह लाज़मी है कि युद्ध के उद्देश्यों की खुलासा व्याख्या करदी जाय और लोगों को उनकी असलियत पर यकीन दिला दिया जाय। ताज्जुब है कि ऐसी प्रार्थनाओं को भी 'असामयिक' बताया जाता है। क्या हम तबतक इन्तज़ार करें, जबतक कि वह विनाशक युद्ध समाप्त नहीं हो जाता, जिसके उद्देश्य जाने बिना ही हमें कहा जा रहा है कि हम उसमें हिस्सा लें। क्या हज़ारों आदमी बिना यह जाने ही अपनी जानें लड़ा दें कि उनके जान देने का निश्चित कारण क्या है?

"पिछले ज़माने में जितने भी युद्ध लड़े गये, उनमें पहले ही यह ऐलान कर

दिया जाता रहा कि अमुक लड़ाई अन्याय, आक्रमण और बल-प्रयोग के खिलाफ़ न्याय, प्रतिष्ठा और सचाई को स्थापित रखने के लिए लड़ी जा रही है। लेकिन जब लड़ाई खत्म हुई तो कोई परिवर्तन न हुआ और पहले के ऐलान तक को भुला दिया गया। सरकारों ने बीती घटनाओं से शिक्षा नहीं ली; इसका ज्वलंत उदाहरण गत यूरोपीय महायुद्ध था। क्या मानवता को इस द्वेष और हिंसात्मक रास्ते पर रौंदा जाया करेगा और क्या हम हिंसा और आक्रमण के शिकार बने रहेंगे? अगर ऐसा ही है, तो गत यूरोपीय महायुद्ध की तरह वर्तमान युद्ध में भी दिये गए बलिदान बेकार साबित होंगे।

"यह सवाल केवल भारत से ही नहीं; बल्कि समूचे संसार और उन लोगों से सम्बन्ध रखता है जो मानवीयता के भविष्य में आशा रखते हैं और जो चाहते हैं कि युद्ध के तमाम कारणों व मानवीय शोषण से यह संसार मुक्त हो जाय। अतएव कांग्रेस-कार्यसमिति ने न केवल भारत, अपितु प्राणीमात्र की तरफ से ब्रिटिश सरकार से प्रार्थना की थी कि वह इस स्थिति को साफ़ करदे और इस तरह मनुष्य-जाति के निराशापूर्ण हृदयों में आशा का संचार करदे। क्योंकि हमारा सम्बन्ध सीधा भारत से था, इसीलिए हम यह जानना चाहते थे कि वर्तमान और भविष्य में उन उद्देश्यों को भारत में कैसे कार्यान्वित किया जायगा। इतना ही नहीं, हम यह भी जानना चाहते थे कि यूरोप के देशों, चीन और अन्यान्य उपनिवेशों के सम्बन्ध में भी यह उद्देश्य कहाँतक लागू होंगे, क्योंकि समूचे संसार में ही साम्राज्यवाद का बोलबाला है।

"हमने फासिज्म और उसकी कारगुजारियों की पूरे जोर के साथ निन्दा की है, लेकिन यदि फ़ासिज्म की निन्दा करनेवाला साम्राज्यवाद का गुणगान करे, तो वह एकदम वाहियात बात होगी।

"लार्ड ज़ेटलैण्ड कहते हैं कि यदि कांग्रेस ने भारत के अनेक प्रान्तों का शासन-प्रबन्ध छोड़ दिया तो यह ज़बर्दस्त बदकिस्मती होगी। मैं सहमत हूँ। मगर हमारे और दूसरे लोगों के लिए यह भी दुर्भाग्य की बात होगी, यदि कांग्रेस सरकारें उन आदर्शों को भूल जायं, जिनकी पहले ही से घोषणा की जा चुकी है, और वह सार्वजनिक समर्थन खो बैठें, जिसके कारण उनकी सत्ता बनी हुई है। और इस तरह इच्छा न होते हुए भी उस नीति के, खिलौने बन जायें, जिसे भारतीय जनता नापसन्द करती है। यह भी एक भारी बदक़िस्मती की बात होगी अगर यह युद्ध बिना उद्देश्यों को स्पष्ट किये चलता रहा और उसका नतीजा भयानक बरबादी और आतंक ही नहीं, बल्कि उन प्रणालियों को शक्तिशाली बनाना हुआ, जिनका स्वतंत्रता और जनतन्त्र के नाम पर त्याग कर दिया गया है।

"कांग्रेस-कार्यसमिति के वक्तव्य के सम्बन्ध में कुछ भी क्यों न कहा जाय, लेकिन समिति पर यह इल्जाम नहीं लगाया जा सकता कि उसने जल्दबाजी से काम लिया। समिति ने कुछेक स्पष्ट प्रश्न तैयार किए, जिनका उत्तर मांगा गया। लार्ड ज़ेटलैण्ड उन प्रश्नों का उत्तर क्यों नहीं देते? विश्व की इस वर्तमान अग्नि परीक्षा

में जब कि मौजूदा सभ्यता तक खतरे में है, कोई भी जिम्मेदार व्यक्ति उन महत्व-पूर्ण सवालों की उपेक्षा नहीं कर सकता, फिर चाहे वह अंग्रेज़ या भारतीय कोई भी क्यों न हो। लेकिन उपेक्षा करने की कोशिश करने से ही लोगों के दिलों में शक पैदा हो जाता है। ऐसे समय में जब कि बड़े मसले खतरे में हैं, किसीको भी मामूली सौदा करने में नहीं पड़ना चाहिए।

"आज इन प्रश्नों पर २० साल पहले के रंग में नहीं सोचा जा सकता, क्योंकि संसार बदल चुका है, भारत बदल चुका है। और अगर कोई इन सचाइयों को भूल जाता है तो इससे साबित होता है कि वह असलियत को नहीं समझता। इससे न केवल भारत व इंग्लैण्ड का, बल्कि समूचे संसार का नाश हो जायगा।

"यद्यपि संसार बदल चुका है और निकट भविष्य में और भी शीघ्रता से बदल जायगा, लेकिन लार्ड ज़ेटलैण्ड तो कल के, जो बीत चुका है, रंग में बोल रहे हैं। वह अपना यह भाषण आज से २० वर्ष पहले दे सकते थे, अब तो बहुत देर हो गई। अब हमारे लिए, चाहे हम इंग्लैण्डवासी हैं या हिन्दुस्तानी, परिवर्तन के तूफ़ान को रोकना नामुमकिन है। अगर हम अकलमन्द हैं तो हम उस पर काबू पाकर उसकी दिशा अवश्य बदल सकते हैं।

"मैं यह फिर जोरों के साथ दोहरा देना चाहता हूँ कि हमने सौदा करने की भावना से कोई मांग पेश नहीं की। जिम्मेदार भारतीय होने के नाते हमारा यह कर्तव्य है कि हम भारत की स्वाधीनता और उसकी खुशहाली पर विचार करें। कांग्रेस का भी यही आवश्यक कार्य है। और वह उसे भूल नहीं सकती। लेकिन आज तो हमने भारत की समस्या पर विशाल दृष्टि से विचार करने की कोशिश की है—विशेषकर इस गतिशील काल में; क्योंकि हमें यक़ीन हो गया है कि बिना विश्व की समस्या का ख़याल किये किसी भी समस्या का हल नहीं निकाला जा सकता। अगर संसार की स्वतन्त्रता और खुशहाली के लिए आवश्यक हो तो भारत-वर्ष अपने कुछेक राष्ट्रीय लाभों का त्याग कर सकता है, क्योंकि हम यह महसूस करते हैं कि यदि किसी दूसरे को नुकसान पहुंचाकर हम कोई राष्ट्रीय लाभ उठावें तो वह स्थिर न होगा। लेकिन हमें विश्व की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध में यकीन दिला दिया जाना चाहिए। उसी हालत में युद्ध हमारे लिए कुछ अर्थ रक्खेगा; हमारे दिल और दिमाग़ को छुएगा, क्योंकि उसी हालत में एक ऐसे ध्येय के लिए जो कि हमारे ही वास्ते नहीं, बल्कि तमाम दुनिया के लिए अच्छा है, हम लड़ेंगे और कष्ट उठावेंगे।

"चूंकि हम महसूस करते हैं कि भारत की तरह इंग्लैण्ड में भी कुछ लोग ऐसे हैं जो अपने सामने विश्व-सम्बन्धी आदर्श रखते हैं, इसलिए हमने उन्हीं आदर्शों की पूर्ति के लिए अपना सहयोग पेश किया है। अगर यह नहीं है, तो सवाल यह है कि हम किसके लिए लड़ें? फिर हम उस अमानवीय संघर्ष में क्यों पड़ें, जो अनेक साम्राज्यवादों में अपनी रक्षा के लिए छिड़ा हुआ है और अनिच्छा से साम्राज्य उस नीति के हाथ के

खिलौने हो रहे हैं, जिसे वे और हम नापसंद करते हैं। मेरा खयाल है, वे एड़ी से चोटी तक का ज़ोर लगा लें, उन्हें सफलता नहीं मिलेगी। अगर इस हालत में भी अक्लमन्दी से काम न लिया गया तो बहुत देर हो जायगी और भारतवर्ष किसी भी साम्राज्यवादी संघर्ष में हिस्सा न लेगा। स्वतन्त्र और सन्तुष्ट भारत ही उन आदर्शों के लिए संघर्ष कर सकता है, जिनकी स्पष्ट घोषणा की जाय और जिन्हें कार्यान्वित किया जाय।"

२९ सितम्बर, १९३९

: ८ :

पंडित जवाहरलाल नेहरू का सन्देश

[पंडित जवाहरलाल नेहरू ने लन्दन के 'न्यूज़ क्रानिकल' पत्र के लिए निम्नलिखित सन्देश दिया—सं०]

"हिंसा और अमानुषिक युद्ध ने यूरोप को अपने कब्जे में कर रक्खा है और सम्पूर्ण संसार की सभ्यता खतरे में है। शस्त्रास्त्रों के संघर्ष के पीछे सिद्धान्तों और उद्देश्यों का संघर्ष छिपा हुआ है और दुनिया का भविष्य अनिश्चित प्रतीत हो रहा है? आज इतिहास का निर्माण न केवल युद्ध-क्षेत्र में हो रहा है, वरन् मनुष्यों के दिमाग में भी हो रहा है और हमारे सामने प्रमुख प्रश्न यह है कि क्या यह इतिहास प्राचीन काल के इतिहास से भिन्न होगा और क्या यह भयानक युद्ध उन परिवर्तनों को लाने में समर्थ होगा जो कि युद्ध के कारणों और मानव के पतन को ही सदा के लिए मिटा देंगे? भारत के लिए, जोकि आज़ादी से प्रेम और युद्ध और हिंसा से घृणा करता है, यह प्रश्न बड़े महत्त्व का है। उसने फ़ासिज्म के सिद्धान्तों और तरीक़ों की निंदा की है और नाज़ी आक्रमण तथा वर्बरता में अपने प्रिय सिद्धान्तों का हनन देखा है। उसके लिए शान्ति का अर्थ है आज़ादी और प्रजातन्त्र। और वह एक राष्ट्र पर दूसरे राष्ट्र के प्रभुत्व का अन्त चाहता है। अतएव भारत ने मंचूरिया, एबिसीनिया और चेकोस्लोवाकिया की आज़ादी पर किये गए आक्रमणों का विरोध किया और उसे स्पेन की भयानक घटनाओं तथा पोलैण्ड पर किये गए नाज़ी आक्रमण से बेहद दुःख हुआ है। इसलिए शान्ति आज़ादी की किसी भी नई प्रणाली की स्थापना के लिए भारत सहर्ष अपने सम्पूर्ण साधनों से सहायता करेगा।

"यदि युद्ध का उद्देश्य इसी प्रकार की शान्ति है तो युद्ध और शान्ति के उद्देश्यों की स्पष्ट घोषणा होनी चाहिए और उन्हीके अनुसार कार्य होना चाहिए। ऐसा करने में आनाकानी का अर्थ यह होगा कि उद्देश्य स्पष्ट नहीं है और जो कुछ स्पष्टरूप से कहा जा रहा है उसमें कोई गम्भीरता नहीं है। हम इससे उन व्यक्तियों की आशंकाओं को दूर करना चाहते हैं जिनको इस बात का कटु अनुभव है कि युद्ध आदर्शों का अन्त करनेवाले होते हैं और आखिर में उनका अन्त साम्राज्यवाद के हितों में होता है। यदि यह युद्ध

प्रजातन्त्र और आत्म-निर्णय के लिए तथा नाज़ी आक्रमण के विरुद्ध लड़ा जा रहा है तो निश्चय ही उसका अन्त भूमि पर क़ब्ज़ा किये जाने, हर्जाना वसूल करने तथा उपनिवेशों की जनता पर साम्राज्यवादी प्रणाली का दबाव डालने में नहीं होना चाहिए।

"इन्हीं भावनाओं से प्रेरित होकर कांग्रेस ने ब्रिटिश सरकार को युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों को स्पष्ट करने का निमंत्रण दिया है, विशेषतया उन उद्देश्यों को स्पष्ट करने का जिनका कि भारत और उसमें प्रचलित साम्राज्यवादी प्रणाली से निकट सम्बन्ध है। भारत साम्राज्यवाद की रक्षा के लिए किसी भी युद्ध में शामिल नहीं हो सकता, लेकिन आज़ादी की लड़ाई में वह ज़रूर शामिल होगा। यद्यपि भारत के साधन अपरिमित हैं, परन्तु सबसे अधिक महत्वपूर्ण उसकी शुभकामना तथा नैतिक सहयोग है। यह भारत की ओर से कोई छोटी बात नहीं है; क्योंकि इस प्रकार वह भारत और ब्रिटेन के बीच चलने वाले एक शताब्दी के संघर्ष को बन्द कर रहा है। केवल एक स्वतंत्र तथा समानाधिकार रखने वाला भारत अपनी स्वेच्छा से सहयोग दे सकता है। जबतक कि यह परिवर्तन नहीं हो जाता, यह युद्ध हमारा युद्ध नहीं है। एक लोकप्रिय युद्ध के लिए सार्वजनिक सहयोग होना चाहिए और जनता को उससे होनेवाले लाभ का विश्वास होना चाहिए। हमारे ऊपर लादा गया युद्ध केवल विरोध तथा विपरीत भावनायें पैदा करेगा।

"इस अवसर पर हमें भारत की आज़ादी के पहले सब युद्धों को अपने सामने रखना है। हमारा वर्तमान विधान भी हमारी इच्छा के विरुद्ध हमारे ऊपर लादा गया है और उसने हमारे विरोध को बराबर जाग्रत रक्खा है। यह विरोध अधूरे अस्पष्ट वायदों से शान्त नहीं हो सकता। इस ऐतिहासिक अवसर का उपयोग भारत की आज़ादी तथा उसके स्वयं अपना विधान तैयार करने के अधिकार को स्वीकृत करके होना चाहिए। इससे कुछ भी कम का अर्थ इस अवसर को खो देना होगा। भारत में संघर्ष बना रहेगा। इसलिए पहला क़दम भारत की आज़ादी की घोषणा की दिशा में उठना चाहिए। इसके बाद जहांतक सम्भव हो सके भारत के शासन तथा युद्ध में सहयोग का उत्तरदायित्व भारत पर ही छोड़ देने की चेष्टा होनी चाहिए। उसी दिशा में जनता की सहानुभूति प्राप्त करने के उपयुक्त वातावरण उत्पन्न हो सकता है। अभी भी कठिनाइयाँ उत्पन्न हो रही हैं, सार्वजनिक कार्यकर्ता गिरफ्तार किये जा रहे हैं और सार्वजनिक तथा मजदूरों की कार्रवाइयों पर रोक लगाई जा रही हैं। यह वही पुराना तरीक़ा है जो कि गुज़रे दिनों में असफल साबित हुआ है और जिसकी भावी असफलता भी निःसन्देह है।"

७ अक्तूबर, १९३९.

कांग्रेस-महासमिति का युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव

[वायसराय से कांग्रेस सभापति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद, युद्ध-उपसमिति के अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू तथा कांग्रेस-पार्लमेण्टरी-उपसमिति के अध्यक्ष सरदार पटेल और महात्मा गांधी की मुलाक़ातों के बाद कांग्रेस-महासमिति ने वर्धा में हुई अपनी बैठक में युद्ध-सम्बन्धी निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया——सं०]

"यूरोप की युद्ध-घोषणा ने संसार और हिन्दुस्तान के लिए अत्यन्त गम्भीर अन्तर्राष्ट्रीय स्थिति पैदा कर दी है। विश्व-संकट से इस समय हिन्दुस्तान की जनता के पथ-प्रदर्शन की भारी ज़िम्मेदारी रहने के कारण, कांग्रेस-महासमिति ने इस गंभीर स्थिति पर विचार करते हुए, कांग्रेस की पूर्व घोषणाओं और सिद्धान्तों के आधार पर अपने मार्ग का निर्णय किया है। कांग्रेस का ध्येय है हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता की प्राप्ति, और जनतन्त्र शासन-प्रणाली की स्थापना, जिसमें समस्त अल्पसंख्यक संप्रदायों के अधिकार तथा स्वार्थ अक्षुण्य और सुरक्षित हों। अपने इस ध्येय को सामने रखकर कांग्रेस ने अपने संघर्षों में जिन साधनों को अपनाया है, वे शान्तिपूर्ण और वैध रहे हैं, और कांग्रेस ने युद्ध और हिंसा को त्रास और सभ्यता तथा प्रगति के विरुद्ध समझा है। कांग्रेस ने समस्त साम्राज्यवादी युद्धों और एक देश के दूसरे देश पर प्रभुत्व कायम करने के विरुद्ध ख़ासतौर से घोषणा की है। युद्ध के सम्बन्ध में कांग्रेस के बार-बार घोषणा करने के बावजूद भी ब्रिटिश सरकार ने हिन्दुस्तान को, हिन्दुस्तानियों की सलाह के बिना ही, 'युद्ध में शामिल' देश घोषित कर दिया है, और बहुत जल्द ऐसे कानून बना दिए हैं, जिनका कि उन पर बहुत व्यापक और गहरा असर पड़ता है, और जिनसे प्रांतीय सरकारों के अधिकार काफी सीमित हो जाते हैं, और उन पर प्रतिबन्ध लग जाता है। यह होते हुए भी, कांग्रेस-महासमिति जल्दबाजी में और ब्रिटिश सरकार को अपने युद्ध और शान्तिकाल के उद्देश्यों को स्पष्ट करने का——जिनमें हिन्दुस्तान का ख़ासतौर से उल्लेख हो——पूरा अवसर दिये बिना कोई निर्णय नहीं करना चाहती।

"युद्ध के सम्बन्ध में कांग्रेस-कार्यसमिति ने जो वक्तव्य १४ सितम्बर, १९३९ को जारी किया है कांग्रेस-महासमिति उसे मंजूर करती है। और उसमें ब्रिटिश सरकार को युद्ध और शांति के उद्देश्यों को स्पष्ट करने के लिए जो निमन्त्रण दिया गया है उसे यह समिति फिर से दोहराती है। फासिस्टवाद और नाजियों के हमले की निन्दा करते हुए समिति का यह विश्वास है कि शांति और स्वतन्त्रता तभी कायम की जा सकती है, और तभी उसे सुरक्षित रक्खा जा सकता है, जबकि सभी साम्राज्यान्तर्गत देशों को स्वाधीनता दे दी जाय, और साम्राज्यवादी नियंत्रण हटाकर उनके सम्बन्ध में स्वभाग्य-निर्णय के सिद्धान्त से काम किया जाय। ख़ासकर, हिन्दुस्तान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर देना चाहिए। और इसपर अभी ही, जहां तक हो सके,

ज्यादा-से-ज्यादा विस्तृत रूप में अमल शुरू कर दिया जाय।

"कांग्रेस-महासमिति उत्सुकता के साथ विश्वास करती है कि ब्रिटिश सरकार अपने युद्ध और शान्ति सम्बन्धी उद्देश्यों के बारे में जो कोई वक्तव्य प्रकाशित करेगी, उसमें यह घोषणा कर देगी।

"समिति नए सिरे से यह ऐलान कर देना चाहती है कि हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता, जनतन्त्र-प्रणाली, एकता और सब अल्पसंख्यक संप्रदायों के अधिकारों की स्वीकृति तथा संरक्षण के आधार पर होनी चाहिए, जिसके लिए कि कांग्रेस हमेशा से ही वचनबद्ध है।

"कांग्रेस कार्यसमिति ने जो युद्ध-उपसमिति बनाई है यह समिति उसे मंजूर करती है, और कार्यसमिति को अधिकार देती है कि वह इस प्रस्ताव को और अपने युद्ध-सम्बन्धी वक्तव्य को अमल में लाने के लिए आवश्यक उपायों से काम ले।"

१४ अक्तूबर, १९३९.

: १० :

अनुशासन बनाये रहें

[गत १४ अक्तूबर के कांग्रेस-महासमिति के युद्ध-सम्बन्धी प्रस्ताव पर महात्मा गांधी ने नीचे लिखा वक्तव्य दिया—सं०]

"मेरा खयाल है कि यूरोप की स्थिति से सम्बन्ध रखनेवाला कांग्रेस-महासमिति का प्रस्ताव बुद्धिमत्ता तथा नम्रतापूर्ण है। प्रस्ताव के लिए यह जरूरी था कि वह स्पष्ट घोषणा-सम्बन्धी कांग्रेस की माँग को दोहराये। प्रस्ताव की अच्छाई इसमें है कि उसने घोषणा के लिए समय की कोई क़ैद नहीं लगाई है। यह मार्के की बात है कि प्रस्ताव के समर्थकों और विरोधियों में तीन तथा एक का अनुपात था। इस बात की आशा है कि परिस्थिति के हल के लिए जिस मित्रतापूर्ण तरीक़े से कांग्रेस काम कर रही है उसे ब्रिटिश सरकार उचित महत्व देगी। इस बात की भी आशा है कि हिन्दुस्तान में रहनेवाले यूरोपियन भी कांग्रेस का समर्थन करेंगे। किन्तु सबसे अधिक सहायता स्वयं कांग्रेसवालों से ही मिल सकती है। अगर उन सबने मिलकर एकसाथ काम न किया, तो बाहरी सहानुभूति या मदद भी काम न देगी।

"मुझे ऐसा मालूम होता है कि कुछ कांग्रेसी युद्ध-विरोधी अपना रुख प्रदर्शित करने के लिए आतुर हो उठे हैं। उनका विश्वास है कि लड़ाई साम्राज्यवाद की रक्षा के लिए लड़ी जा रही है। ऐसे व्यक्तियों को मेरी यह सूचना है कि कांग्रेस के निश्चय का विरोध करके वे एक आम उद्देश्य को पूरा न होने देंगे। कांग्रेस समिति ने जिस तरह से अपना रुख ज़ाहिर किया है, वही रुख ज़ाहिर करने का उसका एकमात्र रास्ता था। ऐसे व्यक्तियों को काँग्रेस-महासमिति में अपने विचार प्रकट करने का मौका था। अब कांग्रेसजनों का यह फर्ज़ है कि वे कोई प्रत्यक्ष कार्रवाई उस समय

अपनी इच्छा को कार्यान्वित कैसे करें। और भी वहुत सी आवश्यक वातों की हमने जांच की और उनकी अच्छाई और बुराई को सामने रखने में हममें से किसीने भी हिचकिचाहट नहीं की। उन वहुत सी वातों की आज विस्तार से मैं समीक्षा नहीं करूंगा। हाँ, इतना कहूंगा कि भारत के वड़े दलों और देशी नरेशों के प्रतिनिधियों से हुई वातचीत और उनके विचारों को (जिनपर सब सम्मत नहीं हैं) देखते हुए मेरी राय में सही हल यह होगा कि एक परामर्श-दल कायम किया जाय जिसमें ब्रिटिश भारत के प्रमुख राजनैतिक दलों तथा देशी नरेशों के प्रतिनिधि शामिल हों। गवर्नर-जनरल इसके अध्यक्ष होंगे और वही उस परामर्श-दल की वैठक वुला सकेंगे। इस दल का काम यह होगा कि युद्ध के स्वरूप और युद्ध की कार्रवाइयों से सम्वन्धित प्रश्नों पर भारतीय लोक-मत का समन्वय किया जाय।

कुछ व्यावहारिक कारणों से इस दल का आकार वड़ा नहीं होगा। लेकिन सरकार की इच्छा है कि यह दल सव पार्टियों का प्रतिनिधित्व करे। इसका पैनल विभिन्न राजनैनिक पार्टियाँ क़ायम करेंगी, उनमें से स्वयं गवर्नर-जनरल कार्यकर्त्ताओं का चुनाव करेंगे और वही उनमें से उन व्यक्तियों को चुनेंगे जो दल की वैठकों में सम्मिलित हो सकेंगे।

इस प्रश्न पर मैं निकट भविष्य में राजनैतिक नेताओं तथा देशी नरेशों से सलाह करूँगा। इसमें मुझे सन्देह नहीं कि इस प्रकार के दल से तथा इस सम्वन्ध में होनेवाली व्यवस्थाओं से देशी रियासतों और ब्रिटिश भारत के युद्ध-चालन के साथ सम्वन्ध स्थापित होने में विशेप सहायता मिलेगी। और मुझे भरोसा है कि सव दलों और हितों के प्रतिनिधियों के इस प्रकार के सम्वन्ध से इस देश के विभिन्न दृष्टिकोणोंवाले व्यापक सम्वन्ध की नींव पड़ेगी जिससे सामूहिक रूप में भारत को भविष्य में वहुत लाभ पहुँचेगा।

: १२ :

निराशाजनक घोपणा

[वायसराय की घोपणा पर महात्मा गांधी ने वर्धा से नीचेलिखा वक्तव्य प्रकाशित किया —सं०]

"वायसराय की घोपणा वड़ी ही निराशाजनक है। यह कहीं वेहतर होता कि ब्रिटिश सरकार ने इस समय कोई घोपणा करने से इन्कार कर दिया होता। वायसराय के लम्वे वक्तव्य से केवल यही मालूम देता है कि पुरानी भेद-नीति वरावर जारी रहेगी। जहांतक मैं देख सकता हूं, कांग्रेस उसका साथ न देगी, और ब्रिटेन का जो युद्ध हेर हिटलर से हो रहा है, उसमें कांग्रेसी भारत अलग रहेगा। वायसराय की घोपणा से यह साफ़ मालूम होता है भारत के लिए लोकतन्त्रवाद न होगा, यदि ब्रिटेन उसे टाल सके। यह वादा किया गया है कि युद्ध का अन्त होने पर एक और गोलमेज

परिषद होगी। पहले की गोलमेज परिषद की तरह उसका भी निष्फल होना जरूरी है। कांग्रेस ने मांगी थी रोटी, पर मिला जवाब में पत्थर !

"मैं यह कहने की हिम्मत नहीं कर सकता कि भारत के लिए भविष्य में क्या होगा। मैं वायसराय या ब्रिटेन के राजनेताओं को दुःखद फल के लिए दोषी नहीं ठहरा सकता। कांग्रेस को फिर अनिश्चित और विषम परिस्थिति में रहना होगा, कब्ल इसके कि वह इतनी काफी शक्तिशाली और शुद्ध हो जाए कि अपने मकसद तक पहुंच सके। मुझे इसमें शक नहीं कि कांग्रेसजन कार्यसमिति के फैसले का इंतजार करेंगे।"

१८ अक्तूबर, १९३९.

: १३ :

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का वक्तव्य

[वायसराय की घोषणा पर पटना से राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया—सं०]

"अब किसी व्यक्ति के लिए सन्देह करने की गुंजाइश नहीं रही है कि ब्रिटिश नीति वही है, जहाँ सदा थी, अर्थात् जनतन्त्र और हमले का प्रतिरोध करने की बड़ी-से-बड़ी बातें भारत के साथ लागू करने के लिए नहीं हैं।

"वायसराय का वक्तव्य अत्यधिक निराशा-जनक है, मगर आश्चर्यजनक नहीं है। यह दुःख की बात है कि ग्रेटब्रिटेन के पक्ष में उत्पन्न सहानुभूति और शुभेच्छा की लहर को शान्त हो जाने दिया गया है और देश को फिर अविश्वास, सन्देह और दुर्भावना की सतह पर छोड़ दिया गया है।" १८ अक्तूबर, १९३९.

: १४ :

पंडित जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य

[वायसराय की घोषणा पर काँग्रेस की युद्ध-उपसमिति के अध्यक्ष पंडित जवाहरलाल नेहरू और मौ० अबुलकलाम आजाद ने निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया—सं०]

"हमने अत्यन्त खेद के साथ वायसराय के वक्तव्य को पढ़ा। यदि ब्रिटिश सरकार की ओर से भारतीय जनता को यही आखिरी जवाब है, तो दोनों के बीच मेल के लिए कोई जगह नहीं है, और हमारे मार्ग सर्वथा अलग-अलग हैं। सारा वक्तव्य उस बात से अछूता है, जिसके लिए भारत, राष्ट्रीय और अन्तर्राष्ट्रीय दृष्टि से, खड़ा है। यह ऐसा वक्तव्य है जो आज से बीस साल पहले असामयिक न होता। आज इसका वस्तुस्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है। इसमें स्वाधीनता, जनतन्त्र या आत्म-निर्णय

का कोई ज़िक्र नहीं है। यहाँतक कि उसमें इस बात का भी औचित्य दिखाने की ज़रूरत नहीं समझी गई है कि भारतीय जनता को उसकी राय के बिना इस युद्ध में क्यों घसीटा गया है।

"वायसराय के वक्तव्य से स्पष्ट मालूम होता है कि ब्रिटिश साम्राज्य और उसका आर्थिक ढाँचा भारत में और बाहर बनाये रखना सरकार का ध्येय है। ब्रिटिश प्रधानमन्त्री का 'अधिक अच्छी अन्तर्राष्ट्रीय प्रणाली' से यही अभिप्राय है कि इस ढाँचे की रक्षा की जाय और इसको क़ायम रक्खा जाय। इसके अलावा इसका यूरोप के लोगों से सम्बन्ध है, एशिया या भारत से नहीं है। भारत वहीं रहेगा, जहाँ आज है। उपनिवेश वहीं रहेंगे। जहाँ आज हैं। इसका अर्थ है कि साम्राज्यवाद को फलता-फूलता रक्खा जाय।

"वायसराय के वक्तव्य से यह सब मालूम होता है और यदि युद्ध का यही उद्देश्य है तो यह कल्पना करना कठिन है कि ब्रिटिश सरकार भी, जैसी कि वह पुराने और गये-गुज़रे युग में पड़ी है, यह आशा कर सकती है कि कोई आत्मसम्मानी भारतीय उसके साथ सहयोग करेगा।

"काँग्रेस द्वारा बढ़ाया मैत्री का हाथ सरकार ने ठुकरा दिया है। सरकार उनका कहाँ तक प्रतिनिधित्व करती है, यह निश्चित करना उनका काम है, मगर हम वायसराय के वक्तव्य पर उसे इंग्लैण्ड का भारत को उत्तर समझ कर विचार करेंगे। हमारा अगला क़दम क्या होना चाहिए, इस विषय में इस स्थिति में हमारे लिए कुछ कहना समय से पहले और अनुचित होगा। इसका निश्चय करना कार्यसमिति का काम है और इस उद्देश्य से कार्यसमिति की बैठक शीघ्र ही होनेवाली है। समय विकट है और उसे हमारी संयुक्त बुद्धिमत्ता, साहस और अनुशासन और पारस्परिक सहिष्णुता की आवश्यकता है। हमें इस समय प्रतिष्ठा और आत्मसंयम से काम करना चाहिए और भारत की आज़ादी की खातिर हम सबको मिलकर एकसाथ आगे बढ़ना चाहिए।"

१८ अक्तूबर, १९३९.

: १५ :

बहुसंख्यकों का फ़र्ज़ी डर

[वायसराय की घोषणा के बाद महात्मा गांधी का अल्पसंख्यकों की समस्या पर निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुआ—सं०]

यह देखकर दरअसल दुःख होता है कि कांग्रेस ने जिस घोषणा की मांग की है ब्रिटिश अख़बार और ब्रिटिश राजनीतिज्ञ अल्पसंख्यकों के हितों की दुहाई देकर उस घोषणा को, मैं कह सकूं तो, सर्वसाधारण के हित में रुकवाना चाहते हैं। कांग्रेस ने जो मांग रक्खी है, उसके वज़न को अगर अच्छी तरह महसूस न किया गया, तो वह

घोषणा नहीं होगी। यदि ऐसी कोई घोषणा नहीं होती तो कांग्रेसियों को इससे निराश नहीं होना चाहिए। जब स्वतंत्रता का योग्य समय आयेगा, वह मिल जायगी। लेकिन ब्रिटिश सरकार और उसके दोस्तों के लिए यह अच्छा होगा कि वे आसानी से विश्वास कर लेनेवाली दुनिया को अल्पसंख्यकों के हितों की दलील देकर भुलावे में न डालें। ईमानदारी की बात तो यह है कि अँग्रेज़ कह दें कि हम अभी भारत पर अधिकार रखना चाहते हैं। यह इच्छा उनकी स्वाभाविक ही है। भारत को उन्होंने जीता है। अपने विजित देश को कोई तबतक नहीं छोड़ता, तबतक कि विजित लोग सफल विद्रोह नहीं कर लेते, या जागृतिपूर्ण विवेक के द्वारा विजेता अपनी जीत पर स्वयं पछताने नहीं लगता, अथवा विजित प्रदेश से विजेता को किसी क़िस्म का भी लाभ होना बन्द नहीं हो जाता। मैंने उम्मीद की थी और अब भी कर रहा हूँ कि अँग्रेज़—जो लड़ाई से बहुत थके हुए हैं और वर्तमान युद्ध में होने वाले उन्मादपूर्ण कत्लेआम के कारण परेशान हैं, सब प्रकार के झगड़ों से, और इसलिए भारत की समस्या से भी, जल्दी-से-जल्दी निश्चित नहीं हो सकते, जबतक कि भारत उनकी गुलामी में जकड़ा हुआ है।

"मैं जानता हूँ कि कुछ लोग मुझसे इस कारण रुष्ट हैं कि मैंने यह दावा किया है कि कांग्रेस ही एकमात्र ऐसी संस्था है, जो सम्पूर्ण भारतवासियों का प्रतिनिधित्व कर सकती है। यह कोई निरे घमंड की ही कल्पना नहीं है। कांग्रेस-विधान की पहली धारा में ही यह स्पष्ट है। कांग्रेस समस्त भारत की स्वतंत्रता चाहती है और उसके लिए काम करती है। वह न केवल बहुसंख्यकों की प्रतिनिधि है, और न सिर्फ़ अल्पसंख्यकों की। वह तो बिना किसी भेदभाव के सबका प्रतिनिधित्व करती है। इसलिए जो लोग इसका विरोध करते हैं, उन्हें भी स्वतंत्रता का दावा स्वीकृत होने पर चिन्ता की ज़रूरत नहीं। जो लोग इस दावे का समर्थन करते हैं, वे कांग्रेस के इस दावे की ताक़त ही बढ़ाते हैं।

ब्रिटेन अबतक दुनिया के सामने ऐसे हिन्दुस्तानियों को ही लाने की कोशिश करता रहा है, जो भारत में ब्रिटेन को शासक और विभिन्न दावेदारों में पंच बनाये रखना चाहते हैं। ऐसे लोग हमेशा रहेंगे। सवाल तो यह है कि क्या ब्रिटेन के लिए यह उचित है कि वह भारत पर अपना अधिकार क़ायम रखनें के लिए हमारे आपसी झगड़ों का इस तरह ढिंढोरा पीटता फिरे, अथवा उसके लिए यह उचित है कि वह अपनी भूल को महसूस करे और भारत पर ख़ुद अपना शासन-विधान बनाने की ज़िम्मेदारी डालकर निश्चित हो जाये?

"और, फिर ये अल्पसंख्क कौन ह? धार्मिक, राजनैतिक और सामाजिक दृष्टियों से अल्पसंख्यक गिने जाते हैं। इस तरह मुसलमान (धार्मिक), दलित श्रेणियाँ (सामाजिक), लिबरल (राजनैतिक), राजे-महाराजे (सामाजिक), ब्राह्मण (सामाजिक), अब्राह्मण (सामाजिक), लिंगायत (सामाजिक), सिक्ख (सामाजिक?) ईसाई—प्रोटेस्टेण्ट और कैथोलिक (धार्मिक), जैन (सामाजिक?), ज़मींदार (राज-) अल्पसंख्यक होते हैं। आल इण्डिया शिया पोलिटिकल कान्फ्रेंस के सेक्रेटरी

सांस्कृतिक और राजनैतिक हितों की, पवित्र धरोहर की भांति, इज्जत व रक्षा करनी चाहिए। और भारत की स्वतन्त्रता मे इन अधिकारों की रक्षा में कोई अन्तर नहीं आयेगा। सच तो यह है कि उस समय इन अधिकारों की रक्षा और भी अच्छी तरह होगी, क्योंकि स्वतन्त्रता के घोषणापत्र के बनाने में राष्ट्र के सब प्रतिनिधियों—मुसलमानों और अल्पसंख्यकों, वास्तविक या तथाकथित अल्पसंख्यकों का भी काफ़ी हाथ रहेगा।

"एक क्षण के लिए कल्पना करें कि अगर अंग्रेज़ एकदम अचानक ही यहाँ से चले जायें और यहां शासन करने के लिए कोई भी आक्रान्ता न रहे तो क्या होगा ? यह कहा जा सकता है कि पंजाबी, वे सिक्ख हों, मुसलमान हों, या कोई दूसरे हों, सारे हिन्दुस्तान पर जबरन क़ब्ज़ा कर लेंगे। यह भी बहुत संभव है कि गोरखे पंजाबियों से मिल जायें। यह भी कल्पना कर लीजिए कि ग़ैर-पंजाबी मुसलमान पंजाबियों के साथ भारत पर अधिकार करने के लिए मिल जाते हैं। तब कांग्रेसी जो ज्यादातर हिन्दू हैं, कहां रहेंगे ? यदि वे तबतक भी सच्चे अहिंसक रहें, तो उन्हें ये लड़ाके तंग नहीं कर सकेंगे। वे कांग्रेसी इन लड़ाकों से मिलकर ताक़त को बाँटना नहीं चाहेंगे, पर उसके विपरीत यह कोशिश करेंगे कि उनके निःशस्त्र देशवासी इन लड़ाकों के शिकार न होने पायें। इसलिए यदि किसीको अधिक शक्तिशाली तत्त्व से बचाव के लिए ब्रिटिश संरक्षण की आवश्यकता हो सकती है तो वे कांग्रेसी और वे हिन्दू या दूसरे लोग ही हो सकते हैं, जिनका प्रतिनिधित्व कांग्रेस करती है। इसलिए सवाल यह नहीं रह जाता कि तादाद में कौन ज्यादा है, बल्कि यह हो जाता है कि मज़बूत कौन है। इसका एक ही जवाब हो सकता ह। अल्पसंख्यकों के ख़तरे की आवाज़ उठानेवालों को नाममात्र के बहुसंख्यकों से डरने की कतई ज़रूरत नहीं है। इनकी बहुसंख्या केवल काग़ज़ पर लिखी बहुसंख्या है। फिर यह कुछ ज्यादा कर भी नहीं सकती, क्योंकि यह सैनिक दृष्टि से बहुत कमज़ोर है। यद्यपि यह बात असत्य मालूम पड़ती है, किन्तु अक्षरशः यह सच है कि तथाकथित अल्पसंख्यकों को जो थोड़ा-बहुत डर है भी, उसका आधार सिर्फ़ तबतक है, जबतक कि दुर्बल बहुसंख्या के पास प्रजातंत्र का खेल खेलने के लिए ब्रिटिश शस्त्र-बल का सहारा है। लेकिन ब्रिटिश-सत्ता जबतक चाहेगी, तबतक कभी एक पार्टी का, और कभी दूसरी पार्टी का; इन पार्टियों का नाम वह जो चाहे रक्खे—साथ देकर यह खेल कामयाबी के साथ खेलती रहेगी। और यह ज़रूरी नहीं है कि इसमें ब्रिटिश बेईमानी ही करें। ईमानदारी के साथ वे यह विश्वास कर सकते हैं कि जबतक भारत में इस तरह दो पार्टियाँ आपस में लड़ती रहती हैं, इन दोनों पार्टियों में संतुलन रखने की ईश्वरीय प्रेरणा के अनुसार उन्हें भारत में रहना ही चाहिए। लेकिन यह मार्ग प्रजातंत्र का नहीं है। यह तो फ़ासिज्म, नाज़िज्म, बोलशविक या साम्राज्यवाद—ये सभी 'जिसकी लाठी उसकी भेंस' के सिद्धान्त के रूप हैं—का मार्ग है। मैं खुशी से यह आशा कर सकता हूँ कि यह युद्ध इस स्थिति को बदल देगा। पर यह तभी हो सकता है, जबकि भारत को स्वतंत्र मान लिया जाये और वह स्वतंत्र भारत राजनैतिक मैदान में भी विशुद्ध अहिंसा का परिचय दे।" २१ अक्तूबर, १९३९.

: १६ :

कांग्रेस-कार्यसमिति का प्रस्ताव

[२२ अक्तूबर १९३९ को कांग्रेस-कार्यसमिति ने वायसराय की घोषणा बाद निम्नलिखित प्रस्ताव पास किया—सं०]

"कांग्रेस ने ब्रिटेन से यह पूछा कि उसके युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्य क्या है और वे भारत पर कैसे लागू किया जायगा। वायसराय ने उसका जो उत्तर दिया है, वह समिति की राय में एकदम निराशाजनक है और इससे उन लोगों में असन्तोष फैल जायगा जो भारत की स्वाधीनता प्राप्त करने के लिए उत्सुक हैं अथवा कटिबद्ध हैं। ब्रिटेन के युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्य क्या हैं, यह मांग न केवल भारत, बल्कि संसार के लाखों और करोड़ों लोगों ने पेश की थी, जो युद्ध व हिंसा तथा फासिस्ट व साम्रा वादी प्रणालियों से ऊब चुके थे। इन प्रणालियों से राष्ट्रों व जनता का शोषण होता और इस शोषण का नतीजा हमेशा युद्ध हुआ करता है।

"वायसराय का वक्तव्य तो पुरानी साम्राज्यवादी नीति को फिर से दोहरा है। कुछेक पार्टियों के मतभेदों का जो जिक्र किया गया है, इस समिति की राय उससे ब्रिटेन के असली इरादों पर पर्दा डालने की कोशिश की गई है। समिति परीक्षा के तौर पर यह देखना चाहती थी कि ब्रिटेन भारत को क्या देना चाहता और इसीलिए उसने यह पूछा था कि ब्रिटेन के युद्ध के सम्बन्ध में क्या उद्देश्य हैं, फि चाहे विरोधी पार्टियों का रुख कुछ भी क्यों न हो।

"कांग्रेस सदैव अल्पसंख्यक जातियों को उनके अधिकार सुरक्षित रखने की गारं देने की हामी रही है। कांग्रेस जो स्वाधीनता चाह रही है, वह केवल कांग्रेस, या कि खास पार्टी अथवा जाति के लिए ही नहीं है, बल्कि वह समूचे राष्ट्र के लिए है और उन जातियों के लिए है, जो भारत-राष्ट्र का निर्माण करती हैं। इस स्वाधीनता को स्थापित करने एवं समूचे राष्ट्र की इच्छा को जानने का एकमात्र तरीका प्रजातंत्री है।

"इसलिए यह समिति वायसराय के वक्तव्य को हर सूरत में दुर्भाग्यपूर्ण सम झती है।

"इन अवस्थाओं में कांग्रेस ग्रेट ब्रिटेन को कोई सहायता नहीं दे सकती; क्यों ऐसा करने का अर्थ साम्राज्यवादी नीति का समर्थन करना होगा, जिसको कांग्रेस ख़ त्म करने की कोशिश में रही है। इस दशा में बतौर प्रथम कदम के समिति कांग्रेस मन्त्रिमण्डलों से अपने त्याग-पत्र देने को कहती है।

"साथ ही समिति राष्ट्र से इस नाज़ुक समय में समस्त आन्तरिक मतभेदों क खत्म करने एवं भारत की स्वतन्त्रता के लिए संगठित रूप से कार्य करने की अपी करती है। समिति सब कांग्रेस कमेटियों व कांग्रेस कार्यकर्ताओं से सब परिस्थितियों में

लिए तयार रहने तथा कार्यों व शब्दों पर पूरा संयम रखने का अनुरोध करती है, ताकि कोई ऐसी वात कही या की न जाय जो कि भारत के सम्मान अथवा उन सिद्धान्तों के विरुद्ध हो जिनके लिए कि कांग्रेस खड़ी है। समिति कांग्रेसियों को भद्रअवज्ञा आन्दोलन, राजनैतिक हड़ताल आदि कोई भी ऐसा काम करने के खिलाफ़ चेतावनी देती है।

"समिति भारत में ब्रिटिश सरकार की हलचलों का निरीक्षण करेगी और जब भी आवश्कयता पड़ेगी कांग्रेस अगला कदम उठाने में कभी कोई हिचकिचाहट न करेगी। समिति सव कांग्रेसियों को यह बतला देना चाहती है कि मुकाविला करने के प्रत्येक कार्य के लिए कांग्रेस में पूरे अनुशासन व संगठन की जरूरत है। समिति महसूस करती है कि अतीत में जब कांग्रेस ने अहिंसात्मक मुकाविला किया तब कभी-कभी उसमें हिंसा का सम्मिश्रण हो गया था। समिति कांग्रेसियों को यह भली-भांति जतला देना चाहती है कि आगे जो भी अहिंसात्मक लड़ाई लड़नी पड़े, वह सब तरह की हिंसा से बरी हो और इस सम्बन्ध में कांग्रेसियों को वे प्रतिज्ञायें याद रखनी चाहिएँ, जो कि सन् १९२१ ई० में अहमदावाद-कांग्रेस में की गई थीं और बाद को बार-बार दोहराई जा चुकी हैं।"

: १७ :

राष्ट्रीय-पंचायत पर छोड़ दें

[२१ अक्तूबर को बम्बई के "टाइम्स ऑव इंडिया" पत्र के संवाददाता नें वर्धा में महात्मा गांधी से पूछा कि वायसराय के वक्तव्य में जो यह कहा गया है कि युद्ध के अन्त में हिन्दुस्तान के प्रतिनिधियों की एक कान्फ्रेंस करने का विचार है, उसके बारे में आप क्या सोचते हैं। इसी सम्बन्ध में "टाइम्स ऑव इंडिया" ने अपने एक अग्रलेख में महात्माजी से अपील भी की थी। उक्त प्रश्न के उत्तर में महात्माजी ने कहा—सं०]

'वायसराय के वक्तव्य को चाहे जिस तरह से जितना भी समझा जाये, वह तबतक मंजूर न होगा, जबतक कि कांग्रेस की वास्तविक मांग न मानी जायगी। वायसराय के शब्द वहुत गोलमोल हैं, और उनका स्पष्टीकरण नहीं किया जा सकता। उन शब्दों के द्वारा सबकुछ बहुत खूबसूरती के साथ अनिश्चित अवस्था में छोड़ दिया गया है, और उनसे यह नहीं मालूम होता कि ग्रेट ब्रिटेन हिन्दुस्तान को अधिकार देना चाहता है।

"कांग्रेस यह चाहती है कि हिन्दुस्तान को एक स्वतन्त्र राष्ट्र की तरह स्पष्टतया स्वीकार किया जाये। हिन्दुस्तान उत्साह के साथ लड़ाई में शरीक हो, इसके लिए यह जरूरी है कि उसके साथ ऐसे शब्दों में बातें की जायें कि उनका दूसरा कोई अर्थ न निकले।

"निश्चय ही कांग्रेस जो कुछ चाहती है, उसे स्वीकार करना आसान है, अगर स्वीकार करनें की दिली इच्छा हो। वायसराय के वक्तव्य में मुझे वह इच्छा नहीं मिली। कान्फ्रेंस में कौन लोग रहेंगे? क्या वे, जिन्हें वायसराय या भारत-मंत्री वुलायेंगे? उन्हें भारतीय प्रतिनिधि सच्चाई के साथ कैसे कहा जायगा? संदेह को दूर करने के लिए कांग्रेस ने कहा था कि व्यापक निर्वाचन के आधार पर पुरुषों और स्त्रियों को चुना जाये, और इन प्रतिनिधियों की एक महासभा हो। इसी महासभा को कांग्रेस 'राष्ट्रीय-पंचायत' कहती है। जो दल हिन्दुस्तान की आज़ादी चाहता है, वह कैसे इसपर एतराज़ कर सकता है? क्या इसलिए लोगों को बुलाना ठीक है कि उनसे यह पूछा जाये कि वे आजादी चाहते हैं या नहीं? क्या ग़ुलाम से उसकी आज़ादी के बारे में उससे राय लेनी चाहिए? यह विषय राष्ट्रीय-पंचायत के निर्णय करने का है कि औपनिवेशिक दर्जा होगा या क्या होगा, और वह कम होगा या ज्यादा? जनता के प्रतिनिधियों को इसकी पूरी छूट होनी चाहिए कि वे स्वतंत्रता के रूप का निर्णय करें।

"यह एक ताज्जुब की वात है कि अल्पसंख्यक दलों को किस तरह कांग्रेस के खिलाफ़ उभारा जाता है। निश्चय ही, कांग्रेस का उनमें से किसीसे भी कोई झगड़ा नहीं है। कांग्रेस हरेक अल्पसंख्यक दल के हितों की रक्षा करेगी, बशर्ते कि वे हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता पर कोई आघात पहुंचाकर कुछ लाभ न उठायें। मुसलमानों, परिगणित जातियों और दूसरे प्रत्येक श्रेणी के पूरे प्रतिनिधि विधान-सभा में रहेंगे, और वे खुद ही अपने विशेष अधिकारों का निर्णय करेंगे। देशी नरेशों और ज़मींदारों को भी डरनें की कोई वजह नहीं, अगर वे अपनी प्रजा के प्रतिनिधियों की हैसियत से उसमें उपस्थित हों। आज़ाद भारत किसीके भी स्वार्थों का आम जनता के स्वार्थों से संघर्ष होना सहन न करेगा, वे चाहे मुसलमान, दलित, ईसाई, पारसी, यहूदी, सिक्ख, ब्राह्मण, अब्राह्मण कोई भी हों। पर मैं वायसराय या ब्रिटिश युद्धमंडल को दोषी नहीं ठहराता। स्वतन्त्रता अंग्रेजों या किसी दूसरे की दया पर निर्भर नहीं करती। जनता जब तैयार होगी तो वह खुद ही उसे मिलेगी। ब्रिटिश राजनीतिज्ञों का यह खयाल है कि हिन्दुस्तान की जनता उसके लिए तैयार नहीं है। कांग्रेस या कोई भी दूसरी संस्था हो, जो लाखों मनुष्यों का प्रतिनिधित्व करती है, उसे इस काम के लिए अपनी शक्तियों और साधनों को मजबूत बनाना होगा।

"मैंने जो यह उम्मीद की थी कि यूरोपीय संघर्ष से अंग्रेज़ राजनीतिज्ञों नें कटु अनुभव प्राप्त करके नये रूप से कार्य करने का खयाल किया होगा, वह आशा कुछ समय के लिए चूरचूर होगई है।" **'हरिजन सेवक',** २८ अक्तूबर, १९३९

: १८ :

दरवाज़ा खुला रख छोड़ा है

[संसार के प्रमुख समाचार-पत्रों के प्रतिनिधियों के विशेष अनुरोध पर महात्मा गांधी ने नीचे लिखा संदेश २२ अक्तूबर १९३९ को दिया—सं०]

"कांग्रेस ने युद्धकाल में शासन-विधान में परिवर्तन करने की मांग नहीं की है। कांग्रेस की मांग केवल इतनी है कि ब्रिटेन यह घोषित करदे कि उसके युद्ध के उद्देश्यों में, लड़ाई के बाद उसके निर्वाचित प्रतिनिधियों द्वारा तैयार किए गए चार्टर (अधिकारपत्र) में हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता भी निहित है। लड़ाई के दरम्यान इस घोषणा पर यथासंभव अधिक-से-अधिक अमल होना चाहिए। अल्पसंख्यकों का प्रश्न तो एक हौआ है—यह बात नहीं कि उसका अस्तित्व नहीं है, बल्कि इसलिए कि उसका उचित हल प्रस्तावित राष्ट्रीय पंचायत द्वारा ही हो सकता है। इस गांठ को खोलने का भार ब्रिटेन पर नहीं, बल्कि हमारी राष्ट्रीय-पंचायत पर है।

"भारतीयों की राय के अनुसार हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्न ब्रिटिश शासन की प्रत्यक्ष उपज है। कांग्रेस कम-से-कम जो कुछ इस समय कर सकती थी, वह यह कि वह प्रान्तीय हुकूमतों से कांग्रेस मन्त्रियों को वापस बुलाले। ब्रिटेन इस संकट का किस तरह मुकाबिला करता है, इस पर कांग्रेस की अगली कार्रवाई सर्वथा निर्भर है। कांग्रेस ने दरवाजा खुला रख छोड़ा है। ब्रिटेन को अपनी भूल सुधारनी चाहिए।"

: १९ :

कांग्रेस का भविष्य

[पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने बंबई में कुछ पत्र-प्रतिनिधियों से बात करते हुए कहा—सं०]

हर शख्स हिन्दुस्तान में साम्प्रदायिक मसले के महत्व को स्वीकार करता है, लेकिन जिस तरीके से उसे आगे लाया जा रहा है, वह असली कठिनाइयों से बचने की कोशिश भर है, जैसा कि कांग्रेस कार्यसमिति ने कहा भी है। कांग्रेस इस सवाल के हरेक पहलू पर विचार करने के लिए पूरी तरह से तैयार और राज़ी है। लेकिन इस साम्प्रदायिक मसले को ब्रिटिश सरकार के हाथ में देना तो उसे राजनैतिक प्रगति को रोकने का एक बहाना बनाना है। कहा जाता है कि कांग्रेस तमाम हिन्दुस्तान का प्रतिनिधित्व नहीं करती। बेशक नहीं करती। उसके जो विरोधी हैं, उनका प्रतिनिधित्व वह नहीं करती। लेकिन कांग्रेस के बारे में जो कुछ कहा गया है, वह

: २० :

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का वक्तव्य

[कांग्रेस की कार्यसमिति के वक्तव्य के साथ राष्ट्रपति डा० राजन्द्रप्रसाद ने निम्नलिखित सर्क्यूलर प्रांतीय कांग्रेस-कमेटियों को भेजा —सं०]

"आप अपने प्रान्त की भाषाओं में प्रस्ताव का अनुवाद करा कर पर्चों के रू में लोगों में वांट दें। इसके अलावा सार्वजनिक सभाएं करें तथा लोगों को प्रस्ताव वे फलितार्थ समझावें। जिन प्रान्तों में सभाओं का किया जाना मना हो, वहां आप सभा न करें। किसी तरह की आज्ञा-भंग न की जाय, न किसी प्रकार का सत्याग्रह किय जाय, सिवाय कुछ मामलों में जवकि युद्ध-उपसमिति की खासतौर से पहले अनुमति ले ली जाय।

"प्रस्ताव के कुछ फलितार्थ यहां दिए जाते हैं—(१) प्रस्ताव तीन भागों में विभक्त है :—

(क) भूमिका।
(ख) मन्त्रिमण्डलों के स्तीफे, और
(ग) अगला कदम।

(२) "भूमिका को समझने के लिए कार्यकर्ताओं को उसे कांग्रेस-कार्यसमिति के १४ सितम्बर १९३९ तथा कांग्रेस-महासमिति के ९ अक्तूबर के प्रस्तावों के सा पढ़ना चाहिए।

(३) "कार्यकर्ताओं का अधिकांश सम्बन्ध प्रस्ताव के तीसरे भाग से है। इसलिए अव उन्हें कांग्रेस-संस्था को कमज़ोरी, वुराइयों और अनुशासनहीनता से मुक्त करने की कोशिश करनी चाहिए।

(४) सभाओं में चाहे सार्वजनिक हों या प्राइवेट, ब्रिटिश या देश की अन्य पार्टियों की जो कि कांग्रेस के विरुद्ध हैं, आलोचना न की जाय। वे केवल सिद्धांतों तक ही अपने आपको सीमित रक्खें और व्यक्तियों तक न पहुँचें।

(५) चूंकि सत्याग्रह हिंसा का स्थान ले लेता है, इसलिए हरेक सत्याग्रही के लिए पहली आवश्यकता यह है कि उसके हृदय में जरा भी हिंसा न हो। हृदय में अहिंसा भरी हो तो अहिंसात्मक काम से भी अधिक लाभ नहीं होता। इसलिए जवतक कि प्रत्येक कार्यकर्ता का यह दृढ़ निश्चय नहीं हो जाता कि अपने उद्देश्य की प्राप्ति के लिए मन, वचन और कार्य में अहिंसा का होना आवश्यक है, तवतक निष्क्रिय प्रतिरोध असंभव है

(६) यह स्मरण रहे कि अहिंसा एक सर्वव्यापी गुण है। अतः ब्रिटिश शासकों के प्रति सचाई के साथ अहिंसात्मक होने के लिए हमें परस्पर तथा अपने विरोधियों

के प्रति अहिंसात्मक होना चाहिए। हिन्दू-मुस्लिम संबंधों के बारे में हमारी अहिंसा की आज अग्नि-परीक्षा है। कांग्रेस-जनों ने हिन्दू-मुसलिम दंगों के अवसर पर विशेष-कर अहिंसा दिखाई है। दंगों को रोकने के लिए आवश्यकता पड़ने पर उन्होंने अपनी जान तक दे दी हैं। वे अब भी किसी तरह की तरफ़दारी न करें।

(७) प्रत्येक कांग्रेस-जन कार्य-क्रम के रचनात्मक भाग का विशेष ध्यान रक्खे। इसलिए प्रत्येक पुरुष या स्त्री चर्खा चलाये या अपने को खादी या अन्य किसी ग्रामोद्योग में लगाये रक्खे।

(८) यदि कार्यकर्ता हिन्दू है तो वह अस्पृश्यता-निवारण-आन्दोलन में जितना दे सके, उतना सहयोग दे।"

२८ अक्तूबर, १९३९.

: २१ :

सर सेम्युअल होर का भाषण

[कामन्स सभा में भारतीय प्रश्न पर हुई बहस के दौरान में दिये गए सर से. होर के भाषण का सारांश यहां दिया जाता है। भारत के उन्होंने 'कांग्रेसी भारत' और 'ग़ैर-कांग्रेसी भारत' दो विभाजन किये और वायसराय की भारत के विभिन्न नेताओं के साथ हुई मुलाकात को ठीक बताते हुए उन्होंने कहा—]

यह संतोष की बात है कि वायसराय केवल मुख्य पार्टियों के नेताओं से ही नहीं मिले, वरन् पं० जवाहरलाल नेहरू जैसे गरम-दल के नेता से भी मिले हैं।

वायसराय ने भारतीय नेताओं से मुलाकात करने के बाद दो निश्चित प्रस्ताव पेश किए, जिनमें से एक में यह निश्चित और स्पष्ट वक्तव्य है कि युद्ध की समाप्ति के बाद भारत की वैधानिक समस्या पर पुनः विचार होगा। दूसरे में भारत के नेताओं को विश्वास में लेने के लिए वायसराय ने एक परामर्शदात्री समिति की स्थापना का प्रस्ताव किया। कांग्रेस ने उसे अस्वीकार कर दिया।

औपनिवेशिक स्वराज्य एक तथ्य की स्वीकृति है जो कि वस्तुतः अस्तित्व में होती है। औपनिवेशिक स्वराज्य के मार्ग में यदि कोई कठिनाइयाँ हैं तो उनका कारण भारत की जातियों व वर्गों की अनेकता है। भारतीयों को इन विभेदों को दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए। हम इन विभेदों को महान आपत्तिजनक समझते हैं। इस संबंध में अपनी नेकनीयती का प्रमाण साम्प्रदायिक निर्णय के रूप में हम दे चुके हैं। उस समय यदि हम भारतीयों को विभक्त करना चाहते तो कह सकते थे कि पहले अपने मत-भेद दूर करो। ऐसा हमने नहीं किया और साम्प्रदायिक निर्णय दिया, पर साम्प्रदायिक निर्णय के बावजूद भी वे विभेद कायम हैं। जब तक वे दूर न हों, अल्प-संख्यकों के प्रति हम अपनी जिम्मेदारी को नहीं छोड़ सकते। इन विभेदों के कारण ही केन्द्र में उत्तरदायी शासन जारी करने और अखिल भारतीय फ़ेडरल-गवर्मेण्ट की स्थापना का महान आदर्श पूरा नहीं हो सका।

नरेशगण ब्रिटिश भारत के प्रभुत्व से डरते ह। मुसलमान इस बात के ख़ि विरोधी हैं कि केन्द्र में हिन्दुओं का बहुमत हो। अछूत और अन्य अल्पसंख्यक ख़िय करते हैं कि उत्तरदायी शासन का अर्थ है हिन्दू-बहुमत का शासन, जो कि उनके हि को कुर्बान कर देगा। ये चिन्तायें आज भी मौजूद हैं और जबतक ये मौजूद है तबतक सरकार के लिए इस मांग का स्वीकार करना कठिन है कि केन्द्र में तु उत्तरदायी शासन जारी कर दिया जाय। यदि हम ऐसा करेंगे तो मुसलमानों तथ अन्य अल्पसंख्यकों और यूरोपियनों के प्रति हम झूठे सिद्ध होंगे।

...परामर्श-दात्री समिति की योजना का उपयोग किया जाय तो साम्प्रदायि अनेकता के लिए वह संयोजक का काम करेगी।

...असहयोग! याने कांग्रेस अपनी राह ले और अल्पसंख्यक जातियां औ ब्रिटिश सरकार दूसरी राह ग्रहण करें! यदि ऐसा हुआ तो हमारे पास कोई चार नहीं। सम्राट की सरकार अवश्य चलनी चाहिए। हम इस स्थिति में अन्य किसी न सरकार के समान वायसराय का पूर्णरूप से समर्थन करेंगे।.

...साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं को हम बहुत पहले त्याग चुके हैं। ह विश्वास करते हैं कि हमारा मिशन दूसरों पर शासन करना नहीं ह, बल्कि दूसरों मदद देना है कि अपना शासन वे अपने आप चलावें। इसी भावना से पार्लमेंट डमीनियनों को स्वतंत्रता देने का क़ानून और इंडिया ऐक्ट पास किया।

...सदियों से लड़ाई का अंत होगया ह और न्याय और व्यवस्था का राज्य है इस आशा से भारत को असहयोग का वीरान पथ छोड़ देना चाहिए।

२५ अक्तूबर, १९३९.

: २२ :

महात्मा गांधी का वक्तव्य

[सर सेम्युअल होर के कामन्स-सभा में दिये गए भाषण पर वर्धा से महात्मा गांधी ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया—सं.]

"मैंने सर सेम्युअल होर के भाषण को उतने ही ध्यानसे पढ़ा ह जितने से कि उसे पढ़ना चाहिए। उसके पीछे जो समझौते का लहजा है, उसकी मैं सराहना करता हूँ। इसलिए मेरे लिए यह परेशानी की बात हो जाती है कि कुछ भी ऐसा कहूँ जो परस्पर विरोधी दिखाई दे। लेकिन सर होर भी एक कर्तव्य की भावना से बोले हैं, मैं आशा करता हूँ कि मुझे भी वही सम्मान प्राप्त होगा। क्या औपनिवेशिक स्वराज्य का भारत के लिए कोई अर्थ है जबतक कि वह स्वाधीनता के समकक्ष न हो? भारत का जो रूप सर होर के सामने ह, क्या उस रूप में भारत को कामनवेल्थ से पृथक होने का अधिकार है?

मैं यह घोषणा पसन्द करता हूं कि ब्रिटिशों ने साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाएं छोड़ दी हैं। क्या सर होर भारत के लोगों को स्वतः यह निर्णय करने का अधिकार देंगे कि वाकई उक्त आकाक्षाएँ छोड़दी गई हैं ? यदि ऐसा है तो इसका प्रमाण भारत को वैधानिक रूपसे स्वतन्त्र किये जाने के पूर्व ही मिलना चाहिए। जब कांग्रेस द्वारा मांगी गई घोषणा के खिलाफ़ अल्पसंख्यकों की रक्षाकी बात कही जाती है, तब सर सेम्युअल होर का महत्वपूर्ण भाषण अवास्तविक प्रतीत होने लगता है। कांग्रेस ने जिस वस्तु की मांग पेश की है वह भारतीय लोकमत नहीं, बल्कि ब्रिटेन के इरादों का खुलासा करना है।

मैंने यह बताने की कोशिश की है कि दरअसल भारत में अल्पसंख्यक नाम की कोई चीज नहीं है, जिसे कि भारत के स्वतन्त्र होने पर खतरा पैदा हो सकता है। यहां भारत में दलित जातियों को छोड़ कोई भी ऐसा अल्पसंख्यक नहीं है, जोकि स्वयं अपनी रक्षा करने के योग्य न हो। मैं देखता हूं कि सर होर ने यूरोपियनों को भी अल्पसंख्यक कहा है। मेरी राय में यूरोपियनों को भी अल्पसंख्यक कहना अल्पसंख्यकों के हितों की पुकार की निन्दा करना है। लेकिन अल्पसंख्यकों की, जो भी वे हैं, रक्षा ब्रिटिश सरकार व कांग्रेस का एक सामान्य ध्येय है। मैं चाहता हूं कि ब्रिटिश सरकार यह याद रक्खे कि सर होर की भाषा सें कांग्रेसी भारत के एक असहाय अल्पसंख्यक समझे जाने की सम्भावना है।

मैं सर होर के 'कांग्रेसी भारत' व 'गैर-कांग्रेसी भारत' विभाजन को पसन्द करता हूँ, और यदि गैर-कांग्रेसी भारत में देशी राजा व उनकी प्रजा, मुसलमान, हिन्दू-सभा आदि वे सब शामिल हैं, जोकि कांग्रेसी भारत से मिलने से इन्कार करते हैं, तो कांग्रेसी भारत को गैर-कांग्रेसी भारत के बहुमत से भारी खतरा होगा और कांग्रेस को, चाहे वह निःशस्त्र अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व करती हो, अपना मेल कुछ तो बाहरी शक्ति से और अधिकांश अपनी ही इच्छा से बढ़ाना होगा।

मैं यह जानकर प्रसन्न हूँ कि सर होर ने यह कह दिया है कि वर्तमान ब्रिटिश नीति को मेरे द्वारा सुझाये गये नैतिकता के पैमाने से जांचा जाय। यहां मैं यह कहने का साहस करता हूं कि यदि सर होर का भाषण ब्रिटिश सरकार की ओर से अंतिम शब्द है तो उसनें ब्रिटिश राजनैतिक नैतिकता की कमी पाई जायगी। सर सेम्युअल होर ने असहयोग को एक बेकार सिद्धान्त समझकर मजाक उड़ाया है। मुझे विश्वास है कि यह ऐसा बेकार नहीं है, जैसा कि वह सोचते हैं। इसने लाखों भारतीयों को अपना मूल्य दिखला दिया ह और यदि कांग्रेस पूर्णतः अहिंसक रही, (मैं आशा करता हूं वह रहेगी) तो एक बार फिर यह अपना मूल्य साबित करेगी। कांग्रेस का निर्णय कर्तव्य की एक आवश्यक पुकार है। इसने कांग्रेस व ब्रिटिश सरकार को उनकी परीक्षाओं में खड़ा कर दिया है। इसका परिणाम भलाई के सिवा और कुछ न निकलेगा, बशर्ते कि ये दोनों ही मैदान में खेलें। २७ अक्तूबर, १९३९.

नरेशगण ब्रिटिश भारत के प्रभुत्व से डरते ह। मुसलमान इस वात के प्रबल विरोधी हैं कि केन्द्र में हिन्दुओं का वहुमत हो। अछूत और अन्य अल्पसंख्यक विश्वास करते हैं कि उत्तरदायी शासन का अर्थ है हिन्दू-वहुमत का शासन, जो कि उनके हितों को कुर्बान कर देगा। ये चिन्तायें आज भी मौजूद हैं और जवतक ये मौजूद हैं तवतक सरकार के लिए इस मांग का स्वीकार करना कठिन है कि केन्द्र में पूर्ण उत्तरदायी शासन जारी कर दिया जाय। यदि हम ऐसा करेंगे तो मुसलमानों तया अन्य अल्पसंख्यकों और यूरोपियनों के प्रति हम झूठे सिद्ध होंगे।

...परामर्श-दात्री समिति की योजना का उपयोग किया जाय तो साम्प्रदायिक अनेकता के लिए वह संयोजक का काम करेगी।

...असहयोग! याने कांग्रेस अपनी राह ले और अल्पसंख्यक जातियाँ और ब्रिटिश सरकार दूसरी राह ग्रहण करें! यदि ऐसा हुआ तो हमारे पास कोई चारा नहीं। सम्राट की सरकार अवश्य चलनी चाहिए। हम इस स्थिति में अन्य किसी भी सरकार के समान वायसराय का पूर्णरूप से समर्थन करेंगे।.

...साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाओं को हम वहुत पहले त्याग चुके हैं। हम विश्वास करते हैं कि हमारा मिशन दूसरों पर शासन करना नहीं ह, वल्कि दूसरों को मदद देना है कि अपना शासन वे अपने आप चलावें। इसी भावना से पार्लमेंट ने डमीनियनों को स्वतंत्रता देनें का क़ानून और इंडिया ऐक्ट पास किया।

...सदियों से लड़ाई का अंत होगया ह और न्याय और व्यवस्था का राज्य है। इस आशा से भारत को असहयोग का वीरान पथ छोड़ देना चाहिए।

२५ अक्तूवर, १९३९.

: २२ :

महात्मा गांधी का वक्तव्य

[सर सेम्युअल होर के कामन्स-सभा में दिये गए भाषण पर वर्धा से महात्मा गांधी ने निम्नलिखित वक्तव्य दिया—सं.]

"मैंनें सर सेम्युअल होर के भाषण को उतने ही ध्यानसे पढ़ा ह जितने से कि उसे पढ़ना चाहिए। उसके पीछे जो समझौते का लहजा है, उसकी मैं सराहना करता हूँ। इसलिए मेरे लिए यह परेशानी की वात हो जाती है कि कुछ भी ऐसा कहूँ जो परस्पर विरोधी दिखाई दे। लेकिन सर होर भी एक कर्तव्य की भावना से वोले हैं, मैं आशा करता हूँ कि मुझे भी वही सम्मान प्राप्त होगा। क्या औपनिवेशिक स्वराज्य का भारत के लिए कोई अर्थ है जवतक कि वह स्वाधीनता के समकक्ष न हो? भारत का जो रूप सर होर के सामने ह, क्या उस रूप में भारत को कामनवैल्थ से पृथक होने का अधिकार है?

मैं यह घोषणा पसन्द करता हूं कि ब्रिटिशों ने साम्राज्यवादी महत्वाकांक्षाएं छोड़ दी हैं। क्या सर होर भारत के लोगों को स्वतः यह निर्णय करने का अधिकार देंगे कि वाकई उक्त आकाक्षाएँ छोड़दी गई हैं? यदि ऐसा है तो इसका प्रमाण भारत को वैधानिक रूपसे स्वतन्त्र किये जाने के पूर्व ही मिलना चाहिए। जब कांग्रेस द्वारा मांगी गई घोषणा के खिलाफ़ अल्पसंख्यकों की रक्षाकी बात कही जाती है, तब सर सेम्युअल होर का महत्वपूर्ण भाषण अवास्तविक प्रतीत होने लगता है। कांग्रेस ने जिस वस्तु की मांग पेश की है वह भारतीय लोकमत नहीं, बल्कि ब्रिटेन के इरादों का खुलासा करना है।

मैंने यह बताने की कोशिश की है कि दरअसल भारत में अल्पसंख्यक नाम की कोई चीज़ नहीं है, जिसे कि भारत के स्वतन्त्र होने पर खतरा पैदा हो सकता है। यहां भारत में दलित जातियों को छोड़ कोई भी ऐसा अल्पसंख्यक नहीं है, जोकि स्वयं अपनी रक्षा करने के योग्य न हो। मैं देखता हूं कि सर होर ने यूरोपियनों को भी अल्पसंख्यक कहा है। मेरी राय में यूरोपियनों को भी अल्पसंख्यक कहना अल्पसंख्यकों के हितों की पुकार की निन्दा करना है। लेकिन अल्पसंख्यकों की, जो भी वे हैं, रक्षा ब्रिटिश सरकार व कांग्रेस का एक सामान्य ध्येय है। मैं चाहता हूं कि ब्रिटिश सरकार यह याद रक्खे कि सर होर की भाषा से कांग्रेसी भारत के एक असहाय अल्पसंख्यक समझे जाने की सम्भावना है।

मैं सर होर के 'कांग्रेसी भारत' व 'गैर-कांग्रेसी भारत' विभाजन को पसन्द करता हूँ, और यदि गैर-कांग्रेसी भारत में देशी राजा व उनकी प्रजा, मुसलमान, हिन्दू-सभा आदि वे सब शामिल हैं, जोकि कांग्रेसी भारत से मिलने से इन्कार करते हैं, तो कांग्रेसी भारत को गैर-कांग्रेसी भारत के बहुमत से भारी खतरा होगा और कांग्रेस को, चाहे वह निःशस्त्र अल्पसंख्यकों का प्रतिनिधित्व करती हो, अपना मेल कुछ तो बाहरी शक्ति से और अधिकांश अपनी ही इच्छा से बढ़ाना होगा।

मैं यह जानकर प्रसन्न हूँ कि सर होर ने यह कह दिया है कि वर्तमान ब्रिटिश नीति को मेरे द्वारा सुझाये गये नैतिकता के पैमाने से जांचा जाय। यहां मैं यह कहने का साहस करता हूं कि यदि सर होर का भाषण ब्रिटिश सरकार की ओर से अंतिम शब्द है तो उसमें ब्रिटिश राजनैतिक नैतिकता की कमी पाई जायगी। सर सेम्युअल होर ने असहयोग को एक बेकार सिद्धान्त समझकर मजाक उड़ाया है। मुझे विश्वास है कि यह ऐसा बेकार नहीं है, जैसा कि वह सोचते हैं। इसने लाखों भारतीयों को अपना मूल्य दिखला दिया ह और यदि कांग्रेस पूर्णतः अहिंसक रही, (मैं आशा करता हूं वह रहेगी) तो एक बार फिर यह अपना मूल्य साबित करेगी। कांग्रेस का निर्णय कर्तव्य की एक आवश्यक पुकार है। इसने कांग्रेस व ब्रिटिश सरकार को उनकी परीक्षाओं में खड़ा कर दिया है। इसका परिणाम भलाई के सिवा और कुछ न निकलेगा, बशर्ते कि ये दोनों ही मैदान में खेलें। २७ अक्तूबर, १९३९.

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का वक्तव्य

[सर सेम्युअल होर के कामन्स सभा में दिये गए भाषण पर राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद ने वर्धा से नीचेलिखा वक्तव्य दिया—सं०]

"कामन्स-सभा की वहस में सर सेम्युअल होर द्वारा दिए गए भाषण की मेरे मन पर जो प्रतिक्रिया हुई है उसको महात्मा गांधी का वक्तव्य पूर्ण-रूप से व्यक्त करता है। अतः और कुछ कहना मेरे लिए ज़रूरत नहीं रहता। चूँकि हमें सन्देह था कि जिस स्वाधीनता और जनतन्त्र को अन्य देशों के वास्ते प्राप्त करने में सहायता देने के लिए हमसे कहा जा रहा है, उसको हमें भी ब्रिटेन का देने का इरादा है या नहीं, इसलिए हम ब्रिटिश उद्देश्यों की स्पष्ट घोषणा और वर्तमान अवस्था में उसका अमल चाहते थे। हमें जवाव में कहा गया है कि हम में आन्तरिक भेद हैं, इसलिए हमें स्वाधीनता और जनतंत्र का वचन नहीं दिया जा सकता। भारत की स्वतंत्रता की ओर प्रगति के मार्ग में अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने की समस्या को बाधक बनाया गया है। मैं न उनकी उपेक्षा करता हूँ और न उनका महत्व कम करता हूँ। मगर क्या मैं पूछ सकता हूँ कि ब्रिटिश सरकार ने भारत से यह कब कहा कि भारतीय, जिनमें निस्सन्देह अल्प-संख्यक भी शामिल हैं, अपने लिए जो विधान बनायेंगे उसको वह स्वीकार कर लेगी?

ब्रिटिश सरकार भारत पर बिना बाह्य हस्तक्षेप के सर्वसम्मत विधान बनाने की ज़िम्मेदारी सौंपे और ऐसा विधान बनने पर उसको क़ानून का रूप देने की प्रतिज्ञा करे। वह उसकी तरफ़ से सच्चा प्रस्ताव होगा। इसके अभाव में अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने की बड़ी-बड़ी बातें वर्तमान स्थिति को बनाये रखने के लिए बहानेबाज़ी है।

यूरोपियनों को अल्पसंख्यकों में गिनना ब्रिटिश हितों के संरक्षण के लिए हुई बहस की याद दिलाता है। भारतीयों को इस वास्ते दोष न देना चाहिए, यदि वे यह खयाल करें कि अल्पसंख्यकों पर कृपा करने की आड़ में ब्रिटिश हितों की रक्षा की जा रही है। कांग्रेस का आग्रह है कि बालिग़ मताधिकार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों की बनी राष्ट्रीय पंचायत द्वारा बनाया गया विधान भारत को दिया जाय। मगर वे लोग जो औपनिवेशिक स्वराज्य स्वीकार करने के लिए तैयार हैं, वे पूछ सकते हैं कि सर सेम्युअल होर द्वारा वर्णित १९२६ का औपनिवेशिक स्वराज्य क्या वही है जो कि वेस्ट मिन्स्टर क़ानून द्वारा दिया गया है? यदि हां, तो वेस्ट मिन्स्टर क़ानून का नाम लेने में उन्होंने सकोच क्यों किया?

"सर सेम्युअलहोर के समझौते-पूर्ण शब्दों के पीछे इरादा स्पष्ट है कि उत्तरदायी शासन—स्वतंत्रता की तो बात ही मत कीजिए—लड़ाई के बाद भी भारत को न दिया जाय। ब्रिटेन को अनुभव करना चाहिए कि भारत अब क्रमिक सुधार की प्रगति से सन्तुष्ट नहीं होगा। वह पूर्ण स्वराज्य और अपना विधान बनाने का अधिकार चाहता है।"

२८ अक्तूबर, १९३९.

: २४ :

अच्छा भी और बुरा भी

[सर सेम्युअल होर के कामन्स-सभा में दिए गए भाषण पर महात्मा गांधी का निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुआ—सं०]

"सर सेम्युअल होर के कामन्स-सभा में दिये गए हाल के भाषण पर मैं जितना ज्यादा ग़ौर करता हूँ, उतना ही ज्यादा परेशान होता हूँ। वह अच्छा भी है और बुरा भी। लेकिन उसका बुरा भाग इतना बुरा है कि उससे अच्छा भाग भी दूषित हो जाता है। उनका वक्तव्य, कि ब्रिटिश सरकार ने साम्राज्यवाद को छोड़ दिया है, मुश्किल से ही उनके इस कथन से मेल खाता है कि अल्पसंख्यकों से किये गये वायदों की रक्षा होनी चाहिए। जब वह भारत के यूरोपियनों और देशी नरेशों को दूसरे अल्पसंख्यकों के साथ छोड़ते हैं, तो उनका पक्ष ही गिर जाता है। अगर यूरोपियन, जिन्होंने भारत में अपना घर नहीं बनाया और जिनकी जड़ें यूरोप में ही हैं, अल्पसंख्यक हैं और उन्हें रक्षा की आवश्यकता है तो ब्रिटिश सैनिकों और नागरिकों को भी, जो बहुत ही अल्पसंख्यक हैं, रक्षा की ज़रूरत है। दूसरे शब्दों में, विजय द्वारा प्राप्त अधिकार सुरक्षित रहने चाहिएँ। यूरोपियन हित ज़बरदस्ती लादे गये हैं, जिनकी रक्षा ब्रिटिश संगीनों द्वारा होती है। स्वतंत्र भारत हरेक यूरोपियन हित की उसके गुणों के अनुसार जाँच करेगा और जो हित राष्ट्रीय हित के संघर्ष में आयगा, वह ठहर नहीं सकेगा। मैंने संक्षिप्त आक्सफोर्ड डिक्शनरी देखी और उसमें साम्राज्यवाद की मुझे नीचे दी हुई परिभाषा मिली—

"ब्रिटिश राज्य का वहाँ फैलाना, जहाँ कि व्यापार को झंडे की रक्षा की ज़रूरत है।" अगर यही साम्राज्यवाद है, तो क्या सर सेम्युअल होर का भाषण उसका पूरी तरह समर्थन नहीं करता? भारत की इच्छा उसी साम्राज्यवाद को नष्ट करने की है। क्या देशी नरेशों की भी हालत वैसी ही है जैसी कि यूरोपियनों की है? उनमें बहुत-से, यदि अधिकांश नहीं तो, साम्राज्य की उपज हैं, और ब्रिटिश हितों के लिए ही उन्हें जीवित रक्खा गया है। देशी नरेश किसी प्रकार भी अपनी प्रजा का प्रतिनिधित्व नहीं करते। अगर मैं रियासतों के लोगों की हर सप्ताह अपने पास आई हुई शिकायतों को प्रकाशित करता, तो 'हरिजन' के पृष्ठों को दूना करने की मुझे ज़रूरत होती। वे बड़ी दुःखभरी कहानियाँ हैं। न देशी नरेशों के लिए वे प्रतिष्ठाजनक हैं और न उनकी रक्षक, ब्रिटिश सत्ता के लिए। क्या इस ब्रिटिश संरक्षण का अर्थ नग्न साम्राज्यवाद नहीं है? कांग्रेस को कहा गया है कि वह देशी नरेशों को अल्पसंख्यक माने। ब्रिटिश सत्ता तो मालिक है, जिसके बिना देशी नरेश सांस भी नहीं ले सकते! कांग्रेसजनों से मिलने की भी उन्हें आज़ादी नहीं है। उनके साथ

समझौता करने की तो बात ही क्या ! इस संकट में देशी नरेश जो कुछ कर रहे हैं, उसकी मैं शिकायत नहीं करता। अन्यथा करने के लिए तो वे अशक्त हैं।

"सर सेम्युअल साम्प्रदायिक निर्णय को ब्रिटिश सरकार का एक प्रशंसात्मक काम कहते हैं। मुझे दुःख है कि उन्होंने इसका जिक्र किया। निर्णय के तो, जिसका पोषण गोलमेज़ कांफ़्रेंस के समय हुआ था, मुझे बड़े कटु स्मरण हैं। मैं उसे ऐसा ब्रिटिश पराक्रम नहीं मानता कि जिस पर गर्व किया जा सके। मैं मानता हूँ कि कितनी बुरी तरह से पार्टियाँ उससे खुद असफल हुईं। मैं सब पार्टियों के लिए निर्णय को अप्रतिष्ठाजनक मानता हूँ। उसके गुणों को छोड़कर, जिनकी कि अच्छी तरह से जाँच नहीं हुई है, मैं ऐसा कहता हूँ। लेकिन कांग्रेस ने उसे निष्ठा के साथ स्वीकार कर लिया है, क्योंकि स्वर्गीय श्री मैकडानल्ड से मध्यस्थ बनने की प्रार्थना करने वालों में एक मैं भी था।

"अब उनके 'कांग्रेसी-भारत' और 'गैर कांग्रेसी' भारत में भारत के विभाजन को लीजिए। भारत के नये नक़्शे में तो कहीं भी ये दो भारत दिखाई नहीं देते। यह कहीं अच्छा होता, अगर सर सेम्युअल सशस्त्र भारत और निःसशस्त्र भारत की चर्चा करते। कांग्रेस निःशस्त्र करोड़ों का प्रतिनिधित्व करती है, वे चाहे किसी जाति या मत के अनुयायी हों। क्या यह ठीक है कि सशस्त्र भारत की उसके निःशस्त्र भाग के विरुद्ध लड़ाई कराई जाये ? ऐसा समानान्तर उदाहरण इतिहास में मिलना मुश्किल होगा, जिसमें निःशस्त्र लोगों ने निःशस्त्रता को स्वतन्त्रता का मध्यम साधन बनाकर स्वतन्त्रता की प्रेरणा का प्रतिनिधित्व किया हो। सर सेम्युअल ने संसार को बताया है कि भारत की आजादी की लड़ाई तबतक नहीं जीती जा सकती, जबतक कि निःशस्त्र भारत सशस्त्र भारत से, जिसमें ब्रिटिश सरकार भी शामिल है, समझौता नहीं करता। इसका अर्थ यह है कि सच्ची जनतंत्रीय भावना को, जिसका प्रतिनिधित्व निःशस्त्र भारत करता है, सशस्त्र भारत और ब्रिटिशसत्ता मिलकर नीचा दिखायें। यहाँ भी मैं कोई शिकायत नहीं करता। सर सेम्युअल अकस्मात् ही ब्रिटिश परम्परा और रूप को नहीं बदल सकते थे। सिर्फ़ मेरा तो खेदजनक कर्तव्य है कि यह प्रगट करूँ कि एक पक्षपातरहित भारतीय ने उनके भाषण को किस प्रकार समझा है। इसमें मुझे सन्देह नहीं कि सर सेम्युअल ने जो कुछ कहा है, वैसा वह मानते भी हैं। हाँ, उन्होंने ऐसा कुछ भी नहीं कहा जो काँग्रेसजनों के, जो स्वतंत्रता के प्यासे हैं, सूखे गलों को शांत कर सके। काँग्रेस को तो पहले से भी अधिक अपने धर्म के अनुसार चलना होगा और उस अहिंसात्मक शक्ति का विकास करना होगा जो सशस्त्र भारत को और साथ ही सशस्त्र ब्रिटेन को निःशस्त्र कर देगी। अगर काँग्रेस ऐसा कर सकी तो विश्व की शान्ति के लिए यह उसकी सबसे बड़ी देन होगी। शांति शस्त्रों के झगड़े से नहीं आती, बल्कि निःशस्त्र राष्ट्रों के संकट-काल में न्यायपूर्वक रहने और न्याय करने से आती है।"

'हरिजन-सेवक', ४ नवम्बर, १९३९

वायसराय का वक्तव्य

[वायसराय, महात्मा गांधी, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद, पं० जवाहरलाल नेहरू, सरदार पटेल और श्री जिन्ना के सम्मेलन के बाद वायसराय-भवन, नई दिल्ली से वायसराय ने निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया—सं.]

कांग्रेस और मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों में जो बातचीत चल रही है, उसके फलस्वरूप वे किसी समझौते पर नही पहुंचे हैं।

जिस बातचीत की मैंने सलाह दी थी वह हो चुकी है। लेकिन उसका परिणाम बहुत ही निराशाजनक हुआ है। महत्वपूर्ण मसलों पर प्रमुख दलों के बीच आज भी मतभेद मौजूद है। मैं तो बस यही कहूंगा कि मैं इस असफलता से निराश नहीं हुआ हूँ। बड़े दलों के नेताओं और देशी नरेशों के परामर्श से मैं फिर प्रयत्न करने का विचार करता हूँ जिससे समझौते की कोई सम्भावना निकल सके।

जबसे मैं भारत में हूँ, मेरी इच्छा यही रही है कि आपस में समझौता कराऊं। समझौता भारत के लिए आज जितना महत्वपूर्ण है, उतना शायद कभी अनुभव नहीं किया गया। समझौते का अर्थ है कि भारतवासी, चाहे किसी भी जमात के हों, कोई भी उनका धर्म हो, और चाहे वे ब्रिटिश भारत में रहते हों, या देशी रियासतों में, सामान्य योजना में मिलकर काम करें। ऐसा कराने के लिए प्रयत्न करना योग्य है। मैं चाहे अबतक असफल रहा, लेकिन मैं फिर कोशिश करूंगा। मैं भारतवासियों से कहूँगा कि वे मेरी कठिनाइयों को महसूस करें और मेरी सदिच्छा और सहायता देने की इच्छा की क़द्र करें। हम ऐसी समस्या पर विचार कर रहे हैं जो कि संयुक्त कोशिशों को भी असफल कर चुकी हैं। दृष्टिकोण में गहरे मतभेद हैं जिनको हमें सामने रखना है और उन्हें तै करना है। बहुत से मजबूत और गहरी जड़ पकड़े हुए स्वार्थ हैं जिनपर विचार करना होगा और जिनके रुख की केवल नाचीज़ समझकर उपेक्षा नहीं की जा सकेगी। अल्पसंख्यक जातियां हैं, जोकि संख्या, ऐतिहासिक महत्व तथा संस्कृति में बहुत बड़ी हैं। ये तमाम पहलू हैं जिनपर पूरा जोर दिया जाना चाहिए। समस्यायें निस्सन्देह उलझी हुई हैं, मगर मैं उनका हल होना असम्भव नहीं मानता हूँ। मेरा यह विश्वास है कि अन्य मानवी समस्याओं की तरह वे भी सद्भावनापूर्ण विचार-विनिमय के आगे घुटने टेक देंगी। मैं देश के और महान राजनैतिक पार्टियों के नेताओं से तथा उनके हलकों से, जिनका कि मैं जानता हूं उन नेताओं में पूरा विश्वास है और नेता जिनका बहुत योग्यता के साथ नेतृत्व करते हैं, कहूंगा कि वे मुझे सहायता दें जिसकी कि मुझे बहुत आवश्यकता है, यदि हमारी कठिनाइयों से पार होने और एक ऐसे परिणाम पर पहुंचने की, जैसा कि मेरा विश्वास है कि हम चाहते हैं, कोई आशा बाकी है।

: २६ :

वायसराय का पत्र

[वायसराय द्वारा महात्मा गांधी, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद और मुस्लिम-लीग के अध्यक्ष श्री जिन्ना के नाम २ नवम्बर १९३९ को वायसराय-भवन से निम्न-लिखित पत्र भेजा गया——सं०]

"(१) आपको याद होगा कि कलकी वार्तालाप के दौरान में मैं उस तजवीज को जो कि मैंने आपके तथा वैठक में उपस्थित अन्य महानुभावों के सामने रक्खी थी, असली रूपमें आपके आगे पेश करने के लिए रज़ामन्द हुआ था और इस वातपर जोर दिया था कि मैंने सहायता करने की हार्दिक इच्छा के साथ जिसमें कि सम्राट् की सरकार भी रज़ामन्द है, ऐसा किया था।

"(२) तजवीज, जिसपर कि मैंने आपको तथा अन्य उपस्थित महानुभावों को कांग्रेस और मुस्लिम-लीग के नेताओं की हैसियत से विचार करने के लिए निमन्त्रित किया था, यह थी कि केन्द्र में मेल के साथ काम करना जरूरी समझते हुए, आप खुद अपनी कान्फ्रेन्स करके इस वात को मद्देनज़र रखते हुए विचार-विनिमय करें कि आया प्रांतीय क्षेत्र में आप अपने बीच किसी समझौते का आधार निकाल सकते हैं या नहीं, ताकि उसके फलस्वरूप आप मेरे सामने ऐसे प्रस्ताव पेश कर सकें जिनसे कि आपकी दोनों संस्थाओं के प्रतिनिधि केन्द्रीय सरकार में मेरी कार्यकारिणी के सदस्यों की हैसियत से सहयोग देना शुरू कर सकें। मैंने यह भी कहा था कि मेरी राय में इसके लिए प्रान्तों में विद्यमान तमाम मतभेदों की प्रत्येक वात को ही तय करना ज़रूरी नहीं है। जिस चीज़ की आवश्यकता है वह यह कि प्रान्तों के मामले में कम-से-कम इतना समझौता हो जाये कि जिसमें मेरे मुलाकाती और वे संस्थायें जिनका कि वे प्रतिनिधित्व करते हैं, ऐसी योजना पेश कर सकें, जिसपर कि केन्द्र के लिए विचार किया जा सके।

"(३) मैंने केन्द्र में किसी भी प्रवन्ध के सम्वन्ध में कहा था——

"पहिले, तो यह कि किसी की राय में भी अन्य प्रमुख पार्टियों के एक या अधिक प्रतिनिधियों को शामिल करना ठीक खयाल किया जा सकता है और यह एक ऐसा प्रश्न है जिस पर कि मैं विस्तार के साथ विचार करते समय आपकी सलाह की कद्र करूँगा।

"दूसरे, केन्द्र के लिए जिस योजना पर विचार करने के लिए मैंने आपको निमंत्रित किया था, वह खासतौर से केवल युद्ध के समय के लिए ही होगी और युद्ध के वाद शासन-सुधारों के अधिक विस्तृत प्रश्न से इसका कोई सम्वन्ध नहीं होगा। मैंने यह भी उल्लेख किया कि उस आखिरी वात पर मेरी घोषणा में ब्रिटिश सरकार की

स्थिति साफ़ कर दी गई थी । मैं घोषणा के उन अंशों की एक प्रति भी जिनकी कल की बैठक में चर्चा की गई थी, इसके साथ ही जोड़ देता हूँ ।

"तीसरे, एक राजनैतिक पार्टी के सदस्य की हैसियत से मेरी कार्य-कारिणी में नियुक्त किये जानेवाले किसी भी व्यक्ति के अधिकार और कर्त्तव्य वही होंगे जोकि मेरी कार्यकारिणी के वर्तमान सदस्यों के हैं ।

"चौथे, यह व्यवस्था वर्तमान क़ानून की आम-योजना के अन्तर्गत ही होगी । निस्सन्देह यह लड़ाई के जारी रहने तक केवल अस्थाई प्रबन्ध ही होगा । मैंने वही चीज़ रक्खी है जिसकी कि आवश्यकता है और वह यह कि हम मिलकर कोई भी क्रियात्मक योजना तैयार करलें और उसको जहाँतक हो सके जल्दी-से-जल्दी अमल में लावें, उस समय तक जबकि तमाम वैधानिक स्थिति पर अच्छी तरह विचार किया जायगा जैसा कि सम्राट की सरकार युद्ध ख़त्म होने के बाद करने की इच्छा प्रकट कर चुकी है ।

"(४) मेरे ख़याल में उपरोक्त से स्थिति साफ़ हो गई है । अन्त में मैं फिर यह दोहराता हूँ जैसा कि मैंने कल कहा, मैं हर समय आपकी इच्छा पर हूँ या अन्य महानुभावों की भी इच्छा पर, जोकि हमारी बैठक में उपस्थित थे और इन तमाम महत्त्व पूर्ण प्रश्नों पर फ़ैसला करने के लिए जो कुछ भी सहायता मैं दे सकता हूँ, देने के लिए तैयार हूँ । मुझे पूरा विश्वास है और जैसा कि मैंने कल भी कहा था कि जो सुझाव मैंने आपके सामने पेश किये हैं, जोकि मुकम्मिल समझौते पर पहुँचने के लिए सम्राट की सरकार की हार्दिकइच्छा का पूर्ण प्रमाण दे रहे हैं, उनपर आप पूर्ण सहानुभूति के साथ विचार करेंगे ।

: २७ :

कांग्रेस का उत्तर

[राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद नें ३ नवम्बर को बिड़ला भवन, नई दिल्ली से वायसराय के पत्र का जो उत्तर भेजा, उसका पूरा विवरण इस प्रकार है—सं०]

"मैं आपके २ नवम्बर वाले पत्र के लिए आपको धन्यवाद देता हूँ, जिसमें उस योजना का असली रूप अंकित है जो कि आपने १ नम्बर को जबकि हम आपसे मिले थे, हमारे सामने रक्खी थी । मेरे सहयोगियों तथा मैंने इस पर ध्यानपूर्वक विचार किया है । हमने श्री एम० ए० जिन्ना के साथ हुई बातचीत का भी लाभ उठाया है । लेकिन हम उस उत्तर को बदलने में अपने को असमर्थ पाते हैं, जो कि हमने मुलाकात के दौरान में दिया था ।

"आरम्भ में मैं यह बतलाना पसन्द करूंगा कि मुलाकात के अवसर पर महात्मा गान्धी तथा मेरे सामने कांग्रेस द्वारा उठाये गये युद्ध के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण-विषयक मुख्य व नैतिक मुद्दे के बारे में कोई बातचीत नहीं आई जिसके अभाव में किसी भी सहायक प्रस्ताव पर कांग्रेस द्वारा विचार करना असम्भव है ।

"वर्तमान संकट यूरोप में युद्ध छिड़ जानें और ब्रिटिश सरकार द्वारा भारत को उसकी प्रजा की राय लिये विना एक 'युद्ध में शामिल' देश घोषित कर दिये जाने के कारण पैदा हुआ है। यह संकट पूर्णतः राजनैतिक है और भारत के साम्प्रदायिक मामले से उसका कोई सम्वन्ध नहीं है और यह ब्रिटिश सरकार के युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों तथा भारत की स्थिति के सम्वन्ध में आवश्यक प्रश्न उत्पन्न कर देता है। कांग्रेस-कार्य-समिति ने, जैसा कि आपको विदित है, १४ सितम्बर १९३९ को एक लम्बा वक्तव्य जारी किया था जिसमें कांग्रेस द्वारा ब्रिटिश सरकार को इन युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों का खुलासा करने के लिए आमन्त्रित किया गया और खासतौर से पूछा गया कि इनको भारत पर कैसे लागू किया जायगा तथा फिलहाल इन पर कैसे अमल किया जायगा है। वक्तव्य में यह भी कहा गया था कि भारतीय प्रजा को एक राष्ट्रीय पंचायत द्वारा बिना किसी वाहरी हस्तक्षेप के अपना शासन-विधान वनाने तथा अपनी वनाई नीति का संचालन करने के लिए 'आत्मनिर्णय' का अधिकार होना चाहिए। १० अक्तूवर १९३९ ई० को कांग्रेस-महासमिति ने भी इस वक्तव्य को स्वीकार कर लिया और कहा कि ब्रिटिश सरकार को अपनी घोषणा में भारत को एक स्वतन्त्र राष्ट्र घोषित कर देना चाहिए तथा उस पर अभी से जहांतक हो सके अमल शुरू होजाना चाहिए। महासमिति ने यह भी कहा था कि भारतीय स्वतन्त्रता प्रजातन्त्र व एकता पर आश्रित होनी चाहिए और समस्त अल्पसंख्यकों के अधिकारों की रक्षा होनी चाहिए।

"इसके वाद आपके वक्तव्य में ब्रिटिश सरकार की नीति घोषित कर दी गई, जिसके उद्धरण आपने मेरे पास भेज कर वड़ी कृपा की है। इस वक्तव्य पर कांग्रेस-कार्यसमिति द्वारा तुरन्त विचार किया गया और समिति ने राय दी कि वह दुर्भाग्यपूर्ण तथा नितान्त असन्तोषजनक है। इसके परिणामस्वरूप समिति यह घोषित करनें, कि वह ग्रेटन-ब्रिटेन को कोई सहायता नहीं दे सकती और काँग्रेसी मन्त्रिमण्डलों को इस्तीफा दे देने का आदेश देने के लिए वह वाध्य हो गई।

"यह वात नोट करने योग्य है कि आपकी घोषणा को कांग्रेस के वाहर भी वहुसंख्यक भारतीय प्रजा द्वारा अस्वीकार किया गया है।

"इसके उपरान्त पार्लमेण्ट में ब्रिटिश सरकार की ओर से जो वक्तव्य दिये गए हैं उनसे भी आपके द्वारा घोषित की गई नीति में कोई विशेष परिवर्त्तन नहीं हुआ है, और जैसा कि आपनें ठीक निर्देश किया है, यह नीति अव भी आपके द्वारा भेजे गये उद्धरणों से ही शासित की जा रही है। वर्त्तमान अवस्थाओं में हमारे लिए इस नीति को स्वीकार करना अथवा भावी सहयोग की किसी वात पर विचार करना तवतक असम्भव है जवतक कि कांग्रेस द्वारा सुझाई गई लाइनों पर ब्रिटिश सरकार की नीति स्पष्ट नहीं की जाती।

"हमें यह जानकर वहुत दुःख हुआ है कि इस मामले में साम्प्रदायिक प्रश्न को खींच लिया गया ह। इसने मुख्य मुद्दे को अंधेरे में डाल दिया है। कांग्रेस की ओर

से यह वार-बार दोहराया गया है कि हम साम्प्रदायिक विवाद के सब नुक्तों को आपसी बातचीत से हल करने की हार्दिक इच्छा रखते हैं और हम इस उद्देश्य-सिद्धि के लिए अपने प्रयत्नों को जारी रखने का इरादा रखते हैं। लेकिन मैं बतला देना चाहता हूं कि यह प्रश्न ऊपर सुझाई गई भारतीय स्वतन्त्रता की घोषणा करने में किसी तरह भी रुकावट नहीं है। इस प्रकार की घोषणा समस्त भारत के लिए है, न कि किसी जाति-विशेष के लिए; और राष्ट्रीय-पंचायत जोकि भारत का विधान तैयार करेगी, मताधिकार के विस्तृत आधार पर तथा साम्प्रदायिक प्रतिनिधित्व के बारे में एक समझौता करके बनाई जायगी। इस बात पर हम सहमत हैं कि अल्प-संख्यकों के अधिकारों की पूर्ण रक्षा होनी चाहिए और यह रक्षा सम्बद्ध पार्टियों में एक समझौते के द्वारा हो। ब्रिटिश सरकार ने, हमारी राय में, इस प्रश्न का हल मुश्किल कर दिया है। कांग्रेस की इस घोषणा से ब्रिटिश सरकार की एतद्विषयक असली चिंता दूर हो जानी चाहिए कि कांग्रेस ऐसे विधान का ख़याल भी नहीं करती जिसमें कि असली अल्पसंख्यक जातियों को उनकी इच्छा के मुताबिक संरक्षण प्राप्त न हो।

"हमें ऐसा प्रतीत होता है कि इस मामले पर आगे कोई विचार-विनिमय करने के लिए उपरोक्त प्रकार की स्पष्ट घोषणा एक आवश्यक प्रारम्भिक वस्तु है। मैं यह भी कहना पसन्द करूंगा कि यूरोपियन युद्ध की ताजी घटनाओं ने युद्ध के उद्देश्यों का साफ स्पष्टीकरण और भी जरूरी कर दिया है। यदि सरकार की ओर से कोई संतोषजनक घोषणा की जायगी, तो आप द्वारा रक्खी गई योजना पर बहस करना उपयुक्त व लाभदायक होगा और हम प्रसन्नतापूर्वक आपके साथ इस पर विचार-विनिमय करेंगे।

"यह बतलाना शायद अनावश्यक है कि गांधीजी इस पत्र से पूर्णत: सहमत हैं।"

: २८ :

लार्ड ज़ेटलैण्ड का भाषण

[**लार्ड-सभा में ७ नवम्बर १९३९ को लार्ड ज़ेटलैण्ड ने निम्नलिखित भाषण** दिया—सं०]

"पिछले सप्ताह गवर्नर-जनरल ने कांग्रेस और मुस्लिम लीग के बीच समझौता कराने का प्रयत्न किया था और वह विफल हुआ, इसके लिए गवर्नर-जनरल द्वारा प्रकाशित खेद में सम्राट की सरकार पूर्णरूप से शरीक है। गवर्नर-जनरल ने पिछली बार जब विभिन्न पार्टियों और जातियों के नेताओं और प्रतिनिधियों से धीरज के साथ मुलाकात की थी तब उनको विश्वास हो गया था कि जबतक कांग्रेसी प्रांतों के संबंध

में विद्यमान मुसलमानों की शिकायतें दूर नहीं होतीं, तबतक युद्ध चलाने के उद्देश्य से केन्द्रीय गवर्नमेण्ट से भारत को शरीक करना सम्भव नहीं है।

"प्रकाशित वक्तव्यों से स्पष्ट है कि कांग्रेस ने वायसराय द्वारा पेश की गई योजना पर विचार करने तक से इनकार कर दिया है। जबतक इन दो बातों की सम्राट की सरकार घोषणा नहीं करेगी, तबतक उन पर वह विचार नहीं कर सकती। वे दो बातें इस प्रकार हैं :—

"१. भारत स्वाधीन राष्ट्र है, इसकी घोषणा की जाय।

"२. भारत का भावी विधान बिना बाह्य हस्तक्षेप के व्यापक बालिग मताधिकार पर निर्वाचित प्रतिनिधियों की बनी राष्ट्रीय-पंचायत द्वारा साम्प्रदायिक एकता के आधार पर बनाया जायगा।

"अल्पसंख्यकों की समस्या के सम्बन्ध में कांग्रेस का रवैया पहले जैसा है। उसका कहना है कि इन दो बातों से धार्मिक या जातीय अल्पसंख्यक समस्या का कोई संबंध नहीं है। उसका यह भी कहना है कि अल्पसंख्यकों की समस्या भारतीयों को अपना विधान बनाने का अधिकार देने से स्वतः हल हो जायगी, क्योंकि उनकी सहमति से उसको भावी विधान में संरक्षण दिया जायगा।

"सम्राट की सरकार यह मानने में असमर्थ है। भारत से ब्रिटेन का चिरकाल से सम्बन्ध चला आ रहा है। उसको देखते हुए यह सम्भव नहीं है कि भारत के भविष्य का विधान बनाने के समय हम कोई दिलचस्पी न लें और हम भारत के प्रति चिरकाल से चले आ रहे अपनें उत्तरदायित्व को छोड़ दें। वायसराय ने इससे पहले जो भारत की विभिन्न पार्टियों और दलों के लोगों से मुलाकात की थी उसने असंदिग्ध रूप में यह सिद्ध कर दिया है कि यदि हम इस समय अपने इस उत्तरदायित्व और अपनी जिम्मेदारी को छोड़ देंगे तो अधिकांश भारतीय जनता को यह स्वीकार न होगा, और न वह इसको पसन्द करेगी।

"इसका यह अर्थ नहीं है कि हम भारत के प्रति की गई अपनी प्रतिज्ञा को भूल गये हैं या हमने उसकी उपेक्षा कर दी है। ब्रिटिश कामनवेल्थ में भारत को अपना उचित स्थान पानें में, जिसके लिए हमने प्रतिज्ञा की है, सहायता देने का हमारा संकल्प पहले जैसा बना है और कमजोर नहीं हुआ है। पिछले विवाद के कारण भारत में कुछ सन्देह उत्पन्न हो गया है। मैं उन सन्देहों और शंकाओं को दूर कर देना चाहता हूँ। मालूम हुआ है कि १९२६ का डुमीनियन स्टेटस कहने से भारत में कुछ भ्रम होगया है। खयाल किया जाता है कि १९२६ के डुमीनियन स्टेटस द्वारा डुमीनियनों को जो स्थिति प्रदान की गई थी, और जिसकी पहिली बार साम्राज्य परिषद (१९२६) में मि० बालफोर ने घोषणा की थी, उसकी अपेक्षा वेस्ट मिन्स्टर क़ानून १९३१ द्वारा डुमीनियनों को मिली स्थिति और हैसियत अधिक बड़ी है। मगर ऐसी बात नहीं है, आप यकीन मानिए।

"सर सेम्युअल होर ने आम-सभा में बोलते हुए डुमीनियन स्टेटस १९२६ वहा

ह, क्योंकि साम्राज्य-परिषद ने उसी साल पहली बार डूमीनियनों की स्थिति की परिभाषा की थी और उनकी बदली स्थिति को लेखबद्ध किया था। वैस्ट मिन्स्टर क़ानून १९३१ द्वारा केवल उनको कानूनी रूप दिया गया है और उनकी बदली स्थिति और हैसियत को स्वीकार किया गया है।

"गवर्नर-जनरल ने केन्द्रीय सरकार में राजनैतिक पार्टियों को शामिल करने की जो योजना बनाई है यदि वह अमलरूप में आती तो भारत के मार्ग की बहुत सी कठिनाइयां दूर हो जातीं। वायसराय अपना प्रयत्न विफल होने पर भी हताश नहीं हुए हैं और उनको आशा है कि राजनैतिक पार्टियाँ उनके प्रस्तावों पर पुनर्विचार करेंगी। वायसराय ने उनको पारस्परिक समझौते पर पहुँचने में अपनी सहायता देने का वचन दिया है और सरकार वायसराय की नीति से सहमत है।

"बंगाल, पंजाब, और सिन्ध में जहां कांग्रेस का बहुमत नहीं है, इस समय मन्त्रिमण्डल विद्यमान हैं। शेष आठ प्रान्तों में से पांच प्रांतों में कांग्रेसी मन्त्रि मण्डलों ने स्तीफे दे दिये हैं और शेष तीन में भी निकट भविष्य में स्तीफा दिये जाने की सम्भावना है। एक प्रान्त—आसाम—को छोड़कर अन्य प्रांन्तों में उनकी जगह दूसरा मन्त्रि-मण्डल बनना सम्भव नहीं है।

"पांच प्रान्तों में गवर्नर ने प्रान्त का सारा शासन-भार अपने हाथ में ले लिया है, क्योंकि कांग्रेसी मन्त्रि-मण्डलों की जगह धारा-सभा के सदस्यों का बहुमत सम्पादन करने में समर्थ दूसरा मन्त्रिमण्डल बनाना सम्भव नहीं था। अतः गवर्नरों ने एक्ट के अनुसार घोषणा करके सब अधिकार अपने हाथ में ले लिए हैं। इण्डिया एक्ट की ९३ वीं धारा में कहा गया है, कि जब इस विधान की धाराओं के अनुसार सरकार चलाना सम्भव न हो, तो इसका आश्रय लिया जाय। इसके अनुसार शासन की मशीनरी और सम्राट की सरकार को चालू रखने के लिए यह व्यवस्था की गई है।

"यदि कांग्रेसी और उसके समर्थकों ने विरोध नहीं किया तो गवर्नर अपने सलाहकारों की सहायता से कुशलता के साथ प्रान्तों का शासन चला सकेंगे।

"इस नई व्यवस्था से एक मौलिक अन्तर हो गया है। सलाहकारों की सलाह से किये गए कार्यों के लिए गवर्नर अब इस पार्लमेंट के प्रति जिम्मेदार होंगे, पहले के समान मन्त्रियों की सलाह से किये गए कार्यों के लिए प्रान्तीय-धारा-सभाओं के प्रति नहीं।

"हमें इस बात का गहरा खेद है कि कांग्रेसी मन्त्रियों ने, जो कि बड़े उत्साह और साहस से कार्य कर रहे थे और शासन-प्रबन्ध में आयीं समस्याओं को अपनी सारी शक्ति से हल कर रहे थे, अपना कार्य जारी नहीं रक्खा। मगर हमें आशा है कांग्रेस अपना सहयोग देर तक नहीं हटाये रहेगी और जबतक इस आशा के लिए एक भी कारण मौजूद है, हम यह आशा बराबर बनाये रहेंगे। जब भविष्य में धारा-सभा के सदस्यों का विश्वास सम्पादन करनेवाला मन्त्रिमण्डल बनना सम्भव होगा, आप विश्वास मानिए, गवर्नर अपने इन अधिकारों का उसी समय परित्याग कर देंगे।"

वायसराय का संदेश

[दिल्ली में कांग्रेस के नेताओं तथा मुस्लिम लीग के नेता से बातचीत करने के कुछ समय बाद वायसराय ने निम्नलिखित संदेश ब्राडकास्ट किया—सं०]

"मुझे यह बड़े दुःख के साथ घोषित करना पड़ रहा है कि मेरे अनुरोध पर कांग्रेस व मुस्लिम लीग के प्रतिनिधियों में समझौते की जो बातचीत आरम्भ हुई थी उसका अभी तक इच्छित परिणाम नहीं निकला है। देश को उस योजना की जानकारी प्राप्त करने का हक है, जिस पर कि मैंने भारत के दोनों महान राजनैतिक दलों के नेताओं को विचार करने के लिए बुलाया था। इस सम्बन्ध में हुआ समस्त पत्र-व्यवहार में कल प्रकाशित कर दूंगा। यहाँ मैं सिर्फ़ यह बतला देना चाहता हूँ कि इस वार्त्तालाप का उद्देश्य दोनों राजनतिक दलों के नेताओं को मिलाना और उनके द्वारा प्रान्तीय मतभेदों को दूर कर केन्द्र में काम करने के लिए समझौता कराना था। मेरी १८ अक्तूबर वाली घोषणा में एक परामर्श-दात्री समिति का उल्लेख है। लेकिन इस समिति में जबतक सदस्यों का मतैक्य नहीं होगा, तबतक यह ठीक काम नहीं कर सकेगी। इसी कारण दोनों दलों के नेताओं को परस्पर बातचीत द्वारा मतभेदों को दूर करने के लिए बुलाया गया। प्रान्तों में सम्राट को सरकार द्वारा जो अहतियाती कार्रवाइयां की गई हैं वे आवश्यक समझ कर की गई हैं, न कि बतौर एक दण्ड-व्यवस्था के। उनके अमल के बारे में मेरी अपनी भावना जो है, उसे फतहपुर सीकरी के फाटक पर अंकित एक अरबी कविता भली प्रकार व्यक्त करती है। उस कविता का सार यह है—

'जीवन एक पुल है, ऐसा पुल जिसे आप कर सकते हैं।
'आप उस पर अपना घर नहीं बना सकते।'

"विस्तृत क्षेत्र में भी मैं इस निराशा को ऐसी नहीं समझता कि अन्त तक चले। अर्थात् मैं उन प्रयत्नों को, जो कि दोनों पक्षों में आपसी समझौता कराने के लिए कर रहा हूँ, नहीं छोड़ सकता। इन आपसी मतभेदों को आँखों से ओझल नहीं किया जा सकता। इन्हें समझौते द्वारा हल करना पड़ेगा। अब मैं और ज्यादा नहीं कहूँगा। लेकिन मैं भारतीय प्रजा से सद्भावना व धैर्य रखने की प्रार्थना करूँगा। कठिनाइयां महान् है और कितनी महान् हैं, पिछले छः सप्ताहों की कार्रवाइयों ने यह बतला दिया है। परन्तु मैं इन कठिनाइयों को दूर करने का प्रयत्न जारी रक्खूंगा। चाहे मैं इस कार्य में सफल होऊँ या असफल।"

: ३० :

महात्मा गांधी का वक्तव्य

[वायसराय की घोषणा तथा ब्राडकास्ट पर महात्मा गांधी ने निम्न वक्तव्य प्रकाशित किया—सं०]

वायसराय के ब्राडकास्ट और उनमें और श्री राजेन्द्रप्रसाद और जिन्ना साहब के बीच हुए पत्र-व्यवहार के ऊपर, जो कि वायसराय द्वारा प्रकाशित किया गया है, की गई परिचयात्मक टिप्पणी को मैंने सम्मान के साथ पढ़ा है। मैं वायसराय की पराजय न स्वीकार करने और उस समस्या को, जो कि सुलझती नहीं प्रतीत होती, सुलझाने के दृढ़ संकल्प का स्वागत करता हूँ। हल निकालने के बारे में मैं वायसराय की चिन्ता में पूर्णतः भागीदार हूं।

इन दो घोषणाओं पर कांग्रेस में होने वाली प्रतिक्रिया को देखने की प्रतीक्षा किये बग़ैर और उभयपक्ष को विशुद्धभाव से सहायता पहुंचाने के भाव से मैं सलाह देना चाहता हूँ कि उस समय तक कोई हल सम्भव नहीं है जबतक भारत के सम्बन्ध में स्वीकारयोग्य युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा नहीं की जाती। अबतक यहाँ या ब्रिटेन में जो घोषणायें की गई हैं वे पुराने ढंग की हैं और स्वाधीनता-प्रिय भारत ने उनपर संदेह किया है और उनकी निन्दा की है। अगर साम्राज्यवाद ख़त्म हो गया है तो भूत से स्पष्टरूप से सम्बन्ध-विच्छेद होना चाहिए। नवीन युग के उपयुक्त भाषा का प्रयोग होना चाहिए। यदि इस आधारभूत सत्य को स्वीकार करने का अभी तक समय नहीं आया है तो मैं निवेदन करूँगा कि हल को ढूढ़नें के लिए प्रयत्न स्थगित रक्खे जाँय।

इस सम्बन्ध में मैं ब्रिटिश राजनीतिज्ञों को स्मरण कराना चाहता हूँ कि इस समय आवश्यकता इस बात की है कि भारत की इच्छाओं का ख़याल किए बग़ैर भारतीय नीति के सम्बन्ध में ब्रिटेन अपनें इरादों की घोषणा कर दे। एक दास रखने वाला, जिसने कि दासता को नष्ट करनें का निश्चय कर लिया हो, अपने दासों से इस बात में सलाह नहीं करता कि वे आज़ादी चाहते हैं या नहीं।

एक बार दासता के बन्धनों से क्रमशः या सीढ़ी-दर-सीढ़ी नहीं, बल्कि एकदम भारत के मुक्त होने और स्वतन्त्र हो जानें की घोषणा कर देनें के बाद दरम्यानी हल ढूंढ़ना आसान होगा और अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने का प्रश्न सरल हो जायगा। आंखमिचौनी का खेल तब ख़त्म हो जायगा। स्वतन्त्रता का ऐसा कोई भी चार्टर (अधिकार-पत्र) जो बहु-संख्यकों और अल्पसंख्यकों को एकसमान स्वाधीनता प्रदान नहीं करता, देखने लायक़ भी न होगा। विधान बनानें में अल्पसंख्यक पूर्णरूप से हिस्सेदार होंगे। ऐसा कैसे हो सकता है, यह उन प्रतिनिधियों की बुद्धिमत्ता पर निर्भर होगा, जिनको विधान बनाने का पवित्र कर्त्तव्य सौंपा जायगा।

ब्रिटेन नें अबतक अपनी ताक़त को अल्पसंख्यकों को तथाकथित बहु-संख्यकों के विरुद्ध खड़ा करके बनाये रक्खा है—साम्राज्यवाद की किसी भी प्रणाली में यह अनिवार्य है—और इस प्रकार से सम्मत हल होना असम्भव बना दिया है। अल्पसंख्यकों को संरक्षण देने की जिम्मेदारी उन दलों पर ही डाल देनी चाहिए। जबतक ब्रिटेन उस बोझ को वहन करनें का अपना मिशन समझता है, तबतक वह भारत को अपने अधीन बनाये रखने की जरूरत समझता रहेगा। और मुक्ति के लिए देशभक्त, अगर मैं उनका पथ-प्रदर्शन करूंगा, तो वे अहिंसात्मक रीति से लड़ेंगे और यदि मैं अपने प्रयत्न सें विफल हुआ तो वे हिंसात्मक युद्ध करेंगे। मैंने आशा प्रकट की है और अब भी आशा करता हूं कि भगवान का युद्ध का अभिशाप आशीर्वाद के रूप में बदल जायगा और ब्रिटेन यह अनुभव करेगा कि अपने कार्य के औचित्य को सिद्ध करने और इस युद्ध को जल्दी समाप्त करने के लिए भारत जैसे प्राचीन और महान देश को अपनें शासन के बोझ से मुक्त करना आवश्यक है।

वायसराय की सचाई में विश्वास करते हुए, जैसा कि मैं करता हूँ, मैं अपने सहयोगी कार्यकर्त्ताओं से अनुरोध करूंगा कि वे धीरज न खोयें। सविनय-क़ानून-भंग उस समय तक शुरू नहीं हो सकता जबतक—

(१) वायसराय समझौते का मार्ग खोज रहे हैं,

(२) मुस्लिम-लीग मार्ग को रोके हुए हैं, और

(३) कांग्रेसजनों में अनुशासन नहीं है और एकता का भी अभाव ह।

मेरी दूसरी शर्त्त से मुस्लिम-मित्रों को नाराज़ नहीं होना चाहिए। जबतक मुस्लिम-लीग से किसी प्रकार की व्यावहारिक व्यवस्था नहीं होती तबतक सविनय क़ानून-भंग लीग के प्रतिरोध में परणित हो सकता है। कोई भी कांग्रेसजन इसमें सहायक नहीं हो सकता। मैं देखता हूँ, 'हरिजन' में मेरे लिखे नोट से जिन्ना साहब को चोट लगी है। मुझे इसके लिए दुःख है, मगर मैं इस समय अपने बचाव में कुछ नहीं कहूँगा। मैं उनमें और पंडित जवाहरलाल नेहरू में चल रही चर्चा को जिसके विषय में मैं आशा करता हूँ कि वह शीघ्र फिर शुरू होगी, बाधा नहीं डालना चाहता और प्रार्थना करता हूं कि यह साम्प्रदायिक शान्ति की ओर ले जावे।

उपर्युक्त वक्तव्य देने के बाद मैंने लार्ड-सभा में भारत मन्त्री द्वारा दिया गया वक्तव्य देखा है। इससे मुख्य स्थिति ज्यों-की-त्यों बनी रहती है।

८ नवम्बर, १९३९.

: ३१ :

राष्ट्रपति डॉ० राजेन्द्रप्रसाद का वक्तव्य

[वायसराय के वक्तव्य के जवाब में राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने पटना से निम्नलिखित वक्तव्य दिया—सं०]

मुख्य प्रश्न साम्प्रदायिक समस्या नहीं है, बल्कि भावी भारत की वैधानिक स्थिति और ब्रिटेन की लड़ाई लड़ने के उद्देश्यों की घोषणा है। जबतक इनका संतोषजनक उत्तर नहीं दिया जाता; तबतक कांग्रेस किसी भी प्रकार से ब्रिटिश नीति के साथ सहयोग नहीं दे सकती।

हम अपने विचार पूर्णरूप से स्पष्ट कर चुके हैं और हम सर सेम्युअल होर द्वारा बताई स्थिति स्वीकार नहीं करेंगे। भारत की वैधानिक स्थिति और ब्रिटेन के युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा हमारे निकट मुख्य प्रश्न हैं, अन्य सब प्रश्न गौण हैं। वे मुख्य प्रश्नों को ढक नहीं सकते, न उनसे अधिक महत्वपूर्ण ही वे बन सकते हैं।

रचनात्मक कार्य में कांग्रेस को अपनी शक्ति केन्द्रित करनी होगी जिसका मुख्य कार्य हिन्दू-मुस्लिम एकता कायम करना होगा। वायसराय से परामर्श का फल कुछ भी निकले, इस लक्ष्य की पूर्ति के लिए हम निरन्तर प्रयत्न करते रहेंगे। साम्प्रदायिक प्रश्न का फैसला हो जाने से कांग्रेस का बल नहीं बढ़ जायगा। यदि हम इस प्रश्न को हल करलें तो हमारी मांग का प्रतिरोध न किया जा सकेगा। यदि हमारी संयुक्त मांग भी ब्रिटिश-सरकार द्वारा स्वीकार न की गई, तो हम पूर्ण विश्वास से सविनय-भंग आन्दोलन शुरू कर सकेंगे, क्योंकि तब मुसलमान हमारा विरोध नहीं करेंगे।

...कुछ वामपक्षियों ने स्वतन्त्ररूप से कार्य करने की धमकी महासमिति में दी थी; मगर इस प्रकार का आन्दोलन बहुत बड़ा न होगा।

कांग्रेस अविलम्ब लड़ाई नहीं शुरू करने वाली है। इस समय हमारा पहला काम कांग्रेस को मजबूत बनाना और जब कभी लड़ाई हो उसके लिए तैयार होना है।...

६ नवम्बर, १९३९.

: ३२ :

पण्डित जवाहरलाल नेहरू का वक्तव्य

[लखनऊ से पण्डित जवाहरलाल नेहरू ने वायसराय के वक्तव्य पर निम्नलिखित वक्तव्य प्रकाशित किया—सं०]

वायसराय के वक्तव्य से मैं चकित रह गया हूं, क्योंकि जो असर दिल्ली में मुझ पर इससे सम्बन्धित पार्टियों के सम्पर्क से पड़ा था, इस वक्तव्य से उसके सर्वथा भिन्न

असर पड़ा है। इस वक्तव्य से मालूम होता है कि हमारे सामने विचारणीय प्रश्न साम्प्रदायिक है। वायसराय कहते हैं कि मुख्य राजनैतिक पार्टियों के प्रतिनिधियों में मौलिक सिद्धान्तों में आज सर्वथा मतभेद विद्यमान है। मेरे विचार से यह तो स्थिति का एकदम गलत वर्णन है और मैं नहीं जानता कि इस प्रकार का मौलिक मतभेद कोई है भी। मगर ब्रिटेन और कांग्रेस के बीच आधारभूत मतभेद है। और इसी कारण वायसराय के प्रस्तावों पर हम विचार नहीं कर सकते। हमारे सामने प्रश्न राजनैतिक है और इसी पर हम सबने विचार किया है। मेरे और मि० जिन्ना के बीच यह तय हुआ है कि जल्दी-से-जल्दी जब सुविधा हो तब साम्प्रदायिक सवाल पर पूर्णरूप से विचार किया जाय। इसका वायसराय के प्रस्तावों पर उस समय तक कोई असर नहीं होता जबतक कि राजनैतिक कठिनाई दूर नहीं हो जाती। इसलिए इस सम्बन्ध में उसपर कोई विचार नहीं किया गया है।

राजनैतिक मामले पर संकट उत्पन्न हुआ है, याने यूरोपियन युद्ध और भारत को 'युद्ध में शामिल' देश घोषित करने के कारण। कांग्रेस-कार्यसमिति ने युद्ध के उद्देश्यों की घोषणा करने और भारत के साथ वह किस प्रकार लागू होते हैं, यह बताने की मांग की थी। फलतः ब्रिटिश सरकार ने वायसराय के जरिए एक घोषणा की और वह सर्वथा असन्तोषजनक समझी गई। इसके फलस्वरूप कांग्रेस ने विचार किया कि वह युद्ध से अपने को सम्बन्धित नहीं रख सकती और उसने कांग्रेसी-मंत्रि-मण्डलों को स्तीफा देने के लिए कहा।

स्तीफे दिए गए और कुछ के स्वीकार भी हो चुके हैं। इन सब का साम्प्रदायिक स्थिति से कोई सम्बन्ध नहीं है।

वायसराय का अगला परामर्श है कि कांग्रेस और मुस्लिम-लीग को पहले प्रान्तीय क्षेत्र में समझौता कर लेना चाहिए और उसके बाद केन्द्र से सम्बन्धित प्रस्तावों पर विचार किया जायगा। यह सलाह अन्य किसी समय के लिए चाहे वाञ्छनीय हो, मगर मौजूदा हालतों पर लागू नहीं होती, क्योंकि हम स्वेच्छा से प्रान्तीय क्षेत्र से ब्रिटिश सरकार के साथ महत्वपूर्ण नीति में मतभेद होने के कारण हट गए हैं। प्रान्तीय क्षेत्र से हमारा हटना साम्प्रदायिक प्रश्न के कारण नहीं है।

इसलिए यह विस्मयजनक है कि वायसराय बुनियादी बात को भूल जाते हैं या उसकी उपेक्षा कर देते हैं और मामूली परिवर्तनों के बदले ब्रिटेन के लिए हमारा सहयोग लेते हैं। जैसा कि राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने अपने पत्र में लिखा है कि महात्मा गांधी और वह, उन दोनों ने मुलाकात में कांग्रेस द्वारा उठाए गए युद्ध के उद्देश्यों के स्पष्टीकरण-सम्बन्धी मुख्य और नैतिक प्रश्न का जिक्र नहीं पाया, उसके अभाव में कांग्रेस के लिए और गौण प्रस्तावों पर विचार करना नामुमकिन है।

यह स्मरण रखना चाहिए कि इस स्पष्टीकरण का साम्प्रदायिक समस्या से कोई सम्बन्ध नहीं है और न जैसा कि राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने अपनी मुलाकात और वायसराय को लिखे अपने पत्र में स्पष्ट किया है, इसका राष्ट्रीयपंचायत के प्रस्ताव से

ही कोई सम्बन्ध है। यह किसी भी साम्प्रदायिक आपत्ति को दूर करने में समर्थ है।

क्या वायसराय का ख़याल है कि मि० जिन्ना या मुस्लिम लीग इस प्रकार के स्पष्टीकरण या भारत को स्वतन्त्र देश घोषित करने के विरुद्ध हैं? अगर ऐसा है, तो मुझे भय है कि वे बहुत भूल में हैं। यह जानकर मुझे आश्चर्यजनक प्रसन्नता हुई कि जहां तक लक्ष्य का सम्बन्ध है, मैं और मि० जिन्ना बहुत ज्यादा परस्पर सहमत हैं। राजनैतिक समस्या के सुलझाने के हमारे तरीकों में मि० जिन्ना हमसे पूर्णतः सहमत नहीं हैं, अतः हमने अपना जवाब अलग वायसराय को भेजने का निश्चय किया। हमारी बातचीत ने बहुत सी कुशंकाओं को दूर कर दिया है और उससे हम पिछले सालों में जहां थे उससे एक दूसरे के बहुत नजदीक आ गये हैं। मुझे विश्वास है कि जो कुछ मतभेद राजनैतिक या साम्प्रदायिक बचे हुए हैं, वे भी दूर हो जायंगे। पिछले सप्ताह भी हमारे और मि० जिन्ना के बीच ऐसा कोई मतभेद नहीं था जो हमारे रास्ते में बाधक होता। मगर हमारे और ब्रिटिश सरकार के बीच मौलिक मतभेद हैं, इस सम्बन्ध में कोई ग़लती न होनी चाहिए। ब्रिटिश सरकार द्वारा युद्ध के उद्देश्यों और भारतीय स्वतन्त्रता के बारे में साफ शब्दों में घोषणा करने के मार्ग में कोई बाधक नहीं है, सिवाय उनके अपने आपको छोड़कर। जबतक इस प्रकार की संतोषजनक घोषणा नहीं की जाती, तबतक दूसरे मसले पैदा ही नहीं होते और हम ब्रिटिश सरकार की नीति में किसी भी रीति से सहयोग नहीं दे सकते। इस सीधे प्रश्न में साम्प्रदायिक प्रश्न को लाना जनता के मन को धुंधला करना है और उनका ध्यान ग़लत बात पर केन्द्रित करना है।

६ नवम्बर, १९३९.

: ३३ :

कांग्रेस क्या हिन्दू संस्था है?

[७ नवम्बर १९३९ को लार्ड-सभा में दिये गए लार्ड ज़ेटलैण्ड के भाषण पर महात्मा गान्धी का निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुआ—सं०]

लार्ड ज़ेटलैण्ड ने अपने वक्तव्य के अन्त में जो यह इलजाम लगाया है कि राष्ट्रीय महासभा याने कांग्रेस हिन्दुओं की ही प्रातिनिधिक संस्था है और इसलिए वह सिर्फ नाम के लिए राष्ट्रीय है। पर वस्तुतः वह साम्प्रदायिक है, ज़ाहिरा तौर पर उसके बारे में हमने कुछ नहीं सुना। पर कांग्रेस की इससे बड़ी कोई मानहानि नहीं हो सकती। क्योंकि अपने जन्म-काल से ही वह राष्ट्रीय रही है, उसके जन्मदाता एक अंग्रेज थे। स्वर्गीय ए० ओ० ह्यूम बहुत समय तक उसके मन्त्री रहे हैं। उसके मंत्रियों में एक या दो सदा मुसलमान रहे हैं। मुसलमान, अंग्रेज, ईसाई और पारसी उसके अध्यक्ष हुए हैं। दादाभाई जबतक कि काम करने के क़ाबिल रहे तबतक कांग्रेस के कर्त्ता-धर्त्ता वही रहे हैं। हरेक बात में वही रास्ता दिखलाते थे और

उन्हीं का दिमाग़ काम करता था। सर फिरोजशाह मेहता वम्बई प्रान्त के वेताज के वादशाह थे और वही जिनको चाहते उनको कांग्रेस और वम्बई-कारपोरेशन का अध्यक्ष वनाते थे। वदरुद्दीन तय्यवजी वरसों तक कांग्रेस की कार्रवाइयों में निश्चयात्मक भाग लेते रहे हैं। यह कौन नहीं जानता कि जव तक हकीम अजमल खां साहव जिन्दा रहे कांग्रेस की कारवाइयों में कोई भी वात विना उनकी स्वीकृति के नहीं होती थी? डा० अंसारी वरसों तक संयुक्त प्रधान मंत्री रहे हैं। खिलाफ़त के दिनों में अलीवन्धुओं का कांग्रेस पर जो प्रभाव था, उसे पाठक जानते ही हैं। आज भी कांग्रेस की कार्यसमिति मौलाना अवुलकलाम आजाद के सहयोग और वुद्धिमत्तापूर्ण पथ-प्रदर्शन के वगैर कुछ नहीं करती। हिन्दू-मुस्लिम-प्रश्नों पर जो कुछ निश्चय होता है वह उन्हीं की राय से होता है। कांग्रेस अव अपनी शताव्दी के उत्तरार्द्ध में है और अपने इस सारे इतिहास में वह इस प्रकार समस्त भारत के प्रतिनिधित्व का प्रयत्न करती रही है जिस प्रकार और किसी संस्था ने नहीं किया। और कांग्रेस ने जो भी विजय पाई उससे सभी जातियों को लाभ पहुंचा है।

"अगर सचमुच ऐसी वात है, तो कांग्रेस ने उस कार्य को क्यों हथिया लिया, जोकि अखिल भारतीय हिन्दू सभा का काम है?" कुछ क्रुद्ध पत्र-प्रेषक मुझसे पूछते हैं। 'ट्रिव्यून' ने भी उसके सम्पादक को जो कांग्रेस की तर्कहीनता मालूम पड़ी उस पर प्रकाश डाला है। इस तर्कहीनता या असंगति को क़वूल करना पड़ेगा। लेकिन तर्क ही से जीवन-व्यवहार नहीं होता, न संख्याओं का ही काम चलता है। स्पष्टतः देश राजनैतिक प्रगति के लिए कांग्रेस को साम्प्रदायिक समाधान की आवश्यकता प्रतीत हुई और उसके फलस्वरूप १९१६ में कांग्रेस-लीग-पैक्ट की सृष्टि हुई।

तभी से कांग्रेस ने साम्प्रदायिक एकता को कांग्रेस-कार्यक्रम का आधार वना लिया है। तार्किक दृष्टि से यद्यपि यह काम साम्प्रदायिक संस्थाओं का होना चाहिए था, लेकिन विविध जातियां अगर आपस में लड़ें-झगड़ें और जव राष्ट्रीय हित की दृष्टि से उसका हल आवश्यक हो जाये तो कांग्रेस जैसी लोक-संस्था चुपचाप सवकुछ देखती भर नहीं रह सकती। इस प्रकार उसे स्पष्टरूप से कर्तव्य का जो आह्वान मालूम पड़ा उसके सामने वह उसकी अवहेलना नहीं कर सकी। कांग्रेस ऐसी संस्था है और होनी चाहिए, जो साम्प्रदायिक मामलों में शुद्ध राष्ट्रीय और निष्पक्ष दृष्टि रक्खे। इसके विरुद्ध कुछ भी क्यों न कहा जाये, मैं इस वात पर जोर देता हूं कि कांग्रेस में ही भारत की आशा और आकांक्षायें निहित हैं। जहांतक कि भारत की राजनैतिक आकांक्षाओं का सम्वन्ध है, अगर यह सारे भारत का प्रतिनिधित्व न करती होती तो यह किसी के साथ कोई समझौता या करार नहीं कर सकती। लेकिन इसकी तो सारी परम्परा ही ऐसी है कि यह मुसलमानों के खिलाफ हिन्दुओं का या हिन्दुओं के खिलाफ़ मुसलमानों का प्रतिनिधित्व नहीं कर सकती। वह तो भारत के सव पुत्रों के सर्वसामान्य हित के प्रतिनिधित्व के ही योग्य है। सामान्य हित की दृष्टि से किन्हीं आदमियों या उनकी संस्थाओं के साथ समझौते करने की कांग्रेस कोशिश करे तो उस

में मुझे कोई गलती नहीं मालूम पड़ती। हां, यह कहने की कोई जरूरत नहीं कि वे हों परस्पर सहायक, परस्पर विरोधी हर्गिज न हों। इसमें शक नहीं कि यह काम है मुश्किल। लेकिन अगर लोग और संस्थाएं कांग्रेस के प्रति सद्भावना से काम लें, तो यह काम उसके क्षेत्र या उसकी योग्यता से बाहर का नहीं है। आज उसे सबका विश्वास प्राप्त नहीं है। इसलिए उसे उस दिन की प्रतीक्षा करनी पड़ेगी। अगर कोई और संस्था ऐसा करे तो कांग्रेसजन उसका स्वागत ही करेंगे।"

'हरिजन-सेवक', १८ नवम्बर, १९३९.

: ३४ :

कार्यसमिति का प्रस्ताव

[इलाहाबाद में २३ नवम्बर १९३९ को कांग्रेस-कार्यसमिति ने भारत के वर्तमान संकट पर नीचेलिखा प्रस्ताव पास किया—सं०]

"यूरोप में जो युद्ध का संकट पैदा होगया है और भारत पर उसका जो प्रभाव पड़ रहा है उसके सम्बन्ध में कांग्रेस-कार्यसमिति द्वारा प्रकाशित की गई नीति का देश ने जो स्वागत किया उससे कार्यसमिति को हर्ष हुआ है। यह नीति जिसका कि आधार कांग्रेस की अनेक घोषणाएँ हैं, कार्यसमिति द्वारा प्रकाशित किये गए १४ सितम्बर १९३९ के वक्तव्य में निर्धारित की गई थी। वक्तव्य के बाद की घटनाओं ने उसके औचित्य को सिद्ध कर दिया है। युद्ध की प्रगति, ब्रिटिश और फ्रेंच सरकार की नीति और खासतौर से वह घोषणा, जो ब्रिटिश सरकार की तरफ़ से भारत के सम्बन्ध में की गई है, यह ज़ाहिर करती है कि वर्तमान युद्ध सन् १९१४–१८ के महायुद्ध की भाँति साम्राज्यवादी उद्देश्यों के लिए लड़ा जा रहा है। और भारत में ब्रिटिश साम्राज्यवाद इसी तरह क़ायम रहेगा। ऐसी लड़ाई और नीति से कांग्रेस सहयोग नहीं कर सकती और न यह बात ही देख सकती है कि एक ऐसे उद्देश्य के लिए उसके साधनों का शोषण किया जाये।

"कार्यसमितिने ब्रिटिश सरकार से साफ़-साफ़ यह मांग की थी कि वह लोकतंत्र-वाद तथा साम्राज्यवाद की दृष्टि से अपने युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों की घोषणा करे और खासतौर से यह घोषणा कि उन्हें भारत के सम्बन्ध में कैसे अमल में लाया जायगा। ब्रिटिश सरकार के युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों को उसी समय उचित कहा जा सकता है जबकि उनमें साम्राज्यवाद के नाश और इस बात की व्यवस्था हो कि भारत के साथ एक स्वतन्त्र राष्ट्र का-सा व्यवहार होगा और उसकी नीति उसकी जनता के मत के अनुसार निर्धारित की जायगी। उक्त माँग का ब्रिटिश सरकार ने जो जवाब दिया है वह क़तई असन्तोषकारक है। ब्रिटिश सरकार की ओर से गलतफ़हमी पैदा करने और मुख्य और नैतिक प्रश्न पर परदा डालने की कोशिश की गई है। कार्य-समिति के प्रस्ताव के आधार पर घोषणा न कर सकने के कारणों में साम्प्रदायिकता

अल्पसंख्यकों के हक़ और नरेशों के हक़ों की दलील पेश की गई है। कहा गया है कि ये सब कठिनाइयाँ हिन्दुस्तान की स्वतन्त्रता में वाधा डाल रही हैं। समिति पूरा जोर देकर यह घोषित कर देना चाहती है कि साम्प्रदायिकता तथा अल्पसंख्यकों का कोई भी सवाल ऐसा नहीं है, जो कांग्रेस की माँग के पूरा करने में बाधक होता हो। अल्पसंख्यक वर्ग भारत की स्वतन्त्रता के हक़ का विरोध नहीं करते। राजा लोग ब्रिटिश सरकार के प्रतीक चिन्ह हैं। अन्त में देशी राज्यों की प्रजा इस बात का निश्चय करेगी कि आजाद हिन्दुस्तान में वे क्या भाग लेंगे। जिस मामले का उनसे (देशी राज्यों की प्रजा से) घनिष्ठ सम्बन्ध है उसमें ब्रिटिश सरकार ने उनके मत का निरन्तर निरादर किया है। अपनें इरादों की घोषणा में ब्रिटिश सरकार का किसी भी तरह भारत की स्वतन्त्रता का विरोध करनेंवालों से कोई ताल्लुक़ नहीं है और उनका वास्ता होना ही नहीं चाहिए। बेमतलब के सवाल उठाकर युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्य और भारत की स्वतन्त्रता के सम्बन्ध की घोषणा के टालने को कार्यसमिति यही समझ सकती है कि ब्रिटिश सरकार भारत में साम्राज्यशाही प्रभुत्व देश के प्रतिक्रियावादी लोगों की सहायता से बनाये रखना चाहती है।

"कांग्रेस ने युद्ध-संकट तथा उससे पैदा होनेंवाली समस्याओं को एक नैतिक प्रश्न समझा है। सौदा करने की भावना में उसने मौजूदा स्थिति से फ़ायदा उठाने का प्रयत्न नहीं किया है। हमारे सामने मुख्य प्रश्न यह है कि किसी अन्य प्रश्न पर विचार करने के पहले युद्ध-सम्बन्धी उद्देश्यों की घोषणा तथा भारत के प्रश्न का हल संतोषजनक तरीक़े से हो जाना चाहिए। अगर जनता के प्रतिनिधियों को वास्तविक सत्ता न दी गई, तो संक्रमणकाल में किसी भी प्रकार से काँग्रेस शासन की जिम्मेदारी उठाने को तैयार नहीं है। यह समिति उस जवाब को उचित समझती है, जो कांग्रेस के अध्यक्ष ने गत ३ नवम्बर को वायसराय महोदय को दिया था।

"समिति चाहती है कि भारत की स्वतन्त्रता को स्वीकार कर लिया जाय तथा उसका ऐलान कर दिया जाय और इस बात की घोषणा कर दी जाय कि एक राष्ट्रीय-पंचायत द्वारा भारत की जनता को अपना शासन-विधान तैयार करने का हक़ है। ब्रिटिश नीति से साम्राज्यवाद का रंग हटाने के लिए ऐसा करना जरूरी है। ऐसी घोषणा के बाद कांग्रेस सहयोग के सम्बन्ध में विचार करेगी। समिति की यह राय है कि एक स्वतन्त्र देश का विधान बनाने का राष्ट्रीय-पंचायत ही एक लोकतन्त्रीय साधन है। जो कोई भी लोकतन्त्रवाद और स्वतन्त्रता में विश्वास रखता होगा वह इस बात से इन्कार नहीं कर सकता। कार्यसमिति को यह भी विश्वास है कि साम्प्रदायिक तथा दूसरी समस्याओं के हल का भी ठीक साधन राष्ट्रीय-पंचायत ही है। इसका यह अर्थ नहीं कि कार्यसमिति साम्प्रदायिक समस्या का हल करने में ढील डालेगी। राष्ट्रीय-पंचायत एक ऐसा विधान तैयार करेगी जिसमें माने हुए अल्पसंख्यकों के हक़ों को इतना संरक्षण दे दिया जायगा कि उन्हें संतोष हो जाये और आपस के सलाह-मशविरे से अल्पसंख्यकों के कुछ हक़ों के बारे में अगर कोई समझौता न हुआ तो

उनका फ़ैसला करा लिया जायगा। बालिग़ों को वोट देने का हक़ मानकर राष्ट्रीय-पंचायत का चुनाव होगा। उन अल्पसंख्यकों का अलग चुनाव का हक़ क़ायम रक्खा जायगा, जो वैसा चाहेंगे। सदस्यों की संख्या सम्प्रदायों की जनसंख्या को ज़ाहिर करनेवाली होगी।

"ब्रिटिश सरकार की ओर से जो घोषणाएँ की गई हैं, वे नाकाफ़ी हैं, इसलिए कांग्रेस ब्रिटिश नीति से अपने को अलग करने पर मजबूर हुई और असहयोग की ओर पहला क़दम रखने के लिए वह कांग्रेसी प्रान्तों की सभी सरकारों से इस्तीफ़ा दिलाने पर बाध्य हुई। असहयोग की यह नीति जारी है और जबतक कि ब्रिटिश सरकार अपनी नीति में तब्दीली नहीं करती और कांग्रेस की बात को नहीं मान लेती तबतक यह नीति जरूर जारी रहेगी। मगर कार्यसमिति कांग्रेसवादियों को यह याद दिलाना चाहती है कि सभी प्रकार के सत्याग्रह में विरोधी के साथ सम्मानपूर्ण समझौता करने का कोई प्रयत्न उठा नहीं रक्खा जाता। अगर अहिंसात्मक लड़ाई कभी शुरू हो, तो सत्याग्रही उसके लिए हमेशा तैयार रहता है। पर वह शान्ति के लिए अपने प्रयत्नों में कभी-कभी नहीं करता और उसे हासिल करने के लिए हमेशा काम करता है। इसलिए कार्यसमिति सम्मानपूर्ण समझौता करने के उपायों की शोध जारी रक्खेगी, हालांकि ब्रिटिश सरकारने कांग्रेस के लिए दरवाज़ा वन्द कर दिया है। जो रास्ता हिन्दुस्तानियोंने खुद नहीं चुन रक्खा है, उसपर चलनें के लिए उन्हें वाध्य किये जाने के सभी प्रयत्नों तथा भारत की स्वतन्त्रता और मर्यादा के विरुद्ध पड़नेवाली सभी बातों का कांग्रेस अहिंसात्मक उपायों द्वारा विरोध करेगी।

कांग्रेसवादियों ने ज़रूरत पड़ने पर सविनयभंग शुरू कर देने की जो इच्छा ज़ाहिर की है उसकी कार्यसमिति क़द्र करती है और उसपर अपनी खुशी ज़ाहिर करती है। लेकिन सविनय-भंग में वैसे ही सख्त अनुशासन की आवश्यकता पड़ती है, जैसी कि हिंसात्मक युद्ध में लड़ने वाली संगठित सेना में। अगर सेना के पास विनाश के शस्त्र न हों और वह उन्हें उपयोग में लाने का तरीका न जानती हो तो वह असहाय बनी रहती है। इसी तरह सत्याग्रह के सैनिकों की सेना में यदि अहिंसा की आवश्यक बातें न हों और वह उसे न समझती हो तो वह अप्रभावकारक साबित होती है। कार्यसमिति इस बात को साफ़ कर देना चाहती है कि सविनयभंग के लिए तैयार होने की सच्ची कसौटी यह है कि कांग्रेसजन स्वयं चरखा चलायें, मिल के कपड़ों की जगह खादी को प्रोत्साहन दें और अपना यह फ़र्ज समझें कि अपने से भिन्न सम्प्रदाय के लोगों की व्यक्तिगत सेवा करके सम्प्रदायों में परस्पर एकता स्थापित करें। हिन्दू कांग्रेसवादियों को हरिजनों को समर्थन देने के जितने अवसर मिल सकें, उन सब का वे उपयोग करें।

"इसलिए कांग्रेस के संगठनों और कांग्रेसवादियों को चाहिए कि वे इस कार्यक्रम को उत्तेजन देकर आगे की कार्रवाई के लिए तैयारी करें। उन्हें चाहिए कि वे जनता को कांग्रेस का सन्देश और उसकी नीति समझायें और उसे राष्ट्रीय-पंचायत के अर्थ बतलायें, जो कि कांग्रेस के भावी कार्यक्रम का कठिन काम है।"

हरिजन सेवक, २ दिसम्बर, १९३९.

कांग्रेस-कार्यसमिति का प्रस्ताव

[कांग्रेस की कार्यसमिति ने वर्धा में हुई अपनी २२ दिसम्बर १९३९ की बैठक में नीचे लिखा प्रस्ताव पास किया--सं०]

कार्यसमिति ने भारत-मन्त्री के ताजा एलान को ध्यान देकर पढ़ा है और उस पर समिति को अफसोस हुआ है। उन्होंनें क़ौमी सवाल का जिस तरह जिक्र किया है उससे मुद्दे की बात घपले में पड़ जाती है और जनता का ध्यान इस असली प्रश्न से हट जाता है कि अंग्रेज लड़ाई के और ख़ासतौर पर हिन्दुस्तान की आजादी के बारे में अपने इरादे खोल कर नहीं बता सके हैं।

कार्य-समिति की राय में जबतक अलग-अलग दल किसी तीसरे के मुंह की तरफ ताकते रहेंगे तब तक क़ौमी सवाल जैसा चाहिए वैसा कभी हल नहीं हो सकेगा, क्योंकि इन दलों को यह आशा रहेगी कि भले ही राष्ट्र का कुछ भी नुक़सान क्यों न हो, उन्हें तो तीसरे की कृपा से खास रियायतें मिल ही जायंगी। जबतक किसी प्रजा पर किसी विदेशी सत्ता का राज है तबतक उस प्रजा के जुदा-जुदा अंगों में फूट रहेगी ही।

कांग्रेस से इन अलग-अलग हिस्सों को मिलाकर एक करने की जरूरत कभी छिपी नहीं रही है। यही एक संस्था है जिसने अपना राष्ट्रीय स्वरूप कायम रखने के लिए एका करने की बराबर कोशिश की है और यह बात भी नहीं है कि वह सदा नाकामयाब ही रही हो। कार्यसमिति का विश्वास है कि स्थायी एकता के दर्शन तो उसी वक्त होंगे जब विदेशी हुकूमत का नामनिशान मिट जायगा।

समिति की पिछली बैठक के बाद जो घटनायें हुई हैं उनसे यह राय पक्की हो गई है। कार्यसमिति को मालूम है कि देश के भीतर परस्पर विरोधी तत्व रहे तो हिन्दुस्तान की स्वाधीनता बनी नहीं रह सकेगी। इसलिए जब ब्रिटिश सरकार साम्प्रदायिक सवाल उ ाती है तो समिति को उसका यह अर्थ लगाने का हक़ हो जाता है कि सरकार सत्ता छोड़ने को राज़ी नहीं है।

कांग्रेस ने जैसी राष्ट्रीय-पंचायत तजवीज की है वही इस सवाल का आखिरी निपटारा करने का एकमात्र उपाय है। इस तजवीज़ में यह सोचा गया है कि अल्पसंख्यकों को पूरा-पूरा प्रतिनिधित्व और जहां जरूरी हो, अलग चुनाव का अधिकार दिया जाये। कांग्रेस की तरफ से पहले ही यह बात स्पष्ट कर दी गई है कि अल्पसंख्यकों के हक़ों की रक्षा जैसी ये चाहेंगे वैसी ही की जायगी और कहीं मतभेद रहेगा तो उन मामलों का निष्पक्ष अदालत से फ़ैसला करा लिया जायगा।

कांग्रेसवालों ने अब अच्छी तरह समझ लिया है कि खूब परिश्रम किए बिना

स्वाधीनता मिलने वाली नहीं है। कांग्रेस ने अहिंसा का अहद लिया है, इसलिए उस का आखिरी जोर सविनय-भंग है, जो सत्याग्रह का ही एक अंग है। सत्याग्रह का अर्थ है सब के लिए और विशेषकर विरोधियों के लिए सद्भाव रखना। इसलिए एक-एक कांग्रेस-जन का फर्ज़ है कि वह सद्भाव बढ़ावे और पैदा करे।

खादी का कार्यक्रम अहिंसा, मेल-मिलाप और आर्थिक स्वाधीनता की मानी हुई निशानी है, और उसके सफल हुए बगैर काम नहीं चल सकता। इसलिए कार्य-समिति को उम्मीद है कि सब कांग्रेस-संस्थाएं रचनात्मक कार्यक्रम पर ज्यादा-से-ज्यादा अमल करके अपने आपको इतना तैयार कर लेंगी कि जिस वक्त देश की तरफ़ से उन्हें आवाज़ पड़े वे मैदान में उतर सकें। 'हरिजन-सेवक' ३० दिसम्बर, १९३९.

: ३६ :

साम्राज्यान्तर्गत स्वराज

[बम्बई के ओरियण्ट क्लब में १० जनवरी १९४० को भाषण देते हुए वायस-य ने भारत की मांग पर ब्रिटिश सरकार के इरादों और उद्देश्यों का स्पष्टीकरण या। भाषण का वही अंश नीचे दिया जाता है।—सं०]

"आप सब यह अच्छी तरह से जानते हैं कि सितम्बर के बाद से स्थिति क्या-से-ा हो गई है। उस पर आज मैं विस्तार में पड़ना नहीं चाहता। जैसा कि आप ानते हैं सम्राट की सरकार से मांग की गई थी कि वह अपने उद्देश्यों को स्पष्ट करे ौर बतावे कि भारत के बारे में उसके इरादे क्या हैं। उसके जवाब में सम्राट की रकार ने मेरे द्वारा दिये गए वक्तव्यों से, और पार्लमेण्ट में यह स्पष्ट कर दिया है क भारत के लिए उनका ध्येय साम्राज्यंतर्गत पूर्ण स्वराज्य—वेस्ट मिंस्टर स्टेच्यूट की क़िस्म का साम्राज्यंतर्गत स्वराज्य—देना है। और जहांतक मध्यवर्ती काल का म्बन्ध है, (और सरकार की इच्छा है कि यह मध्यवर्ती काल यथासंभव कम-से-कम ो) सरकार १९३५ के एक्ट की योजना को पुनः आरम्भ करने पर युद्ध के अन्त ोने पर ज्योंही संभव हुआ, भारतीय नेताओं का मत लेकर विचार करने के लिए ैयार है। सरकार इस बात पर भी तैयार है कि इस दरम्यान बड़ी जमातों के ेताओं के बीच यथावश्यक व्यवस्था का खयाल कर इस बात का आश्वासन दिला दे कि वह सुचारु रूप से अमल करेगी और अपने इस इरादे के पीछे तात्का-लिक हार्दिकता दिखाने के लिए वह गवर्नर-जनरल की कार्यवाहक कौंसिल में कुछ थोड़े से राजनैतिक नेता जोड़ कर उसे बढ़ाने के लिए तैयार है। भारत और हमारे सामने आज जो कठिनाइयां हैं उन्हें दूर करने के अर्थ सहायता देने के लिए भी सरकार तैयार और इच्छुक है। लेकिन मुझे बहुत खेद है कि सरकार के इन आश्वासनों से वे संदेह और अनिश्चिततायें दूर नहीं हो पाई हैं जिनके कारण कांग्रेस-मन्त्रिमण्डल

अपनें पदों से हट गए हैं और जिनके कारण सात प्रान्तों में एक्ट के विशेप अवस्थानुरूप अधिकारों का सहारा लेना आवश्यक हुआ है।

"मेरा विचार है कि युद्ध के शुरू होने के समय से जो घोषणायें सम्राट की सरकार की ओर से हुई हैं, उनसे बिलाशुवह यह स्पष्ट हो गया है कि सरकार के इरादे क्या हैं और सहायता देनें के लिए सरकार कितनी इच्छुक है।"

: ३७ :

एकदिल होकर चलें

[स्वाधीनता-दिवस, (२६ जनवरी १९४०) को लीजाने वाली आजादी की प्रतिज्ञा में कांग्रेस की कार्यसमिति ने अपनी २२ दिसम्बर १९३९ को वर्धा में हुई बैठक में जो भाग जोड़ा है उसको कुछ सज्जनों ने पसन्द नहीं किया। समाजवादी-दल के प्रधान मन्त्री, श्री जयप्रकाश नारायण तथा भूतपूर्व शिक्षा-मन्त्री, श्री सम्पूर्णानन्दजी की आपत्तियों पर स्थिति स्पष्ट करतें हुए महात्मा गांधी का निम्नलिखित लेख प्रकाशित हुआ—सं०]

श्री जयप्रकाश नारायण और श्री सम्पूर्णानन्दजी ने साफ़ शब्दों में कह दिया है कि हम २६ जनवरी को ली जानेवाली प्रतिज्ञा में जो भाग जोड़ा गया है उसके खिलाफ़ हैं। मुझे उनका बड़ा लिहाज़ है। वे योग्य हैं, वीर हैं और उन्होंने देश की खातिर कष्ट उठाये हैं। लड़ाई में वे मेरे साथी वन सकें तो इसे मैं अपना सौभाग्य समझूं। मैं उन्हें अपने विचार का वना सकूं तो मुझे कितनी ख़ुशी हो! लड़ाई आनी ही है और मुझे उसका नायक वनना है तो यह काम मैं ऐसे सहायकों के भरोसे नहीं कर सकता जिनका कि कार्यक्रम पर अधूरा विश्वास हो या जिनके दिल में उसके वारे में शंकाएँ हों।

मैं लड़ने के लिए लालायित नहीं हूँ। मैं तो उसे टालने की कोशिश कर रहा हूँ। कार्यसमिति के सदस्यों की वात कुछ भी हो, जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, मैं सुभापवाबू के इस आरोप से पूरी तरह सहमत हूँ कि मैं अँग्रेज़ों के साथ समझौता करने के लिए उत्सुक हूँ, वशर्ते कि समझौता इज्ज़त के साथ हो सके। सच तो यह है कि सत्याग्रह में तो यह ज़रूरी होता है। इसलिए मुझे कोई जल्दी नहीं है। फिर भी समय आ गया और मुझे एक भी साथी न मिला तो मैं अकेला भी लड़ सकूंगा। मगर अंग्रेज़ों पर से मेरा विश्वास उठ नहीं गया है। लार्ड लिनलिथगो की ताज़ी घोपणा मुझे पसन्द आई है। उनकी सचाई पर मुझे भरोसा है। वेशक उनके भापण में कई जगह दोप हैं जिन्हें साफ़ करना पड़ेगा। पर ऐसा लगता है कि उसमें दोनों राष्ट्रों के लिए सम्मानपूर्ण समझौते के वीज मौजूद हैं। इसलिए मेरे साथ काम करनेवालों को मेरा यह पहलू भी समझ रखना चाहिए। शायद मतभेद रखनेवालों की दृष्टि से मेरा समझौता करने का यह स्वभाव एक दोप हो। ऐसा है तो देश को यह मालूम हो जाना चाहिए।

श्री जयप्रकाश नारायण ने अपनी और समाजवादी दल की स्थिति साफ़ करके अच्छा किया। रचनात्मक कार्यक्रम के बारे में वह कहते हैं—"हमने इसे अपनी लड़ाई के एकमात्र या पूरी तरह कारगर हथियार के रूप में कभी स्वीकार नहीं किया है।...इन मामलों पर हमारे विचार ज्यों-के-त्यों बने हुए हैं। मौजूदा संकट-काल में हमारे राष्ट्रीय नेताओं की लाचारी देखकर वे विचार कुछ मजबूत ही हुए हैं।... उस दिन विद्यार्थियों को स्कूल कॉलेजों से निकल आना चाहिए और मज़दूरों को काम बन्द कर देना चाहिए।"

अगर अधिकांश कांग्रेसियों का यही विचार है जो श्री जयप्रकाश ने समाजवादी दल की तरफ़ से प्रकट किया है, तो मैं इस तरह की सेना को साथ लेकर सफलता पाने की कभी आशा नहीं रख सकता। उनकी न कार्यक्रम में श्रद्धा है, न वर्तमान नेताओं में। मेरे खयाल से जिस कार्यक्रम पर वह सिर्फ़ राष्ट्र के नेताओं की इच्छा के कारण ही चलने की बात कहते हैं उसकी उन्होंने, बिलकुल अनजान में ही सही, निन्दा करदी। ज़रा ऐसी फ़ौज की कल्पना तो कीजिए जो लड़ाई के लिए कूच करने वाली है, लेकिन न तो जिन हथियारों से उसे काम लेना है उनमें उसका विश्वास है और न जिन नेताओं ने यह हथियार बताये हैं उनपर श्रद्धा है; ऐसी सेना तो अपना, अपने नायकों का और काम का सत्यानाश ही कर सकती है। मैं श्री जयप्रकाश की जगह होऊँ (और मुझे लगे कि मैं अनुशासन का पालन कर सकता हूँ) तो मैं अपने दल को चुपचाप घर में बैठे रहने की सलाह दूं। अगर ऐसा न कर सकूं तो निकम्मे नेताओं की बुरी योजनाओं को मटियामेट करने के लिए खुली बग़ावत का झंडा फहरा दूं।

श्री जयप्रकाश चाहते हैं कि विद्यार्थी स्कूल-कॉलेजों से निकल आयें और मज़दूर काम छोड़ दें। यह तो अनुशासन-भंग करने का पाठ पढ़ाना हुआ। मेरी चले तो मैं हर विद्यार्थी से कहूँ कि छुट्टी न मिले या प्रिंसीपल २६ जनवरी के उत्सव में भाग लेने के लिए स्कूल या कॉलेज बन्द करने का फैसला न करें तो उन्हें स्कूल या कॉलेज में ही रहना चाहिए। इसी तरह की सलाह मैं मज़दूरों को दूंगा। श्री जयप्रकाश की शिकायत है कि स्वाधीनता के दिन जो काम करना है उसके बारे में कार्यसमिति ने कोई तफसील नहीं बताई। मैंने समझा था कि जब भाईचारे का और खादी का कार्यक्रम है तो फिर तफ़सीलवार हिदायतें देने की क्या ज़रूरत है? मुझे आशा है कि हर जगह कांग्रेस-कमेटियाँ कताई-प्रदर्शन, खादी-फेरी और ऐसे ही दूसरे आयोजन करेंगी। मैं देखता हूँ कि कुछ कमेटियाँ तो ऐसा कर भी रही हैं। मैंने कांग्रेस-कमेटियों से आशा तो यह रक्खी थी कि जिस दिन कार्यसमिति का प्रस्ताव प्रकाशित हो जाये उसी दिन से तैयारियाँ शुरू हो जायेंगी। मैं राष्ट्र की तैयारी सिर्फ़ इसी बात से नहीं जानूंगा कि देशभर में कितना सूत काता गया, बल्कि मुख्यतः इस बात से जानूंगा कि खादी कितनी बिकी।

अन्त में श्री जयप्रकाश का कहना है कि "हमने अपनी तरफ़ से तो एक नया कार्यक्रम मजदूर और किसान-संगठन का बनाया है, ताकि उसके पाये पर क्रान्तिकारी

सार्वजनिक आन्दोलन चलाया जाये।"

इस तरह की भाषा से मुझे डर लगता है। मैंने भी संगठन तो किसान और मज़दूर दोनों का किया है, मगर शायद उस तरह पर नहीं किया जैसा श्री जयप्रकाश के जी में है। उनके वाक्य को और खोलकर समझाने की ज़रूरत है। अगर उनका संगठन पूरी तरह शान्तिपूर्ण न हो तो उससे अहिंसक कार्रवाई को उसी तरह नुक़सान पहुँच सकता है जिस तरह कि रौलट क़ानूनवाले सत्याग्रह को पहुँचा था और बाद में ब्रिटिश युवराज के आने पर बम्बई की हड़ताल के समय पहुँचा था।

श्री सम्पूर्णानन्द ने जो सवाल उठाया है वह आध्यात्मिक है। उनका ख़याल है कि मूल प्रतिज्ञा में कोई हेर-फेर नहीं होना चाहिए था, हालांकि वह कहते हैं और सही कहते हैं कि वह फैला हुआ-सा है। वह प्रतिज्ञा मैंने ही बनाई थी। मैं लोगों से इतना ही नहीं चाहता था कि वे सिर्फ़ स्वाधीनता का मन्त्र ही जपें, मैं उन्हें यह भी समझाना चाहता था कि वे इसे क्यों और किसलिए लेते हैं। आगे चलकर जब उसके कुछ भाग व्यर्थ हो गये तब उसमें इस साल संशोधन कर लिया गया। मैं मानता हूँ कि आज़ादी का मन्त्र पवित्र है। यह मंत्र हमें पहले-पहल मिला था जब लोकमान्य ने यह कहा कि 'स्वराज मेरा जन्म-सिद्ध अधिकार है'। यह मन्त्र हज़ारों ने सीख लिया और दिन-ब-दिन प्रबल होता जा रहा है। आज तो वह करोड़ों हृदयों में निवास करता है। मेरी राय है कि जो भाग जोड़ा गया है वह ज़रूरी था। इससे मूल प्रतिज्ञा की पवित्रता बढ़ गई है और लोगों को मालूम हो जाता है कि राष्ट्रीय स्वतन्त्रता हासिल करने के लिए प्रत्येक व्यक्ति क्या योग दे सकता है।

इसलिए मुझे ऐसा लगता है कि असल में श्री सम्पूर्णानन्द को आपत्ति इस कारण हुई है कि उन्हें रचनात्मक कार्यक्रम में अविश्वास है। वह खुद कहते हैं: "अगर उसे प्रतिज्ञा का अलग न होनेवाला हिस्सा बना देने का यह अर्थ हो कि कारख़ानों द्वारा सामूहिक उत्पत्ति के मुक़ाबिले में ग्राम-उद्योगों की नीति से हम निश्चित रूप से बँध जायें तो समाजवादी होने के नाते मैं उसे स्वीकार नहीं कर सकता।"

बेशक, मैं प्रतिज्ञा का क़ानूनी अर्थ नहीं बता सकता। वह तो कार्यसमिति ही बता सकती है। मगर अहिंसक युद्ध की घोषणा और संचालन के लिए ज़िम्मेदार सेनापति की हैसियत से यह कहना मेरा धर्म है कि यह मनोवृत्ति जनता में प्रचार करने के काम में दख़ल देगी। सम्पूर्णानन्दजी जैसे नेता इस युद्ध में या तो पूरे दिल से ही पड़ सकते हैं या बिलकुल न पड़ें। अगर प्रतिज्ञा में जोड़े हुए हिस्से का अर्थ लगाने में वे आधे इधर और आधे उधर रहे, तो जनता के दिमाग़ में गड़बड़ पैदा होगी। अगर राष्ट्रीय कार्यक्रम में खादी का स्थायी स्थान नहीं है तो उसे जोड़े हुए भाग में भी जगह नहीं मिलनी चाहिए। अगर खादी से ज़्यादा कारगर कोई और चीज़ है तो उसे राष्ट्र के सामने पेश करना चाहिए। चूँकि बड़ी लड़ाई आने को है, सिर्फ़ इसीलिए सचाई को दबाने-छिपाने की नीति नहीं होनी चाहिए। सबके एक-से विचार होना ज़रूरी नहीं है। पर सम्पूर्णानन्दजी की तरह जिन लोगों को

लड़ाई चलानी है उनका उस कार्यक्रम में जी-जान से विश्वास होना चाहिए जिसे उन्हें पूरा करना है। बहानों से हमारी मौजूदा आवश्यकताएं पूरी नहीं होंगी।

एक बड़े प्रभावशाली कांग्रेसी ने मुझे सुझाया है कि ज्योंही मैं सविनय-भंग की घोषणा कर दूंगा, त्योंही मुझे इस बार देश की तरफ़ से ऐसा जवाब मिलेगा कि मैं देखकर दंग रह जाऊं। उन्होंने मुझे यक़ीन दिलाया है कि सारा मजदूर-जगत् और हिन्दुस्तान के बहुत-से हिस्सों में किसान लोग एकसाथ हड़ताल बोल देंगे। मैंने उन्हें कह दिया कि ऐसा हुआ तो मुझे बड़ी परेशानी होगी, और मेरी सारी योजना बिगड़ जायगी। मुझे यह क़बूल करना चाहिए कि अभी तो मेरे सामने कोई निश्चित योजना नहीं है। मैं यही कह सकता हूं कि पहले की तरह जब ईश्वर आज्ञा देगा तो मेरे लिए योजना भी बनाकर भेज देगा। मेरे तूफ़ानी जीवन में उसी ने मुझे हमेशा रास्ता सुझाया और सहारा दिया है। मगर मैं इतना जानता हूं कि मैं देश के सामने कोई भी योजना रक्खूं उसमें अनियमित और बिखरी हुई हड़तालों की गुंजायश न होगी, क्योंकि उनसे हिंसा हुए बिना न रहेगी, और हिंसा हुई तो अहिंसक युद्ध अपने आप बन्द हो जायगा। इसका अर्थ यह होगा कि मेरी ज़रूरत नहीं रही। मुझे विश्वास है कि समाजवादी नेता और मतभेद रखनेवाले दूसरे लोग मुझसे यह आशा तो नहीं रखते होंगे कि जिस युद्ध के बारे में मैं जानता हूँ कि उससे सत्यानाश ही होने वाला है उस युद्ध को मैं शुरू करदूं। मैं ऐसे सहायक और सैनिक चाहता हूँ जो एकमन से काम करें।

हमें किसी-न-किसी तरह नाममात्र की स्वाधीनता मिल भी जाये और हमने मेरे बताये हुए ढंग से लड़ाई नहीं जीती, तो भी हम अपना राष्ट्रीय कारबार बहुत सफलतापूर्वक न चला सकेंगे। सच्ची अहिंसा के बिना पूरी अराजकता होगी। मुझे उम्मीद है कि जान-बूझकर ऐसी लड़ाई चलाने का काम हाथ में लेने की मुझ से आशा नहीं रक्खी जायगी, जिसका नतीजा अराजकता और खूनखराबी ही होना है।

'हरिजन-सेवक', २० जनवरी, १९४०

: ३८ :

आत्म-निरीक्षण का दिवस

[२६ जनवरी १९४० को आत्म-निरीक्षण का दिवस बनाकर अपने दिलों को टटोलने और देखने के लिए कि अपने उच्च आदर्शों, शुभ उद्देश्यों और विशुद्ध साधनों के प्रति देशवासी सच्चे साबित हुए हैं या नहीं, राष्ट्रपति डा० राजेन्द्रप्रसाद ने वर्धा से १७ जनवरी १९४० को निम्नलिखित अपील निकाली। —सं०]

स्वाधीनता-दिवस नजदीक है। १९३० से लेकर इस रोज़ हर साल हम अपने राष्ट्र और संसार के सामने अपनी प्रतिज्ञा को दोहराते रहे हैं, कि हम उस समय तक विश्राम नहीं लेंगे जबतक कि पूर्ण स्वराज हासिल न कर लेंगे और शरीर और आत्मा

को बाँधनेवाली विदेशी सत्ता की जंजीरों से मुक्त न हो जायँगे। आज हम नाज़ुक समय में से गुज़र रहे हैं। हरेक राष्ट्र को, जो कि कमज़ोर और विभक्त है, मौत और विनाश की ज़िम्मेदारी में, जो संसार पर मँडरा रहे हैं, हिस्सा बटाना चाहिए।

गुलाम को गुलामी की जिम्मेदारी और नफ़रत में मालिक के साथ ज़रूर अपना हिस्सा बटाना चाहिए। कमज़ोर राष्ट्र ही साम्राज्यवाद को जन्म देते हैं। इसलिए आइए, यह दिन हमारे लिए आत्म-निरीक्षण का हो। इस दिन हमें अपने दिलों को टटोलना चाहिए कि हमने वैयक्तिक या राष्ट्रीय कार्य से दुःख को लम्बा तो नहीं बना दिया है। हमें खुद अपने से पूछना चाहिए कि क्या हम अपने उच्च आदर्शों, शुभ उद्देश्यों और विशुद्ध साधनों के प्रति, जिनको कि हमने अपना ध्येय पूरा करने के लिए अपने सामने रक्खा था, सच्चे साबित हुए हैं। हममें से हरेक को पूछना चाहिए, क्या मैंने अपने अन्दर से फ़िरकापरस्ती को बिल्कुल निकाल दिया है? क्या मैंने अपने से भिन्न धर्म को माननेवाले और जुदा मत रखनेवाले व्यक्तियों को अपने भाई के समान समझना शुरू कर दिया है? हिन्दू होने के नाते मैंने अस्पृश्यता का कलंक मिटाने के लिए क्या अपना फ़र्ज अदा किया है? क्या कमज़ोर जातियों के लोगों की तरक्की में अपनी महत्वाकांक्षा को आड़े आने दिया है? क्या मैंने उनका बोझ हलका किया है? क्या मैंने रोज़ाना की ज़रूरतों और ख़रीद-फ़रोख़्त में करोड़ों भूखे, नंगे लोगों को, जो कि सात लाख गाँवों में बँटे हुए हैं, याद रक्खा है? क्या मैंने अपने वैयक्तिक जीवन से उनके सामने ऐसी मिसाल रक्खी है कि वे अपनी सहायता के लिए क्या कर सकते हैं?

अगर इस आत्म-निरीक्षण में हम अपने को पायें कि हम इन कर्त्तव्यों की उपेक्षा करते रहे हैं, या उचित रीति से उनका पालन नहीं किया है, तो हम इस दिन, स्वाधीनता-दिवस पर, मानवता को साक्षी करके, अहद करें कि अब और अधिक इन कर्त्तव्यों का पालन करने में उपेक्षा न करेंगे। दुनिया विनाशक युद्ध के मुँह में है, जो संसार और सभ्यता की बुनियाद को ही नष्ट कर देना चाहता है।

अगर यह युद्ध सब दलों ने अपने स्वार्थों के वश होकर चलाया, तो हमें किसी मानवीय और समान सामाजिक व्यवस्था की आशा छोड़ देनी चाहिए। इस लड़ाई में हम क्या करें, यह न केवल हमारे लिए, बल्कि सारे संसार के लिए महत्वपूर्ण है, यदि हम अहिंसात्मक साधनों से संसार के सामने सिद्ध कर देंगे कि यह अब भी लड़ाई के नाशक साधनों के अभाव में बचाया जा सकता है। यह हम उसी हालत में कर सकते हैं, जबकि हम अपने आदर्शों और अपने नेता के प्रति सच्चे रहें, जिसने कि अहिंसा का हथियार हमारे हाथों में दिया है। यह वह हथियार है, जो कमज़ोरी और पराजय में भी व्यक्ति और राष्ट्र का आत्म-सम्मान बचाने की शक्ति देता है। हमारी अहिंसा कमज़ोरों की न हो, बल्कि मजबूत की हो और हमारे पवित्र उद्देश्य की न्यायपूर्ण नैतिकता के कवच से सुरक्षित हो। इस विश्वास और विनम्र भावना से हमें इस साल आज़ादी की प्रतिज्ञा लेनी चाहिए। 'हरिजन-सेवक', २० जनवरी, १९४०

सस्ता साहित्य मण्डल

'सर्वोदय साहित्य माला' की पुस्तकें

[नोट—× चिन्हित पुस्तकें अप्राप्य हैं]

१—दिव्य जीवन ।=)
२—जीवन-साहित्य १।)
३—तामिल वेद ।।।)
४—व्यसन और व्यभिचार ।।।=)
५—सामाजिक कुरीतियाँ× ।।।)
६—भारत के स्त्री-रत्न ३)
७—अनोखा× १।=)
८—ब्रह्मचर्य-विज्ञान ।।।=)
९—यूरोप का इतिहास २)
१०—समाज-विज्ञान ।।।)
११—खद्दर का सम्पत्ति शास्त्र× ।।।≡)
१२—गोरों का प्रभुत्व× ।।।=)
१३—चीन की आवाज× ।-)
१४—दक्षिण अफ्रिका का सत्याग्रह १।)
१५—विजयी वारडोली× २)
१६—अनीति की राह पर ।।=)
१७—सीता की अग्नि-परीक्षा ।-)
१८—कन्या शिक्षा ।)
१९—कर्मयोग ।=)
२०—कलवार की करतूत =)
२१—व्यावहारिक सभ्यता ।।)
२२—अँधेरे में उजाला ।।)
२३—स्वामीजी का वलिदान× ।-)
२४—हमारे जमाने की गुलामी× ।)
२५—स्त्री और पुरुष ।।)
२६—घरों की सफ़ाई ।=)
२७—क्या करें ? १)
२८—हाथ की कताई-बुनाई× ।।-)
२९—आत्मोपदेश× ।)
३०—यथार्थ आदर्श जीवन× ।।।-)
३१—देखो नवजीवन माला
३२—गंगा गोविंदसिंह× ।।=)
३३—श्रीरामचरित्र १।)
३४—आश्रम-हरिणी ।)
३५—हिंदी मराठी कोष× २)
३६—स्वाधीनता के सिद्धान्त× ।।)
३७—महान् मातृत्व की ओर ।।।=)
३८—शिवाजी की योग्यता ।=)
३९—तरंगित हृदय ।।)
४०—नरमेध १।।)
४१—दुखी दुनिया ।=)
४२—ज़िन्दा लाश× ।।)
४३—आत्मकथा (गांधीजी) १) १।।)
४४—जब अंग्रेज आये× १।=)
४५—जीवन विकास १।)
४६—किसानों का बिगुल× =)
४७—फाँसी ! ।=)
४८—(दे० नवजीवन माला)
४९—स्वर्ण विहान× ।=)

[सामयिक साहित्य माला : पांचवीं पुस्तक]

सत्याग्रह : क्यों, कब और कैसे ?

[सत्याग्रह बारे में गांधीजी के विचार]

महात्मा गांधी

सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

—शाखायें—

दिल्ली : लखनऊ : इन्दौर

प्रकाशक
मार्तण्ड उपाध्याय, मंत्री,
सस्ता साहित्य मण्डल, नई दिल्ली

संस्करण
फरवरी १९४० : ५०००
दाम
तीन आना

मुद्रक,
एस. एन. भारती,
हिन्दुस्तान टाइम्स प्रेस,
नई दिल्ली ।

विषय सूची

परिशिष्ट

सत्याग्रह : क्यों, कब और कैसे ?

: १ :

सत्याग्रह

'सत्याग्रह' शब्द दक्षिण अफ़्रीका में मैंने ही उस बल को व्यक्त करने के लिए चलाया था जिसे भारतीय पूरे आठ वरस से वहां बरत रहे थे। ब्रिटेन और दक्षिण अफ़्रीका में जो 'निष्क्रिय प्रतिरोध' के नाम से आन्दोलन उन दिनों चल रहा था, उससे भी अन्तर दिखाने के लिए यह शब्द चालू किया गया था।

× × × ×

'सत्याग्रह' का मूल अर्थ है सत्य पर दृढ़ता। अतः उसका अर्थ हुआ सत्य-बल। मैं उसे प्रेम-बल या आत्म-बल के नाम से भी पुकारता हूँ। सत्याग्रह के चलन में मैंने आरम्भ में ही देखा कि सत्य के आचरण में विरोधी के प्रति हिंसा की गुंजाइश नहीं है, बल्कि विरोधी की खोट का सुधार धीरज और सहानुभूति के साथ ही किया जाना चाहिए। क्योंकि एक को जो सत्य दिखाई देता है, वह दूसरे को गलत भी दिखाई दे सकता है। और धीरज का अर्थ है स्वयं कष्ट सहना। इसलिए सत्याग्रह के सिद्धान्त का अर्थ हुआ सत्य का प्रतिपादन, विरोधी को कष्ट देकर नहीं, बल्कि स्वयं कष्ट सहकर।

× × × ×

किसी भी दर्जे में इस सत्य-बल को धन की अथवा भौतिक सहायता की आवश्यकता नहीं है। निश्चय ही उसके प्रारम्भ रूप में भी उसे शारीरिक बल या हिंसा नहीं चाहिए। वास्तव में हिंसा तो इस महान आध्यात्मिक बल का, जिसका अनुशीलन या प्रयोग वे ही कर सकते हैं जो हिंसा का पूर्ण परित्याग कर देते हैं, निषेध है। सत्यबल ऐसा बल है कि जिसका प्रयोग व्यक्ति कर सकते हैं, जमात भी कर सकती हैं। राजनैतिक मामलों में उसका इस्तेमाल हो सकता है और घरेलू मामलों में भी। इसका विश्व-व्यापी अमल उसके स्थायित्व और अभेद्यता का प्रमाण है। पुरुष, स्त्री और बच्चे समानरूप से उसका प्रयोग कर सकते हैं। ऐसा कहना एकदम असत्य है कि केवल दुर्बल का ही यह बल है, जबतक वह हिंसा का जवाब हिंसा से नहीं दे सकता। जो अपने को दुर्बल समझते हैं, उनके लिए तो इस बल का प्रयोग असम्भव है। सत्याग्रही प्रभावशाली रूप से वे ही हो सकते हैं जो अनुभव करते हैं कि मनुष्य के अन्दर कुछ ऐसा भी है जो उसको बर्बर स्वभाव से उच्च है और जिसके सामने बर्बर स्वभाव सदा पराजित होता है। यह बल हिंसा और इसलिए समस्त अत्याचार और अन्याय के लिए ऐसा ही है जैसे अंधकार के लिए प्रकाश। राजनीति में इसका प्रयोग इस

अपरिवर्तनीय कहावत पर निर्भर है कि जनता की सरकार तभी तक सम्भव है जबतक जनता, जानें या अनजानें, शासित रहने के लिए सम्मत है।

× × × ×

सत्याग्रह-आन्दोलन किसी सरकार को परेशान करने के लिए नहीं चलाया जाता, जबकि साधारण राजनैतिक हलचल बहुधा इसी उद्देश्य को लेकर आरम्भ की जाती है। और फिर भी यदि सत्याग्रही देखता है कि उसकी कार्रवाइयों के परिणाम-स्वरूप सरकार परेशान होती है तो वह उसका मुकाबिला करने से नहीं हिचकिचाता। सत्याग्रह, जैसी कि मैं उसकी कल्पना करता हूं, घरेलू कानूनों का राजनैतिक क्षेत्र तक फैलाना है और अपने अनुभव से मैं तो इस निष्कर्ष पर पहुँचा हूँ कि यही आन्दोलन एक ऐसा है जो समस्त भारत में दुख-निवारण के लिए हिंसा के फैलाव की सम्भावना का अन्त कर सकता है।

× × × ×

सविनय अवज्ञा अनैतिक स्थायी कानूनों का सविनय भंग करना है। जहांतक मुझे याद है यह शब्द थॉरो ने गुलाम सरकार के कानूनों के प्रति अपने प्रतिरोध को जताने के लिए चालू किया था। सविनय अवज्ञा के कर्तव्य पर उनका एक बेमिसाल लेख है। लेकिन थॉरो शायद पूर्णरूप से अहिंसा के हिमायती नहीं थे। सम्भवत थॉरो का स्थायी कानून का भंग करना मालगुजारी के कानून, अर्थात् करों के भुगतान तक ही सीमित था, जबकि सविनय अवज्ञा में किसी भी स्थायी और अनैतिक कानून का भंग करना आ जाता है। उससे प्रतिरोधक का सविनय अर्थात् अहिंसात्मक ढंग से राज्य के क़ानूनों के संरक्षण से अपने को अलहदा कर लेना प्रकट होता है। वह कानून के अनुशासन का आह्वान करता है और खुशी से जेल सहता है।

× × × ×

हम अपने दैनिक जीवन में, जानकर अथवा अनजाने, एक दूसरे के साथ अहिंसात्मक व्यवहार करते हैं। भलीभांति निर्माणित समाजों का भी आधार अहिंसा के कानून पर होता है। मैंने अनुभव किया है कि विनाश के बीच भी जीवन चलता है और इसलिए विनाश के कानून से उच्चतर कानून भी अवश्य है। उसी कानून के मातहत सुव्यवस्थित समाज की सम्भावना और जीवन की सफलता हो सकती है। और यदि वही कानून जीवन का भी कानून है तो हमें अपने दैनिक जीवन में उसे अमल में लाना चाहिए। जहां कहीं अनबन है और जहां कहीं आपकी विरोधी से मुठभेड़ होती है तो प्रेम से उस पर विजय पाओ—इसी सीधे-सादे तरीके से इस कानून को मैं अपने जीवन में अमल में लाया हूँ। इसका अर्थ यह नहीं है कि मेरी सारी कठिनाइयाँ दूर हो गई हैं। बेशक, यह मैंने अनुभव किया है कि इस प्रेम के कानून से जो फल-सिद्धि हुई है वह विनाश के कानून से कभी नहीं हुई। यहां हिन्दुस्तान में तो इस कानून का बड़े-से-बड़े पैमाने पर अमल हम अपनी आंखों देख चुके हैं। इसलिए मैं यह दावा नहीं करता कि अहिंसा का समावेश आवश्यकरूप से तीस करोड़ लोगों

के भीतर हो गया है; लेकिन यह दावा मैं करता हूँ कि इतने थोड़े समय में कि जिस पर यकीन नहीं किया जा सकता, अहिंसा का जितना गहरा समावेश हुआ है, उतना और किसी सन्देश का नहीं हुआ। हम समानरूप से अहिंसक नहीं रहे हैं और अधिकांश के लिए अहिंसा नीति-मात्र रही है। ऐसा होते हुए भी, मैं चाहता हूँ कि आप देखें कि आया अहिंसा की छत्रछाया में देश ने असाधारण प्रगति नहीं की है।

× × × ×

मानसिक स्थिति से अहिंसात्मक बनने के लिए लम्बे और सतत शिक्षण की आवश्यकता है। नित्य के जीवन में उसके लिए अनुशासन का पाठ पढ़ना होता है, चाहे वह किसी को अरुचिकर क्यों न हो, जैसे सिपाही का जीवन। लेकिन मैं मानता हूँ कि उसमें जबतक मन का पूर्ण सहयोग न होगा तबतक अहिंसा का बाहरी चलन तो एक दिखावा होगा जो उस आदमी को स्वयं और साथ ही दूसरों को भी हानिकारक होगा। पूर्ण स्थिति केवल उस समय होती है जब मन, काया और वचन में पर्याप्त सामंजस्य होता है। इससे यह न समझें कि जैसे क्रोध मुझे हो ही नहीं सकता; बल्कि लगभग सभी अवसरों पर क्रोध की भावना को दबाने में मुझे सफलता मिल जाती है। परिणाम कुछ भी हो, मेरे अन्दर जानबूझ कर और बेरोक अहिंसा के नियम का पालन करने के लिए निरंतर सचेत हलचल मची रहती है। ऐसी हलचल से व्यक्ति को बल ही मिलता है। अहिंसा सबल का शस्त्र है। दुर्बल के लिए तो वह सुगमता से मक्कारी हो सकती है। भय और प्रीति विरोधी शब्द हैं। प्रेम तो देने में ही उदार है, बिना जाने कि बदले में उसे क्या मिलता है। प्रेम का संघर्ष उन भावनाओं से होता है जो उसका विरोध करती हैं और अन्त में उन सब पर उसे विजय मिल जाती है। मेरा अपना तथा मेरे सहकर्मियों का नित्यप्रति का अनुभव है कि यदि हम सत्य और अहिंसा को जीवन का कानून बनाने का निश्चय करलें तो प्रत्येक समस्या का हल अपने आप ही निकल आयगा। क्योंकि मेरे लिए सत्य और अहिंसा एक ही सिक्कें के दो पहलू हैं।

× × × ×

पवित्रतम आत्म-बल को उसके असली स्वरूप में अमल में लाने से अविलम्ब फल-सिद्धि होती है। इस अमल के लिए प्रत्येक व्यक्ति को लम्बा शिक्षण मिलना परमावश्यक है, इसलिए सच्चे सत्याग्रही को अधिक-से-अधिक, यदि पूर्णरूप से नहीं तो, पूर्ण व्यक्ति होना चाहिए। इस दृष्टि से देखा जाय तो सत्याग्रह सब से उत्तम और अच्छी शिक्षा है। हम सब अनायास ही वैसे व्यक्ति नहीं हो सकते, लेकिन यदि मेरा प्रस्ताव ठीक है तो—जैसा कि मैं जानता हूँ कि वह है—जितनी अधिक सत्याग्रह की भावना हमारे अन्दर होगी, उतने ही अधिक अच्छे आदमी हम बन जावगे। अतः मेरे विचार से सत्याग्रह की उपयोगिता निर्विवाद है। और वह एक ऐसा बल है कि यदि वह विश्वव्यापी हो जाय तो उससे सामाजिक आदर्शों में क्रान्ति मच जाय और उससे निरंकुशता और उत्तरोत्तर बढ़ते सैनिकवाद का अन्त होजाय जिनके कारण कि

पश्चिमी राष्ट्र कराह रहे हैं और कुचले जाकर मरणासन्न हो गये हैं और जिनसे पूर्वीय राष्ट्रों के भी आक्रान्त किए जाने की आशा है।

× × × ×

असहयोग और सविनय कानून-भंग दोनों सत्याग्रह के ही पृथक-पृथक अंग हैं। सत्याग्रह मेरा कल्पद्रुम है, मेरा ज़म-ज़म, यानी समस्त विश्व का दाता। सत्याग्रह सत्य की खोज है और परमात्मा सत्य है। अहिंसा वह प्रकाश है जो सत्य का दिग्दर्शन मुझे कराता है। मेरे लिये स्वराज उसी सत्य का एक अंग है। दक्षिण अफ़्रीका, खेड़ा, चम्पारन तथा अनेक अन्य अवसरों पर जिनको कि मैं गिना सकता हूँ, सत्याग्रह ने मुझे धोखा नहीं दिया। सत्याग्रह हिंसा या घृणा का परित्याग करता है। अतः अंग्रेज़ों को मैं न तो घृणा कर ही सकता हूँ, न करूँगा ही। उनके भार को भी मैं वहन नहीं करूँगा। भारत पर अंग्रेज़ी तरीकों और संस्थाओं को लादने का अपवित्र प्रयत्न किया जा रहा है। उससे मैं मृत्यु तक लड़ूंगा। लेकिन उसका विरोध मैं अहिंसा से करूंगा। मेरा विश्वास है कि भारत में इतनी शक्ति है कि ब्रिटिश शासकों का मुकाबिला वह अहिंसात्मक लड़ाई से कर सकता है। अहिंसा का यह प्रयोग सच्चा है। उसमें सफ़लता भी मिली है, लेकिन उतनी नहीं, जितनी की कि हमनें आशा और इच्छा की थी। मैंने बार-बार कहा है कि सत्याग्रह कभी असफल नहीं होता और एक ही सच्चा सत्याग्रही सत्य का प्रतिपादन करने के लिये काफ़ी है। हम सब सच्चे सत्याग्रही होने का प्रयत्न करें। इस प्रयत्न के लिए ऐसे किसी गुण की आवश्यकता नहीं है जो हममें से निम्नतम व्यक्ति के लिए अप्राप्य हो। क्योंकि सत्याग्रह तो आत्मा का एक गुण है, जो हममें से प्रत्येक व्यक्ति के भीतर गुप्तरूप से होता है। स्वराज की भांति सत्याग्रह भी हमारा जन्म-सिद्ध अधिकार है।

× × × ×

मुख्यतः असहयोग का अर्थ उस सरकार से सहयोग हटा लेना है जो असहयोग करनेंवाले की दृष्टि से पतित होगई है। असहयोग उग्र या अभियोगी ढंग के कानून-भंग का परित्याग करता है। असहयोग का स्वरूप ऐसा है कि समझवाले बच्चे तक उसे कर सकते हैं और जनता भी बेखटके उस पर अमल कर सकती है। सविनय कानून-भंग ऐसे स्वभाववाला व्यक्ति कर सकता है जो खुशी से कानूनों का पालन बिना कानूनों के अनुशासन के भय से करे। इसलिए सविनय कानून-भंग केवल अंतिम मार्ग के रूप में ही प्रयोग में लाया जा सकता है और प्रारम्भ में इनेगिने व्यक्ति ही ऐसा कर सकते हैं।

× × × ×

साधारण कानून-भंग करनेवाला छिपाकर कानून भंग करता है और उसकी सज़ा से बचने का प्रयत्न करता है। लेकिन सविनय-प्रतिरोधक ऐसा नहीं करता। जिस राज्य में वह होता है, उसके कानूनों का वह सदा पालन करता है, कानून के भय से नहीं; बल्कि इसलिए कि वह समाज की भलाई के लिए उन्हें अच्छा समझता

है। लेकिन कुछ अवसर—साधारणतया कम ही—ऐसे आते हैं जबकि वह कुछ कानूनों को इतना अन्यायपूर्ण समझता है कि उनका पालन करना अप्रतिष्ठाजनक होता है। तब वह खुले रूप से सविनय उनको भंग करता है और चुपचाप उस कानून-भंग की सजा को सह लेता है। कानून-दाता के काम के खिलाफ़ विरोध दिखाने के लिए उसे स्वतन्त्रता है कि उन दूसरे कानूनों को भी न मानकर जिनके भंग करने में कोई नैतिक बुराई नहीं है, वह सरकार को सहयोग देने से अपना हाथ खींचले।

× × × ×

सत्याग्रह और निष्क्रिय प्रतिरोध में उतना ही अंतर है जितना कि उत्तरी और दक्षिणी ध्रुवों में। निष्क्रय प्रतिरोध तो दुर्बल का अस्त्र माना गया है और अपने उद्देश्य की पूर्ति के अर्थ उसमें से शारीरिक बल या हिंसा का परित्याग नहीं होता। इसके विपरीत सत्याग्रह सबल का अस्त्र माना गया है और उसमें हर प्रकार की हिंसा का परित्याग होता है।

: २ :

कसौटी पर

कार्यसमिति के सदस्यों के साथ चर्चा करते हुए मैंने देखा कि अहिंसाशस्त्र से ब्रिटिश सरकार के खिलाफ़ लड़ने के आगे उनकी अहिंसा कभी नहीं गई। मैंने विश्वास को दिल में जगह दे रक्खी थी कि संसार की सबसे बड़ी साम्राज्यवाद सत्ता के साथ लड़ने में गत बीस बरस के अहिंसा के अमल के तर्कपूर्ण परिणाम को कांग्रेसजनों ने पहचान लिया है। लेकिन अहिंसा के जैसे बड़े-बड़े प्रयोगों में कल्पित प्रश्नों के लिए मुश्किल से ही कोई गुंजाइश होती है। ऐसे प्रश्नों के उत्तर में मैं खुद कहा करता था कि जब हम वतुतः स्वतन्त्रता हासिल कर लेंगे तभी हमें यह मालूम होगा कि हम अपनी रक्षा अहिंसात्मक तरीके से कर सकते हैं या नहीं। लेकिन आज यह प्रश्न कल्पित नहीं है। ब्रिटिश सरकार हमारे मुआफ़िक कोई घोषणा करे या न करे, कांग्रेस को ऐसे किसी रास्ते का निर्णय करना ही पड़ेगा, जिसे कि यह भारत पर आक्रमण होने की हालत में अख्तियार करेगी। हालांकि सरकार के साथ कोई समझौता न हो, तब भी काँग्रेस को अपनी नीति तो घोषित करनी ही होगी और उसे यह बतलाना पड़ेगा कि आक्रमण करने वाले गिरोह का मुकाबिला वह हिंसात्मक साधनों से करेगी या अहिंसात्मक।

जहांतक कि मैं कार्यसमिति के सदस्यों की मनोवृत्ति को, खासी पूरी चर्चा के बाद, समझ सका हूँ, उसके सदस्यों का खयाल है कि अहिंसात्मक साधनों के जरिये सशस्त्र आक्रमण करने से देश की रक्षा करने के लिए वे तैयार नहीं हैं।

यह दुःखद प्रसंग है। निश्चय ही अपने घर से शत्रु को निकाल बाहर करने के लिए जो उपाय अख्तियार किये जाते हैं, वे उन उपायों से, जो कि उन्हें (शत्रु को)

घर से बाहर रखने के लिए अख्तियार किये जायें, न्यूनाधिक रूप में मिलते-जुलते होने ही चाहिएँ। और यह पिछला (रक्षा का) उपाय ज्यादा आसान होना चाहिए। बहरहाल, हकीकत यह है कि हमारी लड़ाई बलवान की अहिंसात्मक लड़ाई नहीं रही है। वह तो दुर्बल के निष्क्रिय प्रतिरोध की लड़ाई रही है। यही वजह है कि इस महत्व के क्षण में हमारे दिलों से अहिंसा की शक्ति में ज्वलंत श्रद्धा का कोई स्वेच्छा-पूर्ण उत्तर नहीं मिला है। इसलिए कार्यसमिति ने यह बुद्धिमानी की ही बात कही है कि वह इस तर्कपूर्ण कदम को उठाने के लिए तैयार नहीं है। इस स्थिति में दुःख की बात यह है कि कांग्रेस अगर उन लोगों के साथ शरीक हो जाती है, जो भारत की सशस्त्र रक्षा की आवश्यकता में विश्वास करते हैं, तो इसका यह अर्थ हुआ कि गत बीस बरस योंही चले गये। कांग्रेसवादियों ने सशस्त्र युद्धविज्ञान सीखने के प्राथमिक कर्तव्य के प्रति भारी उपेक्षा दिखाई। और मुझे भय है कि इतिहास मुझे ही, लड़ाई के सेनापति के रूप में, इस दुःखजनक बात के लिए जिम्मेदार ठहरायेगा। भविष्य का इतिहासकार कहेगा कि यह तो मुझे पहले ही देख लेना चाहिए था कि राष्ट्र बलवान की अहिंसा नहीं, बल्कि केवल निर्बल का अहिंसात्मक निष्क्रिय प्रतिरोध सीख रहा है, और इसलिए, इतिहासकार के कथनानुसार, कांग्रेसजनों के लिए सैनिक शिक्षा मुझे मुहैया करदेनी चाहिए थी।

इस विचार को रखते हुए कि किसी-न-किसी तरह भारत सच्ची अहिंसा सीख लेगा, मुझे यह नहीं हुआ कि सशस्त्र रक्षा के लिए अपने सहकर्मियों से ऐसा शिक्षण लेने को कहूँ। इसके विपरीत, मैं तो तलवार की सारी कला को और मजबूत लाठियों के प्रदर्शन को अनुत्साहित ही करता रहा। और बीती बातों के लिए मुझे आज भी पश्चाताप नहीं है। मेरी आज भी वही ज्वलंत श्रद्धा है कि संसार के समस्त देशों में भारत ही एक ऐसा देश है जो अहिंसा की कला सीख सकता है, और अगर अब भी वह इस कसौटी पर कसा जाये, तो संभवतः ऐसे हजारों स्त्री-पुरुष मिल जायेंगे, जो अपने उत्पीड़कों के प्रति बगैर कोई द्वेषभाव रक्खे खुशी से मरने के लिए तैयार हो जायेंगे। मैंने हजारों की उपस्थिति में बारबार जोर दे-देकर कहा है कि बहुत संभव है कि उन्हें ज्यादा-ज्यादा तकलीफ़ें झेलनी पड़ें, यहांतक कि गोलियों का भी शिकार होना पड़े। नमक सत्याग्रह के ज़माने में क्या हजारों पुरुषों और स्त्रियों ने किसी भी सेना के सैनिकों के ही समान बहादुरी से तरह-तरह की मुसीबतें नहीं झेली थीं ? हिन्दुस्तान में जो सैनिक-योग्यता अहिंसात्मक लड़ाई में लोग दिखा चुके हैं उससे भिन्न प्रकार की योग्यता किसी आक्रमणकारी के खिलाफ़ लड़ने के लिए आवश्यक नहीं है—सिर्फ उसका प्रयोग एक बृहत्तर पैमाने पर करना होगा।

एक चीज नहीं भूलनी चाहिए। निःशस्त्र भारत के लिए यह जरूरी नहीं कि उसे जहरीली गैसों से ध्वस्त होना पड़े। मैगनट लाइन ने सिगफ्रेड को जरूरी बना दिया है। मौजूदा परिस्थितियों में हिन्दुस्तान की रक्षा इसलिए जरूरी हो गई है कि वह आज ब्रिटेन का एक अंग है। स्वतंत्रभारत का कोई शत्रु नहीं हो सकता। और

यदि भारतवासी दृढ़तापूर्वक सिर न झुकाने की कला सीख लें और उसपर पूरा अमल करने लगें, तो मैं यह कहने की जुर्रत करूँगा कि हिन्दुस्तान पर कोई आक्रमण करना नहीं चाहेगा। हमारी अर्थनीति इस प्रकार की होगी कि शोषकों के लिए वह कोई प्रलोभन की वस्तु सिद्ध नहीं होगी।

लेकिन कुछ कांग्रेसमैन कहेंगे कि "ब्रिटिश की वात को दरकिनार कर दिया जाये, तब भी हिन्दुतान में उसके सीमान्तों पर बहुत-सी सैनिक जातियां रहती हैं। वे मुल्क की रक्षा के लिए, जो उनका भी उतना ही है जितना कि हमारा, युद्ध करेंगी।" यह बिलकुल सत्य है। इसलिए इस क्षण में केवल कांग्रेसजनों की ही बात कह रहा हूँ। आक्रमण की हालत में वे क्या करेंगे? जबतक कि हम अपने सिद्धान्त पर मर-मिटनें के लिए तैयार न हो जायेंगे, हम सारे हिन्दुस्तान को अपने मत का नहीं बना सकेंगे।

मुझे तो विरुद्ध रास्ता अपील करता ह। सेना में पहले से ही उत्तर हिन्दुस्तान के मुसलमानों, सिक्खों और गोरखों की बहुत बड़ी संख्या है। अगर दक्षिण और मध्य-भारत के जनसाधारण कांग्रेस का सैनिकीकरण कर देना चाहते हैं, जो उनका प्रतिनिधित्व करती है, तो उन्हें उनकी (मुसलमान, सिक्ख वग़ैरा की) प्रतिस्पर्धा में आना पड़ेगा। कांग्रेस को तब सेना का एक भारी बजट बनाने में भागीदार बनना पड़ेगा। यह सब चीजें कांग्रेस की सहमति लिए बग़ैर सम्भवतः हो जायें। सारे संसार में तब यह चर्चा का विषय बन जायगा कि कांग्रेस ऐसी चीजों में शरीक है या नहीं। संसार तो आज हिन्दुस्तान से कुछ नई और अपूर्व चीज देखने की प्रतीक्षा में है। कांग्रेस नें भी अगर वही पुराना जीर्णशीर्ण कवच धारण कर लिया, जिसे कि संसार आज धारण किये हुए है, तो उसे उस भीड़भड़क्के में कोई नहीं पहचानेगा। कांग्रेस का नाम तो आज इसलिए है कि वह सर्वोत्तम राजनैतिक शस्त्र के रूप में अहिंसा का प्रतिनिधित्व करती है। काँग्रेस अगर मित्र-राष्ट्रों को इस रूप में मदद देती है कि उसमें अहिंसा का प्रतिनिधि बनने की क्षमता ह, तो वह मित्र-राष्ट्रों के उद्देश्य को एक ऐसी प्रतिष्ठा और शक्ति प्रदान करेगी, जो युद्ध का अन्तिम भाग्य-निर्णय करने में अनमोल सिद्ध होगी। किन्तु कार्यसमिति के सदस्यों ने जो इस प्रकार की अहिंसा का इजहार नहीं किया, इसमें उन्होंने ईमानदारी और बहादुरी ही दिखाई है।

इसलिए मेरी स्थिति अकेले मुझ तक ही सीमित है। मुझे अब यह देखना पड़ेगा कि इस एकान्त पथ में मेरे साथ कोई दूसरा सहयात्री है या नहीं। अगर मैं अपनेको बिलकुल अकेला पाता हूँ तो मुझे दूसरों को अपने मत में मिलाने का प्रयत्न करना ही चाहिए। अकेला होऊँ, या अनेक साथ हों, मैं अपने इस विश्वास को अवश्य घोषित करूँगा कि हिन्दुस्तान के लिए यह बेहतर है कि वह अपने सीमान्तों की रक्षा के लिए भी हिंसात्मक साधनों का सर्वथा परित्याग कर दे। शस्त्रीकरण की दौड़ में शामिल होना हिन्दुस्तान के लिए अपना आत्मघात करना है। भारत अगर अहिंसा को गँवा देता है तो संसार की अन्तिम आशा पर पानी फिर जाता है। जिस सिद्धांत

का गत आधी सदी से मैं दावा करता आ रहा हूँ उस पर मैं जरूर अमल करूँगा और आखिरी सांस तक यह आशा रक्खूंगा कि हिन्दुस्तान अहिंसा को एक दिन अपना जीवन-सिद्धांत बनायेगा, मानवजाति के गौरव की रक्षा करेगा और जिस स्थिति से मनुष्य ने अपने को ऊंचा उठाया ख़याल किया जाता है, उसमें लौटने से उसे रोकेगा।

'हरिजन-सेवक', १४ अक्तूबर, १९३९.

: ३ :

सत्याग्रह कब ?

राजकोट-प्रकरण ने मेरे जीवन में जिस नये सत्य-दर्शन की वृद्धि की वह यह कि ठेठ १९२० से लेकर राष्ट्रीय आन्दोलन के सम्बन्ध में जिस अहिंसा का हम दावा करते आ रहे हैं वह अद्भुत होते हुए भी सर्वथा विशुद्ध नहीं थी। अत: जो परिणाम आज तक हुए वे यद्यपि असाधारण कहे जा सकते हैं, तथापि हमारी अहिंसा यदि बिल्कुल विशुद्ध होती, तो उसके परिणाम बहुत अधिक मूल्यवान साबित होते। मन-वाणीसहित सम्पूर्ण अहिंसा की लड़ाई से विरोधी में स्थायी हिंसावृत्ति कभी पैदा हो नहीं सकती। लेकिन मैंने देखा कि देशी राज्यों की लड़ाई ने राजाओं तथा उनके सलाहकारों में हिंसावृत्ति पैदा करदी है। कांग्रेस के प्रति अविश्वास से आज उनका अन्तर भरा हुआ है। जिसे वे कांग्रेस की दस्तन्दाज़ी कहते हैं, उस दस्तन्दाज़ी की उन्हें ज़रूरत नहीं। कितने ही राज्यों में तो कांग्रेस का नाम लेना भी अप्रिय हो गया है। ऐसा होना नहीं चाहिए था।

इस अनुसंधान का मुझ पर जो असर हुआ वह बड़े महत्त्व का है। इससे भावी सत्याग्रहियों के प्रति मैं अपनी अपेक्षाओं और माँगों में सख्त बन गया हूँ। इसके परिणामस्वरूप, मेरी संस्था घटकर बिल्कुल नगण्य हो जाये, तो मुझे उसकी चिंता नहीं होनी चाहिए। यदि सत्याग्रह एक ऐसा व्यापक सिद्धान्त है, जो सभी परिस्थितियों में लागू हो सकता है, तो मुट्ठीभर साथियों के ज़रिये लड़ाई लड़ने का कोई अचूक तरीक़ा मुझे ज़रूर खोज लेना चाहिए। और मैं जो नये प्रकाश की धुँधली-सी झलक देखने की बात करता हूँ इसका अर्थ यही है कि मुझे सत्य का दर्शन होते हुए भी अभी कोई ऐसी विश्वसनीय कार्य-पद्धति नहीं मिली कि ऐसे मुट्ठीभर आदमी किस तरह प्रभावकारी अहिंसक लड़ाई लड़ सकते हैं। जैसा कि मेरे सारे जीवन में होता आया है, संभव है कि पहला क़दम उठाने के बाद ही अगला कदम सूझे। मेरी श्रद्धा मुझसे कहती है कि जब ऐसा क़दम उठाने का समय आयगा, तब योजना तो उसकी सामने आ ही जायगी।

मगर अधीर आलोचक कहेगा, 'समय तो प्रस्तुत ही है, आप ही तैयार नहीं हो रहे हैं।' इस आरोप को मैं नहीं मानता। मेरा अनुभव इससे उलटा है। कुछ बरसों से

मैं यह कहता आरहा हूँ कि सत्याग्रह फिर से शुरू करने का अभी मौक़ा नहीं। क्यों? कारण स्पष्ट हैं।

राष्ट्रव्यापी सत्याग्रह जारी करने का अचूक ज़रिया बनने जैसी कांग्रेस आज रही नहीं है। उसका कलेवर भारी होगया है। उसमें सड़न या गंदगी आ गई है। कांग्रेस-वादियों में आज अनुशासन नहीं। नये-नये प्रतिस्पर्धी समुदाय खड़े होगये हैं, जो, अगर उनकी चले और उन्हें बहुमत प्राप्त हो जाय तो, कांग्रेस के कार्यक्रम में जड़मूल का परिवर्तन करदें। ऐसा बहुमत वे अबतक प्राप्त कर नहीं सके, यह चीज़ मुझे कुछ आश्वासन देनेवाली नहीं। जिनका बहुमत है उनकी भी अपने कार्यक्रम में जीवित श्रद्धा नहीं है। किसी भी दृष्टि से महज़ बहुमत के बल पर सत्याग्रह शुरू करना व्यावहारिक कार्य नहीं। देशव्यापी सत्याग्रह के पीछे तो सारी ही कांग्रेस की ताक़त चाहिए।

अलावा इसके, साम्प्रदायिक तनातनी है, जो रोज़-ब-रोज़ बढ़ती जा रही है। जिन विभिन्न जातियों से मिलकर राष्ट्र बना है उनके बीच सम्मानपूर्ण सुलह और एकता के बग़ैर आखिरी सत्याग्रह की लड़ाई की कल्पना नामुमकिन है।

अन्त में, प्रांतीय स्वायत्त शासन को लेता हूँ। मेरा अब भी यह विश्वास है कि इस दिशा में कांग्रेस ने अपने सर पर जिस काम को लिया हुआ है उसके साथ हमने उचित न्याय नहीं किया है। यह भी स्वीकार करना चाहिए कि गवर्नरों ने कुल मिला कर मंत्रियों के काम में बहुत कम दख़ल दिया है। पर दस्तन्दाज़ी—कभी-कभी तो खीज पैदा करनेवाली दस्तंदाज़ी—तो कांग्रेसवादियों और कांग्रेस मण्डलों की तरफ़ से हुई है! जबतक कांग्रेसी मंत्री कारबार चला रहे हैं, तबतक लोकपक्षीय हिंसा या दंगे तो होने ही नहीं चाहिए थे। आज तो मंत्रियों की बहुत बड़ी शक्ति कांग्रेसवादियों की मांगों और विरोध को निपटाने में खर्च होती है! अगर मंत्री लोकप्रिय नहीं हैं, तो उन्हें बरख़ास्त किया जा सकता है, और कर देना चाहिए। इसके बजाय हो क्या रहा है कि उन्हें काम तो करने दिया जाता है, पर बहुत-से कांग्रेसवादियों का उन्हें सक्रिय सहयोग नहीं मिलता।

दूसरे सब उपायों को समाप्त किये बग़ैर आखिरी क़दम उठाना सत्याग्रह के हरेक नियम के विरुद्ध है।

इसके जवाब में कुछ औचित्य के साथ यह ज़रूर कहा जा सकता है कि मैंने जो शर्तें बताई हैं उन सबको पूरा करने का अगर आग्रह रक्खा गया तो सविनय क़ानून-भंग लगभग असंभव ही हो जायगा। क्या यह आपत्ति वज़नदार कही जा सकती है? हरेक काम को स्वीकार करने के साथ शर्तें तो उसमें रहती ही हैं। सत्याग्रह इसका कोई अपवाद नहीं। पर मेरी अंतरात्मा मुझसे कहती है कि मौजूदा असंभव स्थिति से छुटकारा पाने के लिए सत्याग्रह का कोई-न-कोई सक्रिय तरीक़ा—यह ज़रूरी नहीं कि वह सविनय भंग ही हो—मिलना ही चहिए। हिन्दुस्तान आज ऐसी असंभव स्थिति का सामना कर रहा है, जो बहुत दिन नहीं चल सकती। समझ में आ सकने लायक़

समय के अंदर या तो उसे अहिंसक लड़ाई का कोई-न-कोई तरीक़ा ढूंढ़ निकालना होगा, या उसे हिंसा और अराजकता में फंसना पड़ेगा।

हरिजन सेवक, १ जुलाई, १९३९

: ४ :

किन कारणों से ?

किसी काम में असफल होने का सबसे अच्छा तरीक़ा यह है कि अपने विरोधी को खूब गालियाँ दी जायें, और उसकी कमज़ोरी से फ़ायदा उठाया जाये। लड़ाई के दूसरे प्रकारों के बारे में सत्य चाहे जो हो, पर सत्याग्रह में तो यह माना गया है कि असफलता के कारणों को खुद अपने ही अन्दर ढूंढ़ना चाहिए। ब्रिटिश सरकार ने कांग्रेस की इस आशा पर कि, सरकार कोई अपेक्षित घोषणा करेगी, जो पानी फेर दिया है उसका एकमात्र कारण वे कमज़ोरियाँ ही हैं, जो कांग्रेस के संगठन और कांग्रेसजनों में आगई हैं।

सबसे बड़ी कमज़ोरी यह है कि अहिंसा और उसके अनेक फलितार्थों की हमने पूरी क़द्र नहीं की। इसी एक महान् दोष से हमारी दूसरी सब कमज़ोरियाँ पैदा हुई हैं। हमने कायिक अहिंसा का तो ख़ासा अच्छा पालन किया है, पर अपने दिलों में हमने हिंसा को आश्रय दे रक्खा है। इसलिए सरकार के मुक़ाबिले में हमारी अहिंसा, हमारी सक्रिय हिंसा की अयोग्यता का परिणाम है। यही वजह है कि हम अपने आपस के बर्ताव में हिंसा की तरफ़ बहक गये हैं। कमेटियों में हम एक दूसरे के साथ लड़ते-झगड़ते और कभी-कभी तो घूंसेबाज़ी तक पर उतर आते हैं। कार्यसमिति के आदेशों को अमल में लाने से हमने इन्कार कर दिया है। प्रतिस्पर्धी दल हमने अलग बना लिये हैं, जो सत्ता को छीनना चाहते हैं। हिन्दू और मुसलमान ज़रा-ज़रा से ऐतराज़ पर लड़ बैठते हैं साम्प्रदायिक मतभेद जो दूर नहीं हो सके हैं, इसके लिए कांग्रेसजन आंशिक रूप से ज़रूर जिम्मेदार हैं। यह सब ठीक है कि हम अपनी फूट के लिए ब्रिटिश सरकार को दोषी ठहराते हैं। पर इस तरह हम अपनी वेदना को बढ़ाते ही हैं। यह हमें मालूम था कि फूट डालकर राज करने की नीति १९२० में भी थी, और तब भी हमने हिन्दू-मुस्लिम ऐक्य को अपने रचनात्मक कार्य में रक्खा था। हमने ऐसा इसलिए किया था कि हमें यह आशा थी कि हमारे रास्ते में सरकार द्वारा रोड़े अटकाये जाने के बावजूद भी हम क़ौमी एकता हासिल कर लेंगे। बल्कि क्या कहें, उस वक्त प्रतीत भी ऐसा होता था कि उस एकता को हमने हासिल कर लिया है।

हमारी कमज़ोरियों के ये उदाहरण भयंकर हैं। कांग्रेस को अपनी पूरी उन्नति पर पहुँचने में इन्होंने बाधा डाली है, और हमारी अहिंसा की प्रतिज्ञाओं को मज़ाक बना दिया है। हमारी असफलता के कारणों का यदि मेरा यह विश्लेषण सही है, तो

यह तसल्लीदेह बात है कि इसका इलाज किसी बाहरी परिस्थिति पर नहीं, किंतु खुद हमारे ऊपर निर्भर करता है। हमें अपना खुद का संगठन इतना सुव्यवस्थित, इतना शुद्ध और शक्तिशाली बना लेना चाहिए कि जो हमारे लक्ष्य की ओर बढ़ने में बाधा डालते हैं वे हमें सम्मान से देखने लगें; यह सम्मान हम उनमें डर पैदा करके नहीं, बल्कि उन्हें अपनी अहिंसात्मक वाणी और क्रिया का असंदिग्ध प्रमाण देकर ही प्राप्त कर सकते हैं।

कार्यसमिति का प्रस्ताव जहां इस बात का सबूत है कि कांग्रेस हिन्दुस्तान की स्वतंत्रता प्राप्त करने के लिए सचाई के साथ प्रयत्न कर रही है, वहाँ वह कांग्रेसजनों के अनुशासन और उनकी अहिंसा की भी कसौटी है। हालाँकि प्रस्ताव में कोई ऐसी बात नहीं कही गई है, मगर कमेटी के इच्छानुसार सविनय-भंग के नियंत्रण तथा आयोजन का काम मेरे ऊपर छोड़ दिया है। यह कहने की कोई ज़रूरत नहीं कि मेरे पास इससे सिवा कोई बल नहीं, न कभी था, कि रजिस्टर में दर्ज और ग़ैर-दर्ज कांग्रेस जनों का विशाल समूह कमेटी द्वारा, या जब 'यंगइंडिया' और 'नवजीवन' निकलते थे तब उनके द्वारा और अब 'हरिजन' और 'हरिजन-सेवक' के द्वारा जारी की गई हिदायतों पर जानबूझकर और स्वेच्छापूर्वक अमल करे। इसलिए जब मुझे मालूम हो कि मेरी हिदायतों पर कोई अमल नहीं होता, तो कांग्रेसजन देखेंगे कि मैं चुपचाप मैदान से हट जाऊँगा।

लेकिन अगर लड़ाई का आम नियन्त्रण मेरे हाथ में रहना हो तो मैं चाहूंगा कि अनुशासन का पूरी कड़ाई से पालन हो। जहांतक मैं देख सकता हूँ, जबतक कांग्रेसजन अहिंसा और सत्य पर पहले से ज्यादा ध्यान न देंगे और पूर्ण अनुशासन न दिखायेंगे तबतक किसी बड़े पैमाने पर सविनय-भंग की कोई सम्भावना नहीं है और जबतक अधिकारियों द्वारा हम इसके लिए बाध्य न किये जायें, उसकी कोई ज़रूरत भी नही पड़ेगी।

हम जीवन-मरण के युद्ध में प्रवृत्त हैं। हिंसा का वातावरण हमारे आसपास छाया हुआ है। देश के लिए यह भारी कसौटी की घड़ी है। घपलेबाज़ी से काम नहीं चलेगा। अगर कांग्रेसजनों को ऐसा लगे कि उनमें अहिंसा नहीं है, अगर वे अंग्रेज़ अधिकारियों के प्रति या कांग्रेस की मुखालिफ़त करनेवाले अपने देशवासियों के प्रति अपनी कटुता को दूर न कर सकें, तो उन्हें खुलेआम यह कह देना चाहिए, और अहिंसा का परित्याग कर मौजूदा कार्यसमिति को बदल देना चाहिए। इससे कोई नुक़सान न होगा। लेकिन कमेटी और उसकी हिदायतों में विश्वास न रखते हुए उसे क़ायम रखने से बहुत बड़ी हानि होगी। जहाँतक मैं देख सकता हूं, सत्य और अहिंसा का कड़ाई के साथ पालन किये बग़ैर हिन्दुस्तान को स्वतन्त्रता नहीं मिल सकती। अगर मेरी सेना ऐसी हो कि जिन शस्त्रों से मैं उसे सुसज्जित करूँ उनकी क्षमता में उसे संदेह हो, तो मेरे सेनापतित्व से कोई लाभ न होगा। अपने देश के शोषण का मैं वैसा ही पक्का दुश्मन हूँ जैसा कि कोई हो सकता है। विदेशी जुए से अपने देश को पूर्ण

मुक्त करने के लिए भी मैं उतना ही अधीर हूँ जितना कि कोई गरम-से-गरम कांग्रेस-वादी हो सकता है। लेकिन एक भी अंग्रेज़ या भूमण्डल पर के किसी भी मानवप्राणी से मुझे कोई घृणा नहीं है। मित्रराष्ट्रों की अगर मैं मदद नहीं कर सकता, तो उनका सर्वनाश भी मैं नहीं चाहता। कांग्रेस की मेरी आशा पर ब्रिटिश सरकार ने बुरी तरह पानी फेर दिया है, मगर उनकी परेशानी से में कोई फ़ायदा नहीं उठाना चाहता।

मेरा प्रयत्न और मेरी प्रार्थना तो यही है और होगी कि यथासाध्य कम-से-कम समय के अन्दर आपस में लड़नेवाले राष्ट्रों के बीच सम्मानपूर्ण सुलह होजाय। मैंने यह आशा बांध रक्खी थी कि ब्रिटेन और हिंदुस्तान के बीच सम्मानपूर्ण सुलह और साझेदारी हो जायगी और जो भीषण रक्तपात मानवता को अपमानित कर खुद जीवन को ही भाररूप बना रहा है उससे बचने का रास्ता निकालने में शायद मैं अपना विनम्र भाग अदा कर सकूंगा। लेकिन ईश्वर की इच्छा तो कुछ और ही थी।

हरिजन सेवक, २८ अक्तूबर, १९३९.

: ५ :

अटपटी स्थिति

अधीर कांग्रेसजनों से मेरा कहना ह कि सविनय अवज्ञा का ऐलान करने की तुरन्त मुझे कोई सूरत नहीं दीखती। अंग्रेज़ों को तंग करने ही के लिए तो सविनय-अवज्ञा हो नहीं सकती। वह उसी समय होगी जब निश्चित रूप से अनिवार्य हो जायगा। शायद सरकारी हलकों की तरफ़ से नाकों दम आजाने पर ही हो। मुझे वायसराय साहब या भारतमंत्री महोदय की ईमानदारी में संदेह नहीं ह। साथ ही मुझे इसमें भी कोई शक नहीं कि वे ग़लती पर हैं। इसका कारण यह ह कि वे जिस पुरानी लकीर पर चलने के आदी हैं वह उनसे छोड़ी नहीं जाती। हमें उन्हें सम्हलने के लिए समय देना चाहिए। हमें यहाँ की और बाहर की दोनों जनता को समझाकर सच्चा प्रचार-कार्य करना चाहिए। हमारे चारों तरफ़ जो ग़लतफ़हमी फैली हुई है—वह न सिर्फ़ अंग्रेज़ लोगों में ही है, बल्कि अपने देशवासियों में भी है—उसे एक दिन में दूर नहीं किया जा सकता। इसमें ज़रा भी शक नहीं है कि कांग्रेसी मन्त्रियों ने मुसलमानों की शिकायतों पर काफ़ी ध्यान नहीं दिया। ग़ैरकांग्रेसी मुसलमानों की फ़रियादों पर तो अहिंसावादी कांग्रेसियों को खास तौर पर ध्यान देना चाहिए। यह कहने से कोई लाभ नहीं कि ये शिकायतें यूँ ही की जाती हैं। मैं खुद जानता हूँ कि बहुतसी शिकायतें यूँ ही की गई हैं। लेकिन हमें तो धीरज और अदब के साथ उन्हें गंभीर समझकर साफ़ तौर पर साबित करना चाहिए कि आरोप बेपाया हैं। मेरा मंशा यह नहीं ह कि उनके बारे में कोशिश ही नहीं की गई। अभी तो मेरा सम्बन्ध उस बात से है जो किसी भी तरह पैदा हो चुकी है और वह यह है कि शिकायतें अबतक बनी हुई हैं। इसलिए हमें

यह प्रमाणित करने को समय देना पड़ेगा कि शिकायतों में कभी कोई तथ्य था ही नहीं। अगर आगे जांच करने के सिलसिले में पता लगे कि हमसे भूलें हुई हैं, तो उनको ठीक करना चाहिए। हमें अपने मुसलमान भाइयों और दुनिया को साबित कर देना चाहिए कि मुसलमानों या और किसीके एक भी उचित हित को क़ुर्बान करके कांग्रेस स्वाधीनता नहीं लेना चाहती। हमें कम तादादवालों को अपने साथ लेनें की खातिर कोई भी बात उठा नहीं रखनी चाहिए। इस तरह अपने में से कमज़ोरों के हकों की सूक्ष्म चिन्ता करना हमारी अहिंसा की अचूक शर्त्त है।

अगर यह सच है—और वह है—कि जातीय एकता न होने को आज़ादी के लिए रुकावट बताना अंग्रेज़ों के लिए ग़लत दलील है, तो यह भी उतना ही सच है कि कुछ भी हो यह फूट स्वराज तक पहुँचनें के हमारे रास्ते में एक बड़ी बाधा है। अगर मुस्लिम लीग और दूसरों को हम अपने साथ ले सकें तो हमारी मांग को पूरा होने से कौन रोक सकता है ?

यह बात तो हुई बाहरी कठिनाइयों की। जबतक हम इन्हें हल करने में काफ़ी समय नहीं लगा देंगे तबतक सविनय-अवज्ञा की कल्पना भी नहीं की जासकती।

लेकिन, हमारी भीतरी कमज़ोरियाँ भी कुछ कम नहीं हैं। मैं देखता हूँ, चर्खे और अहिंसा में प्राण-सम्बन्ध है। जैसे हथियारबन्द सिपाही में कम-से-कम कुछ गुण ज़रूर होने चाहिए वैसे ही अहिंसात्मक सैनिक यानें सत्याग्रही में कुछ दूसरे और शायद उलटे ही गुणों का होना अनिवार्य है। इन पिछले गुणों में से एक कताई और उसके पहले की क्रियाओं में काफ़ी कुशलता होना है। सत्याग्रही तो किसी उत्पादक काम में ही लग सकता है। लाखों मनुष्यों के लिए कताई से ज्यादा सीधा और अच्छा कोई और उत्पादक काम नहीं है। इतना ही नहीं, यह तो शुरू से ही हमारे अहिंसात्मक कार्यक्रम का एक ज़रूरी अंग रहा है। जिस सभ्यता का आधार अहिंसा है वह हिंसा के लिए संगठित हुई संस्कृति से भिन्न ही होना चाहिए। इस मौलिक सत्य के साथ कोई कांग्रेसी खिलवाड़ न करे। जो बात मैं हज़ारों बार कह चुका हूँ उसीको फिर दुहराता हूँ कि अगर करोड़ों आदमी स्वराज की खातिर और अहिंसा की भावना से कातने लगें तो शायद सविनय-अवज्ञा की ज़रूरत ही न पड़े। संसार में में यह एक बेमिसाल रचनात्मक प्रयत्न होगा। 'दुश्मन' को दोस्त बनाने का यह अचूक उपाय है।

हरिजन सेवक २ दिसम्बर १९३९.

: ६ :

सत्याग्रह की शर्तें

किसी भी सविनयभंग के जारी किये जाने से पहले पहली और अनिवार्य शर्त है सविनयभंग से सम्बन्ध रखनेवाले अथवा जनसाधारण, किसीकी भी तरफ़ से हिंसा फूट न निकलने का निश्चय। हिंसा के फूट निकलने पर यह कोई जवाब न होगा

कि वह सत्याग्रह-विरोधी किसी जमात की तरफ़ से भड़काई गई थी। यह ज़ाहिर रहना चाहिए कि हिंसा के वातावरण में सविनयभंग पनप नहीं सकता। इसका यह मतलब नहीं कि सत्याग्रही के साधनों-या उपायों का ख़ात्मा होगया ह। सविनयभंग के सिवा दूसरे तरीक़े निकाले जाने चाहिएँ।

दूसरी शर्त यह है कि सविनयभंग ध्वंसात्मक अर्थात् देश के लिए हानिकारक नहीं होना चाहिए। इसलिए भंग किये जाने के लि वही क़ानून चुने जायँ जो जनता के लिए हानिकारक हैं अथवा ऐसे क़ानून हों जिनके तोड़े जाने से जनता को तो कुछ नुक़सान न पहुँचे, लेकिन उसके कारण सम्भवतः अधिकारियों को काम अधिक करना पड़े।

तीसरे वह ऐसा आन्दोलन होना चाहिए जिसमें सबसे अधिक संख्या में लोग भाग ले सकें।

चौथे विद्यार्थियों को उसमें भाग लेने के लिए न तो बुलाया जाये, न उन्हें उसमें भाग लेनें की इजाज़त दी जाये। आन्दोलन में गुप्तता न हो। अनुशासन के लिए अथवा और किसी बात के लिए जो कम-से-कम आवश्यकता निश्चित की जाये, सविनयभंग करने वाले को अपने को निश्चय ही उसके अनुकूल बना लेना चाहिए।"

हरिजन सेवक, २५ मार्च, १९३९.

: ७ :

अगला क़दम

जिम्मेदारी का बोझ मुझे इतना भारी कभी भी महसूस नहीं हुआ जितना कि मैं आज ब्रिटिश सरकार के साथ मौजूदा संकट के सम्बन्ध में महसूस कर रहा हूँ। कांग्रेस-मंत्रिमण्डलों का स्तीफ़ा ज़रूरी था। मगर अगला क़दम क्या होगा यह किसी भी तरह साफ़ नहीं है। कांग्रेसजन किसी भारी आन्दोलन की आशा करते हुए जान पड़ते हैं। कुछ संवाददाता कहते हैं कि अगर मैं केवल आह्वान करूँ तो उसका इतना भारी भारतव्यापी जवाब मिलेगा कि जैसा इससे पहले शायद कभी नहीं था। और वे मुझे यक़ीन दिलाते हैं कि लोग अहिंसात्मक रहेंगे। उनके इस आश्वासन के अलावा मुझे उनके कथन के समर्थन में और कोई सबूत नहीं मिलता। बल्कि इसके विरोध में मेरे पास सबूत मौजूद हैं। इन पंक्तियों में उस सबूत के ही कुछ भाग का उल्लेख किया गया है। जबतक कि मुझे यह विश्वास न हो जाय कि कांग्रेसजन अहिंसा में, मय उसके फलितार्थों के, विश्वास रखते हैं और समय-समय पर जारी की गई हिदायतों का अविचल रूप से अनुकरण करते हैं, तबतक मैं किसी भी सविनय-भंग आन्दोलन में हिस्सा नहीं ले सकता।

कांग्रेस हलकों में अहिंसा पर अमल करने की अनिश्चितता के अलावा एक और

बहुत बड़ी बात यह है कि मुस्लिम-लीग कांग्रेस को मुसलमानों का दुश्मन समझती है। इससे कांग्रेस के लिए सविनय-भंग आन्दोलन के जरिये सफल अहिंसात्मक क्रांति को संगठित करना लगभग असम्भव सा हो जाता है। निश्चय ही उसका अर्थ हिन्दू-मुस्लिम दंगे होगा। इसलिए अहिंसात्मक शास्त्र का तक़ाज़ा है कि सविनय-भंग आन्दोलन को घटाकर ऐसे कम-से-कम शर्तों पर ले आया जाय जो राष्ट्रीय स्वाभिमान से मेल खाती हों। पहला हमला ब्रिटिश सरकार की तरफ़ से ही किया जायगा। ऐसी नाजुक और लामिसाल स्थिति में किसी भी कांग्रेसजन को व्यक्तिगत रूप में या कांग्रेस कमेटियों को भी क़ानून को अपने हाथों में लेने की इजाज़त नहीं दी जा सकती। सिर्फ़ कार्यसमिति को ही सविनय भंग आन्दोलन की घोषणा और उसका संचालन करने का अधिकार चाहिए।

कार्यसमिति की रहनुमाई का काम मैंने अपने ऊपर ले लिया है। मगर मेरी शारीरिक स्थिति ऐसी नहीं है कि मैं इधर-उधर घूम सकूं, जैसा कि मैं पहले करता था अब तो मेरे लिए यह असम्भव हो गया है। मैं लोगों के बाह्य सम्पर्क से बिल्कुल अलग जा पड़ा हूँ। यहांतक कि वर्तमान कांग्रेस-कार्यकर्त्ताओं को मैं व्यक्तिगत रूप से जानता भी नहीं हूँ। मैं उनसे कभी नहीं मिलता। जहांतक हो सकता है, मेरा पत्र-व्यवहार कम करने की कोशिश की जाती है। इसलिए कांग्रेसजन जबतक साफ़तौर से अपना कर्तव्य और मेरी बताई प्रारम्भिक निष्क्रियता की ज़रूरत नहीं समझ लेते तबतक मेरा नेतृत्व न सिर्फ बेकार ही, बल्कि हानिकारक भी होगा। उससे गड़बड़ी पैदा हो जायगी। मेरी यह पुख़्ता राय है कि जबतक ब्रिटिश सरकार ही खुद अपनी कारवाई से वर्तमान युद्ध में कांग्रेस के लिए सहयोग करना नामुमकिन न करदे तबतक कांग्रेस को युद्ध के चलाने में उनके सामने अड़चनें नहीं डालनी चाहिएँ। मैं देश में अराजकता नहीं चाहता। अराजकता के द्वारा स्वतंत्रता कभी प्राप्त नहीं होसकती। मैं न तो ब्रिटिश की पराजय चाहता हूँ और न जर्मनी की। यूरोप के लोग ज़बर्दस्ती युद्ध में घसीट लिये गये हैं, किन्तु वे जल्दी ही तंद्रा से जाग जायेंगे। जबतक सारी आधुनिक सभ्यता का विनाश न हो तबतक यह युद्ध अन्तिम हर्गिज़ नहीं होगा। चाहे जो हो, मेरी अपनी राय तो यह है कि मैं सविनय-भंग आन्दोलन को शुरू करनें की जल्दबाज़ी नहीं करूंगा। कांग्रेसजनों के लिए फिलहाल मेरी सलाह यह है कि वे अपने संगठन को मज़बूत बनाय और उसकी कमज़ोरियों को दूर करें। मैं कांग्रेस के उसी पुराने रचनात्मक कार्यक्रम का—याने साम्प्रदायिक एकता, अस्पृश्यता-निवारण और चरखा-प्रचार का—समर्थक हूँ। यह बिल्कुल साफ़ है कि पहले दो के बग़ैर अहिंसा असम्भव है। अगर हिन्दुस्तान के गांवों को जिन्दा और सुखी रहना है तो चरखे का प्रचार सार्वत्रिक होना आवश्यक है। ग्रामीण संस्कृति का उद्धार चरखे और उससे सम्बन्धित तमाम गाम-उद्योगों के उद्धार के बिना असम्भव है। इस प्रकार चरखा अहिंसा का सर्वश्रेष्ठ प्रतीक है और शास्त्र का उसमें हरेक कांग्रेस-कार्यकर्ता का सारा समय लग सकता है। अगर यह बात उनको अपील नहीं करती तो या तो वे अहिंसा के बारे में नहीं जानते या फिर

में अहिंसा क, ख, ग, घ भी नहीं जानता। अगर मेरा चरखा-प्रेम मेरी एक कमजोरी है, तो वह कमज़ोरी इतनी मौलिक है कि मैं कांग्रेस के नेतृत्व के अयोग्य हूँ। चरखा मेरी स्वराज्य की योजना के साथ ही नहीं, बल्कि खुद मेरे जीवन के साथ बंधा हुआ है। स्वराज की इस आखिरी और निर्णयात्मक लड़ाई के समय मेरी योग्यतायें सम्पूर्ण भारत को जान लेनी चाहिएँ। हरिजन-सेवक, ११ नवम्बर, १९३९.

: ८ :

आवश्यक योग्यतायें

(राजकोट के सम्बन्ध में) चार दिन के उपवास ने मुझे सत्याग्रही के लिए आवश्यक योग्यताओं पर विचार करने का मौका दिया। यद्यपि १९२१ में उनपर सावधानीपूर्वक विचार किया जा चुका है और वे लेखबद्ध भी की जा चुकी हैं, लेकिन उन्हें भुला दिया गया मालूम होता है। क्योंकि कई रियासतों में सविनय-भंग के रूप में सत्याग्रह किया जा रहा है या करने का विचार चल रहा है, इसलिए उन योग्यताओं को दोहरा देना और अनेक कार्यकर्ताओं में फैले हुए ग़लत खयालों को दूर करना ज़रूरी है।

इसके अलावा, इस समय जबकि वातावरण में अहिंसा नहीं, बल्कि हिंसा व्याप्त हुई दिखाई देती है, सबसे ज्यादा सावधानी रक्खी जाने की ज़रूरत है। निस्सन्देह, वाजिबी तौर पर यह दलील की जा सकती है कि हिंसा से भरे वातावरण में अहिंसा के लिए कोई स्थान नहीं है ; यहाँ तक कि अहिंसा को सर्वथा बेअसर बनाया जा सकता है, जबकि दावा यह है कि हिंसा का, फिर चाहे वह कितनी ही भीषण क्यों न हो, कारगर जवाब अहिंसा ही है। लेकिन जब वातावरण में अहिंसा व्याप्त हो रही हो, तब अहिंसा का प्रदर्शन सविनय-भंग के ज़रिये हो, तो वह उपयुक्त प्रतिबन्धों के के साथ होना चाहिए। सत्याग्रह में और खासकर वह भी उस समय, जबकि हिंसात्मक शक्तियां सर्वोपरि हो रही हों, संख्या का नहीं, हमेशा योग्यता का ही मूल्य है।

फिर अक्सर यह भुला दिया जाता है कि सत्याग्रही की अन्यायी को परेशान करने की इच्छा कभी नहीं होती। प्रतिपक्षी को डराने या दबाने की नहीं, बल्कि हमेशा उसके हृदय पर असर करने की वृत्ति होनी चाहिए। सत्याग्रही का उद्देश्य अन्यायी का हृदय-परिवर्तन करना है, उसे दबाना नहीं। उसे अपनी सब प्रवृत्तियों में बनावट से बचना चाहिए। उसे स्वाभाविक रूप में और आन्तरिक विश्वास के अनु-सार काम करना चाहिए।

इन बातों को विचारपूर्वक अपने ध्यान में रखते हुए पाठक शायद नीचेलिखी योग्यताओं को पसन्द करेंगे, जिन्हें मैं हिन्दुस्तान के प्रत्येक सत्याग्रही के लिए लाज़िमी समझता हूँ :

१. ईश्वर में उसकी सजीव श्रद्धा होनी चाहिए, क्योंकि वही उसका आधार है।

२. वह सत्य और अहिंसा को धर्म मानता हो और इसलिए उसे मनुष्य-स्वभाव की सुप्त सात्विकता में विश्वास होना चाहिए। अपनी तपश्चर्या के रूप में प्रदर्शित सत्य और प्रेम के द्वारा वह उस सात्विकता को जाग्रत करना चाहता है।

३. वह चारित्र्यवान् हो और अपने लक्ष्य के लिए जान और माल क़ुरबान करने के लिए तैयार हो।

४. वह आदतन खादीधारी हो और कातता हो। हिन्दुस्तान के लिए यह लाज़िमी है।

५. वह निर्व्यसनी हो, जिससे कि उसकी बुद्धि हमेशा स्वच्छ और स्थिर रहे।

६. अनुशासन के नियमों का पालन करने में वह हमेशा तत्पर रहता हो।

७. उसे जेल के नियमों का, जोकि खासतौर पर आत्मसम्मान को भंग करने के लिए न बनाये गये हों, पालन करना चाहिए।

यह न समझ लेना चाहिए कि इन शर्तों में ही सत्याग्रही की योग्यताओं की परिसमाप्ति हो जाती है। ये तो केवल दिशा-दर्शक हैं।

हरिजन-सेवक, २५ मार्च, १९३९.

: ६ :

सत्याग्रही कौन हो सकता है ?

सत्याग्रह के अर्थ का विचार करने से हमें मालूम होता है कि उसकी पहली शर्त यह है कि सत्याग्रही में सत्य का आग्रह—सत्य का बल—होना चाहिए; सत्याग्रही दोनों घोड़ों पर सवार नहीं हो सकता। ऐसा आदमी बीच में ही पिस जाता है। सत्याग्रह गाजर की तुरही नहीं है कि वह बजाली, नहीं तो चबा डाली। जो यह मानते हैं, वे भटक जाते हैं, रास्ता भूल जाते हैं। इस बात में जरा भी सार नहीं है कि वे ही लोग सत्याग्रह की लड़ाई लड़ते हैं, जिनके बदन में ताक़त नहीं है, अथवा जिनका शरीर-बल कुछ काम नहीं कर पाता और इसलिए जिन्हें बेबस होकर सत्याग्रही बनना पड़ता है। इस तरह की बातें करनेवाले को सत्याग्रह क्या चीज है, यह भी मालूम नहीं है। जिस्मानी ताक़त के मुक़ाबिले सत्याग्रह का तेज कहीं ज्यादा ह और उसके सामने जिस्मानी ताक़त एक तिनके के समान है। शरीर-बल में खास बात यह है कि बलवान आदमी अपने शरीर के मोह को छोड़कर लड़ाई में जूझता है। याने वह डरपोक नहीं होता। मगर सत्याग्रही की नज़र में तो उसके शरीर का कोई मूल्य ही नहीं है। डर तो उसके पास फटक तक नहीं सकता। इसीलिए वह बाहरी हथियार से अपने को नहीं सजाता। और मौत से निडर बनकर मरते दम तक जूझता रहता है। अतएव सत्याग्रही में शरीर-बल की अपेक्षा हिम्मत अधिक होनी चाहिए। इस तरह सत्याग्रही के लिए सबसे पहली आवश्यकता है, सत्य का सेवन और सत्य में उसकी अखण्ड आस्था या श्रद्धा।

सत्याग्रही को धन-दौलत की ओर से लापर्वाह रहना चाहिए। दौलत और सचाई में सदा से अनवन रही है और आखिर तक रहेगी। जो धन से चिपटा रहता है वह सत्य की रक्षा नहीं कर सकता। ट्रांसवाल के वहुतेरे भारतीयों के उदाहरणों से हमें इसकी प्रतीति हो चुकी है। इसका मतलव यह नहीं है कि सत्याग्रही के पास धन हो ही नहीं सकता। दौलत उसके पास हो सकती है, पर पैसा उसका परमेश्वर नहीं वन सकता। सत्य की रक्षा करते हुए पैसा रहे तो अच्छी वात है, नहीं तो उसे हाथ का मैल समझ कर भुला देना चाहिए। और ऐसा करते हुए थोड़ी भी हिचकिचाहट न होनी चाहिए। जिसने अपने मन को इतना मजबूत नहीं बनाया है, वह सत्य का आग्रह कदापि नहीं कर सकता। अलावा इसके जिस देश के राजा के खिलाफ़ सत्याग्रह करना पड़ता है उस देश में सत्याग्रही के पास दौलत का होना एक आफत ही है। राजा का वल मनुष्य पर नहीं चलता, मगर उसकी दौलत या उसके डर पर जरूर कामयाव होता है। धन लूट लेने या शरीर को नुक़सान पहुँचाने की धमकी देकर राजा प्रजा से मनमाना काम करा लेता है। अतएव अत्याचारी राजा के राज्य में तो अकसर वे ही लोग धन वटोर सकते हैं, जो राजा की उसके अत्याचार में मदद करते हैं। सत्याग्रही अत्याचारी के अत्याचार में शामिल हो नहीं सकता, इसलिए ऐसे समय सत्याग्रही को ग़रीबी में ही अमीरी मान लेनी चाहिए।

इस वारे में इतनी वात और विचारने की है कि शरीर-वल की आज़माइश के वक्त भी इनमें की वहुतेरी वातों का मोह छोड़ देना पड़ता है। भूख, प्यास, गर्मी, सर्दी सव सहने पड़ते हैं। कुनवेवालों की माया-ममता छोड़नी पड़ती है। धन-दौलत को भुला देना पड़ता है। वोअर लोगों ने अपनी शस्त्रास्त्र की लड़ाई में यह सव किया था। उनके शरीरी आग्रह में और हमारे सत्याग्रह में वड़ा फ़र्क़ यह है कि उनकी वाज़ी पासों की वाज़ी थी। सिवा इसके, वे अपनी जिस्मानी ताक़त के कारण मग़रूर भी वन गये थे। आधी जीत के मिलते-न-मिलते ही वे अपनी पहले की हालत को भूल गये। वे ज़ालिम के साथ ज़ालिमी हथियारों से लड़े। यही वजह है कि वे आज हम पर भी जुल्म ढा रहे हैं। सत्याग्रही जव लड़ाई में जीतता है तो उसकी जीत का नतीजा उसके और दुश्मन या विरोधी दोनों के लिए अच्छा ही होता है। सत्य की रक्षा करते हुए सत्याग्रही कभी ज़ालिम या अत्याचारी वन ही नहीं सकता।

सत्याग्रही को कुटुम्ब की माया छोड़नी पड़ती है। यह काम वहुत टेढ़ा है; पर सत्याग्रह, जैसा कि उसका नाम है, उसकी अपेक्षा भी टेढ़ा है, तलवार की धार है। आखिर तो सत्याग्रह में भी कुटुम्ब के हित की रक्षा होती है। कारण, कुटुम्बियों के लिए भी सत्याग्रह की लगन लगने का अवसर आता है, और जिसे एक वार यह लगन लग जाती है उसे फिर किसी दूसरी चीज़ की इच्छा ही नहीं रहती। कोई खास तरह का कष्ट सहते समय, धन खोते समय, या जेल जाते समय इस वात का शोक या शक न होना चाहिए कि कुटुम्ब का क्या होगा। जिसने दाँत दिये हैं, वह चवाने को भी देगा। जो साँप, विच्छू, शेर, भेड़िया वगैरा डरावने जन्तुओं या जानवरों को भूखा

नहीं रखता है, वह मनुष्य-जाति को भी भुला नहीं सकता। हम जो आँटे मारते हैं, सो सेर वाजरी या मुट्ठी भर धान के लिए नहीं, पर खट्टे-मीठे स्वाद के लिए। ठण्ड से बचने के लिए आवश्यक जैसे-तैसे कपड़ों के लिए नहीं, वल्कि रेशम-किमखाव के लिए। अगर हम इस लोभ को छोड़ दें तो कुटुम्व के भरण-पोषण की चिन्ता वहुत कम रह जायगी।

इस तरह सत्याग्रही की योग्यता का विचार करते हुए आखिर हम इस नतीजे पर पहुँचते हैं कि जिसे अपने धर्म या दीन पर पूरी-पूरी आस्था है, वही सत्याग्रही हो सकता है। 'मुख में राम वगल में छुरी' आस्था नहीं कहलाती। दीन का नाम लेकर दीन के खिलाफ़ काम करना दीन नहीं। पर जो धर्म, दीन और ईमान की सचाई के साथ रक्षा करता है, वही सत्याग्रही हो सकता है। मतलव, जो आदमी खुदा या ईश्वर के भरोसे से सर्वस्व का त्याग करता है, उसके लिए दुनिया में कभी हार या पराजय है ही नहीं। लोगों के कहने से कि इसकी हार हुई है, वह हारा हुआ नहीं माना जाता; और लोगों के उसे विजयी मानने से वह विजयी भी नहीं वनता। इसे तो जो जानता है वही जानता है।

यह सत्याग्रह का सच्चा स्वरूप है। दक्षिण अफ्रिका के भारतीयों नें इसे कुछ हद तक पहचाना है। पहचान कर थोड़ा इसका पालन भी किया है। इतना-सा प्रयत्न करके भी हम इसके अमूल्य रस को कुछ चख सके हैं। सत्याग्रह की खातिर जिसनें अपना सब-कुछ छोड़ दिया है, उसनें सब-कुछ पाया है। क्योंकि वह उसी में सन्तुष्ट रहता है। और सन्तोष ही सुख है। दूसरे सुख का किसे पता है ? ज़ो भी है वह सव मृग-तृष्णा है; जितना उसे पाने के लिए आगे वढ़ते हैं, वह उतना ही अधिक दूर हटता जाता है।

इन सब बातों का विचार करके हरएक भारतवासी सत्याग्रही वने, यह हमारी इच्छा है। अगर इस हथियार को चलाना हमनें सीख लिया तो अन्याय से होने वाले तमाम दुःखों को दूर करने के लिए इस-सा कारगर और कुछ न होगा। यह हथियार किसी एक जगह के लिए नहीं, वल्कि हमारे देश-भर के लिए वड़ा उपयोगी है। सिर्फ इसके सच्चे स्वरूप को समझने की आवश्यकता है। इसे समझना सहल भी है और कठिन भी है। जव शरीर से वलवान् लोग भी इने-गिने ही होते हैं तो फिर सत्य के वल से वली तो विरले ही हो सकते हैं।

× × × ×

सत्याग्रह की लड़ाई में हारने या पछताने की कोई वात नहीं है। इस लड़ाई में आदमी का वल हमेशा वढ़ता ही जाता है। इसमें थकावट पैदा नहीं होती, वल्कि हर मंज़िल पर ताक़त वढ़ती ही जाती है। अगर हम सच्चे होंगे तो इस वार हमारे लोग वहुत अधिक काम कर गुजरेंगे, अपने नाम की रक्षा करेंगे और उसके गौरव को खूव वढ़ायेंगे।

हि० न०, ६ मार्च, १९३०.

सार्वभौम यानें सारे संसार का अवतक का यही अनुभव है कि ऐसों को ईश्वर ने भूखों नहीं मरने दिया है।

क़ौमी लड़ाई के बारे में

१६. सत्याग्रही जान-बूझकर क़ौमी कलह या लड़ाई का कारण कभी नहीं बनेगा।

१७. क़ौमी लड़ाई के छिड़नें पर वह किसी क़ौम की तरफ़दारी नहीं करेगा। न्याय जिसकी ओर होगा, वह उसी की मदद करेगा। अगर स्वयं हिन्दू होगा तो मुसलमान वग़ैरा क़ौमों के प्रति वह उदारता से पेश आयेगा और हिन्दुओं के आक्रमण से उनकी रक्षा करते हुए मर मिटेगा। अगर मुसलमान वग़ैरा हिन्दू पर हमला करते होंगे तो उनसे हिन्दू की रक्षा करते हुए वह अपनी जान दे डालेगा, लेकिन विरोध में किये गये हमले में कभी शामिल नहीं होगा।

१८. क़ौमी झगड़ों को पैदा करनेवाले अवसरों से वह जहाँतक हो सकेगा बचेगा।

१९. अगर सत्याग्रही कोई जुलूस निकालेगा तो ऐसा कोई काम न होने देगा, जिससे किसी क़ौम के धार्मिक भावों को चोट पहुँचे। और वह दूसरों के उस जुलूस में भी शामिल नहीं होगा जिससे किसी क़ौम के धार्मिक भावों पर आघात पहुँचता हो।

हि० न०, २७ फरवरी, १९३०.

: ११ :

सत्याग्रह का रहस्य

'सत्याग्रही कौन हो सकता है ?' इस प्रश्न का जवाब पा चुकने पर अब इसके रहस्य को समझ लेना आवश्यक है। इस रहस्य के समझ लेने पर सत्याग्रह की जीत के बारे में कोई उलझन ही पैदा नहीं हो सकती।

सत्याग्रही कई तरह की रियायतें ले सकता है, जिन्हें दूसरे लोग नहीं ले सकते। क्योंकि सत्याग्रही तो सच्चा मर्द बन जाता है। एक बार जहां वह मन से निडर बना कि फिर किसी की ग़ुलामी नहीं करता। इस स्थिति को प्राप्त कर लेने के बाद वह किसी भी तरह के ग़ैरवाजिब वर्त्ताव के वश नहीं होगा। इस तरह का सत्याग्रह सिर्फ़ सरकार के खिलाफ़ ही नहीं, बल्कि देश या जाति के खिलाफ़ भी किया जा सकता है और करना चाहिए। अक्सर यह देखा गया है कि सरकार की तरह देश या जाति के लोग भी गुमराह हो जाते हैं, ग़लत रास्ता पकड़ लेते हैं। ऐसे समय उनके खिलाफ़ भी सत्याग्रह करना कर्त्तव्य हो पड़ता है। 'क़ानून की मुखालफ़त करने का फ़र्ज़' के लेखक स्वर्गीय थोरो ने अपनी क़ौम की मुखालफ़त की थी और उसका विरोध किया था। उन्होंने सोचा कि उनके देश-बन्धु ग़ुलामों के बेचने का धन्धा करके बुरी राह पर चल रहे हैं। बस, इसलिए उन्होंने अपनी क़ौम का विरोध किया। महान् लूथर ने अकेले

एक मिनिट में बरबाद हो सकता है। इसी तरह अगर सत्याग्रह को छोड़कर हाथ-पर-हाथ धरे बैठे रहे तो जो प्राप्त हो चुका है उसे भी गँवाना पड़ेगा।

ऐसे चमत्कारपूर्ण सत्याग्रह की खूबी को हम नहीं समझते, यही वजह है कि हम अपने देश में कंगाल और नामर्द बनकर रह रहे हैं। यह बुराई सरकार के और हमारे बीच के व्यवहार में ही नहीं, बल्कि हमारे घरेलू जीवन में भी घुस चुकी है। देश की अनेक रूढ़ियों को, जिनकी बुराई साफ ज़ाहिर है हम आज भी सिर्फ इसीलिए नहीं तोड़ सकते कि हममें सत्याग्रह की कमी है। हम जानते हैं कि फ़लां चीज़ बुरी है, मगर फिर भी डर से, आलस्य के कारण या लज्जावश हम उसे छोड़ नहीं पाते। इन उदाहरणों से यह बात समझ में आजानी चाहिए कि सत्याग्रह मन की एक स्थिति है। जिसके मन में सत्याग्रह ने जड़ जमाली है, वह हर जगह, हर हालत में विजयी होता है। फिर भले ही उसके विरोधियों में राजा हो या प्रजा, अनजान आदमी हो या जान-पहचान वाले, पराये हों या अपने।

मैं हरएक भारतवासी को यह सलाह दूंगा कि वह इन विचारों के मर्म को ठीक-ठीक समझ ले। जो इन्हें समझ सकेंगे वे जीत के स्वरूप को भी पहचान सकेंगे, और फलतः भारतीय जनता को अब जो काम करने हैं, वह उन्हें कर सकेगी।

हि० न०, १३ मार्च, १९३०.

: १२ :

अभूतपूर्व संभावना

जिनका यह विश्वास है कि अहिंसा से ही भारत आज़ाद हो सकता है और आज़ादी मिल जाने पर अहिंसा से ही उसकी रक्षा की जा सकती है, वे यह भी ज़रूर मानेंगे कि आम लोग देश की खातिर जान-बूझकर कोई उपयोगी परिश्रम करके ही बड़े पैमाने पर अहिंसा का पालन कर सकते हैं। वह श्रम कौनसा है जिसे विशेष पूंजी के बिना सभी आसानी से कर सकते हों और जिससे ज्ञानतन्तुओं को शान्ति मिलती हो ? निश्चय ही जवाब यह है वह उद्योग हाथ-कताई और उससे पहले की क्रियाएँ हैं। और यह है भी पूरी तरह स्वदेशी उद्योग। करोड़ों लोग इसे आसानी से सीख सकते हैं और इसका माल सदा हाथों-हाथ बिकता है। मिलें न हों तो सूत का महत्व घी जैसी चीज़ों के बराबर हो जाये और सूत के अकाल से वैसा ही कष्ट अनुभव होने लगे जैसा अनाज के अकाल से होता है। लोग इरादा करलें, तो बहुत परिश्रम के बिना ही वे अपना कपड़ा तैयार कर ले सकते हैं।

यूरोप के राज्यों में तो चूंकि लड़ाई एक मानी हुई प्रथा हो गई है, इसलिए वहां कुछ सालतक बालिग़ मर्दों से ज़बर्दस्ती फ़ौजी सेवा ली जाती है। जो देश लड़ाई की तैयारी के बग़ैर अपनी रक्षा करना और अपने जीवन के नियम बनाना चाहता है उसे वहां की जनता से राष्ट्र की उत्पादक सेवा करानी पड़ती है। किसी देश को जिन्दा रहने में

लिए जिन चीज़ों की ज़रूरत होती है वे यदि किसी केन्द्रीय उद्योग से तैयार होती हैं तो उसे इस उद्योग की रक्षा का वैसा ही प्रवन्ध करने की आवश्यकता होगी जैसा कि एक पूँजीपति अपने धन की रक्षा के लिए करता है। इस तरह जिस मुल्क की सभ्यता की वुनियाद अहिंसा पर खड़ी हो उसे हर घर अधिक-से-अधिक स्वावलम्वी वनाने की आवश्यकता होगी। एक ज़माने में भारतीय समाज की रचना, अनजाने ही सही, अहिंसा के आधार पर थी। समय-समय पर खूंखार जातियों के झुंड इस देश पर चढ़कर आते थे पर हमारे घरेलू जीवन याने गांव की शान्ति-भंग न होती थी। अंग्रेज इतिहासकार मेन ने सिद्ध किया है कि हिन्दुस्तान के गांव प्रजातन्त्र-समूह थे। वहां कोई वड़ा-छोटा न होता था। सभी वरावर माने जाते थे।

कांग्रेसवादियों को यह दलील स्वीकार न हो, तो मेरी राय में ऐसी अहिंसा स्थापित करना असंभव है, जिसपर किसी भी लालच का असर न हो सके और जो भारी-से-भारी मुसीवतों के सामने भी चट्टान की तरह खड़ी रह सके। ऐसी अहिंसा के विना देश इस तरह की लड़ाई नहीं लड़ सकता, जिसमें न पीछे हटनें का काम हो और न हार खाने का। न इसके विना कांग्रेस कभी अंग्रेज़ों और दुनिया के सामनें अपना अहिंसा का दावा ही सावित कर सकती है।

कांग्रेस की अहिंसा जिस तरह शासकों के प्रति रखी गई है उसी तरह उन सव के प्रति रखनी है, जो इस महान् संस्था से डरते या नफ़रत करते हैं या उसपर सन्देह रखते हैं। मुझे कुछ भी शक नहीं है कि ऐसी व्यापक अहिंसा के न होने से ही हम क़ौमी एकता क़ायम नहीं कर सके। सच तो यह है कि कांग्रसवादी आपस के व्यवहार में भी इस तरह की अमली अहिंसा का परिचय नहीं दे सके हैं। और मेरा तो यहाँतक विश्वास हो रहा है कि खादी के कार्यक्रम में हमारी जितनी कसर रहेगी उतनी ही कमी हमारी अहिंसा में रहेगी। हमारा विश्वास दोनों में ही कच्चा रहा है। मैं चाहता हूँ कि हमारी श्रद्धा दोनों में पक्की हो और फिर देखिए, कांग्रेस का कोई वाल भी वाँका कर सकता है ? फिर तो शायद कांग्रेस को भारत की आज़ादी हासिल करने के लिए सविनय-भंग की अग्नि-परीक्षा में से भी न गुज़रना पड़े।

हरिजन सेवक, ९ दिसम्वर, १९३९.

: १३ :

सत्याग्रह कैसे ?

सविनय-भंग किसी तरह अनिवार्य रूप से अगला क़दम नहीं है। वह तो परिस्थितियों की विविधता पर निर्भर करता है। युद्ध-संचालन की कला में—और तव और भी ज्यादा जवकि युद्ध अहिंसात्मक हो—निष्क्रियता अक्सर सवसे अधिक प्रभावकारी क्रिया होती है।

अहिंसा का स्थान सत्याग्रहशास्त्र में केन्द्रीय है। १९२० में यह हुआ कि कांग्रेस ने राजनीति को जान-बूझकर मूलभूत नीति और आवश्यक समाज-सुधार से जोड़ दिया। कांग्रेस इस निर्णय पर पहुँची कि अहिंसा और अमुक निश्चित सामाजिक सुधारों के वगैर, मद्य-निषेध और अस्पृश्यता-निवारण के विना, स्वराज हासिल नहीं किया जा सकता। अपने आर्थिक कार्यक्रम के केन्द्र-स्थान में उसनें चर्खा भी रखा। निस्संदेह, उसने तवके प्रसिद्ध राजनैतिक कार्यक्रम, याने पार्लमेण्टरी प्रोग्राम से परहेज़ रक्खा। अतः कांग्रेस की राजनीति में नीति को दाखिल करना कांग्रेस की आजादी की लड़ाई के साथ असंगत नहीं था, न है। यह तो उसका जिगर है। उस वक्त थोड़े-से लोग ज़रूर इसपर कुड़कुड़ाये। लेकिन भारी वहुमत नें इस कार्यक्रम का स्वागत किया। कांग्रेस के सारे गौरवपूर्ण इतिहास में यह अपूर्व चीज़ थी। इस कार्यक्रम ने आश्चर्यकारक पैमाने पर लोक-जागृति की। कांग्रेस ने वह महत्त्व पाया, जो उसे पहले कभी नहीं मिला था। इस कार्यक्रम को कांग्रेस ने जवसे ग्रहण किया, वह एक भारी लोकतंत्रीय संस्था वन गई, और एक ऐसा लोकतंत्रीय विधान वनाया जो आजतक क़ायम है, और जिसमें कोई ऐसा परिवर्तन नहीं किया गया, जो वहुत भौतिक और मूलभूत हो।

कांग्रेस का काम दुहेरा है। शान्ति के वक्त वह प्रजातंत्रीय संस्था है और युद्ध के वक्त वह एक अहिंसात्मक सेना वन जाती है। अपने इस दूसरे रूप में मताधिकार का महत्त्व नहीं रहता। उस समय तो जो भी उसका प्रधान हो उसके द्वारा उसकी इच्छा प्रदर्शित होती है। और उस हालत में उसकी हरेक इकाई को मन, वचन, कर्म से स्वेच्छापूर्वक उसकी आज्ञा का पालन करना पड़ता है। हाँ, मन से भी, क्योंकि उसकी लड़ाई अहिंसात्मक लड़ाई है। **हरिजन-सेवक,** १८ नवम्बर, १९३९.

: १४ :

स्वराज की ख़ातिर कातो

उस दिन कुछ लड़के-लड़कियाँ मेरे पास आये और मेरे हाथ का लिखा माँगने लगे। वे कोई सन्देश भी चाहते थे। उन सवको मैंने यह सन्देश दिया, 'स्वराज की ख़ातिर कातो।' क्योंकि अभी तो मेरे दिमाग़ में सिवा कताई और स्वराज के और कुछ नहीं है। मैं तो यह समझे हुए था कि कहीं मेरे इन नौजवान मुलाकातियों को यह जानकर दुख न हो कि उन्हें साधारण उपदेश न मिलकर एक ऐसा सन्देश मिला जिसमें कोई चीज़ पैदा करने के लिए कहा गया है और वह भी कताई जैसी एक नीरस चीज़। मगर मेरे पूछने पर वे वोले, 'हम कातेंगे'।

श्री सीताराम शास्त्री लिखते हैं कि लोग उनसे चर्खे वग़ैरा माँग रहे हैं। एक और मित्र, जो पुराने जेल-यात्री हैं, कहते हैं कि मुझे निश्चित रूप से एक साल सिर्फ़ कताई और खादी का सव जगह प्रचार कर देने के काम में ही लगाना चाहिए।

इसके विपरीत, मुझे बम्बई के एक वकील का एक पत्र मिला है :—

"'अगर आप हँसे नहीं तो मैं वग़ैर किसी संकोच के कहूँगा कि वह कार्यक्रम सबके कातने का है'—ये शब्द आपने युक्तप्रांत के काँग्रेसजनों को कहते हैं, जिनमें आपके ही कहने के मुताबिक 'कुछ ऐसे भी थे, जो चर्खे और अहिंसा का मज़ाक उड़ा चुके थे।' मगर यह देखकर आपके अचरज का पार न रहा कि वे 'दोनों ही चीज़ों से राज़ी हो गये हैं,' इसीसे आपको परेशानी होती है।

"युक्तप्रांत के इन कांग्रेसी भाइयों की वकालत का दावा न करते हुए भी मैं कहूँगा कि क्या अधिकांश कांग्रेसवाले आपके ऐसे बयानों का अमली विरोध नहीं करते, जैसे, 'अगर करोड़ों स्वराज की ख़ातिर और अहिंसा की भावना से कातने लगें, तो शायद सविनय-भंग की ज़रूरत ही न पड़े।' इसी तरह जब आप मन, वचन और कर्म से अहिंसा का पालन करने पर ज़ोर देते हैं, तब भी वे चुप रहते हैं, हालाँकि वे जानते हैं कि ऐसा अमल असंभव है और आप इस चीज़ के चाहनेवाले होकर भी यह मानते हैं कि आप खुद भी अभी उस मंज़िल पर नहीं पहुँचे हैं। इस तरह के रवैये का कारण सिर्फ़ यह है कि आप काँग्रेस की ताक़त की निशानी बन गये हैं। आम लोगों की नज़र में 'गांधी' और 'कांग्रेस' में कोई अन्तर नहीं है। इसीलिए स्वाधीनता की लड़ाई की मौजूदा स्थिति में काँग्रेसवाले ऐसे ज़बर्दस्त हथियार को खोने के लिए तैयार नहीं हैं। कांग्रेस में से 'गांधी' निकल जाये तो उसकी ताक़त पहले से आधी भी न रहे। इस सचाई को सभी लोग समझते हैं और यही वजह है कि जिसे, आप श्रद्धा के बिना आज्ञा मानना कहते हैं? वह करके भी लोग आपको कांग्रेस से अलग होने देना नहीं चाहते। यह तो मुख्य कारण हुआ। वैसे, कांग्रेस संस्था के भीतर पेच-पर-पेच भरे हैं। कई तरह के अलग-अलग विचार करनेवालों के सिवाय नरम और गरम तो हैं ही। नरमों को गरमों और उनके समाजवादी सिद्धान्तों का बड़ा डर है। वे आपके नाम का जादू पहचानते हैं और उसे आम लोगों में पहुँचाने के गरम आर्थिक तरीक़े के मुकाबिले में इस्तेमाल भी खूब करते हैं। हम यह अजीब दृश्य भी देखते हैं कि जब मिल-मालिक 'खादी' की हिमायत करते हैं तो ऐसा जान पड़ता है कि कैसे बिलकुल साधारण मनुष्य भी अपने निजी स्वार्थ के विरुद्ध आचरण करने का ढोंग रचते हैं। ऐसा क्यों होता है? एक बड़े अर्थशास्त्री नें जिनपर आपकी कृपा है, मुझसे कहा है कि आप पूँजीपतियों के अन्तिम सहारे हैं। उन्हें अच्छी तरह मालूम है कि खादी कभी इतनी सस्ती होनेवाली नहीं है कि साधारण लोग ले सकें और इसलिए उनके स्वार्थों को कोई खतरा नहीं। इसके विपरीत, 'खादी' और 'अहिंसा' के उसूलों के लिए ज़बानी सहानुभूति दिखाकर वे अपने मज़दूरों के साथ बर्ताव करते वक्त आपके 'रक्षक सिद्धान्त' का फ़ायदा उठा सकते हैं और जो मजूर-संघ अहमदाबाद के तरीक़े पर काम करते हैं उनके सिवाय सब मजूर-संघों का चलना असंभव बना सकते हैं। आज तो यह हाल है कि पूँजीपति और ज़मींदार ही क्या, राजा भी (सब नहीं) अपनी-अपनी सुविधा के अनुसार 'अहिंसा' 'सत्य' वग़ैरा शब्दों के सपाटे मार रहे हैं।

"रही वात गरमों की, सो वे भी नरमों से किसी तरह कम नहीं है। उन्हें भी सर्वसाधारण में घुसने के लिए आपके नाम का सहारा चाहिए। यही कारण है कि कांग्रेस में उनकी भीड़ मच रही है। नीति के तौर पर अहिंसा स्वीकारने में उन्हें कोई हर्ज़ नहीं दीखता। आपको खुश रखने के लिए तो वे यह भी कह सकते हैं कि वे इससे राज़ी हो गये हैं। मैं इस वात से इनकार नहीं करता कि कांग्रेसवालों में वहुत लोग सच्चे दिल से आपके ध्येय को माननेवाले हैं, मगर ज्यादातर अपना-अपना मतलब साधने के लिए ही हैं।

"मैं यह नहीं कह सकता कि कांग्रेसवालों को आपसे मैं ज्यादा जानता हूँ। मैं तो उल्टा आपकी इन वातों से असमंज में पड़ गया हूँ कि 'आपके अचरज का पार नहीं' और आप 'परेशान' हैं। हां, यह वात दूसरी है कि जैसा आप कहते हैं कि आप 'सेगाँव में पड़े हैं', इसलिए आपका जनता से सीधा सम्पर्क नहीं है। आदरणीय गांधीजी, मैं आपसे सच कहता हूँ, अगर आप साधारण और साधारण से ऊँचे भी मनुष्यों के स्वाभाविक हेतुओं का ध्यान भर रखकर चलें, (और कांग्रेसवाले मनुष्य ही हैं) तो आपका 'अचरज' और 'परेशानी' इसी तरह गायव हो जायँगे, जैसे सूरज की तेज किरणों के आगे सुवह का कोहरा छिन्न-भिन्न हो जाता है।"

लेखक की दलील में ज़ोर है; इससे मैं इनकार नहीं कर सकता। मगर मैंने जवतक वेईमानी साफ़ ज़ाहिर ही न हो जाये, जीवनभर, साथी कार्यकर्त्ताओं की वात को जैसा उन्होंने कहा वैसा ही माना है। इस तरह भरोसा करके मैंने कुछ खोया नहीं है। इसके विपरीत, मुझे ऐसे कई आदमियों के उदाहरण याद हैं कि जिन्होंने शुरूआत आधे दिल से की है और अन्त में वे पूरे उत्साही वन गये हैं। जव वहुत आदमियों से काम लेना हो, तो अविश्वास रखकर चलना ग़लत नीति है।

जो मिल-मालिक मुझे चर्खे के लिए भी रुपया देते हैं वे साफ़ कह देते हैं कि उन्हें चर्खे की स्पर्धा का डर नहीं है। मैं नहीं समझ सकता कि वे हमारे काम को कैसे नुक़सान पहुँचा सकते हैं। उनका जो भी हेतु है, वह स्पष्ट है। छिपा हुआ कुछ नहीं है। अगर चर्खे का अर्थशास्त्र ग़लत है, तो चर्खा अपनी ही मौत मर जायगा; मगर राष्ट्र चाहे तो जिस वक्त एक भी मिल वाक़ी नहीं रहेगी उस समय भी चर्खा ज़िन्दा रहेगा। मिल के कपड़े के मुक़ाविले में खादी मँहगी है। मगर वह हिन्दुस्तान के लाखों वेकारों को थोड़ा-सा भी उपयोगी काम देती है—जैसाकि वह देती है, तो वह मिल के कपड़े से सस्ती है।

वम्वई के वकील ने जो कुछ कहा है वह सही हो तो, क्या वात है जो आम लोगों का मुझपर इतना प्रेम है और मैं कांग्रेस की ताक़त की निशानी हूँ? क्या इस सवाल का जवाव इस सूर्य की भाँति प्रकाशमान सचाई से नहीं मिल जाता कि मैं शुद्ध अहिंसा का प्रतिनिधि हूँ? भोली-भाली जनता ने अनजाने और सहज ही मुझे अपना मित्र, सेवक और नेता मान लिया है। वे मुझे अपना समझें या मैं उन्हें अपना समझूँ, इसमें कभी कोई दिक्क़त पेश नहीं आई। क्या यहाँ और क्या दक्षिण

अफ़्रीक़ा में, मुझे उन्हें अपनी तरफ़ खींचने के लिए कभी कोशिश नहीं करनी पड़ी। इसका कारण मैं तो प्रेम की अद्भुत शक्ति ही समझता हूँ।

मुझे यह स्वीकार करने में शर्म नहीं लगती कि बहुत-से धनिक मेरे प्रति मित्रभाव रखते हैं और मुझसे डरते नहीं। वे जानते हैं कि मैं भी पूंजीवाद का बिल्कुल नहीं तो लगभग उतना ही अन्त चाहता हूँ जितना कि बहुत आगे बढ़े हुए समाजवादी या साम्यवादी चाहते हैं। पर हमारे तरीक़े जुदा हैं। हमारी भाषा भी दूसरी है। अमीर लोग ग़रीबों के रक्षक बन जायें, यह मेरा सिद्धान्त ऐसा नहीं है जो काम निकालने के लिए आज गढ़ लिया गया है। इसमें धोखेबाज़ी तो क़तई नहीं है। मुझे विश्वास है कि और सब सिद्धान्त मिट जायेंगे तब भी यह तो रहेगा ही।

इसके पीछे तत्वज्ञान और धर्म दोनों की छाप है। अगर अभीतक धनवानों ने इसपर अमल नहीं किया तो इससे यह सिद्ध नहीं होता कि यह सिद्धान्त झूठा है। इससे तो धनवानों की अयोग्यता साबित होती है। बात यह है कि अहिंसा के साथ और किसी सिद्धान्त का मेल नहीं बैठता। अगर मनुष्य-स्वभाव इसके अनकूल नहीं बनता, तो भी कोई बिगाड़ होनेवाला नहीं। अहिंसा का मार्ग ही ऐसा है कि उसमें बुराई करनेवाला अगर अपनी ग़लती ठीक नहीं करता तो वह अपनी मौत आप ही बुला लेता है; कारण या तो अहिंसात्मक असहयोग द्वारा उसे अपनी ग़लती का भान करा दिया जाता है या वह बिल्कुल अकेला पड़ जाता है। हाँ, तो मैं यह कह रहा था कि समाजवादी और गरम लोग इतने दूरदर्शी ज़रूर हैं कि जब कुछ कराने का समय आयेगा तब मेरे रास्ते में रुकावट नहीं डालेंगे। वे जानते हैं कि मेरा तरीक़ा अगर सफल हुआ तो ग़रीबों और पीड़ितों को उससे सुख ही मिलेगा। अभी उनके अपने साधन तो तैयार नहीं हैं और उनमें इतना देश-प्रेम भी है कि तबतक वे मेरे काम में दख़ल नहीं देंगे। इसलिए मुझे जिस चीज़ से सावधान रहना है वह है मक्कारी।

इसकी कसौटी मेरी नज़र में चर्खा है। मेरे पास कोई ऐसी सरल परीक्षा नहीं है जिससे मैं यह जान सकूँ कि किसी कांग्रेसवाले ने हिन्दू-मुस्लिम-एकता बढ़ाने या अछूतपन मिटाने का कितना काम लिया है। मगर यह मैं आसानी से पता लगा सकता हूँ कि उसने काता कितना है या किसी खास प्रदेश में खादी कितनी चल निकली है। इसलिए जिन मित्र ने मुझसे चाहा है कि मैं सिर्फ़ खादी-कार्य के लिए ही कुछ वक्त निकाल रक्खूँ, उनकी सलाह मैंने बिल्कुल मान ही नहीं ली है। मैं तो नतीजे से ही निर्णय करना चाहता हूँ कि कुल कितना प्रयत्न किया गया। मैंने गणित के अनुसार हिसाब लगाकर अन्तिम रूप साबित कर दिया है कि खुद कातकर ग़रीब-से-ग़रीब देहाती भी खादी पहन सकते हैं। कम-से-कम पूंजी और संगठन की मेहनत से अधिक-से-अधिक तादाद में गांववालों की जेब में इतना पैसा पहुँचाने की जो शक्ति कताई और उसके साथ की क्रियाओं में है वह शक्ति और किसी भी देहाती दस्तकारी में नहीं है।

कांग्रेसवालों को जान लेना चाहिए कि जबतक मुझे इस बात का पक्का सबूत

नहीं मिल जायगा कि हिन्दुस्तान भर में खादी का काम सफलता के साथ हुआ है तबतक, और दूसरी सब कठिनाइयाँ दूर हो जायें तो भी, मुझे सत्याग्रह जैसी कोई कार्रवाई करने के लिए अपने पर या काँग्रेसवालों पर विश्वास नहीं होगा। यह तो तभी होगा जब काँग्रेसवालों की भारी तादाद दिल से, डटकर और ज्ञानपूर्वक प्रयत्न करे। इसलिए मैं कहता हूँ कि स्वराज के लिए कातो।

हरिजन सेवक, १६ दिसम्बर, १९३९.

: १५ :

'हमारी प्रतिज्ञा'[1]

यह आशा रखनी चाहिए कि कांग्रेसजन कार्यसमिति के उस प्रस्ताव को, जिसमें २६ जनवरी के लिए प्रतिज्ञा भी दी हुई है न सिर्फ़ ज़बानी ही, बल्कि दिल से भी याद कर लेंगे। यह प्रतिज्ञा सन् १९३० में की गई थी। १० साल का समय थोड़ा नहीं होता। कांग्रेसजन सन् १९२० के रचनात्मक कार्यक्रम पर ईमानदारी और दिलोजान से अमल करते तो पूर्ण स्वराज कभी का आ गया होता, क़ौमी एकता हो गई होती, हिन्दूधर्म शुद्ध हो गया होता और हिन्दुस्तान के गांवों में आज प्रफुल्लित चेहरे दिखाई देते। इन सब बातों से मिलकर ऐसी शक्ति पैदा हुई होती कि किसकी मजाल थी जो स्वाधीनता के रास्ते में रोड़े अटका सकता।

मगर यह दुखदायी और सच्ची बात माननी ही पड़ेगी कि कांग्रेसवालों ने उस कार्यक्रम को जैसा होना चाहिए वैसा पूरा नहीं किया है। उनका यह विश्वास नहीं रहा कि यह तिहेरा कार्यक्रम ही अमली अहिंसा है। उनको यह भरोसा नहीं रहा कि इस कार्यक्रम को पूरा किये बग़ैर सविनय-भंग का आन्दोलन सफलतापूर्वक नहीं चलाया जा सकता।

इसलिए मैंने इस पत्र में यह कहने में अनाकानी नहीं की है कि हमारी अहिंसा नामर्दी से पैदा होनेवाला अहिंसात्मक व्यवहार रही है। यही सबब है कि आज हमें झख मारकर यह क़बूल करना पड़ता है कि भले ही कमज़ोरी की इस अहिंसा से हमें अंग्रेज़ी राज से छुटकारा मिल जाये, पर इससे हममें विदेशी हमले का मुक़ाबिला करने की शक्ति नहीं आ सकती। इस बात से—और बात यह सच्ची है—ज़ाहिर होता है कि अगर कमज़ोरों की इस अहिंसा के सामने, जिसे अहिंसा कहना ही ग़लत है, अंग्रेज लोग झुक जायें तो यह साबित हो जायेगा कि उन्होंने सत्ता छोड़ने का निश्चय-सा कर लिया था और अमनपसन्द प्रजा को भयभीत करने की जोखम उठा कर वे उससे चिपटे नहीं रहना चाहते। काँग्रेसवालों को आश्चर्य नहीं होना चाहिए, अगर मैं उस वक़्त तक सविनय-भंग का ऐलान न करूँ जबतक कि मेरे दिल को यह भरोसा न

१. 'स्वतन्त्रता-दिवस की प्रतिज्ञा' परिशिष्ट नं० ५ में दी हुई है।

हो जाये कि उन्होंने अहिंसा का अर्थ पूरी तरह समझ लिया है और वे इस तिहरे कार्य-क्रम को उतनी ही लगन के साथ चला रहे हैं जितनी लगन के साथ वे जिसे सविनय-भंग कहा जाता है उसे करना चाहते हैं। शायद अब उनकी समझ में आ जायगा कि मैं कायक्रम के तीनों हिस्सों को अहिंसा के जरूरी अंग क्यों कहता हूँ।

क़ौमी भाईचारे से मेरा क्या मतलब है? जब जिन्ना-नेहरू बातचीत पार नहीं पड़ी तो यह भाईचारा होगा कैसे? वह टूट भी जाये और न भी टूटे। मगर क़रारनामे तो वड़े आदमियों के लिए हैं। उनसे साधारण लोगों, करोड़ों पददलितों को क्या? इन लोगों में भाईचारा वढ़ाने के लिए लिखा-पढ़ी की ज़रूरत नहीं होती। क्या कांग्रेसवादी रानैजतिक हेतु छोड़ कर सवके लिए सद्भाव पैदा करते हैं? यह भ्रातृ-भाव स्वाभाविक होना चाहिए, डर या काम निकालने के खयाल से नहीं होना चाहिए। यह भाईचारा सगे भाइयों का-सा होना चाहिए। उसमें कोई छिपी ग़रज़ नहीं होती, इसीलिए वह स्वाभाविक और स्थाई होता है। यह भी वात नहीं होनी चाहिए कि यह भाईचारा हिन्दू और मुसलमानों में ही हो। यह तो सवके साथ होना चाहिए। हममें से छोटे-से-छोटे के साथ भी होना चाहिए, अंग्रेजों के साथ भी होना चाहिए और राजनैतिक विरोधियों के प्रति होना चाहिए।

दूसरी वात है अछूतपन दूर करने की। इसका वड़ा गहरा अर्थ है। हिन्दुओं में ऊँच-नीच का जो खयाल है उस खयाल की जड़ उखाड़ देनी चाहिए। अपनी-अपनी जाति की एकता की जगह राष्ट्रीय एकता की भावना पैदा होनी चाहिए। कांग्रेसवालों में तो ये भेद-भाव गई-वीती वातें हो जानी चाहिएँ।

रहा चरखा, सो यह क़रीव २० साल खादी के वने राष्ट्रीय झंडे पर विराजमान है। फिर भी खादी सव जगह नहीं फैली है। जव खादी ने कांग्रेस को अपना लिया है तो जवतक हिन्दुस्तान के कोनें-कोने और घर-घर में खादी न पहुँच जाये तवतक कांग्रेस-वादी चैन से नहीं वैठ सकते। ऐसा होने पर ही यह खुशी से दिये हुए सहयोग और एक इरादे की प्रवल निशानी वनेगी। यह देश के ग़रीव-से-ग़रीव लोगों के साथ एकरस होने का चिन्ह है। अवतक तो कांग्रेसवालों ने खादी से खिलवाड़ ही किया है। उन्होंने उसके सन्देश में श्रद्धा नहीं रक्खी है। उन्होंने अक्सर इसे इच्छा न होते हुए भी ख़ाली दिखावे के लिए इस्तेमाल किया है। पर अगर सच्ची अहिंसा को हमारे भीतर पैठना है, तो खादी हमारे लिए एक जीती-जागती चीज़ हो जानी चाहिए।

हरिजन सेवक, २४ दिसम्बर, १९३९.

: १६ :

मेरा चर

मैं समाजवादियों, रायपन्थियों और दूसरे भाइयों को बधाई देता हूँ कि उन्होंने कताई के बारे में अपने दिल की बात साफ़-साफ़ कहदी। देश के सामने निहायत गंभीर परिस्थिति है। अगर छाती ठोककर सविनय-भंग का ऐलान किया जाये तो जबतक ठीक तरह से निबटारा न होजाये तबतक वह स्थगित नहीं होना चाहिए। इसलिए नतीजा यह निकलता है कि अगर हमारी लड़ाई को अहिंसक रहना है तो उस अहिंसा में कोई मिलावट नहीं होनी चाहिए। इसके लिए हमें जिन-जिन बातों की ज़रूरत है उनके बताने में मुझे कमजोरी नहीं दिखानी चाहिए। अगर मैं संकोच कर जाऊँ तो राष्ट्र के साथ विश्वसघात होगा। मैं ऐसी सेना का नायक बनने की हिम्मत नहीं कर सकता जिसमें वे गुण न हों जिन्हें मैं सफलता के लिए ज़रूरी समझता हूँ।

पूरी वफ़ादारी के बिना काम नहीं चल सकता। आधा दिल इधर और आधा दूसरी तरफ़ होगा तो हमारा सत्यानाश हो जायेगा। आलोचकों को समझ लेना चाहिए कि मैंने अपने को कांग्रेस के सर पर थोपा नहीं है। भले ही कृपालु मित्रों ने मुझे बद-नाम करने के लिए सर्वसत्ताधारी (डिक्टेटर) की उपाधि देदी है, मगर मैं हूँ नहीं। किसीपर भी अपनी इच्छा लादने की मेरे पास कोई ताक़त नहीं है, इसीलिए मैं अपने को जनता का सेवक कहता हूँ। और यह सच है। जनता को मालूम होना चाहिए कि मुझे तो ज़ाब्ते से प्रधान सेनापति बनाया भी नहीं गया है। इसका यह सबब नहीं है कि कार्यसमिति मुझे बाक़ायदा मुक़र्रर करना चाहती नहीं। मगर बात यह है कि मैंने ही सुझाया कि इसकी ज़रूरत नहीं है और कार्यसमिति के सदस्यों ने मेरी बात मानली। इस प्रकार कहीं और कभी किसी सिपहसालार के और उसके सिपाहियों के बीच में शुद्ध प्रेम और विश्वास का गठबंधन हो सकता है तो वह यहां मौजूद है। वैसे कांग्रेस मेरी परवाह न करे और जो चाहे प्रस्ताव पास करदे तो उसे कौन रोक सकता है? जहाँतक मेरा सम्बन्ध है, कोई व्यक्ति, प्रान्त या जिला अपनी ज़िम्मेदारी पर सविनय-भंग का ऐलान करदे तो भी कोई रुकावट नहीं है। अलबत्ता, ऐसा करनेवाले कांग्रेस का अनुशासन तोड़ने के अपराधी होंगे। पर इस तरह की हुक्मउदूली के बारे में मैं कुछ नहीं कर सकता हूँ।

इन बातों को देखते हुए कताई के पक्ष में दलीलें देना मेरे लिए ज़रूरी नहीं होना चाहिए। इतना कहना काफ़ी होना चाहिए कि यह वह शर्त है जिसे हर सत्याग्रही को पूरा करना चाहिए।

पर जबतक मैं विरोधियों को अपनी राय का न बनालूँ या हार न मानलूँ तबतक मुझे दलीलें देते ही रहना चाहिए। इसका सबब है। मेरे जीवन का यह ध्येय है कि

राजनैतिक, आर्थिक, सामाजिक और धार्मिक सभी तरह के आपसी ताल्लुक़ात में अहिंसा से ही काम लिया जाये, इस राय के हिन्दू, मुसलमान और दूसरे सभी हिन्दुस्तानी, अंग्रेज़ भी और अन्त में दुनियाभर के लोग होजायें। मुझे कोई ज़रूरत से ज्यादा महत्वाकांक्षी होने का दोष देगा तो मैं अपना क़सूर मान लूंगा। लेकिन अगर मुझे कोई यह कहेगा कि तुम्हारे सपने कभी सच्चे होनेवाले नहीं हैं, तो मैं जवाब दूंगा—'हो सकते हैं', और अपना काम करता रहूंगा। मैं अहिंसा का मंजा हुआ सिपाही हूं और मुझे इसका इतना प्रमाण ज़रूर मिला है कि उसके आधार पर मेरी श्रद्धा क़ायम रह सके। यही कारण है कि मुझे एक साथी मिले, ज्यादा मिलें या एक भी न मिले तो भी मेरा प्रयोग तो जारी रहेगा ही।

पहली बात जो मैं चाहूंगा, कि साथी लोग अच्छी तरह समझलें, यह है कि मेरे दिल में एक भी अंग्रेज़ के लिए घृणा नहीं है। मैं उसको हिन्दुस्तान से नहीं निकालना चाहता। मैं इतना ही चाहता हूं कि वह शासक या शासक जाति का न रहे, अपने को ऐसा समझना छोड़ दे और हिन्दुस्तान का सेवक बन जाये। उसके लिए मेरा भाव ठीक वही है जो एक हिन्दुस्तानी के लिए है, फिर भले ही उसका धर्म कुछ भी हो। इसलिए जिन लोगों में मेरी तरह यह पहला गुण न हो वे सत्याग्रह में मेरे साथी नहीं बन सकते।

अंग्रेज़ों के प्रति मेरा प्रेम ऐसा नहीं है कि मैं उनके लिए ज़बान से मीठी-मीठी बातें कहूं। उनके साम्राज्य की जितनी बुराई मैंने की है उससे अधिक शायद ही और किसीने की होगी। लेकिन साथ ही, मैंने अपने घरवालों और राजनैतिक हलके के लोगों के बारे में भी वैसा ही किया है। प्रेम की मेरी कल्पना यह है कि वह कुसुम से भी कोमल और वज्र से भी कठोर हो सकता है। मेरी पत्नी को इस कठोरता का अनुभव है। मेरा बड़ा लड़का अब भी इसका अनुभव कर रहा है मैंने सोचा था कि सुभाषबाबू को मैंने सदा के लिए पुत्र के रूप में पा लिया है, मगर वह मुझसे रूठ बैठे हैं। उनपर प्रतिबन्ध लगाने के काम में मैं कठोर होकर पूरी तरह शामिल था। एक ज़माना था, जब डॉक्टर खरे और वीर नरीमान कहा करते थे कि आपकी ज़बान ही हमारे लिए कानून है। अफसोस, आज मैं वह अधिकार खो बैठा हूं। कुछ भी हो, उनके विरुद्ध अनुशासन की कार्रवाई करने में मैं शरीक था। मैं मानता हूं कि मैंने उनके साथ वही सलूक किया है जो मैं अपने नज़दीक-से-नज़दीक और प्यारे-से-प्यारे समझे जानेवाले लोगों के साथ कर चुका हूं। मेरे सारे व्यवहार में प्रेम की ही प्रेरणा रहती है। अंग्रेज़ों के साथ भी मेरा बर्ताव इसी तरह का रहा है। हाँ, उन्होंने जब-जब मेरी उनसे लड़ाई हुई है मुझे तरह-तरह की गालियाँ दी हैं। उनकी कड़ी टीका का मुझ पर उतना ही असर हुआ है जितना उनकी तारीफ़ का। ये सब बातें मैं इसलिए नहीं कह रहा हूं कि मेरी कोई बड़ाई करे। इसका न मुझे हक़ है और न मैं आशा रखता हूं। मैं तो इतना बताना चाहता हूं कि चूंकि मैंने अंग्रेज़ों की हुकूमत और उनके तरीक़ों के बारे में कड़वी बातें कही हैं, इसलिए मुझ पर यह इलज़ाम नहीं लगाया

करोड़ों स्त्री-पुरुषों में प्रेम का अटूट सम्बन्ध बाँध देता है। इस सूत का एक धागा भले ही बेकार हो, मगर जब इसी सूत के करोड़ों धागे दिल से और जानकार हाथों से काते जायँगे और उनका अनन्त ताँता बँध जायेगा तब उनसे ऐसी मज़बूत रस्सी तैयार होगी जो कितना ही ज़ोर सह सकती है। मगर सन् १९०८ से १९१४ तक इस कल्पना पर अमल नहीं हो सका। यह सारी योजना बनी तो थी हिन्दुस्तान के लिए ही, फिर भी इसकी भावना के अनुसार काम दक्षिण अफ़्रीका में भी हुआ। वहांके सत्याग्रहियों का जीवन सादा-से-सादा बन गया था। चाहे बैरिस्टर हो चाहे और कोई, सबने हाथ से काम करने का महत्त्व जान लिया था। उन्होंने अपनी इच्छा से गरीबी की ज़िन्दगी बिताना स्वीकार कर लिया था और ग़रीबों के साथ एकरस हो गये थे। हिन्दुस्तान में आते ही मैंने अकेले दम चर्खे को फिर से सजीवन करने का काम शुरू कर दिया। १९२१ में खादी कांग्रेस के रचनात्मक कार्यक्रम का एक मुख्य अंग बन गई। कांग्रेस के झण्डे का अहिंसा के साथ जीवन-प्राण का सम्बन्ध हो गया और चर्खा उस झण्डे के बीचोंबीच विराजमान हुआ। इसलिए आज मैं कोई नई बात नहीं कह रहा हूँ। मगर अक्सर बात यह हुई कि लोगों ने उस वक्त तक मेरे कहने पर ध्यान नहीं दिया, जब तक उन्हें उसपर अमल न करना पड़ा।

जिन-जिन साथियों ने चर्खे और उसके फलितार्थों के विरुद्ध समय-समय पर कुछ भी लिखा है उनका मुझे बड़ा लिहाज़ है। वे अपनी-अपनी बुद्धि के अनुसार देश को रास्ता दिखाकर सेवा ही कर रहे हैं। मैं नहीं चाहता कि जो बातें मैं आवश्यक समझता हूँ उन्हें वे बिना सोचे-समझे यों ही मानलें। इससे देश का काम बनता हो तो मैं ऐसा भी करलूँ, मगर मैं जानता हूँ कि इससे राष्ट्र का कोई फ़ायदा नहीं।

हरिजन-सेवक, ९ जनवरी, १९४०.

: १७ :

अमली अहिंसा

डॉक्टर राममनोहर लोहिया लिखते हैं :—

"क्या आज़ादी की प्रतिज्ञा का यह अर्थ है कि स्वतन्त्र भारत के लिए ऐसी सामाजिक व्यवस्था में विश्वास रखा ही जाय, जिसकी बुनियाद सिर्फ़ चरखे और मौजूदा रचनात्मक कार्यक्रम पर होगी? मुझे खुद को तो ऐसा लगता है कि ऐसी बात नहीं है। प्रतिज्ञा में चरखा और गाँवों की दस्तकारियाँ शामिल हैं, मगर यह बात नहीं है कि प्रतिज्ञा में दूसरे उद्योगों और आर्थिक प्रवृत्तियों की गुंजाइश ही नहीं। इन उद्योगों में बिजली, जहाज़ बनाने, कलें तैयार करने आदि का नाम लिया जा सकता है। फिर भी यह सवाल रह जाता है कि ज़ोर किसपर दिया जाये। इस बारे में प्रतिज्ञा से सिर्फ़ इस हदतक फ़ैसला होता है कि इतना विश्वास रखना तो ज़रूरी है कि चरखा

और ग्रामउद्योग भावी समाज-व्यवस्था के ऐसे हिस्से होंग जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता और उनपर से विश्वास हटाकर दूसरे उद्योगों पर विश्वास नहीं रखा जा सकता ।

"क्या प्रतिज्ञा से तुरन्त यह ज़रूरी हो जाता है कि और सब कार्रवाई करना छोड़ दिया जाये और सिर्फ़ वही की जाये जिसका आधार मौजूदा रचनात्मक कार्यक्रम पर हो ? मुझे तो ऐसा लगता है कि यह ज़रूरी नहीं । लगान, कर, ब्याज और जनता की प्रगति के रास्ते में और भी जो आर्थिक रुकावटें हैं उनके विरुद्ध आन्दोलन करने में तो कोई वाधा नहीं दिखाई देती । मिसाल के लिए, यह नामुमकिन नहीं है कि जब आप सत्याग्रह शुरू करना पसन्द करें तब आप खुद ही लगानबन्दी और करबन्दी का आन्दोलन करने का निश्चय करें । आप सचमुच ऐसा करें या न करें, प्रतिज्ञा की दृष्टि से इसका इतना महत्व नहीं है, जितना इस बात का कि, आप कर सकते हैं । कुछ भी हो, आज तो आर्थिक ढंग के आन्दोलन की छूट है ।

"ये दोनों सवाल तो प्रतिज्ञा के इस पहलू से पैदा होते हैं कि क्या-क्या नहीं किया जा सकता । एक तीसरा सवाल इस बारे में खड़ा होता है कि क्या-क्या करना ज़रूरी है । बेशक, यह आवश्यक है कि जो कोई प्रतिज्ञा ले उसे समाज की अर्थ-व्यवस्था एक जगह केन्द्रित न करने के उसूल में अपना क्रियात्मक विश्वास ज़ाहिर करने को तैयार रहना चाहिए । इस विश्वास का असली रूप क्या हो, यह भले ही कालप्रवाह के साथ तय हो सकता है । प्रतिज्ञा लेनेवाले को सिर्फ़ चरखे के बारे में इतना विश्वास होना चाहिए कि कपड़े का उद्योग थोड़े लोगों के हाथों से पूरी तरह निकालकर अधिक-से-अधिक लोगों के हाथों में दिया जा सकता है और इसके लिए कोशिश भी होनी चाहिए ।

"मैंने आलस्य और दूसरे कारणों से होनेवाली व्यवहार की अनियमितताओं का बिलकुल ज़िक्र नहीं किया है । ऐसा तो सभी प्रतिज्ञाओं और श्रद्धाओं के बारे में होता है । सिर्फ़ ऐसी ग़लतियों को दूर करने की इच्छा ज़रूर होनी चाहिए । मैं नहीं जानता कि प्रतिज्ञा का यह अर्थ सही है या नहीं और आपको स्वीकार हो सकता या नहीं । मुझे यह भी पता नहीं कि मेरे समाजवादी साथियों को यह पसन्द आयेगा या नहीं । शायद आपकी राय जल्दी मालूम होना देश के लिए अच्छा होगा । मगर पहले ही इतनी देर हो चुकी है कि स्वाधीनता-दिवस के लिए तो यह राय काम नहीं आ सकेगी ।"

जो बात मैं कई बार कह चुका हूँ उसे दोहराने की ज़रूरत तो नहीं है, मगर वह बात यह है कि प्रतिज्ञा का क़ानूनी और अधिकारपूर्ण अर्थ तो कार्यसमिति ही बता सकती है । मेरे बताये हुए अर्थ का महत्त्व वहींतक है जहाँतक कि लोगों को मान्य है ।

संक्षेप में, मैं इतना कह सकता हूँ कि डॉक्टर लोहिया का लगाया हुआ अर्थ मंजूर कर लेने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है । कांग्रेस की कोशिश का अन्त में कुछ भी परिणाम निकले, प्रतिज्ञा के बारे में जो चर्चा हो रही ह उससे जनता को अच्छी राज

नीतिक शिक्षा मिल रही है और देश में अलग-अलग विचार के लोगों की राय स्पष्ट होती जा रही है।

हालांकि मोटेतौर पर डॉ० लोहिया से मेरी राय मिलती है, फिर भी यह अच्छा होगा प्रतिज्ञा का अपना अर्थ में अपनी ही भाषा में बतादूं। प्रतिज्ञा में सारी बातें नहीं आई हैं। इससे तो यही मालूम होता है कि कार्यसमिति कहांतक मेरे साथ जा सकती थी। अगर देश का दृष्टिकोण में अपना-सा बना सका तो आयंदा समाज-व्यवस्था की बुनियाद ज्यादातर चरखे और उससे निकलनेवाले सारे फलितार्थों पर खड़ी की जायेगी। उसमें वे सब चीज़ें शामिल होंगी जिनसे देहातियों की भलाई हो। लेखक ने जिन उद्योगों का ज़िक्र किया है जबतक वे देहात और देहाती जीवन का गला न घोंटने लगें तबतक उन उद्योगों का स्थान भी रहेगा। मेरी कल्पना में यह ज़रूर है कि देहात की दस्तकारियों के साथ-साथ बिजली, जहाज बनाना, कलें तैयार करना और इसी तरह के दूसरे उद्योग भी रहेंगे। मगर कौन मुख्य और कौन गौण रहे, इसका क्रम उलट जायेगा। आजतक बड़े-बड़े कारखानों की योजना इस तरह बनती रही है जिससे गाँवों और ग्राम-उद्योगों का नाश हुआ। आनेवाली शासन-व्यवस्था में बड़े उद्योग गाँवों और उनकी कारीगरी के मातहत रहेंगे। मैं समाजवादियों की इस मान्यता से सहमत नहीं हूँ कि जब बड़े कारखानों की योजना बनानेवाला और उसका मालिक राज्य हो जायेगा तब जीवन के लिए ज़रूरी चीज़ें बड़े कारखानों में तैयार करने से आम लोगों का भला होगा। हेतु तो पश्चिमी और पूर्वी दोनों तरह की कल्पना में एक ही है, यानी यह कि सारे समाज को अधिक-से-अधिक सुख मिले और जिस घिनौने भेदभाव के कारण एक तरफ़ करोड़ों नंगे-भूखे और दूसरी ओर मुट्ठीभर मालदार रहते हैं वह भेदभाव मिट जाये। मेरा विश्वास है कि यह उद्देश्य तभी सफल हो सकता है जब संसार के अच्छे और विचारशील लोग मानलें कि अहिंसा के आधार पर ही न्यायपूर्ण समाज-व्यवस्था रची जा सकती है। मेरी राय में ग़रीबों के हाथ में हिंसा द्वारा सत्ता लाने की कोशिश अन्त में पार नहीं पड़ेगी। जो चीज़ हिंसा से हासिल की जाती है वह उससे बढ़कर हिंसा के सामने नहीं टिक सकती और हाथ से निकल जाती है। अगर कांग्रेसवादी अहिंसा के अपने ध्येय पर सच्चे रहें और उसपर अमल करें तो भारत का उद्देश्य पूरा हुआ ही समझना चाहिए। इस सचाई की परीक्षा है रचनात्मक कार्यक्रम को पूरा करना। जो लोग आम जनता के विचारों को भड़काते हैं वे जनता और देश दोनों का नुक़सान करते हैं। उनका हेतु ऊँचा होता है, इस बात से यहाँ सरोकार नहीं। कांग्रेसवादी रचनात्मक कार्यक्रम पर पूरी तरह और सचाई के साथ अमल क्यों नहीं करना चाहते? जब सत्ता हमारे हाथ में आ जायेगी तब दूसरे कार्यक्रमों पर विचार करने का वक्त आयेगा। मगर हम तो शेखचिल्ली ठहरे। दन्त-कथा है न कि भैंस खरीदने से पहले ही उसके बटवारे के बारे में साझीदार झगड़ बैठे! इसी तरह स्वराज तो मिला नहीं और हम हैं कि अपने जुदा-जुदा कार्यक्रमों के बारे में बहस और झगड़े कर रहे हैं! सुशीलता का तक़ाज़ा है

कि जब बहुमत ने एक कार्यक्रम मंजूर कर लिया तो सभी उसपर सचाई के साथ अमल करें।

इसमें तो कुछ भी शक नहीं कि कांग्रेस के कार्यक्रम के भिन्न दूसरे अंगों से उस कार्यक्रम की अहमियत ज्यादा बढ़ी है और जिनकी तरफ़ डॉ० लोहिया ने संकेत किया है उन्हें अहिंसा के कारण छोड़ देने की ज़रूरत नहीं है। हर तरह के अन्याय के विरुद्ध आन्दोलन करना तो राजनीतिक जीवन का प्राण है। मेरा जोर इसी बात पर है कि उस आन्दोलन को रचनात्मक कार्यक्रम से अलग कर देने से उसमें हिंसा की झलक आ ही जायगी। मैं अपनी बात उदाहरण देकर समझाऊँ। अहिंसा के प्रयोगों से मैंने यह सीखा हूँ कि असली अहिंसा का अर्थ सब लोगों का शरीर-श्रम है। एक रूसी दार्शनिक बोंडेरेफ़ ने इसे रोटी के लिए श्रम कहा है। इसका परिणाम यह होगा कि लोगों में आपस में गहरे-से-गहरा सहयोग हो। दक्षिण अफ़्रीका के पहले सत्याग्रही सबकी भलाई और सम्मिलित कोष के लिए मेहनत करते थे और उन्हें उड़ते पंछियों जैसी बेफ़िक्री रहती थी। उनमें हिन्दू, मुसलमान (शिया और सुन्नी), ईसाई (प्रोटेस्टेन्ट और रोमन कैथलिक), पारसी और यहूदी सभी थे। अंग्रेज़ और जर्मन भी थे। धंधे के लिहाज़ से उनमें वकील, इमारत और बिजली की विद्या जाननेवाले, इंजीनियर, छापनेवाले और व्यापारी थे। सत्य और अहिंसा के व्यवहार से धार्मिक झगड़े मिट गये थे और हमने सब धर्मों में सत्य के दर्शन करना सीख लिया था। दक्षिण अफ़्रीका में मैंने जो आश्रम क़ायम किये उनमें एक भी मज़हबी झगड़ा हुआ हो ऐसा मुझे याद नहीं आता। सब लोग छपाई, बढ़ईगिरी, जूते बनाना, बागबानी, इमारत वगैरा, हाथ के काम करते थे। यह मेहनत किसीको नागवार नहीं लगती थी। उसमें आनन्द आता था। शाम का समय पढ़ने-लिखने में जाता था। सत्याग्रही सेना का अग्रणी दल इन्हीं स्त्री, पुरुषों और लड़कों का हुआ। इनसे ज्यादा वीर या सच्चे साथी मुझे नहीं मिल सकते थे। हिन्दुस्तान में दक्षिण अफ़्रीका का-सा ही अनुभव रहा और मुझे भरोसा है कि उसमें कुछ सुधार ही हुआ। सभी लोग मानते हैं कि अहमदाबाद का मज़दूर-संगठन भारत में सबसे बढ़िया है। उसका काम जिस ढंग से शुरू हुआ था उसी तरह चलता रहा तो अन्त में वहाँकी मिलों में मौजूदा मालिकों और मज़दूरों की मालिकी होकर रहेगी। यह स्वाभाविक परिणाम न निकला तो पता चल जायगा कि संगठन की अहिंसा में ख़ामियाँ थीं। बारडोली के किसानों ने वल्लभभाई को सरदार की पदवी दी और अपनी लड़ाई फ़तह की। बोरसद और खेड़ा के किसानों ने भी वैसा ही किया। ये सब बरसों से रचनात्मक कार्यक्रम पर अमल कर रहे हैं। मगर इस अमल से उनके सत्याग्रही गुणों का ह्रास नहीं हुआ है। मुझे पूरा यक़ीन है कि सविनय-भंग हुआ तो अहमदाबाद के मज़दूर और बारडोली और खेड़ा के किसान भारत के और किसी भी हिस्से के किसानों और मज़दूरों से जौहर दिखाने में पीछे नहीं रहेंगे। चौंतीस साल के सत्य और अहिंसा के लगातार प्रयोग और अनुभव से मुझे दृढ़ विश्वास होगया है कि यदि अहिंसा का ज्ञान-पूर्वक शरीर-श्रम के साथ सम्बन्ध न होगा और हमारे पड़ोसियों

के साथ रोजमर्रा के व्यवहार में उसका परिचय न मिलेगा तो अहिंसा टिक नहीं सकेगी। यह है रचनात्मक कार्यक्रम का रहस्य। यह साध्य नहीं है, साधन है; मगर है इतना अनिवार्य कि उसे साध्य भी समझ लें तो बेजा नहीं। अहिंसक विरोध की शक्ति रचनात्मक कार्यक्रम पर ईमानदारी के साथ अमल करने से ही पैदा हो सकती है।

हरिजन सेवक, २४-१-४०

परिशिष्ट

: १ :

किस रास्ते और किन साधनों से

पण्डित जवाहरलाल नेहरू

बड़ी-बड़ी घटनाओं के किनारे पर हम फिर खड़े हुए हैं। हमारी नाड़ियाँ फिर ज़ोर से फड़कने लगी हैं, पैर कांपते हैं और पुरानी पुकार हमारे कानों में आरही है। अपनी मामूली मुसीवतों को हम भूल जाते हैं और घरेलू चिन्ताओं को एक ओर डाल देते हैं। आखिर उनका मूल्य है ही क्या ? पुकार आती है और हम सवकुछ भूल जाते हैं। भारत, जिसे हमने प्रेम किया है और जिसकी सेवा हमने करनी चाही है, वह धीमे से कुछ कहता है और जादू का मन्त्र हम तुच्छ प्राणियों के ऊपर फूंक देता है।

पर कुछ व्यक्ति उतावले हैं और अपनी जवानी की तरंग में आरोप लगाते हैं -- 'यह देरी क्यों ? हमारी नसों में जव खून दौड़ता है और जीवन पुकार कर कहता है कि आगे वढ़ो, तव हम मन्द गति से क्यों चलते हैं ?' ओ भारत के युवको और युवतियो ! आप परेशान न हों, झुंझलानें या उतावले वनने की भी जरूरत नहीं है। जल्दी ही वक्त आयगा जव इस भारी वोझे में आपको सहारा देना होगा। आगे वढ़ने की पुकार भी आयगी और गति भी जितना आप सोचते हैं, उससे तेज़ होगी। क्योंकि अज्ञात भविष्य की ओर वेतहाशा दौड़ लगाकर दुनिया ने आज गति पैदा करली है और हममें से कोई भी खड़ा नहीं रह सकता—चाहे खड़ा रहना चाहे या न चाहे—जवकि हमारे पैरों तले की धरती ही हिल रही है।

समय आयगा। तव वह हमें तैयार पाए; दिल से मजवूत, शरीर से गतिशील और मन और ध्येय से दृढ़। अपनी राह भी जिस पर हमें चलना है, हम अच्छी तरह पहचानें जिससे संदेहों के हमले हम पर न हों और विचारों का भेद हमारे निश्चय को कमज़ोर न करे।

अपने मंज़िलेमक़सूद को हम पहचानते हैं। अपना ध्येय और दिल की चाह भी हमारे सामने है। उनपर वहस करने की ज़रूरत नहीं है। लेकिन हमारी राह क्या है जो हमें चलनी है ? कौन से तरीक़े हमें वरतने हैं, और कौनसे उसूल हमारी क्रियाओं पर संरक्षण रखते हैं ? ये वातें भी, निश्चिय ही, वहस के लिए नहीं हैं। वरसों पहले ही हमने वह रास्ता रोशन कर दिया है और ठीक कर दिया है जिससे दूसरे उस खुन्दे रास्ते पर चल सकें। वीस वरस पहले वहुत से लोगों ने इस सीधे और सही रास्ते की शक्ति पर संदेह किया होगा, लेकिन आज मार्ग-दर्शन के लिए हमारे पास भारी अनुभव है और सीख देने के लिए हमारी अपनी सफलता और असफलतायें हैं। उस रास्ते से हटाने की कोशिशों के वावजूद भी हम दृढ़ निश्चिय के साथ उसपर अड़े हुए

विध्वंसकारी और अमानवीय रूप में बढ़ रही है। उतनी वह पहले कभी नहीं बढ़ी। लेकिन उसकी तेज़ी ही उसके पतन का चिन्ह है। वह या तो स्वयं समाप्त होगी या संसार के बहुत बड़े भाग को समाप्त कर देगी।

"तलवार सर्वदा की भांति मूर्खों के लिए अपनी मूर्खता छिपाने का एक साधन है।"

लेकिन हम मूर्खता और पागलपन के युग में रहते हैं और हमारे शासक और मानवी संबंधों को देखने-भालने वाले इसी युग की असली उपज हैं। हर रोज़ हमारे सामने यही खूँखार समस्या है—हिंसक आक्रमण का मुकाबिला कैसे किया जाय ? क्योंकि इसके अतिरिक्त बहुधा और कोई मार्ग नहीं है कि बुराई के आगे चुपचाप झुक जाओ और उसके हाथों अपने को सोंप दो। स्पेन ने बलपूर्वक हिंसक आक्रमण का विरोध किया और यद्यपि अन्त में उसकी पराजय हुई; लेकिन उसके लोगों ने साहस और वीरतापूर्ण धैर्य का शानदार उदाहरण उपस्थित कर दिया। मित्रों ने उनका साथ छोड़ दिया, फिर भी ढाई बरस तक फ़ासिस्ट आक्रमण की बाढ़ को उन्होंने रोके रक्खा। उनकी हार के बाद आज भी कौन कहेगा कि वे ग़लती पर थे; क्योंकि उनके लिए दूसरा सम्मानपूर्ण मार्ग खुला हुआ नहीं था। अहिंसात्मक तरीक़ा उनके दिमाग़ में नहीं था और वैसे भी उन परिस्थितियों में वह उनकी पहुँच के बाहर था। यही चीन में हुआ।

चेकोस्लोवेकिया अपनी सशस्त्र शक्ति और असंदिग्ध साहस के बावजूद भी बिना लड़े पराजित होगया। ठीक है, पराजय उसकी हुई; क्योंकि उसके मित्रों ने उसके साथ विश्वासघात किया, लेकिन फिर भी सचाई तो यह है कि उसकी तमाम सशस्त्र शक्ति उसकी आवश्यकता के समय कारगर साबित नहीं हुई। पोलैण्ड तीन सप्ताह की हलचल में एकदम समाप्त होगया और उसकी भारी फ़ौज और हवाई जहाज़ों के बेड़े न जाने कहाँ विलीन होगये।

हिंसक मार्ग और सशस्त्र शक्ति आज तात्कालिक सफलता के संकुचित-से-संकुचित अर्थ में तभी संभव है जबकि सशस्त्र शक्ति अपने विरोधी से अधिक बलवती हो। अन्यथा बिना युद्ध के ही समर्पण कर दिया जाता है या ज़रा-सी हलचल के बाद ही पतन हो जाता है और साथ आती है घोर पराजय और अनैतिकता। साधारण हिंसा को एकदम त्याग दिया गया है; क्योंकि विजय की कोई संभावना भी उससे नहीं होती और उससे पराजय और फूट का भय फैल जाता है।

भविष्य में भारत का क्या होगा, यह हमारे अन्दाज़ से बाहर है। यदि भविष्य में सशस्त्र राष्ट्रीय शक्ति की आवश्यकता रहती है, तो हममें से अधिकांश के लिए यह कल्पना करना भी मुश्किल है कि बिना राष्ट्रीय फ़ौज और 'बचाव के अन्य साधनों के' भारत स्वतंत्र होगा। लेकिन वैसे भविष्य पर विचार करने की हमें आवश्यकता नहीं है। हमें तो बस वर्तमान पर विचार करना है।

इस वर्तमान में सन्देह और कठिनाइयाँ नहीं उठतीं; क्योंकि हमारा कर्तव्य स्पष्ट है और मार्ग निश्चित है। वह मार्ग भारतीय स्वाधीनता की समस्त रुकावटों का निष्क्रिय प्रतिरोध करना है। उसके अतिरिक्त अन्य मार्ग नहीं है। इसके बारे में

हमें बिलकुल स्पष्ट होजाना चाहिए; क्योंकि विभिन्न दिशाओं में मन के खिंचते होने की दशा में कोई काम शुरू करने का साहस हमें नहीं करना चाहिए। ऐसा कोई दूसरा मार्ग है, जो हमें प्रभावशाली कार्य के अवसर की छाया-मात्र भी दे सकता है, मैं नहीं जानता। वास्तव में अगर हम दूसरे मार्गों के बारे में सोचते हैं तो वास्तविक कार्य हो ही नहीं सकता।

मेरा विश्वास है कि इस प्रश्न पर अधिकतर कांग्रेसजन एकमत हैं। लेकिन कुछ लोग ऐसे हैं जो कांग्रेस के लिए नये हैं। वे दिखाने के लिए तो एकमत हैं; लेकिन करते दूसरी तरह से हैं। वे अनुभव करते हैं कि कोई राष्ट्रीय या देश-व्यापी आंदोलन उस समय तक नहीं चल सकता जबतक कि कांग्रेस द्वारा वह न चलाया जाय। उसे छोड़कर और जो कुछ होगा वह तो दुस्साहस होगा। इसलिए वे चाहते हैं कि कांग्रेस से पूरा लाभ उठावें और साथ ही उन दिशाओं में भी चले जावें जो कांग्रेस की नीति के विरुद्ध हैं। उनका प्रस्तावित सिद्धान्त तो यह है कि वे कांग्रेस में अपनेको मिलाये रहें और फिर उसके बुनियादी धर्म और कार्य-प्रणाली को हानि पहुँचावें, विशेषकर अहिंसा के सिद्धान्त के अमल को रोका जाय, बाहर से और प्रकटरूप में नहीं; बल्कि धोखेबाजी से और अन्दर से।

अब प्रत्येक भारतीय को स्वतन्त्रता है कि वह अपने प्रस्तावों और विचारों को आगे लाकर रक्खे, उनके लिए काम करे और अपने दृष्टिकोण पर दूसरों को राज़ी करे। उनके अनुसार वह आचरण भी करे, यदि वह सोचता है कि वैसा करना आवश्यक है। लेकिन दूसरी किसी चीज़ की आड़ में ऐसा करने की उसे स्वतन्त्रता नहीं है। वह जनता को गलत रास्ते ले जाना होगा। और ऐसे धोखे से जन-आंदोलन नहीं उठ खड़े होते। कांग्रेस के प्रति वह नमकहरामी होगी और अनुचित समय में आंदोलन से नाजायज़ फ़ायदा उठाना होगा। यदि विचारों का कोई विरोध है तो इसमें भलाई ही है कि वह सामने आये और लोग उसे समझें और अपना निर्णय करें। किसी भी समय ऐसा होना चाहिए, विशेषकर बड़ी घटनाओं के प्रारम्भ होने से पहले। कोई भी संस्था आंतरिक विघ्न-बाधाओं को बर्दाश्त नहीं कर सकती जबकि वह शक्तिशाली दुश्मन से मुठभेड़ करने की परिभाषा में सोचती है। अपनी जनता में उस समय अनुशासनहीनता या मत-भेद ठीक नहीं है जबकि समय ऐसा है कि हम सबको काम में लग जाना चाहिए।

अतः हमारे लिए यह आवश्यक हो जाता है कि पूर्ण स्पष्टता और निश्चय के साथ हम इस मसले को तय करें। जहाँतक काँग्रेस का सम्बन्ध है, बेशक हमने तय कर लिया है और उस निर्णय पर हम दृढ़ रहेंगे। दूसरा कोई भी मार्ग प्रभावशाली नहीं है और उसमें राष्ट्र के लिए खतरा है।

यदि हम वैसा विचार करें तो भारत में गड़बड़ मचा देना हमारे लिए कठिन नहीं है; लेकिन गड़बड़ में से ज़रूरी तौर पर या आम तौर पर भी स्वाधीनता नहीं निकलती। भारत में गड़बड़ की स्पष्ट संभावनायें हैं जिनका फल अत्यन्त दुर्भाग्यपूर्ण

निकलेगा। हम हमेशा अपने काम के परिणामों के बारे में भविष्यवाणी नहीं कर सकते, विशेषकर उस हालत में जब हम जनता के बल पर उस काम को करते हैं। खतरे हम उठाते हैं, और उठाने ही चाहिएं। लेकिन ऐसा कुछ करना तो अकल्पनीय मूर्खता होगी जो उन खतरों को बहुत बढ़ादे और हमारी स्वतन्त्रता के मार्ग में रोक लगादे और हमारे आन्दोलन में से उस नैतिकता को ही उठाले जिस पर कि इतने बरसों से हमें गर्व रहा है। ऐसी दशा में जबकि संसार हिंसक तरीकों से चूर-चूर हो रहा है, हमारे लिए उन्हें ग्रहण करने की बात सोचना तक एक भारी दुख की बात होगी।

इसलिए मज़बूती और निश्चय के साथ हम अहिंसा पर दृढ़ रहें और उसके स्थान पर कुछ भी मिले, उसे अस्वीकार करदें। हमें याद रखना चाहिए कि यह संभव नहीं है कि विभिन्न तरीक़े साथ-साथ चालू रह सकें; क्योंकि ये एक दूसरे को कमज़ोर करते हैं और एक ओर हटा देते हैं। इसलिए होशियारी के साथ हम अपना मार्ग चुनें और उस पर दृढ़ रहें। अन्य मार्गों के साथ खिलवाड़ करके उसे हम बिगाड़ें नहीं। सबसे अधिक हम यह अनुभव करें कि अहिंसा अहिंसा है। यह एक ऐसा शब्द-मात्र नहीं है कि मन के दूसरी तरह काम करने पर भी उसे मशीन की तरह इस्तेमाल किया जा सके, मुँहसे दूसरे शब्द और वाक्य निकलते हों, जो उसके विरोधी हों, और हमारे काम के विपरीत हों। यदि हमें अहिंसा तथा अपने और अपने ध्येय के प्रति ईमानदार रहना है तो हमें अहिंसा के प्रति सच्चा रहना होगा।

: २ :

चर्खे का महत्त्व

[मथुरा में हुए युक्तप्रान्तीय राजनैतिक सम्मेलन की विषय-समिति में रचनात्मक कार्यक्रमवाले प्रस्ताव पर काफ़ी बहस होने के बाद सभापतिपद से पं० जवाहरलाल नेहरू ने एक भावपूर्ण और मार्मिक भाषण दिया। उसमें चर्खे के संबंध में आपने कहा—]

हम सत्याग्रह के सिलसिले में जब सोचते हैं तब हमें अपने को धोखा नहीं देना चाहिए। इस प्रस्ताव पर हमें अमल करना चाहिए।

मैं चर्खे के खिलाफ़ और चख के पक्ष में बहुत कह सकता हूं। चर्खे ने काफी फायदे पहुँचाये हैं, लेकिन चर्खे को मैं कोई मंत्र नहीं मानता। चर्खा एक औज़ार है, जो हमारे लिए लाभदायी है। दूसरे भी हज़ार औज़ार हमें चलाने हैं। महात्माजी चर्खे के बारे में किस्म-किस्म की बातें करते हैं, जो मेरी समझ में नहीं आतीं। पर जितना समझ में आता है, उतने का ही उपयोग किया जाय तो बहुत काफ़ी है।

एक बात और बतादूं। मैं अच्छा कातना जानता हूँ और मेरा दावा है कि किसी को भी चार दिन में मैं चर्खा सिखा दूंगा। पर पिछले तीन-चार वर्ष में मैंने नहीं काता

है। पर एक अजीब बात है कि चीन से जब मैं आया तब पहला काम मैंने अपने पुराने चर्खे को देखने का किया। उस समय इस प्रस्ताव का खयाल नहीं था, पर जेल जाने के वास्ते मैं चर्खे को तैयार करना चाहता था। जब पुराने चर्खों से मुझे संतोष नहीं हुआ तो मैंने एक नया चर्खा भी खरीद लिया।

अब चर्खे के दो पहलू हैं। (१) इसके कातने से क्या लाभ हैं। (२) लड़ाई के सिलसिले में यह क्या असर रखता है। मैं चर्खे का अंध-भक्त नहीं हूँ, परन्तु इसमें फायदा मैंने देखा है। इसमें राजकीय असर है। चीन में हर जगह चर्खे और ग्रामोद्योग के बारे में सवाल हुआ। मैं यह देखकर हैरान होगया कि कोई जगह ऐसी नहीं थी जहां मुझसे यह नहीं पूछा गया कि हिन्दुस्तान में चर्खे और ग्रामोद्योग के बारे में क्या हो रहा ह? चीनवालों के सामने कोई अहिंसा का सवाल नहीं है, न बड़े-बड़े कारखानों से परहेज़ करने का। परन्तु वहाँके वाकयात ऐसे हैं जिनसे चीन के गांव-के-गांव को इसमें दिलचस्पी है। वहाँ जापान की लड़ाई चल रही है और घनी आबादी है। चीन के लोग महसूस कर रहे हैं कि इस लड़ाई के हमले से भी ज्यादा खतरनाक जापान का आर्थिक आक्रमण है। जापानवाले अपनी आर्थिक नीति चलाने के लिए बड़ा ही ज़ोर लगा रहे हैं और चीनवाले समझते हैं कि इसमें अगर वे सफल हुए तो हमारी बड़ी बर्बादी होगी। इसलिए वे लोग हर किस्म के ग्रामोद्योगों को बढ़ाने की कोशिश कर रहे हैं। इस वक्त वे चाहें तो भी कारखाने खड़े नहीं कर सकते। कारखाने किसी समय भी बम के शिकार हो सकते हैं, पर घर-घर चलनेवाले चर्खे पर फौज आक्रमण नहीं कर सकती। फ़ौज भी आगई तो किसान सरक जायेंगे और चर्खा बगल में लेते जायेंगे। इस तरह रोज़मर्रा के जीवन के लिए ग्रामोद्योग वहां आवश्यक हो गये हैं। चीन का सवाल वैसा ही है जैसा हमारा है। वहाँ घनी आबादी है। हम पेचीदा सवालों को पढ़ते ही नहीं। रूस की बड़ी-बड़ी बातें पढ़ते हैं। जब सुनते हैं कि वहाँ ट्रैक्टर से खेती हो रही है तब हम भी वैसा ही करना चाहते हैं। मेरी भी इच्छा है कि हमारे यहाँ फोर्ड के ट्रैक्टर नहीं तो अपने ही देश के बनाये हुए ट्रैक्टर काम करें और खेती की तरक्की हो। लेकिन अगर आपको फोर्ड से या उसके प्रतिनिधि से बात करने का मौक़ा मिले तो सुनकर चकित होंगे। मुझे फोर्ड के एजेण्ट से बात करने का मौका मिला था। उसने कहा कि हमारे ट्रैक्टरों के के लिए साइबेरिया जैसा कोई अनुकूल क्षेत्र नहीं है और हिन्दुस्तान जैसी कोई प्रतिकूल जगह नहीं है। साइबीरिया में मीलों जमीन खाली है और आबादी नहीं-सी है। हिन्दुस्तान में तो इतनी घनी आबादी है कि ट्रक्टर के लिए एक चक जमीन मिलना नामुमकिन है। बंगाल में जहाँ एक बालिश्त में चार-पाँच आदमी बैठ हैं वहाँ ट्रैक्टर कैसे चलेंगे? हमारे यहाँ इस मशीनरी के लिए गुंजाइश नहीं है। पचास वर्ष के बाद क्या होगा, यह मैं नहीं बता सकता। दुनिया बदलती है, मैं भी बदलता हूँ और हिन्दुस्तान में तरह-तरह के परिवर्तन चाहता हूँ, लेकिन आज जो स्थिति है उसमें सिर्फ कारखानों से हिन्दुस्तान का सवाल हल न होगा। मैं अपनेको वैज्ञानिक आदमी

होता । मेरी रचना ही वैसी नहीं है । नमक-क़ानून-भंग के कूच के बारे में जबतक उसका निर्णय नहीं होगया उस क्षण तक मुझे कुछ भी पता न था । हाँ, इतना मुझे मालूम है कि ईश्वर मेरे द्वारा इतिहास शायद ही कभी दोहराता होगा और सम्भव है इस बार भी न दोहराये । हाँ, एक बात है । आप मुझे कारण भले ही न बतायें, पर मुमकिन है, मुझे सेनापति होने के लायक़ न समझा जाये । उस सूरत में आपको मुझे छोड़ देना चाहिए । इसका मुझे कुछ भी अफ़सोस न होगा ।

अब आपके सवाल का आखिरी मुद्दा लें । आप ऐसा कार्यक्रम चाहते हैं कि जिसका सविनय-भंग के साथ सीधा सम्बन्ध हो । आप मेरी हँसी न उड़ायें तो मैं बिना संकोच के कहूँगा कि सब लोग कातें, यही वह कार्यक्रम है । मैंने डाक्टरों की घबराहट और सलाह पर ध्यान देकर कुछ समय तक कातना छोड़ दिया था । नारणदास गांधी की पुकार पर मैंने फिर कातना शुरू कर दिया और मैं नहीं समझता कि जबतक मेरे हाथ बिल्कुल जवाब ही न देदें तबतक मैं कभी कातना छोड़ूँगा । तो मैं यह कहना चाहता हूँ कि आप लोग जितना ज्यादा कातेंगे उतने ही अच्छे सैनिक बनेंगे । अगर मेरा यह पक्का विश्वास है, तो इसकी घोषणा करने में मुझे क्यों शर्म होनी चाहिए ? मेरी सलाह को काटकर आप ऐसे दो भाग नहीं कर सकते कि एक को तो आप क़बूल करलें और दूसरे को रद्द करदें । मेरी शर्त अनिवार्य है । सम्भव है कि उसके बारे में जितना बुद्धिपूर्वक विश्वास होना चाहिए उतना न हो, किन्तु श्रद्धा से वह परिणाम अपने आप निकल आयेगा । यह मैं इसलिए कह रहा हूँ कि मैं इसी भावना से काम करता हूँ । जुलू-विद्रोह में अफ़सर की आज्ञा मानकर मैं झाड़झंखाड़ों से भरे अनजान रास्तों पर मीलों पैदल चला हूँ ।

लेकिन जैसा कि मैं कह चुका हूँ, आपको यह सब हवाई किले बाँधना या ख़याली पुलाव पकाना मालूम हो सकता है । इस सूरत में आपको मेरा नेतृत्व छोड़ ही देना चाहिए । मैंने बीस साल नेतृत्व कर लिया । अब आराम लेना मेरे लिए अच्छा ही हो सकता है । संभव है, आप लोग सत्याग्रह की कोई नई कला निकाल सकें । अगर वैसा हुआ तो ज्योंही मुझे उसपर विश्वास हो जायगा, त्यों ही मैं आपके पीछे चलने को तैयार हो जाऊँगा । आप कुछ भी करें, मगर मन में कोई बात रखकर मेरा नेतृत्व स्वीकार न करें; वरना आप मुझे भी धोखा देंगे और देश को भी । अगर मुझे आपका सहयोग मिलता है तो वह पूरा और दिल से मिलना चाहिए । मैंने बीस साल तक यही दलीलें दी हैं, अब मैं कोई नई दलील नहीं दे सकता ।

प्रश्न—हम तो बिल्कुल जुदा विचार-धारा पर चल पड़े ।

उत्तर—हाँ, यही तो बात खटकती है । इसीलिए मैं बार-बार नेता बदल लेने की बात सुझा रहा हूँ ।

प्रश्न—पर हममें से कुछ के लिए चर्खा आपके नेतृत्व की निशानी के सिवाय और कुछ न हो, तो ?

उत्तर—नहीं, वह अहिंसा का चिन्ह और अहिंसात्मक युद्ध की तैयारी की एक

खास शर्त होना चाहिए। मैं इससे भी अच्छा रास्ता बताऊँ। यही रास्ता मैंने १९३४ में सुझाया था। कताई और खादी को कांग्रेस के कार्यक्रम में से निकाल दीजिए। मैं अपने आप अलग हो जाऊँगा। आप ऐसा करें तो यह ग़लती आपकी नहीं, मेरी होगी, क्योंकि यह बात कि चर्खे और अहिंसा में प्राण-सम्बन्ध है, यह आपके दिल में बिठाना मेरा फ़र्ज़ है।

हिन्दू-मुसलिम-एकता

इस बात पर सब सहमत हो गये कि जब देश के लोगों का एक बड़ा भाग सत्याग्रही कार्यक्रम के विरुद्ध है तो उसके बावजूद ऐसा आन्दोलन नहीं छेड़ा जा सकता। इससे यह नतीजा निकला कि रचनात्मक कार्य का एक हिस्सा ऐक्य स्थापित करना होगा। मतभेद की कई बातें थीं। उनपर कार्यसमिति की अगली बैठक में विस्तार से विचार किया जायगा। इनके अलावा क़ौमी दंगों का हमेशा का सवाल तो था हीं, भले ही वे दंगे किसी भी समय या किसी भी वजह से हों। 'जब कहीं दंगा हो रहा हो, तो कांग्रेसियों का क्या धर्म है ?' एक सवाल था।

'उसे शान्त करने में प्राण दे देना', गाँधीजी ने कहा, 'हममें सन् १९३१ में एक गणेशशंकर विद्यार्थी हो गये। तब से और किसी ने उनका अनुकरण नही किया। दंगों में इतने लोग मरते हैं, पर वे जानबूझकर अपना बलिदान नहीं करते। जिन्हें यह कार्यक्रम मंजूर न हो, वे मुझे छोड़ दें।'

प्रश्न—लेकिन मान लिया कि हिन्दू-मुसलिम-दंगे तो होते ही रहेंगे, तो क्या उनके कारण हमारा आन्दोलन रुका ही रहे ?

उत्तर—अनिश्चित कालतक तो ऐसा नहीं हो सकता। मुझे मुसलमानों पर जितना विश्वास है उससे आशा यह होती है कि स्वाधीनता के रास्ते में रुकावट बनने के ख़िलाफ़ वे खड़े हो जायेंगे। उनमें आज़ादी और लोकवाद का इतना प्रेम ज़रूर है कि उन्हें उस हालत पर शर्म आयेगी।

कम-से-कम कितनी तैयारी ?

प्रश्न—हमारे पास समय थोड़ा है। इस दृष्टि से आप बता सकते हैं कि कताई के खयाल से आप कम-से-कम कितनी तैयारी ज़रूरी समझेंगे ?

उत्तर—थोड़ा समय क्यों ? क्या यह आवश्यक है कि हम तीन या छः महीने में ही आन्दोलन शुरू करदें। भले ही छः साल लगें। ज़रूरी चीज़ तो यह है कि तैयारी पूरी हो। मैं कहता हूँ कि आप लोग यह अधीरता छोड़िए। मेरी कसौटी यह नहीं कि आप सब मुझे सन्तुष्ट करने या मेरा नेतृत्व हासिल करने के लिए रोज़ आधा या एक घंटा भी नियमित कातलें, बल्कि कसौटी यह है कि कताई इतनी आम हो जाये कि आपके प्रान्त में देशी या विदेशी किसी भी तरह का मिल का कपड़ा देखने में न आये। अगर मुझे ऐसा लगेगा कि इस दिशा में हमने तेज़ कदम उठाया है तो मेरा संतोष हो जायगा।

आप लोगों को कई लाख कांग्रेस-मेम्बर बनाने का गर्व है। यदि ये सब कार्यक्रम अंगीकार करके चर्खा-संघ के स्वयं-सेवक बन जायें, तो इस प्रान्त में मिल का कपड़ा नहीं रहेगा। यह काम रोजाना के जीवन का हिस्सा होना चाहिए। जैसे एक अफ़्रीदी का बंदूक के बग़ैर काम नहीं चल सकता, ठीक उसी तरह आप अहिंसात्मक सिपाहियों में से किसी का काते बिना काम नहीं चलना चाहिए, और यह सब इसलिए न हो कि यह बुड्ढा चाहता है, बल्कि इसलिए हो कि आप स्वाधीनता चाहते हैं। जब आपकी समझ में यह बात अच्छी तरह आ जायगी, तब मेरे पास इस जैसे सवाल लेकर आप नहीं आयेंगे।

हरिजन सेवक, २८ नवम्बर, १९३९. **—महादेव ह० देशाई**

: ४ :

परीक्षा की घड़ी

"अगर हिन्दुस्तान तलवार के सिद्धान्त को अपनाता है, तो हो सकता है कि वह क्षणिक विजय पाले। लेकिन उस दशा में वह मेरे लिए उतना गौरवास्पद न रहेगा। मैं हिन्दुस्तान को इसलिए चाहता हूं कि मेरा सबकुछ उसी की बदौलत है। मेरा यह दृढ़ विश्वास है कि दुनिया के लिए उसका अपना एक मिशन है। उसे अन्धे की तरह यूरोप की नक़ल नहीं करनी है। जिस घड़ी हिन्दुस्तान तलवार के सिद्धान्त को मान लेगा, वह मेरी परीक्षा की घड़ी होगी। मुझे उम्मीद है कि मैं उस कसौटी पर खरा ठहरूँगा। मेरा धर्म भौगोलिक सीमाओं से परे है। अगर मुझ में उसके प्रति ज्वलन्त श्रद्धा है, तो वह मेरे भारतवर्ष के प्रेम पर भी विजय पालेगा। अहिंसा धर्म के द्वारा भारत की सेवा करना ही मेरे जीवन का व्रत है, और मैं मानता हूँ कि अहिंसा हिन्दूधर्म का मूलभूत सिद्धान्त है।

"अहिंसा का धर्म सिर्फ़ ऋषियों और साधू-सन्तों के लिए ही नहीं है। आम जनता के लिए भी वह उतना ही आवश्यक है।"

कार्यसमिति के साथ

ऊपर की पंक्तियाँ मैंने अगस्त, १९२० में लिखे गये गांधीजी के एक लेख से ली हैं; लेकिन ये ऐसी मालूम होती हैं, मानो आज ही लिखी गई हों। इसी ज्वलन्त श्रद्धा के साथ गांधीजी ने आजतक हिन्दुस्तान की नैया को, क्या शांति में और क्या आंधी-तूफ़ान में, ठीक रास्ते पर रखने की कोशिश की है। यह मानते हैं कि अहिंसा दुनिया के लिए हिन्दुस्तान की एक खास देन है। अकसर यह हुआ है कि आसमान बादलों से घिर गया है और अँधेरा छा गया है, पर हमने अपने ध्रुवतारे को कभी आँखों से ओझल नहीं होने दिया। मौजूदा तूफ़ान एक बार फिर इस ध्रुव को हमारी आँखों से दूर किया चाहता है, लेकिन कर्णधार सजग है, और वह लगातार, रात और

दिन, हमें सचेत करता है कि कहीं हम उस ध्रुवतारे को भूल न जायें, जिसके बिना हम अपनी मंजिल तक पहुँच नहीं सकते।

इसलिए कार्यसमिति का काम ख़त्म होते ही गांधीजी ने उसके सदस्यों को इस सवाल पर फिर से विचार करने को कहा और बताया कि उन्हें अब एकबारगी ही तय कर लेना चाहिए कि मौक़े पर कांग्रेस और कांग्रेसवाले क्या करना चाहते हैं, क्योंकि इस प्रश्न का सम्बन्ध सिर्फ़ सरकार के साथ हमारे सम्बन्धों से नहीं है, बल्कि क़ौम-क़ौम के आपस के ताल्लुकात पर भी इसका असर पड़ता है।

गांधीजी की इस सूचना पर घंटों बहस होती रही, पर कोई निर्णय नहीं हो सका। कार्यसमिति की अगली बैठक में इस प्रश्न पर फिर विचार होगा, और तभी आखिरी निर्णय भी दिया जायगा। इस दरम्यान सारे प्रश्न पर अच्छी तरह विचार करने के लिए सदस्यों को काफ़ी समय मिल चुकेगा।

गांधी-सेवा-संघ की कार्यवाहक समिति में

संघ का प्रश्न गांधीजी का पूरा समय ले रहा है, यहाँतक कि कुछ व्यक्तियों को छोड़कर, जिनसे वह समय देकर मिलते हैं, वह हमेशा मौन रहते हैं। अक्सर बड़े तड़के उनकी आँख खुल जाती है और वह उसके बारे में सोचने लगते हैं। २५ ता० (अक्तूबर) की सुबह वह एक बजे जाग गये और सोचने लगे कि गांधी-सेवा-संघ की कार्यवाहक समिति के सदस्यों से, जब वह दोपहर को मिलेंगे तो क्या कहें। इसलिए सदस्यों से उन्होंने कहा:—"समस्या मेरे मन में बनी हुई है। वह मुझे चैन नहीं लेने देती। कार्यसमिति के जूनियर सदस्यों की स्थिति मैंने 'हरिजन' में बताई है। उनकी स्थिति बड़ी कठिन है। उनकी जान दो संघर्षों में फँसी है, वे सिद्धान्त के प्रति सच्चे रहें या अपने साथियों के प्रति सच्चे रहें। लेकिन अपनी स्थिति को वह मेरे सामने स्पष्ट करने के लिए इच्छुक थे, उसका मैंने स्वागत किया। इससे पता चलता है कि हम सब सत्य के अनुयायी हैं और हमारी मानसिक हलचलें और संघर्ष तक हमारी इस चिन्ता से ही उत्पन्न होते हैं कि सत्य के प्रति हम किस प्रकार सच्चे रहें। कल कार्यसमिति में बहुत अच्छी चर्चा हुई और हमने खुले तौर से सदस्यों की स्थिति पर, उनके वैयक्तिक रूप तथा कांग्रेस और जनता के प्रतिनिधियों के रूप में, चर्चा की। आपके सामने प्रश्न भिन्न है। क्योंकि आप यहाँ अपनी व्यक्तिगत हैसियत में हैं और कांग्रेस और कांग्रेसजन कुछ भी सोचें, आपको अपना आचरण निश्चित करना है। इसलिए प्रश्न आपके सामने कहीं सीधा-सादा है। क्या आप उस व्यक्ति के साथ भाईचारे का रुख़ अख़्तियार करेंगे जिसने कि आपके प्रियजन को खेदजनक चोट पहुँचाई है? मान लीजिए, राजेन्द्रबाबू पर आक्रमण किया गया। क्या आप उसका जवाब आक्रमण से ही देंगे या राजेन्द्रबाबू और आक्रमणकारी के बीच खड़े होकर ख़ुशी से राजेन्द्रबाबू पर होनेवाली चोटों को अपने ऊपर ओढ़ेंगे? यदि आपने मृत्यु के भय को छोड़ दिया है, और शरीर को भी चोट पहुँचने का डर आपको नहीं है,

और न घरेलू वन्धनों का जो आपको बाँधे रहते हैं, कोई विचार है, तो आप पिछला उपाय करेंगे। लेकिन जवतक उन लोगों के प्रति, जो आपके साथ घृणा का व्यवहार करते हैं, आप भाईचारे का ही व्यवहार न करेंगे, तवतक आपके इस प्रस्ताव का, कि कठिन-से-कठिन परीक्षा में भी आप अहिंसा के सिद्धान्त पर दृढ़ रहेंगे, कोई अर्थ नहीं होगा। कोरे प्रस्ताव को रखने की अपेक्षा तो यह कहीं अच्छा होगा कि संघ को वन्द कर दिया जाये।

"अहिंसा मठ-मन्दिर की ही चीज़ नहीं है, जो ऋषियों अथवा गुफ़ाओं में रहने-वालों के ही लिए हो। अहिंसा तो ऐसी है कि जिसपर लाखों आचरण कर सकते हैं, इसलिए नहीं कि उसके फलितार्थों का उन्हें पूर्ण ज्ञान है, वल्कि इसलिए कि वह हमारी मनुष्यजाति का नियम है। यह आदमी और पशु के वीच अन्तर करती है। लेकिन मानव ने अपनें भीतर की पशुता को छोड़ा नहीं है। वैसा करने की उसे कोशिश करनी होगी। वह कोशिश अहिंसा के व्यवहार के लिए है, उसमें महज़ विश्वास के लिए नहीं। किसी सिद्धान्त के विश्वास के लिए मैं कोशिश नहीं करता। मैं उसमें या तो विश्वास करूँ या न करूँ। अगर उसमें विश्वास करता हूँ तो उसपर आचरण करने के लिए मुझे हिम्मत के साथ प्रयत्न करना चाहिए। अहिंसा तो सवल का गुण है। दुर्वलता और अहिंसा साथ-साथ नहीं चल सकते, जैसे पानी और आग। यही अहिंसा है, जिसे अपने भीतर पैदा करने के लिए गांधी-सेवा-संघ के प्रत्येक सदस्य को प्रयत्न करना चाहिए।"

"हमने प्रायः इस प्रश्न पर विचार किया है। लेकिन लड़ाई के सम्वन्ध में, स्वराज के लिए हमारे संघर्ष, और साथ ही हिन्दू-मुस्लिम-ऐक्य के सम्वन्ध में परीक्षा की घड़ी तो आज आगई है। यह भी याद रखिए कि आपकी अहिंसा तवतक सक्रिय रूप से कारगर न होगी, जवतक कि आप चर्खे में ज्वलंत श्रद्धा न रक्खेंगे। मैं चाहूँगा कि मेरी दृष्टि से आप 'हिन्द-स्वराज' को पढ़ें और उसमें इस अध्याय को देखें कि भारत को अहिंसात्मक कैसे वनाया जा सकता है। कल-कारखाने की सभ्यता के आधार पर आप अहिंसा का निर्माण नहीं कर सकते, लेकिन स्वावलम्वी गाँवों के आधार पर उसका निर्माण किया जा सकता है। हिटलर चाहकर भी सात लाख अहिंसापरक, आत्म-निर्भर गाँवों को खत्म नहीं कर सकता। खत्म करने की प्रक्रिया में वह स्वयं अहिंसक हो रहेगा। मेरी कल्पना के ग्राम्य अर्थ-विधान में शोषण को क़तई जगह नहीं है। शोषण हिंसा का मूल है। इसलिए अहिंसात्मक हो सकने के पहले आपको ग्राम्य-वृत्ति का वनना होगा और ग्राम्य-वृत्ति पैदा करने के लिए आपको चर्खे में श्रद्धा रखनी होगी।"

इस चर्चा के वाद सदस्य सो गये और अगले दिन गांधीजी से फिर मिले। वहुत-से सवाल उन्हें तंग किये हुए थे, जैसा कि अहिंसा के अनुयायी को करते रहते हैं, लेकिन गांधीजी के समय का विचार करके उन्होंने कुछ ही प्रश्नोंतक अपने को सीमित रक्खा।

"आपकी कल्पना की अहिंसा में विश्वास रखनेवाला कोई मन्त्री कैसे हो सकता है?"

"मुझे भय है कि वर्तमान स्थिति में वह नहीं हो सकता," गांधीजी ने कहा, "हम देख चुके हैं कि प्रान्तीय स्वराज के पहले के दिनों में जिस प्रकार ब्रिटिश सरकार को हिंसा का सहारा लेना पड़ा उसी प्रकार मंत्रियों को भी हिंसा का सहारा लेना पड़ा। शायद वह अनिवार्य था। यदि कांग्रेसजन सच्चे रूप से अहिंसात्मक होते, तो बल-प्रयोग का सहारा न लिया जाता। लेकिन कांग्रेस में अधिकांश लोग विशुद्ध अहिंसा पर आधार नहीं मानते हैं।"

"लेकिन एक मन्त्री ने उस दिन कहा कि हालांकि उन्होंने अहिंसा को रत्ती भर भी नहीं छोड़ा, फिर भी थोड़ा-सा गोली का सहारा लिये बिना उनका काम न चल सका। उन्होंने उसका सहारा उसी सीमा तक लिया जितना कि वह टाला नहीं जा सकता था।"

"तब उन्होंने ऐसा कहा होगा, लेकिन मेरा बस चले तो फिर वह ऐसा न कह पायेंगे। यदि वह मन्त्री होते हैं तो उन्हें अपनी स्थिति को स्पष्ट करना होगा और वह एक ऐसी सभा का प्रतिनिधित्व करेंगे जो मुख्यतः अहिंसात्मक होगी। दूसरे शब्दों में, वह पद तभी स्वीकार करेंगे जब अहिंसात्मक आधार पर शासन-संघ चला लेने देंगे।"

"लेकिन क्या ऐसा नहीं हो सकता कि अहिंसा माननेवाले मन्त्री, जब कि कम-से-कम हिंसा तक उतरते हैं, तब हिंसा में विश्वास न रखनेवाले ऐसा कोई नियम नहीं रक्खेंगे ?"

"ऐसा विश्वास करना तो भ्रम है। वे सभी, जो आज हिंसा का प्रयोग कर रहे हैं, ऐसा ही दावा करते हैं। हिटलर भी ऐसी ही बात कहेगा। लार्ड-सभा ने जनरल डायर की उस घड़ी का महान् वीर कह कर प्रशंसा की थी, क्योंकि उसका उद्देश्य जनता में हिंसा के फैलाव को रोकने का कहा जाता है। सोवियट रूस का विश्वास है कि हिंसा से रहित व्यवस्था को स्थापित करने के लिए उसकी हिंसा तो एक संक्रमण-अवस्था है। हमारे विश्वास और व्यवहार की वर्तमान दशा में यह अधिक अच्छा हो सकता है कि संघ को बन्द कर दिया जाये और हरेक व्यक्ति को बंधन-मुक्त बढ़ने के लिए छोड़ दिया जाये।"

"लेकिन यह सलाह दी जा रही है," किशोरलाल भाई ने कहा, "कि हम सदस्यता को उन्हीं तक सीमित करदें, जो रचनात्मक काम में लगे हुए हैं।"

"यह सलाह अच्छी है और संघ को ऐसी संस्था के रूप में परिणत करने की कल्पना रक्खी जा सकती है और तब हममें से प्रत्येक अपनी वैयक्तिक हैसियत में अपने को जितना शुद्ध कर सकता है, करे। क्योंकि अहिंसा बिना आत्म-शुद्धि के सम्भव नहीं है। इसलिए हम आत्म-शुद्धि-संघ के सदस्य हों, लेकिन उस अर्थ के लिए किसी संघ की आवश्यकता नहीं है। इसलिए हममें से हरेक अपने ही तरीक़े से कठिनाइयों और समस्याओं का, जैसे-जसे कि वे आती हैं, मुक़ाबिला करे और देखे कि हम कितना कर सकते हैं। दो बरस पहले हुदली में चुनावों, कौंसिलों और असेम्बलियों में अच्छे-से-अच्छे आदमी भेजने में मैंने आपकी मदद मांगी थी। उस वायुमंडल में, जैसाकि तब

वह था, मैंनें अपनी सलाह दी थी। आज वह सलाह मैं आपको नहीं दे सकता। वास्त में समय आ गया है कि आवश्यक है कि आपमें से वे, जो सवल की अहिंसा में विश्वा करते हैं, कांग्रेस से हट जायें, जैसा कि १९३४ में मैंनें किया।"

"आप कैसे सोचते हैं कि जनता अहिंसा पर आचरण करेगी, जबकि हम जान हैं कि सब लोग क्रोध और घृणा करनें के लिए तैयार रहते हैं और दुर्भावनाएँ उन हैं ? देखा जाता है कि छोटी-छोटी चीज़ों के लिए लड़ने की उनकी आदत है।"

"आदत है और फिर भी मेरा विचार है कि वे सामान्य हित के लिए अहिं का व्यवहार कर सकते हैं। क्या आप सोचते हैं कि हज़ारों स्त्रियाँ, जिन्होंने निषि नमक इकट्ठा किया, किसीके प्रति दुर्भावना रखती थीं ? वे जानती थीं कि कांग्रेस य गाँधीजी ने उनसे कुछ चीजें करने के लिए कहा है और श्रद्धा और आशा के सा उन्होंने वही चीज़ें कीं। मेरे विचार से अहिंसा का सबसे पूर्ण प्रदर्शन चम्पारन में हुआ क्या हज़ारों की रैयत, जिन्होंनें कृषि-सम्बन्धी वुराइयों के विरुद्ध विद्रोह किया, ज़र भी सरकार या किसानों के प्रति दुर्भावना रखती थीं ? अहिंसा में उनकी श्रद्धा सोच समझकर नहीं थी, जैसी कि बहुतों की श्रद्धा पृथ्वी की गोलाई के बारे में सोची-समझी नहीं है। लेकिन उनकी श्रद्धा उनके नेताओं में सच्ची थी और वही काफ़ी था। मगर जो नेतृत्व करते हैं उनकी वात दूसरी है। उनकी श्रद्धा सजग और सोची-परखी होगी और उन्हें उस श्रद्धा के सव फलितार्थों पर आचरण करना होगा। लेकिन क्या दुनिया भर में और कहीं जनता इस प्रकार की नहीं है ? हाँ, नहीं ह; क्योंकि दूसरों के लिए अहिंसा का वह आधार नहीं है।"

"लेकिन अगर अहिंसा उनमें मौजूद थी तो वे गुलामी की दशा में कैसे आये ?"

"वहीं तो है जो मैं मानता हूँ कि मेरे जीवन की देन समझी जायगी। मैं चाहता हूँ कि दुर्वल की अहिंसा सवल की अहिंसा वन जाये। हो सकता है कि वह एक स्वप्न हो; लेकिन उसको पूरा करने के लिए मैं कोशिश कर रहा हूँ।"

हरिजन सेवक, ४ नवम्बर, १९३९. —महादेव ह० देशाई

: ५ :

स्वतन्त्रता-दिवस की प्रतिज्ञा

"हम मानते हैं कि हिन्दुस्तान की जनता को यह पैदायशी हक़ है कि उसे आज़ादी मिले, वह अपनी मेहनत का फल भोग सके और जीवन के लिए आवश्यक चीज़ें उसे इतनी मिलें कि अपने विकास की पूरी सुविधा रहे। हम मानते हैं कि कोई सरकार प्रजा के ये अधिकार छीने और उसे सताये तो प्रजा को यह भी हक़ है कि वह उस सरकार को वदलदे या मिटादे।

"हिन्दुस्तान में अंग्रेज़ी सरकार ने भारतीय प्रजा से उसकी आज़ादी ही नहीं छीनी है, वल्कि उसका आधार ही ग़रीवों का शोषण है और उसने हिन्दुस्तान को

ार्थिक और राजनैतिक, सांस्कृतिक और आत्मिक सभी दृष्टियों से तबाह कर दिया , इसलिए हमारा विश्वास है कि हिन्दुस्तान को अंग्रेज़ों से सम्बन्ध छोड़कर पूर्ण वराज यानी मुकम्मिल आज़ादी हासिल करना ही चाहिए।

"हमने पहचान लिया है कि आज़ादी हासिल करने का सबसे कारगर उपाय इसा नहीं है। शान्तिपूर्ण और उचित साधनों के बल पर ही हिन्दुस्तान ने बल और वावलम्बन प्राप्त किया और 'स्वराज' का बहुत-सा रास्ता तय कर लिया है और न्हीं तरीक़ों पर क़ायम रहने से हमारे देश को स्वाधीनता मिलनेवाली है।

"हम भारत की स्वाधीनता का फिर से अहद करते हैं और सौगन्ध खाकर नश्चय करते हैं कि जबतक पूर्ण स्वराज हाथ न आजायगा, तबतक हम अपनी आज़ादी ी अहिंसात्मक लड़ाई जारी रक्खेंगे। हमारा यक़ीन है कि आमतौर पर किसी भी ाहिंसात्मक कार्रवाई के लिए और ख़ासकर अहिंसात्मक सविनय-भंग जैसी सीधी लड़ाई लिए खादी, क़ौमी एकता और अस्पृश्यता-निवारण के रचनात्मक कार्यक्रम का काम- ाव होना ज़रूरी है। हम जाति या धर्म का भेद-भाव छोड़कर अपने देशवासियों में द्भाव फैलाने का कोई मौक़ा न छोड़ेंगे।

"हिन्दुस्तान के ७ लाख गाँवों में फिर से जान डालने और आम जनता की मरतोड़ ग़रीबी को मिटाने के लिए चर्खा और खादी हमारे रचनात्मक कार्यक्रम के से हिस्से हैं जिन्हें अलग नहीं किया जा सकता। इसलिए हम नियम से कातेंगे, अपने नेजी काम के लिए सिवाय खादी के, जहाँ तक हो सकेगा, गाँवों में हाथ से बनी हुई ीज़ों के और कुछ इस्तेमाल न करेंगे और दूसरों से भी ऐसा ही करवाने की ोशिश करेंगे।

"हम प्रतिज्ञा करते हैं कि हम सिपाहियाना तौर पर कांग्रेस के उसूलों और नीति र चलेंगे, और हिन्दुस्तान की स्वाधीनता की लड़ाई जारी रखने के लिए जब कभी ांग्रेस की पुकार होगी तो उसपर आ खड़े होने को तैयार रहेंगे।"

हरिजन सेवक, ३० दिसम्बर, १९३९.

सस्ता साहित्य मण्डल से प्रकाशित
'सामयिक साहित्यमाला' की पुस्तकें

---

१. कांग्रेस का इतिहास (१६३५–३६)

यह पुस्तक 'कांग्रेस इतिहास' (१८८५–१९३५) के परिशिष्ट के रूप में है मूल पुस्तक डॉ० पट्टाभि सीतारामैया ने लिखी थी। यह सन् १९३५ में कांग्रेस-स्वर्ण जयन्ती पर प्रकाशित हुई थी। मूल्य ।–)

२. दुनिया का रंगमंच (१६३३–३८)

पं० जवाहरलाल नेहरू द्वारा लिखी गई यह पुस्तक 'विश्व-इतिहास की झलक, के परिशिष्ट के रूप में है। सन् १९३३ से लेकर अबतक की देश-विदेश की राजनैतिक स्थिति पर यह पुस्तक प्रकाश डालती है। मूल्य ≈)

३. हम कहां हैं ?

यह पुस्तक पं० जवाहरलाल नेहरू के लेखों का संग्रह है। देश और कांग्रेस की वर्तमान स्थिति का इस पुस्तक में सिंहावलोकन है। मूल्य ≈)

४. युद्ध-संकट और भारत

यह पुस्तक वर्तमान यूरोपीय युद्ध, ब्रिटिश सरकार की नीति और भारत के रुख पर प्रकाश डालती है। ब्रिटिश सरकार की घोषणायें, महात्मा गांधी, डा० राजेन्द्रप्रसाद पं० जवाहरलाल नेहरू कांग्रेस-कार्यसमिति और महासमिति के सितम्बर १९३९ ई० से लेकर अबतक के वक्तव्यों और लेखों आदि का संग्रह है। मूल्य ।)

५. सत्याग्रह : क्यों, कब और कैसे ?

इस पुस्तक में महात्मा गांधी के सत्याग्रह के स्वरूप, आवश्यकता, उसके उचित समय, आदि पर लिखे ताज़े लेखों का संग्रह है। परिशिष्ट में पं० जवाहरलाल नेहरू का सत्याग्रह संबंधी एक लेख, स्वतंत्रता-दिवस की प्रतिज्ञा आदि दिये गए हैं। मूल्य ≡)

६. राष्ट्रीय-पंचायत

इस पुस्तक में दिखाया गया है कि राष्ट्रीय-पंचायत ही किस प्रकार देश के वैधानिक संकट को दूर कर सकती है। इसमें महात्मा गांधी, पं० जवाहरलाल नेहरू, डा० पट्टाभि सीतारामैया, श्री एम. एन. राय, श्री सम्पूर्णानन्द आदि के लेखों का संग्रह है। मूल्य ।)